।। श्री वीतरागाय नमः ।।

त्रैलोक्य तिलक

लेखक

महोपदेशक, प्रवचनरत्न वाणीभूषण, प्रतिष्ठाचार्य
महेन्द्र कुमार "महेश" शास्त्री
ऋषभदेव (राजस्थान)

प्रकाशक

श्री विनीत किशोरजी जैन एडवोकेट
मुरादाबाद
एवं
दिगम्बर जैन समाज
गया, मुरादाबाद, सदरमेरठ

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :
पं. महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्री
महेश भवन ऋषभदेव
(उदयपुर) राजस्थान
फोन नं. 30334
S.T.D. 029072

❋

द्वितीयावृत्ति संशोधित एवं परिवर्द्धित
प्रति 1000
जून 1996

❋

मूल्य 100) रु. मात्र
विद्वानों व स्वाध्यायार्थियों को अर्द्ध मूल्य 50) रु.

❋

मुद्रक :
सुभाष जैन
कमल ऑफसैट एण्ड कम्प्यूटर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)
फोन नं. : 44347 & 44348
S.T.D. : 01463

प्राक् कथन

सिद्धान्ताचार्य जवाहरलाल सिद्धान्त शास्त्री, भीण्डर

मुझे त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ देखने को मिला। इसमें दस अध्याय हैं। वे ये हैं- लोक सामान्य, अधोलोक, मध्य लोक, अकृत्रिम चैत्यालय, भवनत्रिकदेव, ऊर्ध्व लोक, गत्यागति, तत्त्व, कर्म सिद्धान्त व रत्नत्रय।

उक्त दसों अध्यायों में से किस-किस में कितने बहु संख्यक विषय व विवरण दिए हैं यह सब ग्रन्थकार ने अपनी ३० पृष्ठ की भूमिका में स्पष्ट किया ही है। मैं समझता हूं तीन लोक को जानने के लिए यह एक प्रारम्भिक महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रायः तीन लोक संबंधी सभी विषय सरल भाषा में इसमें समा गये हैं। प्रायः कोई भी सरस, सरल या प्रारम्भिक विषय इसमें छूटा नहीं है जिससे कि इस कृति को पढ़ने के बाद भी पाठक के मन में त्रिलोक संबंधी कुछ जिज्ञासा शेष रह जाती हो। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना तिलोय पण्णत्ति, त्रिलोकसार के आधार से हुई है। क्वचित् तत्त्वार्थसूत्र, स. सि. गो. सा. का भी आधार लिया गया है।

कुल १८६८ पद्यों में दस अध्याय पूरे हुए हैं। प्रायः ३१ मात्रिक हिन्दी पद्य का ही सर्वत्र उपयोग हुआ है लेखक कवि-हृदय ने कहीं भी मात्राओं की गिनती नहीं की, क्योंकि "जिह्वा जानाति छन्दांसि", अर्थात् जीभ छन्दों को जानती है। यदि जिह्वा ठेकर खाती है तो समझ लो पद्य अभी विकृत है; इसी मूलाधार को आपने ध्यान में रखा है।

वैसे कवि सर्वत्र, सर्वकाल लीक ही में चले हो, ऐसी बात भी नहीं है। जैसे अनुष्टुप् श्लोक ८-८ अक्षरों प्रमाण होता है तो प्राचीन काल में ऋषियों ने कहीं उत्तरार्ध (श्लोक का) में एक पाद में ७ तथा दूसरे पाद में ९ अक्षर भी रखे हैं। (षड् दर्शन समुच्चय कारिका ७) इसी तरह दोहे में १३, ११ मात्राओं का नियम है, परन्तु प्राचीन सदियों में कहीं आध्यात्मिक कवियों ने इसका निर्वाह नहीं भी किया है। लेखक कवि ने हिन्दी पद्यों का फिर नीचे हिन्दी गद्य में अनुवाद भी किया है। जिससे पाठक के लिए विषय सहज गम्य व सरस हो गया है। गणितीय विषय कवि ने नहीं छूआ, अतः मन्दबुद्धि पाठकों के लिए दुरूहता नहीं रही।

लेखक कवि ने विषय वर्णन में आचार्य प्रणीत ग्रन्थों को ही आधार बनाया है तथा सिद्धान्त विषयक जो कोई एक मत मिल गया उसे ही ग्रहण कर लिया है। पूरे ग्रन्थ में केवल एक जगह मात्र धर्म ध्यान के प्रकरण में आपने दो मत लिखे हैं, अन्यत्र प्रायः कहीं दो मत नहीं लिखे। किसी एक को ही, जो ध्यान में आया लिख दिया है। पाठकों से निवेदन है कि यह सब मन में रख कर ही प्रस्तुत कृति का अवलोकन तथा रसास्वादन करें। जैसे पृ. ७० पर लिखा है कि लक्ष्मण चौथे नरक में गये यह कथन आपने ति. प. ४/१४३८ तथा त्रिलोक सार ८३२ से लिया है। दूसरा मत यह भी है कि लक्ष्मण तीसरे नरक में गये (हरिवंश. ६०/३०२ पृष्ठ ९१२ शास्त्राकार) इसी तरह पृ. ३३२ पद्य १९६ के धर्म ध्यान विषयक विशेष यह है कि ध्यान शतक ६३ तथा षट खण्ड. परि. ६३२ के अनुसार धर्म ध्यान ४,५,६ गुणस्थान में नहीं होता यह भी एक मत है। स. सि. ४/३६ तथा रा. वा. ४/३६/१३ के अनुसार चौथे से

सातवें गुण. तक धर्म ध्यान होता है धवलाजी १३/७४ के अनुसार दसवें गुण. तक धर्म ध्यान होता है। ये विविध मत हैं। परन्तु लेखक ने मन्द मति भव्यों का सदैव ख्याल रखा और विविध मत भंवर को नहीं प्रकट कर मात्र कोई एक मत प्रायः सर्वत्र दिया है। अतः यही समझकर मन में यह विकल्प न लावें कि हमने तो ऐसा भी पढ़ा था; यहां ऐसा क्यों ? क्योंकि वास्तव में पृ. २६५, २६७, २९४ आदि पर ऐसे विषय बिन्दु हैं जिनमें आचार्यों के दो मत हैं।

विशिष्ट ध्यातव्य यह है कि पद्यों में कवि को यह स्वतंत्रता होती है कि वह तुक लय यति गति आदि मिलाने की दृष्टि से क्वचित् पाठ में क्रम भंग भी करता है। कहा भी है- लीक लीक गाड़ी चले, लीक ही चले कपूत। बिना लीक तीनों चले, शायर सिंह सपूत।।........ "जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि।"

उदाहरण के लिए पृ. २३५ में संज्ञा इस क्रम से पद्य में आई परिग्रह भय मैथुन आहार। इसका अर्थ पाठक संज्ञा का क्रम ही ऐसा है, ऐसा नहीं ग्रहण करें बल्कि ऐसा ग्रहण करें कि आहार भय मैथुन व परिग्रह यही क्रम है परन्तु काव्य में तुक मिलान हेतु अक्रम से लिखा है, ऐसा समझना चाहिए। पृष्ठ २८९, २९८ आदि में यही ध्यान रखना चाहिए।

ग्रन्थ का जन्म इतिहास इस तरह है कि सन् ७१ में चार अध्यायों वाला (१६ पेज प्रमाण) त्रिलोक सार नामक पद्य ग्रन्थ आपने रचा जिस पर पूज्य करणानुयोग प्रभाकर स्व. रतनचंद मुख्तार ने १७/४/७१ के जैन गजट में अच्छी सम्मति छपवाई थी। इसी त्रिलोक सार का विस्तृत रूप २ मास १५ दिन में रचकर आपने (पं. महेन्द्रकुमारजी ने) त्रिलोक्य तिलक (पद्य

कुल १५७६, अध्याय ८) प्रकाशित कराया। विमोचन १०८ आ. धर्मसागर संघ से अजमेर में हुआ। फिर अन्त में तृतीय सोपान में दस अध्यायों वाला तथा १८६८ पद्य प्रमाण प्रस्तुत तृतीय परिवर्धित संस्करण सबके सामने है। आशा है इस काव्य ग्रन्थ का समाज में समादर होगा।

कवि परिचय/उपसंहार

सं. १९७५ आसोज कृ. १३ को जन्मे (आयु ७८ वर्ष), ऋषभदेव निवासी पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री १४ वर्षों से दो प्रतिमाधारी हैं। आप जैन गजट के सह सम्पादक भी हैं। पण्डित जी दानवीर, उदार चरित, सत्संग प्रधान, आस्थावान विचारक, निर्भीक एवं ओजस्वी वक्ता, प्रतिष्ठा शास्त्र वेत्ता तथा स्वाभिमानी वृत्ति के हैं।

आपकी इस प्रस्तूयमान प्रामाणिक कृति में काव्य, महाकाव्य सब निहित हैं तथा इसमें रस परिपाक, भाव्यंजना, भाषा शैली, अनवरत प्रवाह, सहजता इन सबके दर्शन सुलभ हैं।

भव्यों से निवेदन है कि वे इस कृति से सम्पर्क करें।

भद्रंभूयात्

— जवाहर

लेखक

पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री "महेश"

ऋषभदेव, (उदयपुर) राजस्थान

तीन लोक का आकार

अ लो का का श

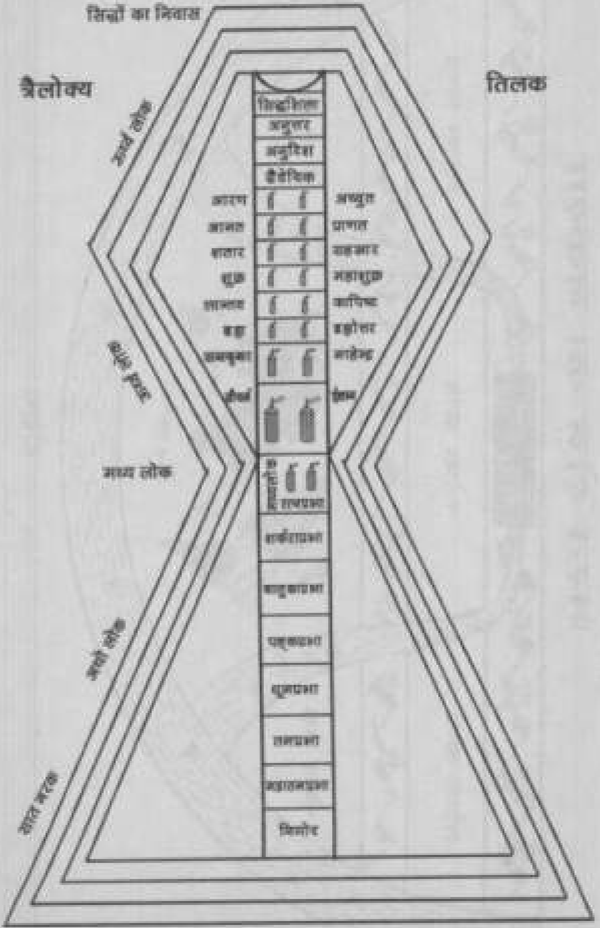

अ लो का का श

भरत क्षेत्र का नक्शा

● श्री वीतरागाय नमः ●

भूमिका

नत्वा वीरं जिनं भक्त्या, स्मृत्वावाणीं सरस्वतीं।
लिख्यते भूमिकारम्या, त्रैलोक्यतिलकस्य वै।।

आज के वैज्ञानिक युग में जैन शास्त्रों में वर्णित लोक वर्णन वैज्ञानिकों द्वारा निर्णीत भूगोल विवरण से सर्वथा विपरीत है, सर्व प्रथम मूल में ही विपरीतता यह है कि जिनागम में पृथ्वी स्थिर और सूर्य भ्रमणशील है तथा विज्ञान द्वारा कथित भूगोल में पृथ्वी भ्रमणशील और सूर्य स्थिर है, फिर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, आदि की पृथ्वी से ऊंचाई के वर्णन में भारी अन्तर है, ऐसी स्थिति में जबकि स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटियों में अनेक युक्तियों, साहित्य नक्शों, यंत्र आदि द्वारा वैज्ञानिक भूगोल का ही ज्ञान कराया जाता है और आम जनता का विश्वास भी वैज्ञानिक भूगोल पर केन्द्रित होता जा रहा है तब जैन शास्त्रों में पूर्वाचार्यों द्वारा भगवान महावीर स्वामी की दिव्य-ध्वनि के अनुसार परम्परा से आया हुआ वर्णन किया गया तीन लोक का वर्णन केवल काल्पनिक ही रह जायेगा क्या ? ऐसी आशंका प्रायः जैन समाज के हृदय में रह रह कर उठ आया करती है, ऐसी परिस्थिति होने पर भी जिनागम में वर्णित लोक विवरण पर मेरी दृढ़ आस्था होने से आगम में वर्णित संस्कृत व प्राकृत के महान ग्रंथों में लोक के गहन वर्णन को सारभूत रूप में, सरल हिन्दी भाषा के पद्य में सर्व साधारण को जैन भूगोल का ज्ञान हो सके एवं जैन मंदिरों में शास्त्र प्रवचन की गद्दी पर—यह शास्त्र रखा जाकर प्रवचन द्वारा समाज को लोक वर्णन का ज्ञान सुलभता और सरलता से हो सके इस महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर मैंने यह ग्रंथ "त्रैलोक्यतिलक" हिन्दी सरल पद्य में लिखने का तुच्छ प्रयास किया है, इसमें सफलता कहाँ तक मिलेगी— यह बात भविष्य के गर्भ में है—

क्या पृथ्वी का भ्रमण यथार्थ है ?

) सर्व प्रथम सूर्य स्थिर है और पृथ्वी भ्रमण करती है, यह बात निम्न कारणों से शंकास्पद है, जैसे वायुयानों का आकाश में निश्चित स्थान से उड़कर नियत स्थान पर आना और वापस उतने ही समय पर लौटकर उसी स्थान पर जहाँ से वायुयान उड़ा था आजाना, पक्षियों का बहुत लम्बे सफर पर उड़ना और समय पर वापस सैंकड़ों मील से आना और अपने–अपने घौंसले सम्हालना पृथ्वी से ऊपर अधर उड़ी हुई गेंद बाल आदि वस्तुओं का सही स्थान पर गिरना, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से भी ऊपर गये हुए अंतरिक्ष यानों का निश्चित समय पर नियत स्थानों पर उतरना–तीर, गोली, तोप के गोले, वायुयान से गिराये बम आदि का पृथ्वी से सम्बन्ध छूट जाने के पश्चात् भी–ठीक निशाने पर गिरना, पेराशूट से वायुयान से उड़ाकों का ठीक जगह गिरना, यह सब पृथ्वी के निरन्तर भ्रमण होने पर सही रूप में बन नहीं सकता– यदि या भी मान लिया जाय कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से पृथ्वी से ऊपर उड़ने वाले पृथ्वी से सम्बन्धित होते हैं अतः उनके आने जाने में समय व स्थान का अन्तर नहीं पड़ता–तो अंतरिक्षयान से चन्द्रलोक की यात्रा पर जाने वाले वैज्ञानिक तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से ऊपर गये थे फिर वे कैसे वापस निश्चित स्थान पर आ सके यह भी विचारणीय विषय है। पृथ्वी को निरंतर भ्रमणशील मानने पर समुद्र का स्थिर जल कभी स्थिर नहीं रहेगा, उथल पुथल हो जायगा, नदी, नाले, कूए, बावड़ी का जल कभी सीमा में नहीं रह सकता पृथ्वी के भ्रमण करते रहने से पानी इधर उधर उछलेगा और बिखर जाएगा।

एक बार एक अंग्रेजी विदुषी महिला ने पृथ्वी को नारंगी की तरह गोल सिद्ध करने वाले को भारी पुरस्कार देने की घोषणा समाचार–पत्रों द्वारा की थी– आज तक उस पुरस्कार को कोई प्राप्त नहीं कर सका।

एक अमरीकन विद्वान् जेमेकऐनल्ड ने लिखा था कि–पृथ्वी नारंगी की तरह गोल नहीं है अपितु रकाबी के समान गोल है। उसने इसको प्रमाणित करने के लिये कुछ तर्क दिये थे– वे तर्क नीचे लिखे अनुसार हैं।

१. यदि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल होती तो समुद्र में दूर से आने वाले जहाज लम्बी दूर से पूर्णत: नहीं दिखाई देते, केवल ऊपरी मस्तूल व ध्वज ही प्रथम दिखाई देता पश्चात् नीचे का भाग दिखता किन्तु ऐसा नहीं होकर पूर्ण भाग प्रथम ही दिखता है।

२. यदि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल होती तो रेल की पटरियां बहुत दूर से दोनों मिली हुई नहीं दिखती।

३. यदि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल होती तो बेलून, वायुयान व अंतरिक्षयान से ऊपर उड़ने वाले मनुष्य को ऊंचे से पृथ्वी ऊंचे पेट वाली दिखाई देती किन्तु वैसा नहीं दिखकर चपटी दिखाई देती है।

४. यदि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल होती तो चैनल में खड़े जलयान की छत से फ्रांसीसी व ब्रिटेन के तट के प्रकाश स्तम्भ स्पष्ट नहीं दिखते।

५. यदि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल होती तो उत्तरी ध्रुव के समीप जैसी वनस्पतियाँ दक्षिणी ध्रुव में भी होती।

इत्यादि प्रमाणों से पृथ्वी का घूमना और नारंगी की तरह गोल होना यह वैज्ञानिकों का सिद्धान्त सर्वथा सत्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अपितु जिनागम में वर्णित पृथ्वी थाली की तरह गोल है व स्थिर (भ्रमण रहित) ही अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

जिनागम ही नहीं वैदिक शास्त्र एवं बौद्ध साहित्य में भी पृथ्वी को स्थिर एवं थाली की तरह गोल माना है, नारंगी की तरह गोल नहीं।

वैदिक ग्रंथों के अनुसार लोक वर्णन

वैदिक ग्रंथ विष्णु पुराण में द्वितीय अंश के दूसरे अध्याय में भूगोल (लोक) का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है। यथा– इस पृथ्वी पर सात द्वीप हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं–

१. जम्बू, २. प्लक्ष, ३. शाल्मल, ४. कुश, ५. क्रौंच, ६. शाक,

७. पुष्कर, ये सात द्वीप हैं. ये द्वीप गोल चूड़ी जैसे आकार के निम्न प्रकार सात समुद्रों से वेष्टित हैं। उन सात समुद्रों के नाम हैं– १. लवणोद, २. इक्षुरस, ३. सुरोद, ४. सर्पिस्सलिल, ५. दधितोय, ६. क्षीरोद, ७. स्वादु सलिल, इन सात समुद्रों से क्रमशः वेष्टित हैं। इन सबके बीच में जम्बू द्वीप है। इसका विस्तार एक लाख योजन है, जम्बूद्वीप मध्य में चौरासी हजार योजन ऊंचा मेरु पर्वत है। इसकी नींव पृथ्वी के भीतर सोलह हजार योजन प्रमाण है। मेरु पर्वत का विस्तार मूल में सोलह हजार योजन है।

जम्बू द्वीप के सुमेरु पर्वत से दक्षिण में हिमवान, हेमकूट और निषध तथा उत्तर में नील, श्वेत और शृङ्गी ये छः वर्ष पर्वत हैं, इन पर्वतों से जम्बू द्वीप के सात विभाग हो गये हैं। उन विभाग (क्षेत्रों) के नाम इस प्रकार हैं– १. भारतवर्ष, २. किम्पुरुष, ३. हरिवर्ष, ४. इलावृत ५. रम्यक, ६. हिरण्मय, ७. उत्तरकुरु।

मेरु पर्वत के दोनों ओर पूर्व पश्चिम में इलावृत वर्ष की मर्यादा भूत माल्यवान और गंधमादन पर्वत हैं जो कि नील व निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। इनके कारण दोनों ओर जो दो विभाग हुए हैं उनके नाम हैं १. भद्राश्व, २. केतुमाल। उक्त सात वर्षों (क्षेत्रों) में इन दो वर्षों को मिला देने पर जम्बू द्वीप में नौ क्षेत्र हो जाते हैं।

मेरु पर्वत के चारों दिशाओं में क्रमशः मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व ये चार पर्वत हैं। जम्बू वृक्ष के नाम से इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पड़ा है। उक्त नौ वर्षों में भारतवर्ष कर्म भूमि है, यहाँ से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ पर मनुष्य पाप कर्मरत होकर नरक व तिर्यंच पर्याय भी प्राप्त करता है। यहाँ भरत क्षेत्र में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमत ऋक्ष, विन्ध्य और परियात्र ये सात कुल पर्वत हैं। इन सातों पर्वतों से दो–दो नदियां निकलती हैं। इन नदियों के तटों पर मध्य देश, कुरु, पाञ्चाल आदि अनेक देश बसे हुए हैं।

इसी भारतवर्ष में कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ऐसे चार युग हैं, अन्य वर्षों में ये युग नहीं हैं। इन आठ वर्षों (क्षेत्रों) में प्रजा स्वस्थ, आतङ्क से रहित और सब प्रकार के दुःखों से रहित दश बारह

हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं, यहां जरा, मृत्यु आदि भय से रहित तथा तपश्चरण आदि क्रियाओं का अभाव होने से वह क्षेत्र कर्म–भूमि नहीं होकर भोग भूमि कहलाता है। जम्बू द्वीपस्थ नौ वर्षों में एकमात्र भारतवर्ष ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

इसमें स्वयंभुव नाम के मनु हुए उनके पुत्र प्रियव्रत हुए। प्रियव्रत के दश पुत्र हुए, उनमें से तीन पुत्रों ने वैराग धारण कर योग धारण किया अर्थात् राज्य की अभिलाषा नहीं की। शेष सात पुत्रों को पिता प्रियव्रत ने भिन–भिन द्वीपों का अधिपति बनाया। इनमें से आग्नीध्र नाम के पुत्र के नाभि आदि नौ पुत्र हुए। नाभि ही हिमवर्ष (भारतवर्ष) के अधिपति हुए। नाभि के ऋषभ नाम का पुत्र हुआ, महात्मा ऋषभ के भरत आदि सौ पुत्र हुए। ऋषभ ने कुछ काल तक राज्य कर ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्याभिषिक्त कर तपश्चरण किया– उनने घोर तप किया इससे शरीर कृश हो गया– ऋषभ ने राज्य भरत को दिया था, अतः भरत के नाम से हिमवर्ष का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

जम्बू द्वीप को वलयाकार से वेष्टित करके एक लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र स्थित है, इसके चारों ओर से वेष्टित करने वाला दो लाख योजन के विस्तार का प्लक्ष द्वीप है वहां युग परिवर्तन नहीं होकर सदा त्रेतायुग जैसा काल रहता है। यहां के मनुष्यों की आयु पांच हजार वर्ष परिमित है। जिस प्रकार जम्बू द्वीप में जम्बू वृक्ष है उसी प्रकार इस द्वीप में एक प्लक्ष वृक्ष स्थित है, इसी कारण इस द्वीप का नाम प्लक्ष द्वीप प्रसिद्ध हुआ।

इस प्लक्ष द्वीप के चारों ओर से घेरे हुए इक्षुरसोद समुद्र है, उसके चारों तरफ शाल्मल द्वीप है उसके चारों तरफ सुरोद समुद्र, उसके चारों तरफ द्वीप और द्वीप के चारों तरफ समुद्र इस प्रकार सभी द्वीप और समुद्र एक दूसरे को घेरे हुए हैं। समुद्रों का विस्तार अपने–अपने द्वीपों के समान है और पूर्व–पूर्व द्वीप की अपेक्षा द्वीप दूने–दूने विस्तार वाले हैं।

सातवां द्वीप पुष्कर द्वीप है, इसके बीच में मानुषोत्तर पर्वत वलयाकार स्थित है इससे इस द्वीप के दो खण्ड हो गये हैं। मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य–खण्ड

का नाम महावीर वर्ष और अभ्यंतर खण्ड का नाम धातकी वर्ष है। इस द्वीप में रहने वाले रोग, शोक, राग, द्वेष से रहित होते हैं— उनकी आयु दस हजार वर्ष की है, यहां वर्ण भेद व ऊँच–नीच का भेद नहीं है। इस द्वीप में पर्वत व नदियां नहीं है। इस द्वीप को घेरे स्वादूदक समुद्र है, उसकी सुवर्णमयी भूमि है, उसके आगे दस हजार योजन विस्तृत और इतना ही ऊंचा लोकालोक पर्वत है। समस्त भूमण्डल का विस्तार पचास करोड़ योजन है।

भूमण्डल के नीचे दस–दस हजार योजन के सात पाताल हैं जहां दानव, दैत्य, यक्ष एवं नाग आदि जातियां निवास करती हैं। पातालों के नीचे विष्णु भगवान का शेष नामक तामस शरीर स्थित है, वह अनंत है। हजारों फणों से युक्त है। वह शेषनाग समस्त भूमण्डल को धारण करता हुआ पाताल में स्थित है।

पृथ्वी और जल के नीचे बहुत से भयानक नरक हैं; उनमें पापी जीव मर कर जन्म लेते हैं फिर वहां से निकल कर क्रमश: स्थावर, कृमि, जलचर, धार्मिक पुरुष, देव और मुमुक्षु होते हैं। जितने जीव स्वर्ग में हैं उतने ही नरकों में हैं।

भूमि से ऊपर एक लाख योजन ऊंचा सौरमण्डल है, इससे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमण्डल है, इससे एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र–मंडल है, उससे दो लाख योजन ऊपर बुध है, इससे दो लाख योजन ऊपर शुक्र है, उससे दो लाख योजन ऊपर मंगल है, उससे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति है, इससे दो लाख योजन ऊपर शनि है, इससे एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षि मण्डल है, इससे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है।

ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊपर जाकर महर्लोक है। यहां कल्प काल तक जीवित रहने वाले कल्पवासियों का निवास है। इससे दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है यहां नंदनादि से सहित ब्रह्मा जी के पुत्र रहते हैं। इससे आठ करोड़ योजन ऊपर तप लोक है, यहां वैराजदेव निवास करते हैं। इससे बारह करोड़ योजन ऊपर सत्य लोक है जिसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं, यहां कभी न मरने वाले अमर जीव रहते हैं।

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक ये तीन लोक कृतक हैं तथा

जनलोक, तप लोक और सत्य लोक ये तीन लोक अकृतक हैं– इन कृतक व अकृतक लोक के बीच में महर्लोक है। यह कल्पान्त में जन शून्य, हो जाता है किन्तु सर्वथा नष्ट नहीं होता।

वैदिक मान्य ज्योतिषी ग्रंथ में दिल्ली से प्रकाशित ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रहों आदि ज्योतिषी देवों का पृथ्वी से दूरी वर्णन निम्न प्रकार है–

सूर्य :– सूर्य अपने मण्डल का राजा मालिक है, यह भूमि से १३ लाख गुना बड़ा है और भूमि से नौ करोड़ तीस लाख मील दूरी पर है। सब ग्रह इसके चारों ओर घूमते हैं और इसकी आकर्षण शक्ति से अपनी अपनी जगह ठहरे हुए हैं। सूर्य की असंख्य किरणें हैं इसलिये सूर्य को सहस्रांशु कहते हैं। यह सब ग्रहों का राजा है, चन्द्रमा इसका मंत्री है, बृहस्पति गुरु है, मंगल नाती है, इसलिये ये तीनों ग्रह इसके मित्र माने गये हैं।

चन्द्रमा :– चन्द्र संसार के जीवों का मन है, यह चन्द्रमा भूमि से ढाई लाख से भी कम दूर है। यह पृथ्वी का उपग्रह है, जब चन्द्रमा सूर्य के सामने आता है तब सूर्य का उस पर प्रकाश पड़ता है।

बुध :– इस पृथ्वी से बुध बारह करोड़ मील ऊंचा है, यह सूर्य के लगभग पास ही रहता है, सूर्य से तीन करोड़ मील ऊंचा है।

शुक्र :– शुक्र भूमि से १६ करोड़ तथा सूर्य से ७ करोड़ मील ऊंचा है। इसमें जल का भाग बहुत है इसलिये इसका रंग श्वेत है।

मंगल :– यह सूर्य से १५ करोड़ व पृथ्वी से २४ करोड़ मील ऊंचा है इसमें अग्नि तत्व विशेष है।

बृहस्पति :– बृहस्पति सूर्य आदि का पति है इस कारण इसको देवताओं का गुरु माना है। यह शुभ ग्रह है, सूर्य से पचास करोड़ मील ऊंचा है– सूर्य का तेज बहुत बड़े परिमाण में इसमें पहुंचता है।

शनि :– शनि की ऊंचाई पृथ्वी से ८९ करोड़ मील के लगभग है। यह सूर्य के चारों ओर ३० वर्ष में एक चक्कर लगाता है।

राहुकेतु :– ये दोनों भूमि के ध्रुव हैं, दक्षिण ध्रुव केतु है– वह १६ वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करता है और उलटा चलता है।

उक्त वर्णन वैदिक धर्म मान्य ज्योतिष ग्रंथ के अनुसार है।

बौद्ध ग्रंथ वर्णित भूगोल वर्णन

वसुबन्धुकृत अभिधर्म कोश के आधार से

लोक के अधो भाग में सोलह लाख योजन ऊंचा अपरिमित वायु मण्डल है। उसके ऊपर ग्यारह लाख बीस हजार योजन ऊंचा जल मण्डल है– इसमें तीन लाख बीस हजार योजन कांचनमय भूमण्डल है। जल मण्डल व कांचनमण्डल का विस्तार १२०३४५० योजन है और परिधि ३६१०३५० योजन प्रमाण है।

कांचनमय भूमण्डल के मध्य में मेरु पर्वत है, यह अस्सी हजार योजन जल में डूबा हुआ है तथा इतना ही ऊपर स्थित है, आगे मेरु को चारों ओर से वेष्टित प्रथम सीता (समुद्र) है, उसके आगे चालीस हजार योजन विस्तार का युगन्धर पर्वत वलयाकार स्थित है। इसके आगे भी इसी प्रकार से एक–एक समुद्र को अन्तरित करके उत्तरोत्तर आधे–आधे विस्तार से संयुक्त क्रमशः ईशाधर, खदिरक, सुदर्शन, अश्वकर्ण, विनतक और निमिंधर पर्वत हैं। सबसे बाह्य में स्थित सीता (महासमुद्र) का विस्तार बाईस हजार योजन प्रमाण है। अंत में लोहमय चक्रवाल पर्वत स्थित है।

निमिंधर और चक्रवाल पर्वतों के मध्य में जो समुद्र स्थित है उसमें जम्बू द्वीप, पूर्व विदेह, अवर गोदानीय और उत्तर कुरु ये चार द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप मेरु के दक्षिण भाग में है, उसका आकार शकट के समान है। मेरु के पूर्व भाग में अर्ध चन्द्राकार पूर्व विदेह नामक द्वीप स्थित है इसकी भुजाओं का प्रमाण जम्बू द्वीप के समान है। मेरु के पश्चिम भाग में मण्डलाकार अवरगोदानीय द्वीप स्थित है इसका विस्तार २५०० योजन प्रमाण है। मेरु के उत्तर भाग में समचतुष्कोण उत्तर कुरु द्वीप अवस्थित है, इसकी एक–एक भुजा २००० योजन है।

इनमें से पूर्व विदेह के समीप में देह व विदेह, उत्तर कुरु के समीप में कुरु और कौरव, जम्बू द्वीप के समीप में चामर व अवर चामर, तथा गोदानीय द्वीप के समीप में शाटा व उत्तर मंत्री द्वीप स्थित हैं। इनमें से चामर द्वीप में राक्षसों और शेष द्वीपों में मनुष्यों का निवास है।

जम्बू द्वीप में उत्तर की ओर नौ कीटाद्रि और उनके आगे हिमवान पर्वत अवस्थित है। हिमवान् पर्वत से आगे उत्तर में ५०० योजन विस्तृत अनवतप्त नामक अगाध सरोवर है। इससे गंगा, सिंधु, वक्षु और सीता ये नदियाँ निकलती हैं। उक्त सरोवर के समीप में जम्बू वृक्ष है जिसके कारण इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप प्रसिद्ध हुआ। अनवतप्त सरोवर के आगे गन्धमादन पर्वत है।

जम्बू द्वीप के नीचे बीस हजार योजन प्रमाण अवीची नामक नरक है उसके ऊपर क्रमशः प्रतापन, तपन, महारौरव, रौरव, संघात, कालसूत्र और संजीव ये सात नरक और हैं। इन नरकों के चारों पार्श्व–भागों में चार उत्सद हैं तथा जम्बूद्वीप के अधो भाग में महा नरकों के धरातल में आठ शीत नरक हैं।

मेरु पर्वत के अर्ध भाग से अर्थात् भूमि से चालीस हजार योजन ऊपर चन्द्र व सूर्य परिभ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्रमण्डल का प्रमाण पचास योजन और सूर्य मण्डल का प्रमाण इक्यावन योजन है। जिस समय जम्बू द्वीप में मध्यान्ह होता है उस समय उत्तर कुरु में अर्ध रात्रि, पूर्व विदेह में अस्तगमन और अवरगोदानीय में सूर्योदय होता है। भाद्र मास की शुक्लपक्ष की नवमी से रात्रि की वृद्धि और फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी से उसकी हानि का प्रारम्भ होता है। रात्रि की वृद्धि में दिन की हानि और रात्रि की हानि में दिन की वृद्धि होती है। सूर्य के दक्षिणायन व उत्तरायण में क्रमशः रात्रि व दिन की वृद्धि होती है। मेरु पर्वत के चार विभागों में व अन्य सात पर्वतों में देव रहते हैं।

मेरु के शिखर पर स्वर्ग लोक है, इसका विस्तार अस्सी हजार योजन है। यहां त्रस्त्रिंश देव रहते हैं, यहां चारों दिशाओं में वज्रपाणि देवों का निवास है। जम्बू द्वीप वासी मनुष्यों का शरीर ३.५ हाथ या चार हाथ, पूर्व विदेह वासियों का ७–८ हाथ, गोदानीय द्वीप वासियों का १४–१६ हाथ और उत्तर कुरुस्थ मनुष्यों का शरीर २८–३२ हाथ ऊंचा होता है। कामधातु वासी देवों में विविध देवों का शरीर, पाव कोस, आधा कोस, १ कोस, सवा कोस, डेढ़ कोस तथा आधा योजन से क्रमशः दूना २ योजन–६४ योजन प्रमाण है।

बौद्ध ग्रंथ वर्णित लोक का संक्षिप्त वर्णन उक्त प्रकार है। अब आधुनिक वैज्ञानिक मान्यतानुसार भूगोल का वर्णन संक्षेप में निम्न प्रकार है–

वैज्ञानिक व इतिहास के विद्वानों द्वारा वर्णित भूगोल

जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं वह मिट्टी और पत्थर का नारंगी के समान चपटा गोला है, जिसका व्यास लगभग आठ हजार मील है और इसकी परिधि पच्चीस हजार मील है, यह पृथ्वी अपनी कल्पित कीली पर सूर्य के चारों तरफ घूमती है, जल और वायु ही सूर्य के प्रताप से मेघों आदि का रूप धारण करते हैं। यह वायु मंडल पृथ्वी के धरातल से लगभग पांच सौ मील तक फैला हुआ अनुमान किया जाता है। पृथ्वी का धरातल सम नहीं है। पृथ्वी का उच्चतम भाग हिमालय का शिखर है, वह समुद्र तल से उनतीस हजार फुट अर्थात् साढ़े पांच मील ऊंचा है। समुद्र की उत्कृष्ट गहराई बत्तीस हजार फुट अर्थात् करीब छः मील है, इस प्रकार पृथ्वी तल की ऊंचाई व नीचाई में उत्कृष्टतम साढ़े ग्यारह मील का अन्तर है। अनुमान है कि पृथ्वी पर जीव तत्व उत्पन्न हुए दो करोड़ वर्ष से अधिक काल नहीं हुआ है, इसमें भी मनुष्य के विकास के चिह्न केवल एक करोड़ वर्ष के भीतर ही पाये गये हैं। पृथ्वी तल के ठंडे हो जाने के पश्चात् उस पर जीवन का विकास हुआ। सर्व प्रथम स्थिर जल के ऊपर जीव कोश प्रकट हुए। कालक्रम से इनमें के कुछ जीवकोश भूमि पर जड़ जमाकर स्थावरकाय वनस्पति बन गये, और कुछ जल में ही विकसित होते होते मत्स्य बन गये। क्रमशः ऐसे वनस्पति व मेंढक आदि प्राणि उत्पन्न हुए जो जल में ही नहीं किन्तु थल पर भी श्वासोच्छ्वास कर सकते थे। इन्हीं स्थल प्राणियों में सरीसृप, सांप आदि उत्पन्न हुए। सरीसृप का विकास दो दिशाओं में हुआ– एक पक्षी दूसरे स्तनधारी प्राणी मकर, भेड़, बकरी, गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी आदि स्तन धारी जीव हैं– स्तनधारी जीवों में एक जाति वानर उत्पन्न हुई। वानरों ने कभी अपने दो पैर उठाकर पीछे के दो पैरों पर चलना सीखा बस यहीं से मनुष्य जाति का विकास प्रारम्भ हुआ माना जाता है। इस प्रकार

के वर्तमान मनुष्य के विकास में लाखों व करोड़ों वर्षों का अंतराल है।

पृथ्वी तल पर भूमि से जल का विस्तार लगभग तिगुना है जल के विभागानुसार प्रमुख भूमिखण्ड पांच पाये जाते हैं– एक एशिया, यूरोप व अफ्रिका मिलकर, दूसरा उत्तर दक्षिण अमेरिका मिलकर, तीसरा आस्ट्रेलिया तथा चौथा उत्तर ध्रुव व पांचवां दक्षिण ध्रुव। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे–छोटे द्वीप भी हैं।

भारतवर्ष एशिया खण्ड का दक्षिण पूर्वीय भाग है। यह त्रिकोणाकार है। दक्षिणी कोना लंका द्वीप को स्पर्श कर रहा है। यहां से भारतवर्ष की सीमा उत्तर–पूर्व की ओर फैलती हुई हिमालय पर्वत की श्रेणियों पर आकर समाप्त होती है। इत्यादि–

इस आठ हजार मील व्यास व पच्चीस हजार मील परिधि प्रमाण भूमंडल में चारों ओर अनंत आकाश है, जिसमें हमें दिन को सूर्य और रात्रि को चन्द्र, ग्रह व ताराओं के दर्शन होते हैं उनसे प्रकाश मिलता है। इनमें सबसे अधिक समीपवर्ती चन्द्रमा है, जो पृथ्वी से सवा दो लाख मील की दूरी पर है। यह पृथ्वी के समान ही एक भूमण्डल है जो पृथ्वी से बहुत छोटा है और उसी के आस–पास घूमा करता है जिसके कारण हमारे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष होते हैं। चन्द्रमा में स्वयं प्रकाश नहीं है किन्तु सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है और इसीलिये अपने परिभ्रमणानुसार घटता बढ़ता दिखाई देता है। चन्द्रमा बिलकुल ठंडा हो गया है पृथ्वी के भूगर्भ के अनुसार उसमें अग्नि नहीं है, उसके आस पास वायुमंडल और जल भी नहीं है, इसी कारण वहां जीव व वनस्पति नहीं है। भीषण शैल, पर्वतों तथा कन्दराओं के सिवाय वहां कुछ भी नहीं है।

चन्द्र से ऊपर क्रमशः शुक्र, बुध, मंगल, बृहस्पति व शनि आदि ग्रह हैं जो सब पृथ्वी के समान ही भूमण्डल हैं और सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं तथा सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। इन ग्रहों में से किसी में भी पृथ्वी के समान जीवों की सम्भावना नहीं मानी जाती है। क्योंकि वहां की परिस्थितियां जीवन के साधनों से सर्वथा विहीन हैं।

पृथ्वी से कोई साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर सूर्य मंडल है जो पृथ्वी से लगभग पन्द्रह लाख गुना बड़ा है, यह महाकाय मण्डल अग्नि से प्रज्वलित है उसकी ज्वालाएं लाखों मील तक उठती हैं, सूर्य की किरणों की प्रज्वल्यता से करोड़ों मील तक प्रकाश व उष्णता फैलती है। हमारा भूमण्डल सूर्य की परिक्रमा एक वर्ष में पूरी करता है और इसी परिक्रमा के आधार पर हमारे वर्षमान अवलंबित हैं। इस परिक्रमा में पृथ्वी निरंतर अपनी कील पर भी घूमा करती है जिसके कारण हमारे दिन और रात्रि होती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाश की गति प्रति सेकंड एक लाख छियासी हजार मील तथा प्रति मिनिट एक करोड़ ग्यारह लाख साठ हजार मील मापी गई है। सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक ८–९ मिनिट में आता है और तारे तो पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश पृथ्वी तक वर्षों में आ पाता है।

इस प्रकार लोक का प्रमाण असंख्य है और आकाश का कहीं अंत नहीं है, आकाश में जो तारा पुंज दिखाई देते हैं उन पर से अनुमान लगाया गया है कि इस समस्त तारा मण्डल रूप लोक का आकार ऊपर और नीचे को उभरा हुआ और बीच में फैला हुआ गोल है। जिसकी परिधि पर आकाश गंगा दिखाई देती है, उभरे हुए भाग के मध्य में हमारा सूर्य मण्डल है। कुछ काल पूर्व इन ग्रहों में, मंगल ग्रह में जीवधारियों की संभावना की जाती थी, किन्तु अब पृथ्वी के अतिरिक्त इन ग्रहों में जीव जन्तुओं की सम्भावना नहीं की जाती। इस प्रकार विज्ञान इस विषय में सशंक है। (यह वर्णन स्वर्गीय महाविद्वान् राहुल सांकृत्यायन कृत– "विश्व की रूप रेखा" नामक ग्रंथ से लिखा हुआ श्री डा. हीरालालजी द्वारा लिखित तिलोक प्रज्ञप्ति ग्रंथ के द्वितीय भाग की प्रस्तावना के आधार से लिखा है।)

हम इस भूमिका के प्रारम्भ में लिख आये हैं कि वैज्ञानिकों की मान्यता के अनुसार भूगोल वर्णन और जैन आगम में वर्णित लोक वर्णन में मेल नहीं है। अपितु विपरीतता भी है। जैसे पृथ्वी का घूमना, सूर्य का स्थिर रहना, चन्द्रमा से सूर्य की बहुत दूरी और सूर्य से भी ताराओं की दूरी आदि का वर्णन एक दूसरे से विपरीत है– इसका यह आशय निकाल लेना कि वैज्ञानिकों का कथन सही है और जैनागम का वर्णन असत्य या कल्पित है ऐसी मान्यता ठीक नहीं

है। जिनागम वर्णित लोक के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष खोज हुई ही नहीं है अतः खोज की पूर्ण आवश्यकता है। सर्व प्रथम इसके सम्बन्ध में समस्त धर्मों के ग्रंथों में वर्णित लोक वर्णन और वैज्ञानिकों द्वारा निर्णीत लोक वर्णन को आज के युग में अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। इसी उद्देश्य की आंशिक पूर्ति के उद्देश्य से मैंने इस "त्रैलोक्य तिलक" की भूमिका में संक्षेप से सब तरह के लोक वर्णन का वर्णन लिखने का तुच्छ प्रयास किया है। अब अंत में जैन शास्त्रों में वर्णित तीन लोक का वर्णन संक्षेप से वर्णन कर इस भूमिका को समाप्त करूंगा, जिससे पाठक भूगोल के सब प्रकार के वर्णन को पढ़कर समन्वयात्मक निर्णय कर सकें।

जिनागम वर्णित लोकवर्णन

जिनागम में श्वेताम्बर आचार्यकृत एवं दिगम्बर आचार्यकृत भिन्न–भिन्न आम्नाय के ग्रंथ लोक का वर्णन करने वाले हैं, इनमें श्वेताम्बर मान्य ग्रंथों से दिगम्बर मान्य ग्रंथों में, लोक वर्णन में कहीं–कहीं अन्तर है किन्तु सामान्यतः वर्णन में प्रायः साम्यता है, अतः मैं यहाँ श्वेताम्बर आम्नाय मान्य ग्रंथों के केवल सांकेतिक रूप में नाम ही उल्लेख कर दिगम्बर आम्नाय में विशेषकर त्रिलोक प्रज्ञप्ति एवं त्रिलोकसार वर्णित लोक का अति संक्षेप से वर्णन करता हूं, वैसे दिगम्बर आचार्यों के द्वारा प्रणीत ग्रंथों में भी कहीं–कहीं वर्णन में अंतर है, उसका यहाँ वर्णन करना लाभकर नहीं होगा। मैंने 'त्रैलोक्य तिलक' में उपरोक्त ग्रंथों के आधार से जो वर्णन लिखा है– उसी के अनुसार यहाँ संक्षेप वर्णन करूंगा।

श्वेताम्बर परम्परा में लोक वर्णन करने वाले निम्न ग्रंथ हैं– बृहत्क्षेत्र समास, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, प्रवचन सारोद्धार, बृहत्संग्रहणी और लोकप्रकाश आदि।

दिगम्बर परम्परा में लोक वर्णन करने वाले ग्रंथ हैं, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, लोकविभाग, हरिवंश पुराण, राजवार्तिक आदि।

जिनागम वर्णित लोक

यह लोक चौदह राजू ऊंचा है और चौड़ा उत्तर दक्षिण सात राजू तथा पूरब पश्चिम तले सात राजू और मध्य में एक राजू, फिर ऊपर ब्रह्मस्वर्ग

में पांच राजू, सबसे ऊपर लोक के अंत में एक राजू चौड़ा है। राजू एक प्रकार का ऐसा नाप है जिसको कोस और योजनों में गिना नहीं जा सकता है। आगम के अनुसार दो हजार कोस का एक महायोजन होता है और ऐसे असंख्यात महायोजनों का एक राजू होता है। इस लोक के तीन विभाग हैं– १. अधोलोक, २. मध्यलोक, ३. ऊर्ध्वलोक। अधोलोक वेत्रासन के समान है, मध्यलोक झालर के समान और ऊर्ध्वलोक मृदङ्ग के समान है। ये तीनों लोक मिलकर कमर पर हाथ रखे खड़े पुरुष के आकार के समान हैं। यह समस्त लोक तीन सौ तैंतालिस राजू घनफल में है।

अधोलोक

हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं उसका नाम चित्रा पृथ्वी है, यह रत्न प्रभा नामक अधोलोक की प्रथम पृथ्वी का ऊपरी भाग है। इससे नीचे सात राजू तक अधोलोक है– उसमें एक–एक से नीचे सात पृथ्वी हैं। उनमें पहली रत्न प्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं– १. खर भाग, २. पंक भाग, ३. अब्बहुल भाग। उनमें खरभाग के १६ भाग हैं, अर्थात् १६ पृथ्वियां हैं, उन सोलह में जो कि एक–एक हजार योजन की मोटी हैं सबसे ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है, जिस पर हम रहते हैं, इस पृथ्वी से एक राजू नीचे दूसरी पृथ्वी है, इस प्रकार एक–एक राजू नीचे छः और पृथ्वियां हैं। कुल सात पृथ्वी हैं– जिनके नाम और विस्तृत वर्णन इसी ग्रंथ में हैं, पाठक ग्रंथ से पढ़ लेवें। ये सात पृथ्वियां नरक की भूमि हैं यहां नारकियों के बिल हैं, प्रथम पृथ्वी के खर भाग और पङ्क भाग में व्यंतर और भवनवासी देवों के भवन बने हुए हैं, उनमें उक्त दोनों प्रकार के देव रहते हैं, उनके नीचे के भागों में सातवीं पृथ्वी तक बिलों में नारकी जीव रहते हैं। इस प्रकार सातवें नरक तक नारकी जीवों का निवास है, सातवें नरक से एक राजू प्रमाण नीचे तक और लोक है उसमें केवल निगोदिया जीव ही रहते हैं। उसके नीचे तीन प्रकार की हवाएं हैं जिन्हें वातवलय कहते हैं, वे समस्त लोक को घेरे हुए हैं। यह समस्त लोक घनोदधि वातवलय के आधार स्थित है, घनोदधि वातवलय घन वातवलय के आधार स्थित है और घन वातवलय तनु वातवलय के आधार स्थित है, तनु वातवलय आकाश के आश्रित है,

आकाश स्वयं अपने ही आश्रित है– क्योंकि वह सबसे बड़ा और अनंत है। आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं है यह समस्त लोक तीनों वातवलयों के आधार पर स्थित है और अनादि निधन है।

मध्यलोक

इस चित्रा पृथ्वी के तल भाग से लेकर सुदर्शन मेरु की चोटी तक ऊंचाई में करीब एक लक्ष चालीस योजन ऊंचा मध्य लोक है– उसकी लम्बाई चौड़ाई एक राजू है। इस पृथ्वी पर असंख्यात द्वीप और समुद्र एक दूसरे को बेढ़े हुए गोल चूड़ी के आकार में स्थित हैं– उनमें सबसे बीच में गोल एक लक्ष योजन के विस्तार का जम्बू द्वीप है इस द्वीप के मध्य में एक जम्बू नाम का पार्थिव वृक्ष है इसी से इसका नाम जम्बूद्वीप पड़ा है।

जम्बू द्वीप वर्णन

सबके मध्य में गोल थाली के आकार का चारों ओर से लवण समुद्र से वेष्टित यह जम्बू द्वीप एक लक्ष योजन के विस्तार वाला है, इस जम्बू द्वीप के सात विभाग करने वाले, पूर्व पश्चिम लवण समुद्र को स्पर्श करने वाले छः पर्वत हैं जिन्हें षट् कुलाचल पर्वत कहते हैं– उनके नाम हैं, १. हिमवन्, २. महा हिमवन, ३. निषध, ४. नील, ५. रुक्मि, ६. शिखरि। ये छहों पर्वत अनेक प्रकार की मणियों व रत्नों से युक्त क्रमशः– पीत, सफेद, तप्त स्वर्ण, वैडूर्यमणि, सफेद और पीत वर्ण के हैं। इन छहों पर्वतों पर एक–एक रमणीय सरोवर हैं, जिनके नाम क्रमशः निम्न प्रकार हैं। १. पद्म, २. महापद्म, ३. तिगिंच्छ, ४. केसरी, ५. महापुण्डरीक, ६. पुण्डरीक। इनमें प्रथम सरोवर जो कि हिमवान पर्वत पर है, एक हजार योजन लम्बा और पांच सौ योजन चौड़ा है, दश योजन गहरा है। इसके मध्य एक योजन के विस्तार का एक कमल है, यह कमल वनस्पति काय नहीं पार्थिव अजीव है। इसके आगे के सरोवर व कमल जम्बू द्वीप के मध्य तक दूने दूने विस्तार के हैं, उससे आगे उत्तर की तरफ के आधे आधे विस्तार के हैं अर्थात् प्रथम पर्वत और अंतिम पर्वत व इन दोनों के ऊपर के सरोवर बराबर–बराबर विस्तार वाले हैं।

इन छ: पर्वतों से जम्बू द्वीप के सात विभाग हो गये हैं जिन्हें सात क्षेत्र कहते हैं, जिनके नाम हैं– १. भरत, २. हैमवत, ३. हरि, ४. विदेह, ५. रम्यक, ६. हैरण्यवत, ७. ऐरावत। इन सात क्षेत्रों में सबके बीच में सबसे बड़ा विदेह क्षेत्र है, उसके मध्य में सुदर्शन नाम का मेरु पर्वत है। यह पर्वत सब पर्वतों से महान ऊंचा है, यह एक लक्ष योजन ऊंचा है, इसकी नींव एक हजार योजन जमीन के नीचे है, चालीस योजन की इसकी चोटी है। चोटी से एक बालाग्र के अन्तर में प्रथम स्वर्ग का ऋतु विमान है– यहां से ऊर्ध्व लोक का प्रारम्भ होता है। इस सुदर्शन मेरु के तल भाग में भद्रशाल नाम का सुन्दर वन है जो कि चारों ओर से मेरु पर्वत को घेरे हुए है। इसमें चारों दिशाओं में चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं– इसी प्रकार भद्रशाल वन के ऊपर की कटनी पर नंदन वन है, नंदन वन की कटनी पर सौमनस वन है, सौमनस वन की कटनी पर पांडुक वन है– इस पाण्डुक वन की चार विदिशाओं में एक–एक पांडुक शिला है, यह अर्ध चन्द्राकार है, १०० योजन लम्बी और ५० योजन चौड़ी है– इन चारों पाण्डुक शिलाओं पर तीर्थंकरों के जन्मते ही इन्द्र व देवगण भगवान को वहां लाकर बड़ी धूम–धाम से एक हजार आठ कलशों से क्षीर सागर के दूध जैसे जल से अभिषेक करते हैं। भद्रशाल वन की तरह प्रत्येक वन की चारों दिशाओं में चार–चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं, इस प्रकार एक मेरुपर्वत पर सोलह चैत्यालय हैं।

सुदर्शन मेरु की पश्चिम और पूर्व दिशाओं में सीता और सीतोदा नदियों के बहने से इस विदेह क्षेत्र के चार विभाग हो गये हैं। प्रत्येक विभागीय विदेह क्षेत्र में पर्वतों और नदियों के आठ–आठ विभाग हो जाने से कुल बत्तीस विदेह कहे जाते हैं, इन प्रत्येक विदेह में कर्म भूमि की शाश्वत रचना होती है, पांच सौ धनुष की ऊंची काया वाले और एक कोटि पूर्व की आयुष्य वाले मनुष्य निरन्तर होते हैं। वहां विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि त्रेसठ शलाका पुरुष निरंतर होते रहते हैं। वहां के मनुष्य मुनि होकर कर्मों का क्षय कर मोक्ष भी निरंतर जाते रहते हैं।

सुदर्शन मेरु की उत्तर व दक्षिण दिशा में देवकुरु व उत्तरकुरु नाम की उत्तम भोग भूमि हैं, वहाँ तीन कोस ऊंचे शरीर वाले और तीन पल्य की आयुष्य वाले मनुष्य होते हैं।

सुदर्शन मेरु की दक्षिण दिशा की तरफ सबसे पहला भरत क्षेत्र है, वह अर्ध चन्द्र के आकार, हिमवान पर्वत तक है, इस भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बू द्वीप के एक सौ नब्बेवां भाग है अर्थात् पांच सौ छब्बीस ६/१९ योजन है। इससे आगे के क्षेत्र से पर्वत दूने और पर्वत से क्षेत्र दूने विस्तार के विदेह क्षेत्र तक है– उससे आगे के पर्वत और क्षेत्र दक्षिण के समान ही उत्तर वाले समान विस्तार के है– अर्थात् प्रथम भरत क्षेत्र और सातवां ऐरावत क्षेत्र दोनों समान है। पर्वतों की ऊंचाई भी प्रथम पर्वत से तीसरे पर्वत तक दूनी–दूनी है फिर चौथे से छठवें पर्वत की ऊंचाई आधी–आधी होकर पहला हिमवान पर्वत और अंतिम छठवें शिखरि पर्वत की ऊंचाई समान है।

भरत क्षेत्र के बीच में सुन्दर सफेद वर्ण वाला एक विजयार्ध पर्वत है, इससे भरत क्षेत्र के दो भाग होते हैं। एक दक्षिण भरत, एक उत्तर भरत– इन दोनों भागों में गंगा और सिंधु नदी से एक–एक भाग के तीन–तीन खण्ड हो गये हैं। जिन्हें छः खण्ड कहते हैं, जिनमें पांच तो म्लेच्छखण्ड कहलाते हैं और एक आर्य खण्ड कहलाता है। दक्षिण की तरफ के तीनों खण्डों में बीच वाला खण्ड ही आर्य खण्ड कहलाता है। वर्तमान में जो विश्व कहा जाता है जिसमें पूरा एशिया और यूरोप महाद्वीप आ गये हैं वह सब इसी भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड का ही भाग है अर्थात् आशय यह है कि वैज्ञानिकों ने आज जितनी पृथ्वी मानी है उससे असंख्यात गुनी जैन भूगोल के अनुसार और पृथ्वी है जिसकी खोज अभी हुई नहीं है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है अर्थात् सदैव एक सा काल नहीं रहता है। बीस कोड़ा–कोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है उसके १. अवसर्पिणी, २. उत्सर्पिणी के भेद से दो भेद होते हैं। एक–एक काल दस कोड़ा–कोड़ी सागर का होता है। वर्तमान में जो चल रहा है वह अवसर्पिणी काल है, उसमें आयुकाय बल घटते रहते हैं– इस के छः भेद हैं। जिसमें पहले दूसरे और तीसरे काल में भोग भूमियां थीं। चौथे काल के प्रारम्भ से कर्म भूमि प्रारम्भ हुई, इसमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महान पुरुष हुए उनने धर्म का उपदेश देकर धर्म चलाया। वर्तमान में जो काल है वह पांचवां काल है– जिसका नाम दुःखमा है, इक्कीस हजार वर्ष का है, अभी ढाई हजार वर्ष से कुछ अधिक वर्ष हुए हैं, उसके पश्चात्

छटवां काल दुखमा दुखमा प्रारम्भ होगा वह भी इक्कीस हजार वर्ष का है, उसमें मनुष्य एक हाथ के, श्याम वर्ण के, सभी मांसाहारी मनुष्य होंगे। जब इस काल की समाप्ति के ४९ दिन अवशेष रहेंगे तब महा प्रलय होगा, अग्नि, पानी, विष, पाषाण, बिजली आदि की भयंकर वर्षाएं होंगी जिससे सारी आर्य खण्ड की पृथ्वी जलमय हो जायेगी, पर्वत भी चूर-चूर हो जाएंगे, मनुष्य, प्रायः सब मर जाएंगे। जो गुफाओं में चले जाएंगे वे बच जाएंगे। उसके पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होकर नये युग का उदय होगा तब ४९ दिन तक अच्छी-अच्छी वर्षाएं होकर सर्वत्र शांति स्थापित होगी जो गुफा में बचे जीव थे वे बाहर आकर नया संसार बसाएंगे। अब उत्सर्पिणी काल में मनुष्यों की आयुकाय बल बढ़ते जाएंगे। यह उत्सर्पिणी काल अवसर्पिणी काल से उलटा चलता है। इस प्रकार काल का परिवर्तन भरत और ऐरावत क्षेत्रों में होता रहता है, शेष क्षेत्रों में एक सा समय रहता है, कोई परिवर्तन नहीं होता है।

लवण समुद्र

जम्बूद्वीप को चारों तरफ बेढ़े हुए दूने विस्तार अर्थात् दो लाख योजन के विस्तार का लवण समुद्र है, इसका पानी नमक के स्वाद के समान खारा होने से इस समुद्र का नाम लवण समुद्र है– आजकल जितने अलग-अलग नाम से जो समुद्र कहे जाते हैं वे सब इसी लवण समुद्र के ही भाग हैं।

इस लवण समुद्र में हजारों नगर हैं, बहुत से छोटे बड़े द्वीप हैं– इस समुद्र के दोनों तटों पर चौबीस चौबीस अंतर द्वीप हैं जहाँ कुभोग भूमि है, इन अन्तर द्वीपों में कुमानुष रहते हैं जिनके मुख हाथी, श्वान, घोड़ा, सिंह, बन्दर आदि पशुओं के मुख के समान होते हैं, इनकी एक पल्य की आयु होती है, वहां की मिट्टी और वन फल का भक्षण करते हैं। इस प्रकार लवण समुद्र के कुल ४८ अन्तर द्वीप होते हैं। दो हजार धनुष का इनका शरीर होता है और ये मंदकषायी होते हैं।

लवण समुद्र के मध्य भाग में समुद्र तल में एक हजार आठ बहुत बड़े-बड़े पाताल हैं, ये पाताल उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य इस प्रकार तीन

प्रकार के हैं। प्रत्येक पाताल के तीन–तीन भाग हैं, उनमें पहले भाग में वायु, दूसरे मध्य के भाग में वायु और जल और ऊपर के तीसरे भाग में केवल जल है। ये पाताल शुक्ल पक्ष में वायु दबाव के कारण स्वभाव से बढ़ते हैं और कृष्ण पक्ष में घटते हैं। इससे समुद्र का जल शुक्ल पक्ष में धीरे–धीरे बढ़ता हुआ पूर्णिमा तक बढ़कर हजारों योजन बढ़ जाता है और कृष्ण पक्ष में क्रमशः समुद्र का जल चन्द्रमा की कला की तरह घटता–घटता अंत में अमावस्या के दिन भूमि के सदृश हो जाता है। इन पातालों के पास लवण समुद्र में अर्धघट के समान आठ पर्वत हैं जिनकी ऊंचाई एक–एक हजार योजन है। इन पर्वतों पर व्यंतर देवों के निवास व क्रीड़ा स्थल हैं वहां व्यन्तर देव रहते हैं और क्रीड़ा करते हैं।

लवण समुद्र के चारों तरफ धातकी खण्ड नाम का द्वीप है वह लवण समुद्र से दूना अर्थात् चार लाख योजन के विस्तार का है। यह द्वीप भी गोल वलयाकार है। इस द्वीप के मध्य में धातकी नाम का पार्थिव वृक्ष है इसी से इसका नाम धातकी खण्ड द्वीप पड़ा है। इस धातकी खण्ड द्वीप के उत्तर और दक्षिण दिशा में इष्वाकार नाम के दो पर्वत हैं जो कि दोनों तरफ लवणो–दधि और कालोदधि समुद्र को स्पर्श करते हैं, इन दोनों पर्वतों से इस महाद्वीप के दो भाग हो गये हैं। दोनों इष्वाकार पर्वतों के बीच में भरत क्षेत्र आदि सातों क्षेत्र दो दो हैं और षट् कुलाचल पर्वत भी दो दो अर्थात् जम्बू द्वीप से दूने हैं। ये पर्वत और क्षेत्र गाड़ी के पहिये के आरे के समान हैं। लवण समुद्र की तरफ इनका विस्तार कम है और कालोदधि की तरफ विस्तार अधिक है, इस द्वीप के पूर्व पश्चिम में दो विदेह क्षेत्र हैं, जिनके बीच में एक–एक मेरु पर्वत है जिनके नाम विजय और अचल हैं ये दोनों मेरु पर्वत चौरासी चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं। धातकी खण्ड के चारों तरफ कालोदधि नाम का समुद्र है यह आठ लाख योजन के विस्तार का है। इस समुद्र के भी दोनों तटों पर अड़तालीस अन्तर द्वीप हैं यहां लवण समुद्र की तरह कुभोग भूमि है और यहां भी कुमनुष रहते हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में दोनों समुद्र के तटों पर कुल छियानवे अन्तर द्वीप अर्थात् कुभोग भूमियां हैं।

कालोदधि के चारों तरफ गोल पुष्कर नाम का द्वीप है, यह द्वीप

सोलह लाख योजन के विस्तार का है। इसमें भी धातकी खण्ड द्वीप की तरह दो दो भरत आदि क्षेत्र और दो–दो हिमवान् आदि कुलाचल पर्वत हैं– यहां पर भी पूर्व पश्चिम में दो विदेह क्षेत्र हैं जिनके मध्य में मंदिर मेरु और विद्युन्माली नाम के दो मेरु पर्वत हैं, इन दोनों मेरु पर्वत की ऊंचाई धातकी खण्ड द्वीप के मेरु पर्वतों के समान चौरासी–चौरासी हजार योजन है। यह सब रचना पुष्कर द्वीप के आधे भाग में है, कारण पुष्कर द्वीप के मध्य में गोल चूड़ी के आकार मानुषोत्तर नाम का पर्वत है, इसी से पुष्कर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। मनुषोत्तर पर्वत के ऊपर चारों ओर मध्य के भाग में मनुष्य लोक की सीमा है, उससे आगे न तो मनुष्य का अस्तित्व है और न जीवित मनुष्य कोई जा सकता है। इस प्रकार आधे पुष्कर द्वीप को पुष्करार्ध कहते हैं, यहां तक ढाई द्वीप, पंच मेरु, क्षेत्र, कुलाचल आदि हैं, यही मनुष्य लोक है। इसका विस्तार पैंतालिस लाख योजन प्रमाण है।

ढाई द्वीप के आगे असंख्यात द्वीप और समुद्र एक दूसरे को घेरे हुए दूने–दूने विस्तार के हैं जिनमें आठवां द्वीप नंदीश्वर द्वीप है, यह द्वीप एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन के विस्तार का गोल है।

यह नंदीश्वर द्वीप और द्वीपों से विशेषता रखता है इसकी चारों दिशाओं में एक–एक अंजनगिरि, श्याम पर्वत, चारवापिकाएं– उसमें चार दधिमुख नाम के सफेद पर्वत हैं और वापिका के आगे के दो कोनों पर दो–दो रतिकर नाम के लाल पर्वत हैं– इस प्रकार एक दिशा में तेरह पर्वत है, चारों दिशाओं में कुल बावन पर्वत हैं, ये पर्वत ढोल के समान गोल, ऊपर नीचे सुन्दर हैं। प्रत्येक पर्वत के शिखर पर एक–एक अकृत्रिम चैत्यालय है, कुल बावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं, प्रत्येक चैत्यालय में १०८ पद्मासन, पांच सौ धनुष ऊंची मणिमय प्रतिमाएं हैं उनकी करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक कान्ति होती है– कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष के अंतिम आठ दिनों में चारों प्रकार के देव अपने परिवार सहित आते हैं और भक्ति भाव से, दर्शन, पूजन, स्तवन, नाट्य आदि कर महान् पुण्य का संचय करते हैं। इसका विशेष वर्णन इसी ग्रंथ में पाठक पढ़ने का कष्ट करें।

इसके पश्चात् ग्यारहवां कुण्डलवर द्वीप है उसमें कुंडलगिरि नाम का पर्वत है, यह भी मानुषोत्तर पर्वत की तरह गोल है, इस पर व्यंतर देवों का निवास है, इस गिरि पर चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

तेरहवां द्वीप रुचकवर द्वीप है, इसके बीच में भी रुचकगिरि नामक पर्वत है; वह भी मानुषोत्तर पर्वत जैसा गोल है। इस पर्वत पर भी चार अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। मध्य लोक में तेरहवें द्वीप तक ही अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं उनके आगे के असंख्यात द्वीपों में नहीं है।

इस प्रकार असंख्यात द्वीप और समुद्र इस मध्य लोक में एक दूसरे को घेरे हुए दूने दूने विस्तार के हैं। अंतिम द्वीप का नाम स्वयंभूरमण द्वीप है और उसके चारों तरफ सबसे बड़ा स्वयंभूरमण नाम का अंतिम समुद्र है उसके आगे पृथ्वी का अंत अर्थात् मध्य लोक का अंत है।

इस मध्यलोक जिसे तिर्यक लोक भी कहते हैं उसकी लम्बाई चौड़ाई एक राजू और ऊंचाई एक लाख योजन, सुदर्शन मेरु की नींव से चूलिका के बराबर है, यहां से ऊर्ध्वलोक का प्रारम्भ है।

ज्योतिर्लोक

मध्य लोक की चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन की ऊंचाई पर ज्योतिर्लोक का प्रारम्भ है– जैन शास्त्रों के अनुसार ज्योतिषी देव पांच प्रकार के हैं– १. सूर्य, २. चन्द्रमा, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र, ५. तारागण। चन्द्रमा इन्द्र और सूर्य प्रतीन्द्र हैं– ये सब ज्योतिषी देव ढाई द्वीप में सुमेरु पर्वत के चारों तरफ परिक्रमा लगाते रहते हैं, इन्हीं से पृथ्वी पर रात्रि और दिन होते हैं।

इस पृथ्वी की धरातल से तारे सात सौ नब्बे योजन ऊंचे हैं, तारों से दस योजन ऊंचा सूर्य का विमान है, सूर्य से अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा है, चन्द्रमा से चार योजन ऊंचे नक्षत्रों के विमान हैं, नक्षत्रों से चार योजन ऊंचा बुध का विमान है, बुध से तीन योजन ऊपर शुक्र का विमान है, शुक्र से तीन योजन ऊपर बृहस्पति है, बृहस्पति से तीन योजन ऊपर मंगल है, मंगल से तीन योजन ऊपर शनिश्चर है। इस प्रकार सात सौ नब्बे योजन की ऊंचाई से प्रारम्भ होकर नौ सौ योजन ऊंचाई तक अर्थात्

एक सौ दस योजन की मोटाई में सम्पूर्ण ज्योतिर्लोक है। सूर्य, चन्द्रमा और तारों के विमानों की कान्ति से पृथ्वी पर प्रकाश होता है। यहां एक योजन दो हजार कोस का महा योजन समझना चाहिये।

ऊर्ध्वलोक

सुदर्शन मेरु की चोटी से एक बाल मात्र अन्तर से प्रथम स्वर्ग प्रारम्भ है। वहां से ऊर्ध्व लोक का प्रारम्भ समझना चाहिये। यहां दो दो स्वर्ग युगल एक दूसरे के ऊपर ऊपर आठ युगल स्वर्ग स्थित हैं अर्थात् कुल सोलह स्वर्ग हैं, सोलह स्वर्गों के ऊपर नव ग्रैवेयिक हैं, ये नव ग्रैवेयिक एक दूसरे के ऊपर ऊपर हैं। नव ग्रैवेयिक के ऊपर नौ अनुदिश के विमान हैं, ये नव अनुदिश, एक बीच में और चार चार, दिशाओं में और चार विदिशाओं में स्थित हैं। नव अनुदिश के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं, ये पंच अनुत्तर विमान चार तो चारों दिशाओं में हैं और एक मध्य में है जिसका नाम सर्वार्थसिद्धि विमान है।

सर्वार्थसिद्धि के विमान के ऊपर के ध्वज दण्ड से बारह योजन ऊंची आठवीं पृथ्वी है, यह एक राजू विस्तार वाली है। इस पृथ्वी का नाम ईषत्प्राग्भार है। इस पृथ्वी के मध्य में पैंतालिस लाख योजन के विस्तार की एक सिद्ध शिला है। यह सिद्ध शिला चांदी और स्वर्ण के समान अनेक रत्नों से परिपूर्ण, धवल छत्र के समान है। अर्थात् उलटे रखे कटोरे के समान है। उस सिद्ध शिला पर कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त अनंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं; ऊपर मस्तक से तनुवातवलय तक सब सिद्धों के समान हैं और नीचे से कम अधिक हैं। यही सिद्ध लोक है और यही मोक्ष स्थान है। यहां से मोक्ष प्राप्त परमात्मा अनंत काल के पश्चात् भी कभी संसार में लौट कर नहीं आते। सिद्ध लोक के ऊपर लोक का अंत है, वहां तीन वातवलय हैं जो कि समस्त तीनों लोकों को उठाये हुए लोक का भार वहन कर रहे हैं– चारों तरफ से ये तीन प्रकार की भारी हवाएं ही लोक को स्थिर रक्खे हुए है। इस प्रकार संक्षेप से जिनागम के अनुसार लोक की रचना है। इसका विस्तृत वर्णन इसी ग्रंथ में पाठक पढ़ने की

कृपा करें। भूमिका बढ़ने के भय से स्वर्ग आदि के नाम– विमान, इन्द्र, देव, देवाङ्गना, अहमिन्द्र आदि का वर्णन यहाँ नहीं किया है।

चौदह राजू ऊंचा यह लोक है, इसमें मध्यलोक की पृथ्वी से ऊपर यह लोक सात राजू है और पृथ्वी से नीचे सात राजू है। इस लोक के बीच में एकराजू लम्बी चौड़ी और चौदह राजू ऊंची त्रसनाड़ी है, जिसमें त्रसजीव रहते हैं, इससे बाहर स्थावर एक इन्द्रिय जीव होते हैं– दो इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय (त्रस) जीव नहीं रहते।

भूमिका को समाप्त करने के पूर्व जिनागम के गणित की कुछ मुख्य मुख्य बातों का मैं यहां उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं जिससे कि पाठकों को व स्वाध्याय करने वालों को ग्रंथ का आशय समझने में सुगमता रहे। यथा–

राजूका नाप

पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके उसे परमाणु कहते हैं, अनंतानंत परमाणुओं के समूह को मिलाने पर एक अवसंज्ञा स्कंध होता है। आठ अवसंज्ञा स्कंध के समूह को एक संज्ञासंज्ञा स्कंध कहते हैं। आठ संज्ञासंज्ञा स्कंध के समूह को एक त्रुटिरेणु, आठ त्रुटिरेणु का एक त्रसरेणु। आठ त्रसरेणु का एक रथ रेणु। आठ रथ रेणु का एक उत्तम भोगभूमि का बालाग्र। आठ उत्तम भोगभूमि के बालाग्र का एक मध्यम भोगभूमि का बालाग्र। आठ मध्यम भोगभूमि के बालाग्र का एक जघन्य भोगभूमि का बालाग्र। आठ जघन्य भोगभूमि के बालाग्र का एक कर्मभूमि के मनुष्य का बालाग्र। आठ कर्मभूमि के बालाग्र की एक लीक। ८ लीक की एक जूं। आठ जूं का एक यव। ८ यवों का एक उत्सेधांगुल। ५०० उत्सेधांगुल का एक प्रमाणांगुल। यही अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती का आत्मांगुल है।

छः अंगुल का एक पाद। १२ अंगुल का एक बिलस्ती। दो बिलस्त का एक हाथ। २ हाथ का एक गज। २ गज का एक धनुष। दो हजार धनुष का एक कोस। चार कोस का एक छोटा योजन, और दो हजार कोस का एक

महा योजन होता है। असंख्यात महा योजनों का एक राजू होता है। मध्य लोक के असंख्यात द्वीप व समुद्र एक राजू के विस्तार में हैं।

समय की संख्या

एक पुद्गल का परमाणु आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक गमन करे उतने काल को समय कहते हैं। जघन्य युक्त असंख्यात समय को एक आवली कहते हैं। २४ मिनिट की एक घड़ी। दो घड़ी का एक मुहूर्त। ६० घड़ी का एक अहोरात्र। १५ दिन का एक पक्ष। दो पक्ष का एक मास। दो मास की एक ऋतु। छः मास का एक अयन– २ अयन का एक वर्ष होता है।

पूर्वांङ्ग व पूर्व

चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांङ्ग और चौरासी लाख पूर्वांङ्गों का एक पूर्व होता है।

पल्य व सागर

एक महा योजन का लम्बा, चौड़ा और एक योजन का ही गहरा खड्डा खोदिये। उसमें उत्तम भोग भूमि के मेंढे के बाल का ऐसा टुकड़ा जिसका दूसरा भाग न हो सके उन बालाग्रों से वह खड्डा ठसाठस भर दीजिये। सौ सौ वर्ष में एक–एक बाल के टुकड़े को निकालिये। जब पूरा खड्डा बालों से खाली हो जाए उतने समय को एक व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहार पल्य से असंख्यात गुना एक उद्धार पल्य होता है। उद्धार पल्य से असंख्यात गुना एक अद्धापल्य होता है। ऐसे दस कोड़ा कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है।

बीस कोड़ा–कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है जिसमें दस कोड़ा कोड़ी सागर का उत्सर्पिणीकाल और दस कोड़ाकोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल, इस प्रकार कल्पकाल के दो भेद होते हैं। जिसमें आयु काय बल बढ़ते हैं वह उत्सर्पिणीकाल है और जिसमें आयु काय बल घटते हैं वह अवसर्पिणी काल है। इन प्रत्येक के छः भेद होते हैं, इसका विस्तृत वर्णन पाठक इसी ग्रंथ में पढ़ने का कष्ट करें।

ग्रंथ में वर्णित विषय

प्रथम अध्याय

लोकसामान्य वर्णन :-

इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में लोक सामान्य का वर्णन है जिसमें लोक के भेद, ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई वातवलय, वातवलयों की मोटाई, रज्जु, और तीनलोक के मापदण्ड आदि का वर्णन है।

द्वितीय अध्याय

अधोलोक वर्णन :-

द्वितीय अध्याय में अधोलोक का पूर्ण वर्णन है जिसमें अधोलोक की सात पृथ्वियां उनके भाग, मोटाई, वर्ण, नरकों के पटल, बिल, बिलों की संख्या, आयु स्थिति, नरक के भयानक दु:ख, नारकियों के शरीर की ऊंचाई, जन्म का अन्तर, नारकियों के अवधि ज्ञान की सीमा, उपपाद स्थान, नारकीयों का उध्वना और सम्यक्त्वकी उत्पत्ति के कारण, गुणस्थान आदि का वर्णन है इसके अतिरिक्त निगोद, व निगोद के भेद आदि का वर्णन है।

तृतीय अध्याय

मध्य लोक :-

ग्रंथ के तीसरे अध्याय में मध्य लोक जिसे तिर्यक् लोक भी कहते हैं उसका विस्तृत वर्णन है। जिसमें मध्य लोक के अन्तर्गत

द्वीप व समुद्र, पर्वत और क्षेत्र नदियां, द्रह तथा सुमेरू पर्वत एवं विजयार्ध पर्वत वृषभाचल पर्वत आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में काल का परिवर्तन, हुण्डावसर्पिणी काल, मनुष्यों के शरीर का वर्ण, आहार, आयु, कुलकर, तीर्थंकरों का वर्णन उनकी आयु, वंश, वर्ण के वर्णन के साथ-साथ समवसरण का बहुत विस्तृत वर्णन है। तथा केवली का विहार, गणधर वर्णन, तीर्थंकरों के विहार, चिन्ह व मोक्ष गमन आदि के वर्णन के सिवाय चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, नारद, रुद्र, त्रेशठ कला के पुरुष, मेरु पर्वत के वनों चैत्यालयों भोग भूमि, ढाई द्वीप (मनुष्य लोक) नंदीश्वर द्वीप का विस्तृत वर्णन, कुण्डल द्वीप, रुचक द्वीप, द्वितीय जम्बू द्वीप, आदि तथा अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप व स्वयंभूरमण समुद्र एवं समुद्रों के जल का स्वाद व स्वयंभूरमण समुद्र के महामत्स्य का वर्णन है तथा जीवों के भेदों का वर्णन, स्थावर व त्रस जीवों की आयु, तिर्यंचों के जन्म, गुणस्थान तथा तिर्यंचों के शरीर की उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहना आदि का वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय

अकृत्रिमचैत्यालय वर्णन :-

इस अध्याय में अकृत्रिम चैत्यालयों का विस्तार, प्रतिमाओं व चैत्यालयों की महिमा, गर्भगृह, यक्षयक्षिणी, मण्डप, शिखर, द्वार, वृक्ष, तीन लोक के चैत्यालयों की संख्या, मध्य लोक के ४५८ चैत्यालयों का वर्णन, उनकी महिमा आदि के वर्णन के अतिरिक्त एक व दो भवावतारी जीवों का वर्णन है।

पंचम अध्याय

भवनत्रिक देव वर्णन :–

इस अध्याय में देवों के भेद, भवनवासी देवों के भेद, नाम, इन्द्र, मुकुट चिन्ह, बल, सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण, तथा भवनवासी देवों का अन्य वर्णन है। तदनंतर व्यंतरदेवों के भेद, नाम, इन्द्र, आयु, बल, आहार, विक्रिया, गमन शक्ति आदि का वर्णन करने के पश्चात् इसी अध्याय में ज्योतिषी देवों के भेद, नाम, उनका भ्रमण, पृथ्वी से ऊंचाई, चन्द्रमा का परिवार, ज्योतिषी देवों के विमान, ग्रहण, चन्द्र सूर्य के भ्रमण की गलियां, संचार क्षेत्र, ज्योतिषी देवों की नगरियां, नक्षत्र, गमन की शक्ति, ढ़ाई द्वीप में ज्योतिषी देवों की संख्या व ध्रुवतारों की संख्या, आदि का वर्णन है।

षष्ठम अध्याय

ऊर्ध्व लोक :–

छठवें अध्याय में ऊर्ध्व लोक का वर्णन है, ऊर्ध्व लोक का प्रारम्भ, स्वर्गों के नाम उनकी रचना, नवग्रेवेयिक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तर विमान, स्वर्गों में पटल, विमान, नगर, मानस्तंभ के वर्णन के अतिरिक्त देवों के दश भेद, स्वर्गों में हीनाधिकता, इन्द्र, स्वर्गों में प्रवीचार, लेश्या, काय की ऊंचाई, जन्म, विमानों का विशेष वर्णन, विमानों के नाम, चिन्ह, देव व देवाङ्गनाओं की आयु, जन्म मरण का अन्तर, आहार, इन्द्र की सेना व परिवार, इन्द्र की देवाङ्गनाएं, वल्लभाएं, मुकटों के चिन्ह, कल्पातीत वर्णन, स्वर्गों में अवधिज्ञान, लोकान्तिक देव वर्णन, देवों के गुणस्थान आदि के वर्णन के साथ-साथ सिद्ध क्षेत्र, सिद्ध शिला, आठवीं पृथ्वी, सिद्धों का ऊर्ध्वगमन, पंचपैताला, त्रयलखा, सिद्धों का विविध वर्णन आदि वर्णन है।

सप्तम अध्याय

भव गमनागमन व संबोधन :-

कौन गतिका कौन गति में आने और जाने का वर्णन, लेश्या वर्णन, लेश्याओं का उदाहरण, लेश्याओं का स्वरूप, गुणस्थान, कौन जीव के कौनसी लेश्याएं, द्रव्य लेश्या वर्णन, संहनन का विस्तृत वर्णन, सम्बोधन उपदेश, मनुष्य भव की दुर्लभता, संसार भ्रमण का वर्णन, संसार की असारता, वैराग्य व संवेग का उपदेश आदि का वर्णन इस सातवें अध्याय में है।

अष्टम अध्याय

तत्वों का वर्णन :-

तत्व का स्वरूप, तत्वों के भेद, जीव का लक्षण, जीव के विविध अपेक्षा से भेद प्रभेद, पर्याप्ति का लक्षण, प्राण वर्णन, आहार के भेद, कायमार्गणा, योगमार्गणा, वेदमार्गणा, आहार मार्गणा, समुद्घात, जन्म वर्णन, गर्भ के भेद, योनि का वर्णन व भेद, शरीर के भेद, अकाल मरण व उसके कारण, मुक्त जीव वर्णन, जीव के भावों का वर्णन। अजीव तत्व व द्रव्यों का वर्णन, आस्रव व योगों का वर्णन तथा उसके भेद, बंध तत्व, बंध के भेद, संवर तत्व व भेद, निर्जरा का लक्षण व भेद तथा मोक्ष तत्व का इस अध्याय में वर्णन है।

नवम अध्याय

कर्म सिद्धान्त :-

कर्म का लक्षण, कर्मों के भेद प्रभेद, कर्मों के कार्य, कर्म बंध के भेद, कर्मों के विभाग, तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारण, कर्मों की अवस्थाएं, पुद्गल द्रव्य का कर्मों में विभाजन, सत्व, उदीरणा,

कर्मों की स्थिति व आबाधाकाल, कर्मों के आस्रव के कारण, पुण्य व पाप प्रकृति वर्णन, कर्मों का बल, आदि कर्म सम्बन्धित विशद वर्णन इस अध्याय में है।

दसवां अध्याय

रत्नत्रय वर्णन :—

धर्म का लक्षण, पंचलब्धि, सम्यक् दर्शन का लक्षण, सम्यक्त्व के भेद, सम्यक्त्वों का काल, संसारकाल, सम्यक्त्व के और भी भेद, सम्यक्त्व का महत्व, सम्यक् दृष्टि मर कर कहां नहीं जावे, सम्यक्त्व के आठ गुण, अतिचार, क्षायिक सम्यक्त्व का वर्णन, सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण, किन जीवों को कौनसा सम्यग्दर्शन, गुणस्थान अपेक्षा सम्यक्त्व वर्णन आदि।

सम्यग्ज्ञान वर्णन :— सम्यग्ज्ञान के भेद, लक्षण, सम्यग्ज्ञान का माहात्म्य, सम्यग्ज्ञान का विविध वर्णन।

सम्यक्चारित्र वर्णन :— सम्यक्चारित्र के भेद, व्यवहार व निश्चय चारित्र का लक्षण, सकल विकल भेद, विकल चारित्र, सकल चारित्र, बारह भावनाएं, ध्यान का लक्षण, ध्यान के भेद, कषाय वर्णन, गुणस्थानों का विस्तृत वर्णन, गुणस्थान चढ़ने उतरने का क्रम, सम्यक् चारित्र का विशेष वर्णन, गुणस्थान अपेक्षा चारित्र, अंतिम मंगल, ग्रंथ समाप्ति, अंत में ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति, (सुख दुःखमय जीवन की एक झलक) आदि अनेक विषयों का इस दसवें अध्याय में वर्णन किया है।

ग्रंथ लिखने का निमित्त

सन् १९७१ में मैं श्री मुमुक्षु महिलाश्रम महावीरजी में प्रधानाचार्य के पद पर अध्यापन कार्य कर रहा था, उन दिनों में एक दिन श्री पन्नालालजी जैन आर्चिटेक्ट शिव नगरी दिल्ली के निवासी आश्रम में आये और मुझसे मिले, उनने तीन लोक का संक्षिप्त वर्णन पद्य में लिख कर देने की अभिलाषा प्रकट की मैंने स्वीकार कर कुछ दिनों में चार अध्यायों में हिन्दी पद्य में तीन लोक का वर्णन अतीव संक्षेप से लिख कर उनके पास भिजा दिया– उनने बहुत शीघ्र प्रकाशित कर समाज में बिक्री कर दिया, उस ट्रेक्ट का नाम "त्रिलोकसार" रखा था। वह बहुत शीघ्र बिक गया पश्चात् ऋषभदेव मेरे गांव में जाने पर मेरा त्रिलोकसार को पुनः लिखकर प्रकाशित कराने का विचार हुआ– और मैंने तिलोयपण्णत्ति व त्रिलोकसार आदि ग्रंथों का अध्ययन कर त्रिलोकसार को विस्तृत रूप से लिखना प्रारम्भ कर दिया और उसमें भवभ्रमण, रत्नत्रय, कषाय, ध्यान, लेश्या, बारह, भावना, गुणस्थान आदि विषयों को भी लिखकर ग्रंथ को उपयोगी बनाने का प्रयास किया। एक ही सरल आधुनिक संगीत शैली से लिखकर मैंने यह पद्य रचना बहुत शीघ्र आठ अध्यायों में समाप्त कर दी।

जैन मित्र में यह रचना मूल रूप में कुछ वर्षों तक निरन्तर प्रकाशित होती रही। बाद में बहुत लम्बे समय तक यों ही यह ग्रंथ पड़ा रहा। पश्चात् मेरठ में आने पर मैंने इसकी हिन्दी टीका लिखी– पुनरपि इसके छपाने का अवसर

नहीं आने से ग्रंथ पड़ा रहा। एक बार मेरठ में सिद्धचक्र विधान मेरे द्वारा सदर के पार्श्वनाथ दि. जैन बड़े मन्दिर में कराने के अवसर पर जैन समाज से एवं जबलपुर समाज के पर्युषण पर्व में प्रवचनार्थ निमंत्रित होने पर उस शुभ अवसर पर जबलपुर की व पनागर की समाज से अपील करने पर इस ग्रंथ के प्रकाशनार्थ अच्छी सहायता प्राप्त हुई, फलस्वरूप ग्रंथ मेरठ में ही प्रकाशित होकर समाज के सामने आ गया, यह बड़े भाग्य की बात है। ग्रंथ को फ्री देने में ग्रंथ का महत्व नहीं रहता यह समझकर स्वल्प मूल्य में ही समाज को बिक्री करने का निश्चय किया गया, जो द्रव्य बचेगा उससे आगामी संस्करण में तथा लेखक की अन्य रचनाओं के प्रकाशन में लगाया जाएगा। मंदिरों, पुस्तकालयों, साधुओं एवं द्रव्य दाताओं को ग्रंथ बिना मूल्य समर्पित किया जायेगा। एक ही ग्रन्थ में जिनागम के अधिक से अधिक विषय आजायें इस लक्ष्य से इसमें अधिक से अधिक विषय लिखने का प्रयास किया है।

विशेष निवेदन

जैन परीक्षालयों के प्रबन्धक महोदय यदि इस ग्रंथ को प्रवेशिका या विशारद के किसी खण्ड में स्वीकार करलें तो छात्रों के धर्म ज्ञान की वृद्धि और ग्रंथ की उपयोगिता में वृद्धि हो जायेगी इसमें संदेह नहीं है। आशा है समाज के विद्वान् व श्रीमान् इस पर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

आभार व धन्यवाद द्वितीयावृत्ति

जिन महान् आचार्यों के ग्रंथों का आधार लेकर यह ग्रंथ लिखा गया है उन पूज्य पूर्वाचार्यों के प्रति मैं महती कृतज्ञता प्रकट करता हुआ हृदय से उनका नमन करता हूं तथा भूमिका लिखने में भी जिन ग्रंथों व प्रस्तावना आदि से सहायता ली है उन लेखक विद्वानों के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं, तथा जिन दानी महानुभावों ने ग्रंथ प्रकाशन में सहायता प्रदान की है उन समस्त दानी महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हूं जिससे कि यह तुच्छ कृति समाज के सामने आ सकी। बहुत समय से यह ग्रंथ समाप्त हो गया था, कई व्यक्तियों एवं मुनि महाराजों की मांग होने से यह दूसरी बार छपकर समाज के सामने आ रहा है, इस आवृत्ति के प्रकाशन के द्रव्य दातारों को कोटिशः धन्यवाद व आभार समर्पित है।

निवेदक
महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्री
महेश भवन
ऋषभदेव-जि. उदयपुर (राजस्थान)

त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ प्रकाशन में सहायता प्रदान करने वाले दाताओं की नामावली

गया (बिहार) की समाज से

५१०१) श्रीमान् सुरेशकुमारजी छाबड़ा– स्व. शांतिदेवी जैन ध.प. श्रीमोहनलालजी छाबड़ा की स्मृति में, गया

५०१) श्री आनंदीलालजी सेठी

७११) श्री फूलचन्दजी अजितकुमारजी अजमेरा

५०१) श्री बालाचन्दजी कमलकुमारजी छाबड़ा

५०१) श्री शांतिलालजी महेन्द्रकुमारजी बड़जात्या

३०१) श्री सोनपालजी जगन्नाथजी पाण्ड्या

३८२) श्री जिनेन्द्रकुमारजी छाबड़ा मिर्जापुरवाले

३०१) श्री मोहनलालजी विरेन्द्रकुमारजी सेठी

२०१) श्री राधाकिशनजी प्रकाशचन्दजी रारा

२०१) श्री नेमीचन्दजी प्रदीपकुमारजी कासलीवाल

२०१) श्री दीनदयालजी अभयकुमारजी काला

२०१) श्री लादूलालजी ज्ञानचन्दजी सेठी

२०१) श्री विद्याकुमारजी काला

२०१) श्री हरकचन्दजी सुमेरमलजी काला

१०१) श्री आनंदीलालजी सुरेन्द्रकुमारजी सेठी

१०१) श्री कल्याणमलजी देवेन्द्रकुमारजी सेठी

१०१) श्री जमनालालजी महेन्द्रकुमारजी काला

१०१) श्री गुलाबचन्दजी कमलकुमारजी अजमेरा

१०१) श्री छोगालालजी नरेन्द्रकुमारजी सेठी
१०१) श्री जमनालालजी रतनलालजी काला
१०१) श्री दीपचन्दजी नरेन्द्रकुमारजी सेठी
१०१) श्री बांधुलालजी चिरञ्जीवलालजी पाटनी
१०१) श्री मदनलालजी रवीन्द्रकुमारजी सेठी
१०१) श्री मोहरीलालजी अजमेरा
१०१) श्री माणिकचन्दजी अशोककुमारजी बड़जात्या
१०१) श्री मूलचन्दजी महासुखजी बड़जात्या
१०१) श्री मांगीलालजी कस्तूरचन्दजी अजमेरा
१०१) श्री रतनलालजी गंगवाल
१०१) श्री रतनलालजी जीवंधरकुमारजी सेठी
१०१) श्री रामानंदजी श्रवणकुमारजी छाबड़ा
१०१) श्री रतनलालजी राजेशकुमारजी छाबड़ा
१०१) श्री रूड़मलजी धरमचन्दजी छाबड़ा
१०१) श्री विमलकुमारजी अशोककुमारजी सेठी
१०१) श्री गुलाबचन्दजी संजीवकुमारजी सेठी
१०१) श्री झूमरमलजी महावीरप्रसादजी विनायका
१०१) श्री लादूलालजी प्रकाशचन्दजी सेठी
१०१) श्री सुगनचन्दजी पदमचन्दजी अजमेरा
१०१) श्री सुगनचन्दजी अमोलकचन्दजी बड़जात्या
१०१) श्री स्वरूपचन्दजी प्रदीपकुमारजी पाटनी
१०१) श्री सोनूलालजी धरमचन्दजी अजमेरा
१०१) श्री हुकुमचन्दजी अशोककुमारजी पाटनी
१०१) श्री हरीशचन्दजी विमलकुमारजी बड़जात्या

१०१) श्री शकुन्तलादेवी डालटेनगंज

१०१) श्री कपूरचन्दजी विनोदकुमारजी अजमेरा

१०१) श्री स्वरूपचन्दजी सुरेशकुमारजी पाटनी

२२५१) गुप्तदान, नरेन्द्रजी बड़जात्या, राजेन्द्रजी सेठी, शिवकुमारजी सेठी
२१०६) ५१) ५१) ५१)

मुरादाबाद (उ. प्र.) की समाज से

११००१) श्री विनीत किशोजी जैन एडवोकेट स्व. पिता
श्री नंदकिशोरजी की स्मृति में, मुरादाबाद

११०१) श्री प्रेमप्रकाशजी सुरेशचन्दजी हरियाणा वाले

१००१) श्री हर्षकुमारजी अभिनंदनकुमारजी बर्तनवाले

५०१) श्री प्रो. पी. सी. सा. जैन जिगर कालोनी

५०१) श्री पद्म श्री जैन ध. प. श्री अजितकुमारजी

५०१) श्री सूरजलालजी विनीतकुमारजी जैन

५०१) श्री बीना जैन ध. प. श्री सुभाषचन्दजी जैन

५०१) श्री राधेश्यामजी सीतारामजी अहिंसा होटल

५००) श्री कैलाशचन्दजी जैन आवस विकास

५०१) श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन डबल फाटक

२५१) श्री मुन्नीलाल जी जैन मानपुर

२५१) श्री विमलजी जैन जेल के पीछे

२०१) श्री प्रमोदकुमारजी जैन पुत्र श्री रामचरणलालजी

२०२) श्री वैद्य विष्णुकान्तजी शशिकान्तजी जैन

२०१) श्री प्रद्युम्नकुमारजी जैन चक्की वाले

२०१) श्री फकीरचन्दजी जैन रतनपुर वाले

३११) श्री सी. एम. जैन भू. पू. तहसीलदार

१५१) श्री डा. महीपाल जैन

११०) श्री अनिलकुमारजी सुपुत्र श्री बंदनाजी

१०१) श्री अनंतकीर्तिजी जैन पटपटसराय

१०१) श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन हरपालनगर

१०१) श्री पवनकुमारजी जैन हरियाणा

१०१) श्री प्रकाशचन्दजी जैन किलोरी साड़ी वाले

१००) श्रीमती तारादेवीजी जैन, लाजपतनगर

१०१) श्री अजयकुमारजी जैन ध. प. अंजू जैन

१०१) श्री श्रेयांसकुमारजी जैन एवं श्रीमती जी

१०१) मिथिलेशकुमारीजी गांधीनगर

१०१) श्री नेमीचन्दजी जैन एंजिनीयर गंज

१०१) श्री सुमेरचन्दजी जैन, मसवासी

१०१) श्री सुभाषचन्दजी जैन

१०१) श्री अशोककुमारजी मोहितकुमारजी

१००) श्री (एस. टी. ओ.) पी. सी. जैन प्रसादनगर

१०१) श्री प्रद्युम्नकुमारजी जैन चक्की वाले

१०१) श्री जैन बाल प्रोत्साहन संघ

१०१) श्री चाऊलालजी जैन

१०१) श्रीमती कस्तूरी बाई जैन

१०१) श्री सुभाषचन्दजी दीपककुमारजी

१०१) श्री राकेशकुमारजी जैन मंत्री दि. जैन समाज

१०१) श्री मुन्नीलालजी अनिलकुमारजी जैन

१०१) श्री सुधीरकुमारजी शीतलप्रसादजी जैन

१०१) श्रीमती विमलादेवी हरपाल नगर

१०१) सूरजकुमारी गंज

१०१) श्रीमती चमनदेवी ध. प. श्री कमलकिशोरजी

१०१) श्रीमती बीनारानी ध. प. श्री कमलकिशोरजी जैन

१०१) श्री डा. शशि जैन जिगर कालोनी

१०१) श्री सरलकुमारजी सुपुत्र श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन

१०१) श्रीमती शीला जैन ध. प. श्री खजानचंदजी

११०) श्री अनिलकुमारजी जैन सुपुत्र श्री बंटनाजी

२५५) सौरभजैन, श्रेयांसकुमारजी, ललितकुमारजी, रामकुमारजी, विक्कीजी
५१) ५१) ५१) ५१) ५१)

९२) गुप्तदान सूरजदेवी
७१) २१)

सदर मेरठ की समाज से

१००१) श्रीमती कीर्तिदेवी जैन ध. प. श्री स्व. सेठ अमीचन्दजी एनावट्टा वाले, सदर मेरठ

१२००) श्री दि. जैन महिला समाज

१००१) श्री माधोलाल सुवालाल जैन गंज

७०१) श्री कलावती जी अम्माजी एवं सुपुत्र नरेशचन्दजी जैन मोटर वाले

५०१) श्रीमती शांति देवी जैन ध. प. श्री सतीशचन्दजी जैन

५०१) श्रीमती शैलबालादेवी जैन ध. प. श्री ला. सूर्यप्रकाशजी मारबल वाले

५०१) श्रीमती फूलमालादेवी ध. प. स्व. ला. महावीरप्रसादजी

५०१) श्री मूलचन्दजी सुनीलकुमारजी जैन सर्राफ

५०१) श्री विश्वंभरसहायजी शीतलप्रसादजी जैन
५०१) श्री ला. लल्लूमलजी शीतलप्रसादजी जैन सर्राफ
५०१) श्रीमती स्नेहलता देवी ध. प. श्री राजेन्द्रकुमारजी देईवाले
५०१) श्री सुरेन्द्रकुमारजी अभिषेककुमारजी जैन सर्राफ
५०१) श्री लाला सूर्यप्रकाशजी जैन मारबल वाले
५००) श्री ला. जादोरायजी जैन
५०१) श्रीमती कनकमालाजी जैन ध. प. श्री कैलाशचन्दजी सर्राफ
५०१) श्रीमती ललितेश जैन ध. प. श्री अजितप्रसादजी जैन सर्राफ
२५१) श्री प्रकाशचन्दजी जैन पंसारी दालमंडी

ऋषभदेव (राज.)

५००) श्री छगनलालजी ध. प. श्रीमती बदामी बाई भमरा धर्मार्थट्रस्ट, ऋषभदेव

ईडर (गुजरात)

११०१) श्री सेठ दोशी प्रकाशचन्दजी कोदरलालजी स्व. श्री इन्दिरा बहेन की स्मृति में, ईडर
११०१) श्री दि. जैन समाज ईडर कल्पद्रुमविधान के उपलक्ष में
५०१) श्री दोशी चन्द्रकान्तजी मणिलालजी
५०१) श्री कोठारी शांतिलालजी मणिलालजी
१००) श्री दोशी अकलंक केवलदासजी

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	प्रथम अध्याय	
१	मंगलाचरण।	१
२	लोक सामान्य वर्णन।	२
३	लोक का आधार व वातवलय।	४
४	वातवलय के रंग।	४
५	वातवलयों की मोटाई।	५
६	तीन लोक का मापदण्ड।	६
	द्वितीय अध्याय	
७	अधोलोक वर्णन।	७
८	प्रथम नरक वर्णन।	७
९	अन्य पृथ्वियों की मोटाई।	८
१०	खर भाग का वर्णन।	८
११	नरकों में पटल।	९
१२	नरकों में बिल।	११
१३	नरकों के बिलों की संख्या, शीतोष्णता, भूख प्यास।	१२
१४	नरकों में और भी दुःख।	१३
१५	कौन जीव नरक जाता है?	१५
१६	नरक की पृथ्वियों के वर्ण	१६
१७	नारकी जीवों के शरीर की ऊंचाई।	१६
१८	नरकों में जन्म का अन्तर, अवधिज्ञान व उपपाद स्थान	१७
१९	उपपाद स्थान की ऊंचाई, व्यास।	१८

क्रमांक विषय	पृष्ठ
२० नारकी का उछलना।	१९
२१ नारकियों की आयु।	१९
२२ नरक में निरन्तर जन्म।	२०
२३ नरकों में आहार व दुर्गंध।	२०
२४ नरकों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण।	२१
२५ नरकों में गुणस्थान, प्राण आदि।	२२
२६ निगोद के भेद।	२३
२७ निगोद का अन्य वर्णन।	२४

तृतीय अध्याय

२८ मध्य लोक वर्णन- जम्बू द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, नदी, द्रह आदि।	२६-२९
२९ विजयार्ध पर्वत।	३०-३२
३० वृषभाचल पर्वत।	३२-३३
३१ काल परिवर्तन।	३३-४४
३२ हुण्डावसर्पिणी काल।	४४
३३ मनुष्य का शरीर वर्णन।	४५
३४ मनुष्य शरीर वर्ण।	४५
३५ मनुष्य आहार।	४६
३६ कुलंकर वर्णन।	४६
३७ मनुष्यों की आयु।	४७
३८ पूर्व का वर्णन।	४७
३९ तीर्थंकर वर्णन।	४८
४० कुमार तीर्थंकर।	४८
४१ तीर्थंकरों की काया का वर्णन।	४८
४२ तीर्थंकरों की आयु।	४९
४३ तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण।	४९
४४ तीर्थंकरों का वंश।	४९
४५ तीर्थंकरों के पारणा।	५०

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
४६	केवलज्ञान व समवसरण वर्णन-प्रमाण, महिमा, आठ पृथ्वी, बारह सभा, गंध कुटी, विहार आदि।	५०-६०
४७	गणधर वर्णन।	६१
४८	कौन तीर्थंकर कहां से आये ?	६१-६२
४९	तीर्थंकरों के चिन्ह।	६३
५०	चक्रवर्ती वर्णन।	६४
५१	चक्रवर्ती का वैभव।	६५
५२	नवनिधि, चौदह रत्न।	६६
५३	रत्नों का उपयोग।	६७
५४	कौन चक्री कहां गये ?	६७
५५	चक्रवर्ती व दिग्विजय, व वृषभाचल पर्वत।	६८-६९
५६	नारायण वर्णन।	७०
५७	प्रतिनारायण वर्णन।	७१
५८	बलभद्र।	७१
५९	नारद।	७२
६०	रुद्र।	७२
६१	कौन रुद्र कहां गये ?	७३
६२	त्रेसठ शलाके पुरुष।	७३
६३	सुख वर्णन।	७४
६४	भरत क्षेत्र के आगे के क्षेत्रों का वर्णन।	७४
६५	महा विदेह वर्णन।	७५
६६	सुमेरु पर्वत वर्णन।	७५-८४
६७	विदेह क्षेत्र की कर्म भूमि व ऋतु वर्णन।	८५
६८	विदेह क्षेत्र से आगे के क्षेत्र, पर्वत।	८६
६९	जम्बू द्वीप में क्षेत्र और पर्वत।	८७
७०	भोग भूमि वर्णन।	८७-९०
७१	भोग भूमि में बल व सुख।	९१
७२	कल्पवृक्ष वर्णन।	९२
७३	भोग भूमि में आहार, आयु व काय वर्णन।	९३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
७४	छहों काल में आहार वर्णन।	९३
७५	भोग भूमि में जन्म व सम्यक्त्व के कारण।	९४
७६	लवण समुद्र वर्णन-कुभोगभूमि, कुमानुष, अन्तरद्वीप वर्णन।	९४-१००
७७	कुमानुष कौन होते हैं ?	१००
७८	लवण समुद्र के मत्स्य का वर्णन।	१००
७९	धातकी खण्ड द्वीप वर्णन।	१०१-१०४
८०	कालोदधि समुद्र व पुष्कर द्वीप	१०४-१०६
८१	मानुषोत्तर पर्वत वर्णन।	१०६-१०७
८२	ढाई द्वीप में विशेष वर्णन।	१०७-११०
८३	मनुष्यों के गुणस्थान, वेद, योनि, जन्म आदि।	११०
८४	प्रारम्भ के व अंत के सोलह द्वीप व सोलह समुद्र।	१११-११३
८५	समुद्रों के जल का स्वाद।	११३
८६	नंदीश्वर द्वीप वर्णन।	११४-१२०
८७	कुण्डलगिरि पर्वत।	१२०
८८	रुचिकवर द्वीप वर्णन।	१२१
८९	द्वितीय जम्बूद्वीप वर्णन।	१२२-१२३
९०	स्वयंभूरमण द्वीप व स्वयंभूरमणसमुद्र।	१२४
९१	महामत्स्य वर्णन।	१२५
९२	जीवों के भेद।	१२५-१२६
९३	तिर्यंचों के जन्म व गुणस्थान आदि।	१२७-१२८
९४	तिर्यंचों के तन अवगाहन।	१२८-१३०

चतुर्थ अध्याय

९५	अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन- चैत्यालय के भेद, विस्तार, महिमा, संख्या आदि।	१३१-१३४
९६	मध्य लोक के ४५८ चैत्यालयों का वर्णन।	१३५-१३६

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	पंचम अध्याय	
९७	देवों के भेद।	१३७
९८	भवनवासी देव।	१३७
९९	भवनवासी देवों के मुकुट, निवास व इन्द्र, बल	१३८–१४०
१००	भवनवासी देवों का अन्य विवरण।	१४०
१०१	भवनसुर कौन होवें।	१४१
१०२	भवन देवों के सम्यक्त्व के कारण व आयु।	१४२
१०३	व्यंतर देववर्णन, उनके भेद, भवन वर्णन।	१४३–१४४
१०४	किन्नरों के भेद।	१४४
१०५	किं पुरुष के भेद।	१४५
१०६	महोरग के भेद।	१४५
१०७	गंधर्वों के भेद।	१४५
१०८	यक्ष, राक्षस, भूत व पिशाचों के भेद।	१४६–१४७
१०९	व्यंतरों के इन्द्र।	१४७
११०	व्यंतरों के शरीर का वर्ण।	१४८
१११	व्यंतरों के नगर।	१४८
११२	व्यंतरों की आयु, आहार, व अवधि विषय।	१४९
११३	व्यंतरों का बल, विक्रिया शक्ति, गमन शक्ति।	१५०
११४	ज्योतिष्क देव वर्णन।	१५१
११५	पृथ्वी से ज्योतिष्क देवों की ऊंचाई–संख्या, भेद, ग्रहण, सूर्य चन्द्र भ्रमण की वीथी, चन्द्रकला का घटना बढ़ना, दिन रात्रि, विमान, भवन नगरी आदि।	१५१–१६०
११६	२८ नक्षत्र।	१६१
११७	ज्योतिषी देवों की गमन शक्ति।	१६१–१६२
११८	अढ़ाई द्वीप में ज्योतिषी देवों की संख्या व वीथी।	१६३
११९	ग्रह वर्णन।	१६३
१२०	अढ़ाई द्वीप में नक्षत्र, तारे ध्रुव तारे।	१६४–१६५

क्रमांक	विषय	पृष्ठ

१२१ ज्योतिषी देवों की आयु वर्णन। १६६

षष्ठम अध्याय

१२२ ऊर्ध्वलोक वर्णन प्रारम्भ। १६८
१२३ स्वर्गों के नाम। १६९
१२४ नवग्रैवेयिक, नवअनुदिश, पंचअनुत्तर। १७०
१२५ स्वर्गों में पटल। १७१
१२६ स्वर्गों में विमान। १७२
१२७ स्वर्गों में नगर। १७३
१२८ स्वर्गों में मानस्तंभ। १७३-१७४
१२९ देवों के दस भेद। १७५
१३० स्वर्गों में हीनाधिकता। १७६
१३१ स्वर्गों में इन्द्र। १७७
१३२ देवों में प्रवीचार। १७८
१३३ स्वर्गों में लेश्या। १७९
१३४ स्वर्ग के देवों का जन्म वर्णन। १८०
१३५ विमानों का विशेष वर्णन। १८१
१३६ मुख्य विमानों के नाम। १८२
१३७ देवों में उत्कृष्ट विरह। १८३
१३८ स्वर्ग के देवों की आयु। १८४
१३९ स्वर्ग के देवों की जघन्य आयु। १८६
१४० देवाङ्गनाओं की आयु। १८६
१४१ वैमानिक देवों के जन्म मरण का अन्तर। १८७
१४२ देवों में आहार। १८८
१४३ इन्द्रों की सेना व परिवार। १८८
१४४ इन्द्रों की देवाङ्गनाएं। १८९
१४५ देवों की वल्लभाएं। १८९
१४६ देवों के मुकुटों के चिन्ह। १९०
१४७ कल्पातीत देव वर्णन। १९०

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१४८	स्वर्गों में अवधिज्ञान का क्षेत्र।	१९१
१४९	लोकान्तिक देव वर्णन।	१९२-१९३
१५०	लोकान्तिक देव कौन होते हैं ?	१९४
१५१	देवों में गुणस्थान आदि।	१९४
१५२	सिद्ध क्षेत्र वर्णन।	१९५-१९७
१५३	पंच पैताले।	१९८
१५४	त्रय एकलखा।	१९८
१५५	मोक्ष कौन जाए?	१९८
१५६	सिद्धों का विविध वर्णन।	१९९
१५७	निवेदन।	२००

सप्तम अध्याय

१५८	भवगमनागमन एवं संबोधन।	२०१-२०५
१५९	लेश्या वर्णन।	२०५-२०७
१६०	गुणस्थान अनुसार लेश्या वर्णन।	२०८
१६१	छहों लेश्याओं का भिन्न-भिन्न वर्णन।	२०८-२१०
१६२	कौन जीव के कौनसी लेश्याएं।	२१०-२११
१६३	द्रव्य लेश्या वर्णन।	२१२
१६४	संहनन वर्णन	२१३
१६५	कौन संहनन वाला कहां तक जाए ?	२१४-२१५
१६६	गुणस्थान अपेक्षा संहनन।	२१५
१६७	सम्बोधन व वैराग्यमय उपदेश।	२१६-२२४

अष्टम अध्याय

१६८	तत्व वर्णन, तत्वस्वरूप, तत्वभेद	२२५
१६९	जीव का लक्षण	२२५
१७०	ज्ञानोपयोग	२२६
१७१	दर्शनोपयोग, जीव के भेद	२२७
१७२	जीव समास, इन्द्रिय, इन्द्रिय के भेद	२२८-२२९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१७३	पर्याप्ति, पर्याप्तिकाल लक्षण, पर्याप्ति के भेद	२३०-२३१
१७४	गुणस्थान अपेक्षा जीव के भेद, प्राण वर्णन	२३२
१७५	इन्द्रिय की अपेक्षा प्राण वर्णन, संज्ञा वर्णन	२३३
१७६	आहार के भेद, मार्गणा वर्णन, गति मार्गणा	२३४-२३५
१७७	कायमार्गणा	२३६
१७८	योग मार्गणा, वेद मार्गणा	२३७-२३८
१७९	भव्य मार्गणा	२३९
१८०	आहार मार्गणा, अनाहारक वर्णन	२४०
१८१	समुद्घात वर्णन, जन्म वर्णन	२४१
१८२	गर्भ के भेद, योनि वर्णन	२४२
१८३	शरीर वर्णन, शरीर के भेद	२४३-२४५
१८४	अकाल मरण व उसके कारण	२४६-२४७
१८५	मुक्त जीव वर्णन	२४७-२४८
१८६	जीवों के भावों का वर्णन व भेद	२४८-२४९
१८७	गुणस्थान अपेक्षा भाव	२५०
१८८	अजीव तत्व, भेद व पुद्गल द्रव्य वर्णन	२५०-२५१
१८९	धर्म, अधर्म, आकाश, काल-वर्णन	२५२-२५३
१९०	द्रव्य का लक्षण और भेद	२५३
१९१	अस्तिकाय व आस्रव तत्व वर्णन	२५४
१९२	योग और योगों के भेद	२५५
१९३	शुभाशुभ आस्रव, आस्रव के भेद, आधार, हीनाधिकता	२५६-२५७
१९४	बंधतत्व, बंध के भेद, बंध के कारण	२५८-२५९
१९५	तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण व बंध तत्व का विशेष वर्णन	२६०-२६१
१९६	संवर तत्व, गुप्ति, समिति, दशधर्म, परीषहजय, चारित्र	२६२-२६४
१९७	निर्जरातत्व व गुण श्रेणि निर्जरा	२६५-२६६
१९८	मोक्ष तत्व वर्णन।	२६७-२७०

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	नवम अध्याय	
१९९	कर्म सिद्धान्त, कर्म का लक्षण।	२७१-२७२
२००	कर्म के भेद।	२७३
२०१	घातिया व अघातिया कर्म।	२७४
२०२	कर्मों के उदाहरण।	२७५
२०३	कर्म के सामान्य भेद, मूलभेद, उत्तरभेद	२७६-२७८
२०४	बंध के भेद, कर्म प्रकृतियों के चार विभाग	२७९
२०५	तीर्थंकर प्रकृति के बंध का विशेष नियम	२८०
२०६	कर्मों की दस अवस्थाएं या करण।	२८१-२८३
२०७	किन कर्मों का कौन सा बंध।	२८३
२०८	पुद्गल द्रव्य का कर्मों में विभाजन (हिस्सा)।	२८४
२०९	कर्म बंध का विवरण, उदय और सत्व वर्णन।	२८४-२८५
२१०	कर्मों की उदीरणा वर्णन।	२८६
२११	कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट आबाधा काल।	२८७-२८९
२१२	कर्मों के आस्रव के कारण।	२८९-२९२
२१३	पुण्य प्रकृति और पाप प्रकृति	२९२
२१४	कर्मों का बल और अन्य विवरण।	२९३-२९५
	दशम अध्याय	
	रत्नत्रय वर्णन	
२१५	धर्म का लक्षण	२९६
२१६	लब्धि वर्णन	२९७
२१७	कर्मों का चतुः स्थानीय अनुभाग	२९८-३०२
२१८	तीनों सम्यक्त्वों का काल	३०२
२१९	सम्यक्त्वी का संसारकाल	३०३
२२०	सम्यक्त्व के और भी भेद	३०३
२२१	क्षायिक सम्यक्त्वी का असंयम काल।	३०४

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
२२२	सम्यक्त्व के और भी भेद।	३०४-३०५
२२३	सम्यक्त्व का महत्व।	३०६
२२४	सम्यग्दृष्टि कहां नहीं जावे और कहां जावे ?	३०७
२२५	सम्यक्त्व के आठ गुण व अतिचार।	३०७
२२६	क्षायिक सम्यक्त्व वर्णन।	३०८
२२७	सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण।	३०९
२२८	किन जीवों के कौनसा सम्यग्दर्शन ?	३१०-३१२
२२९	गुणस्थान अपेक्षा सम्यक्त्व।	३१२
२३०	सम्यग्ज्ञान वर्णन।	३१३
२३१	ज्ञान के लक्षण, भेद व क्षेत्र विषय आदि।	३१४-३१७
२३२	सम्यग्ज्ञान का माहात्म्य।	३१८
२३३	गुणस्थान अपेक्षा ज्ञान वर्णन।	३१९
२३४	सम्यक्चारित्र वर्णन।	३१९-३२०
२३५	विकल चारित्र।	३२१
२३६	ग्यारह प्रतिमा वर्णन।	३२१
२३७	सकल चारित्र।	३२२-३२४
२३८	द्वादश अनुप्रेक्षा (भावना)	३२४-३३०
२३९	ध्यान का वर्णन।	३३१
२४०	गुणस्थान अपेक्षा ध्यान।	३३२
२४१	कषाय वर्णन।	३३३-३३५
२४२	गुणस्थान वर्णन।	३३५-३३६
२४३	प्रत्येक गुणस्थान का भिन्न-भिन्न स्वरूप	३३७-३४३
२४४	गुणस्थान चढ़ने उतरने का क्रम।	३४४-३४५
२४५	सम्यक् चारित्र का विशेष वर्णन।	३४६
२४६	गुणस्थान अपेक्षा चारित्र।	३४७
२४७	व्यवहार चारित्र के बिना निश्चय चारित्र की अप्राप्ति।	३४८
२४८	अंतिम मंगल।	३४९-३५२
२४९	ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति।	३५३-३५६
२५०	त्रैलोक्य तिलक पर अभिमत	३५७-३६७

त्रैलोक्य तिलक का शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	११	एकला	एकसा
३६	२८	केवली	अनुबद्धकेवली
६३	३	नित	तिन
७४	११	ताँके	ताके
८८	१८	अंतरगत	अन्तर्गत
११०	२७	अन्तरमुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
१२६	२८	सत्रह	सात
१२७	२३	अन्तरमुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
२१६	९	मण	मरण
२२१	१-२-५-८	तत्व	तत्त्व
२२८	११	क्षयोपशम से अर्थ ग्रहण	क्षयोपशम से हो विशेषता
२२८	२५	क्षयोपशम से अर्थ ग्रहण करता है।	क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं।
२३०	९	कभी	भी
२३२	१९-२२	दश	दस
२३३	२२	दशों	दसों
२३४	२३	नौकर्म	नोकर्म
२३६	२२	तत्व	तत्त्व
२३७	१८	अभक्ष	अभक्ष्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३८	४	कलाय	कषाय
२४०	२१	लोकपूर्ण	लोकपूरण
२४१	२५	प्रस्तर और लोकपूर्ण	प्रतर तथा लोकपूरण
२४१	२६	लोकपूर्ण	लोकपूरण
२४४	२९	कार्माण	कार्माण
२४४	२२	आघार	आघात
२४५	१४	षघून	षष्ठम
२४६	१७	दुर्घटना से	दुर्घटना आदि कारणों से
२४७	६	मान जाए	माना जाए
२४७	२३	तत्व	तत्त्व
२४९	१५	वर्तमान	वर्तमान में
२५०	२६	चैतन	चैतन्य
२५१	२२	मीठा, चरपरा	२ मीठा, ३ चरपरा
२५५	२७	कार्माणयोग	कार्माणकाययोग
२५७	३	असव	आस्रव
२५८	२२	स्वभाव	स्वभाव वाले
२५९	१८	तक	x
२५९	२०	महत्व	महत्त्व
२६१	१८	अंतिम समय में	xxx
२६२	३२	समिति	समिति है
२६७	१५	वियोगज	विसंयोजन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६८	२८	नौकर्म	नोकर्म
२७३	११	कर्म	कर्म ये
२७६	२०	मतिज्ञान के	ज्ञानावरणीयकर्म के
२७७	३१	नौकषाय	नोकषाय
२७८	२१	७ स्पर्श	८ स्पर्श
२८१	२८	रूप	रूप में
२८३	१३	आयुकर्म का सादि अनादिक, ध्रुव अरु अध्रुव बंध कहाय।	आयु कर्म का ध्रुव अनादि नहीं सादिरु अध्रुव बंध कहाय।
२८३	२९	आयु कर्म का सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों प्रकार का बंध होता है।	आयुकर्म का ध्रुव और अनादि के बिना सादि और अध्रुव दो का बंध होता है।
२८४	२७	अब	जब
२८५	१४	तक	में
२८५	१	तक	में
२८६	८	पूरण	पूरव
२९०	३०	भवनत्रिक	भवनत्रिकका
२९२	२८	अर्थात्	अर्थात्
२९९	१३	उनसे	उनमें से अप्रशस्त
३००	२६	उसी समय	फिर
३००	२९	उस समय	तत्पश्चात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०२	१३	में	में से
३०३	१२	असंख्यात	संख्यात असंख्यात
३०४	१६	समय	संयम
३२८	१०	आस्रवो के	आस्रव रोके
३३४	१	राग	रंग
३३४	१२	क्रिमिरोग	क्रिमि के रंग

आभार

जिनागम के गहन अध्येता समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं. जवाहरलालजी जैन 'सिद्धान्त शास्त्री' भीण्डर ने हमारी प्रार्थना पर त्रैलोक्य तिलक के लिये प्राक्कथन ही नहीं लिखकर दिया अपितु उसके साथ कुछ संशोधन भी लिख कर भेजे, भिन्न-भिन्न ग्रंथों में अंतर होने से उनके संशोधन से पाठकों को सभी ग्रंथों का वर्णन पढ़ने का लाभ मिले इस भावना से पंडित जी के संशोधन हम यहां दे रहे हैं। प्राक्कथन और संशोधन लिखने में आपने अस्वस्थ होने पर भी जो श्रम करने की उदारता की है उसके लिये माननीय विद्वान् पंडित जी का जितना भी आभार माना जाय स्वल्प ही है। वे केवल नाम के ही जवाहर नहीं हैं किन्तु आगम व सिद्धान्त के भी जवाहर हैं।

"महेश"

संशोधन

(१) त्रैलोक्य तिलक पृष्ठ ११० – भोगभूमि में उत्कृष्टतः प्रथम से चार गुणस्थान होते हैं परन्तु दूसरा तीसरा गुणस्थान कभी नहीं भी होते, अतः जघन्य से दो गुणस्थान होते हैं।

(२) पृष्ठ ११० – विद्याधरों के उत्कृष्ट प्रथम पांच गुणस्थान होते हैं कम से कम तीन- पहला, चौथा, पांचवां।

(३) पृष्ठ २२६ – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के अवलम्बन से तत्सम्बंधी दूसरे पदार्थ का जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

(४) पृष्ठ २२८– ज्ञानावरण के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं। विशेष :- अर्थ ग्रहण की शक्ति को लब्धि कहते हैं।

(५) पृष्ठ २३०– इन्द्रियादि में विद्यमान जीवन के कारणपने की अपेक्षा न करके इन्द्रियादि रूप शक्ति की पूर्णता मात्र को पर्याप्ति कहते हैं। आहार शरीर आदि की निष्पत्ति को पर्याप्ति कहते हैं।

(६) पृष्ठ २३७– जिस शरीर में अनेक साधारण (निगोद) शरीर हो वह सप्रतिष्ठित प्रत्येक है।

(७) पृष्ठ २४३– I अनंतानन्त पुद्गलों के समवाय का नाम शरीर है। II जो विशेष नाम कर्म के उदय से प्राप्त होकर गलते हैं वे शरीर हैं।

(८) पृष्ठ २६१– आठों अपकर्षों में यदि आयु का बंधन हुआ हो तो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु के अवशेष रहने पर आगामी आयु को अन्तर्मुहूर्त तक बांधते हैं।

(९) पृष्ठ २८३– जिस बंध का अभाव हो जावेगा वह अध्रुव बंध है। जिसका बंध छूटकर पुनः बंध हो वह सादि बंध है।

(१०) पृष्ठ २८३ आयु ध्रुव बंध नहीं है, आयु अनादि बंध वाली भी नहीं है, आयु मात्र सादि तथा अध्रुव बंध है।

(११) पृष्ठ २९७ पूर्व संचित कर्म के मल रूप पटल के अनुभाग स्पर्धक जिस समय विशुद्धि द्वारा प्रति समय अनंतगुणे हीन होते हुए उदीरणा को प्राप्त किये जाते हैं उस समय क्षयोपशम लब्धि होती है।

उक्त अनंतगुण हीन उदीरणा से उत्पन्न हुआ साता आदि शुभ के बंध का कारणभूत परिणाम विशुद्धि है।

(१२) पृष्ठ २९९– इसका संशोधन फिर बताने का लिखा है।

(१३) पृष्ठ ३००-३४१– अनिवृत्तिकरण – परिणामों की अपेक्षा परस्पर निवृत्ति (भेद) जहां नहीं हो वह श्रेणिस्थ संयत अनिवृत्तिकरण है। इस गुणस्थान में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न ही होते हैं तथा समान क्षयवर्ती अनिवृत्तिकरण जीव के समान ही परिणाम होते हैं।

(१४) पृष्ठ ३०२– क्षयोपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल नेट ६६ सागर है।

(१५) पृष्ठ ३६१– देव, नारकी और भोगभूमिया जीव के भुज्यमान आयु के छः मास शेष रहने पर परभव संबंधी आयु बंध के योग्य होते हैं। उनका प्रथम अपकर्ष काल शेष छः मास के प्रारंभ में प्रथम अन्तर्मुहूर्त होगा- यह प्रथम अपकर्ष है।

त्रैलोक्य तिलक

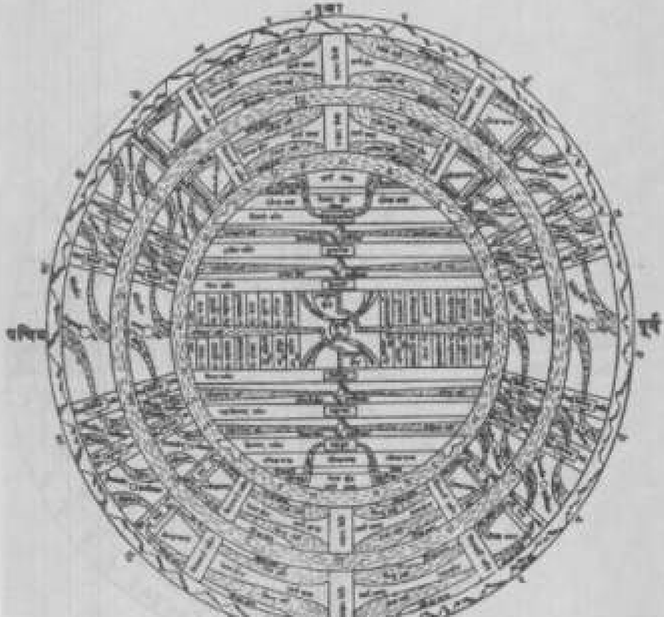

अढ़ाई द्वीप का नक्शा

त्रैलोक्य तिलक

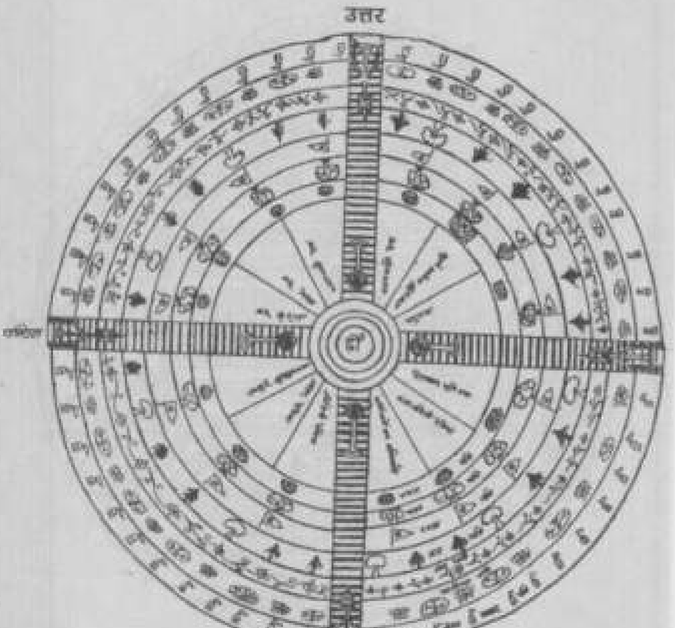

समवशरण की रचना

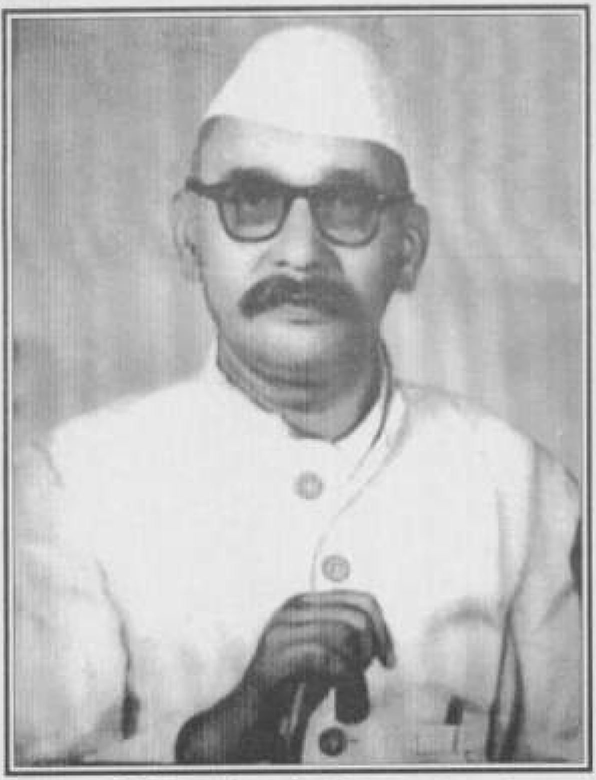

प्रगतिशील कर्मठ कार्यकर्त्ता, व्यवहार कुशल,
जैन समाज के अग्रणी प्रेरणा स्रोत–

स्व. श्री नंदकिशोरजी जैन (सेठी), मुरादाबाद

(जन्म : सन् १९१४) (स्वर्गवास : ४ दिसम्बर १९७२)

जिनकी पुण्य स्मृति में आपके ही सुपुत्र
श्री विनीतकिशोरजी जैन, एडवोकेट
४३०–सिविल लाइन्स, मुरादाबाद ने
इस ग्रंथ के प्रकाशन में सर्वाधिक विशेष सहायता प्रदान की।

॥ श्री वीतरागाय नमः॥

करणानुयोग का हिन्दी पद्य में अपूर्व ग्रन्थ

त्रैलोक्य तिलक

(रचयिता : पं. महेन्द्रकुमार जैन 'महेश' शास्त्री)

प्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरण

प्रणमूं श्री अरिहंत को, सिद्धनशीस नमाय।
आचारज उवझायनमि, वन्दूं मुनिजन पांच॥१॥
चउ अनुयोग प्रकाशिनी, जिनवानी उरधार।
लोकत्रय वर्णन करूं, जिन आगम अनुसार॥२॥
पूरब आचारज लिखा, आगम जलधि अपार।
तामें सार निकाल कर, लिखूं भव्य हितकार॥३॥
जो सर्वज्ञ कही यथा, गणधर भाषित जेह।
आचारज अनुक्रम लिखी, वही लिखूं भवि एह॥४॥

अर्थ— मैं (ग्रन्थकर्ता) सर्वप्रथम ग्रन्थ के प्रारम्भ में वीतराग सर्वज्ञ व हितोपदेशी श्री अरिहंत भगवान को नमस्कार कर श्री सिद्ध भगवान को नमन करता हूं पश्चात् आचार्य, उपाध्याय तथा समस्त साधु समूह के चरणों में वन्दन करता हूं॥१॥

चारों अनुयोगों को प्रकाशित करने वाली जिनवानी को हृदय में धारण कर जिनागम के अनुसार तीन लोक का वर्णन करता हूं॥२॥

पूर्वाचार्यों ने तीन लोक का वर्णन करने वाले ग्रन्थ लिखे हैं वे आगमग्रन्थ अपार समुद्र हैं, उन ग्रन्थों में से सार निकाल कर भव्य जीवों का उपकार करने वाला यह ग्रन्थ मैं लिखता हूं॥३॥

जो सर्वज्ञ भगवान ने कहा, और गणधरों ने जिसका विस्तार किया, तथा जिसको आचार्यों ने अनुक्रम से लिखा, हे भव्यजीवो ! उसी जिनवानी को मैं यहां लिखता हूं॥४॥

पहिले भाषा पद्य में, लिखा लोक व्यसार।
ताका ही विस्तार यह, रचूं शास्त्र अनुसार।५॥
गहन जिनागम जलधि में, करि प्रवेश चितलाय।
कुछ मोती चुन माल यह, गुंथूं भवि हित दाय।६॥
मैं मतिमन्द अज्ञान हूं, आगम ग्रन्थ महान्।
भूल चूक जो होय यह, शुद्ध करहु मतिमान।७॥

अथ लोक सामान्य वर्णनम्

चौदह राजू उत्तुङ्ग लोक या, कटि धरकर समपुरुषाकार।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्व लोकत्रय, भेद अनादि स्वयंभू सार।८॥
अधो लोक वेत्रासन सम है, मध्य लोक झालर आकार।
ऊरध लोक मृदङ्ग रूप है, पूर्ण लोकत्रय पुरुषाकार।९॥

अर्थ— पहले मैंने हिन्दी पद्य में चार अध्यायों में अतीव संक्षेप में तीन लोक के वर्णन करने वाला "त्रिलोकसार" नामक ग्रन्थ लिखा है, उसी ग्रन्थ का ही विस्तार रूप आठ अध्यायों में इस शास्त्र की रचना पूर्व शास्त्रों का अनुसरण कर करता हूं।५॥

पूर्वाचार्यों द्वारा लिखे जिनागम रूपी समुद्र में मन लगा, प्रवेश कर उसमें से कुछ सार रूप मोती ढूंढ कर भव्यजीवों के कल्याण करने वाली यह माला मैं गूंथने का प्रयास कर रहा हूं।६॥

मैं मन्दबुद्धि अल्पज्ञ हूं और आगम ग्रन्थ महान् गहन हैं, अतः मेरी इस ग्रन्थ रचना में कहीं कोई भूल हो तो हे बुद्धिमान विद्वानों ! उस भूल या त्रुटि को शुद्ध करने की कृपा करें।७॥

अब यहां लोक सामान्य का वर्णन करते हैं

अर्थ— यह समस्त लोक चौदह राजू ऊंचा है, और कमर पर हाथ रक्खे हुये पुरुष के समान आकार वाला है। इस लोक के तीन भेद हैं— १. अधो लोक, २. मध्य लोक, ३. ऊर्ध्व लोक। इस प्रकार तीन भेद वाला यह लोक अनादि है और स्वयंभू है अर्थात् किसी का बनाया हुआ नहीं है।८॥

अधो लोक वेत्रासन के समान है, मध्य लोक झालर के समान है, ऊर्ध्व लोक मृदङ्ग अर्थात् तबलों के आकार का है। तीनों लोक मिलकर पुरुष के आकार समान हैं।९॥

उत्तर दक्षिण सप्त राजु है, पूरब पश्चिम इतना जान।
है तल भाग मूल में उतना, सप्त राजु चौड़ाई मान।।१०।।
तल तैं ऊंचे सप्त राजु पर, है इक राजू का विस्तार।
साढ़े दस राजू पर शोभित, राजू पञ्च कहा पविसार।।११।।
लोक अन्त में सबसे ऊपर, राजू एक तना विस्तार।
पूर्णलोक त्रयशत तैंतालिस, राजू घनफल विस्तृत सार।।१२।।
अधो लोक तल तैं चित्रा तक, सप्त राजु ऊंचाई मान।
तापर सप्त और ऊंचा है, मध्य ऊर्ध्वद्वय लोक प्रमान।।१३।।
यों है राजू चौदह ऊंचा, लोक समस्त महा संसार।
जीव अनंतानन्त और षट्, द्रव्य भरा यह विश्व अपार।।१४।।
चित्रा भू के तल तैं नीचे, अधो लोक का है परिमाण।
मध्य लोक चित्रा भू तल तैं, मेरु सुदर्शन चोटी जान।।१५।।
प्रथम स्वर्ग तैं सिद्धशिला तक, ऊरध लोक कहा विस्तार।
यों है लोक चतुर्दश राजू, वेष्टित वातत्रय आधार।।१६।।

यह लोक उत्तर दक्षिण सात राजू है और पूरब पश्चिम भी सात राजू है, तल यानि लोक के नीचे के भाग में सात राजू चौड़ा है।।१०।।

और तल भाग से सात राजू की ऊंचाई पर एक राजू विस्तार चौड़ा है तथा नीचे से साढ़े दस राजू की ऊंचाई पर यह लोक पांच राजू चौड़ा है।।११।।

लोक के अन्त में ऊपरी भाग पर एक राजू चौड़ा है। यह समस्त लोक घनफल के हिसाब से तीन सौ तैंतालीस राजू है।।१२।।

अर्थ– अधो लोक के नीचे के भाग से चित्रा पृथ्वी तक यह लोक सात राजू ऊंचा है। उससे ऊंचा सात राजू ऊपर के भाग में है जिसमें मध्य लोक और ऊर्ध्व लोक दोनों लोक हैं।।१३।।

इस प्रकार यह समस्त लोक चौदह राजू की ऊंचाई वाला है, जिसमें अनंतानंत जीव सहित छ: द्रव्य भरे हुए हैं।।१४।।

चित्रा पृथ्वी से नीचे के भाग को अधोलोक कहते हैं तथा चित्रा पृथ्वी के ऊपर के भाग से लेकर सुदर्शन मेरु की चोटी तक मध्यलोक है।।१५।।

और प्रथम स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला तक ऊर्ध्व लोक है। इस प्रकार समस्त लोक चौदह राजू के प्रमाण में ऊंचा है और तीन प्रकार के वातवलयों से घिरा हुआ है अर्थात् वातवलयों के आधार पर खड़ा है।।१६।।

है त्रसनाड़ी लोक मध्य में, चौदह राजू ऊंची मान।
लम्बी चौड़ी है इक राजू, रहते हैं त्रसजीव निदान।।१७।।

लोक का आधार व वातवलय वर्णन

यह त्रय लोक खड़ा है आश्रित, वात घनोदधि के आधार।
घनोदधि घनवातवलय के, आश्रित घन तनुवात अधार।।१८।।

वातवलयतनु है यह आश्रित, लोक अन्त आकाश अधार।
अरु आकाश स्वयं आश्रित है, है अनन्त सीमा नहीं पार।।१९।।

वातवलय के रंग

वातवलय के रङ्ग कहूं मैं, घनोदधि गोमूत्र समान।
वातवलय घन मूंग अन्न सम, नाना रङ्ग कहा तनु वात।।२०।।

इस लोक के ठीक बीच में त्रसनाड़ी है, वह चौदह राजू ऊंची है, तथा लम्बी चौड़ी एक राजू है अर्थात् पूरब पश्चिम एक राजू है और उत्तर दक्षिण एक राजू है। त्रसजीव त्रसनाड़ी के भीतर ही रहते हैं।

विशेषार्थ— त्रसनाड़ी सामान्य रूप से चौदह राजू ऊंची शास्त्रों में कही गई है किन्तु विशेष रूप से त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुसार सिद्ध क्षेत्र एवं सातवीं पृथ्वी (नरक) के नीचे के निगोद स्थान को छोड़कर त्रसनाड़ी तेरह राजू से कुछ कम कही है। त्रसजीव त्रसनाड़ी से बाहर न तो जन्म लेते हैं और न जाते हैं किन्तु मारणांतिक समुद्घात और केवली समुद्घात के समय त्रसजीवों के आत्म प्रदेश त्रसनाड़ी से बाहर भी जाते हैं।।१७।।

लोक का आधार

अर्थ— ये तीनों लोक घनोदधि वातवलय के आधार पर खड़े हैं और घनोदधि घन वातवलय के आधार हैं, घन वातवलय तनुवात वलय के आधार पर है, तनुवातवलय आकाश के आश्रित है, आकाश स्वयं अपने ही आश्रित है वह अनन्त है, आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं है।।१८।१९।।

वातवलय के रंग

तीनों वातवलयों में घनोदधि वातवलय गोमूत्र के समान वर्ण वाला है, घनवातवलय मूंग के समान रङ्ग वाला है और तनुवातवलय अनेक तरह के रङ्ग वाला है— ये तीनों वातवलय एक प्रकार की हवायें हैं।।२०।।

वातवलयों की मोटाई का वर्णन

लोक तले है वातवलय की मोटाई का वर्णन जान।
सहस विंशति योजन इक इक, साठ सहस योजन प्रमान॥२१॥
सप्तम नरक भूमि के अन्तिक, पार्श्व भाग मोटाई जान।
सप्त पंच चउ योजन क्रमशः तीनों वातवलय परिमाण॥२२॥
मध्य लोक के पार्श्व भाग में पंच, चार, त्रय योजन जान।
ब्रह्म स्वर्ग के पार्श्व मोटाई, सप्त पंच चउ योजन मान॥२३॥
ब्रह्मस्वर्ग के ऊपर जाते, अन्तिम भाग पार्श्व ईशान।
पांच चार त्रय योजन क्रमशः वातत्रय मोटाई मान॥२४॥
लोकशिखर ऊपर है क्रमशः, तीनों की मोटाई जान।
कोस दोय इक कोस पंचदश, शतक पिचत्तर धनुष प्रमाण॥२५॥
यों है वातत्रय मोटाई लोकत्रय इनके आधार।
जड़ा अकृत्रिम है अनादि से षट्द्रव्यों से युक्त अपार॥२६॥

अर्थ— वातवलयों की मोटाई का वर्णन इस प्रकार जानना चाहिये। लोक के नीचे के भाग में एक-एक वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटा है, तीनों वातवलयों की मोटाई साठ हजार योजन है॥२१॥

सातवें नरक के दोनों तरफ पार्श्व भाग से ऊपर मध्यलोक तक सात, पाँच और चार योजन क्रम से है अर्थात् पहला घनोदधि सात योजन मोटा है, दूसरा घनवातवलय पांच योजन और तीसरा तनुवातवलय चार योजन मोटा जानना चाहिये॥२२॥

आगे मध्य लोक के दोनों पार्श्व भाग में पांच योजन, चार योजन और तीन योजन के क्रम से तीनों वातवलय की मोटाई है। पांचवें ब्रह्म स्वर्ग के दोनों पार्श्व भाग में तीनों वातवलय क्रम से सात योजन, पांच योजन और चार योजन मोटे हैं॥२३॥

ब्रह्म स्वर्ग से ऊपर जाते हुये लोक के अन्तिम भाग में दोनों पार्श्वभाग में तीनों वातवलय की मोटाई क्रम से पांच योजन, चार योजन और तीन योजन कुल बारह योजन है॥२४॥

लोक के ऊपर शिखर पर चक्र के आकार घनोदधि वातवलय की मोटाई दो कोस, घन वातवलय की एक कोस तथा तनु वातवलय की मोटाई पन्द्रह सौ पिचहत्तर धनुष प्रमाण है॥२५॥

इस प्रकार तीनों वातवलय की मोटाई जानना। यह तीनों लोक इन्हीं तीन वातवलयों के आधार पर खड़े हैं, अनादि हैं। किसी ने बनाया नहीं है, छः द्रव्यों से भरा हुआ महान् है॥२६॥

तीन लोक का मापदण्ड

चित्रा भू के तल तैं लेकर, मेरु सुदर्शन चोटी जान।
मध्य लोक की ऊंचाई है, इक लख चालिस योजन मान॥२७॥
तातैं ऊपर प्रथम स्वर्ग तैं, ऊर्ध्व लोक प्रारम्भ सुजान।
अन्तिम ऊपर तक है जानहु, अष्टम भू शिव लोक महान॥२८॥
मध्य लोक तैं ऊर्ध्व लोक की, ऊंचाई का है परिमाण।
इक लख योजन न्यून जानिये, राजू सप्त कहा मतिमान॥२९॥
चित्रा भू तैं सप्त राजु है, अधो लोक नीचा विस्तार।
मध्य लोक तैं अन्तराल इक, राजू नरक द्वितीय भू सार॥३०॥
द्वितीय नरक भू तैं अन्तर है, राजू एक तृतीय भू जान।
त्यों ही एक एक राजु है, अन्तर सप्तम पृथ्वी मान॥३१॥
चित्रा तैं षट् राजू अन्तर, नारक सप्तम पृथ्वी जान।
तिहँ तैं नीचे राजु इक है, लोक निगोद भरा सब थान॥३२॥

इति पं. महेन्द्रकुमार जैन 'महेश' विरचितो त्रैलोक्य तिलक
ग्रंथे लोक सामान्य वर्णनोनाम प्रथमोऽध्याय:।

अर्थ— चित्रा पृथ्वी के तल से सुदर्शन मेरु की चोटी तक एक लाख चालीस योजन ऊंचा मध्य लोक है॥२७॥

उसके ऊपर पहले स्वर्ग से प्रारम्भ होकर ऊपर लोक के अन्त में आठवीं पृथ्वी व मोक्ष तक ऊर्ध्व लोक है॥२८॥

मध्य लोक से ऊर्ध्व लोक की ऊंचाई एक लाख योजन कम सात राजू है॥२९॥

अधो लोक इस चित्रा पृथ्वी से सात राजू तक नीचा है। इसी मध्य लोक से दूसरे नरक की पृथ्वी का अन्तराल कुछ कम एक राजू है॥३०॥

उसी प्रकार दूसरे नरक की पृथ्वी से तीसरे नरक की पृथ्वी का अन्तराल भी कुछ कम एक एक राजू है, इसी तरह एक एक राजू के अन्तराल में क्रम से सातवें नरक की पृथ्वी है॥३१॥

इसी चित्रा पृथ्वी से सातवें नरक की पृथ्वी कुल छः राजू नीचे अन्तर में है। उस सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजू और लोक है उसमें केवल निगोद के जीव भरे रहते हैं॥३२॥

इस प्रकार पं. महेन्द्र कुमार 'महेश' विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ में लोक सामान्य वर्णन करने वाला प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

अथद्वितीयोऽध्यायः

अधोलोक वर्णन

अधो लोक चित्रा पृथ्वी से, नीचे कहे नरक हैं सात।
एक एक से नीचे जानहु, नाम कहे उनके विख्यात।।१।।

रत्न शर्करा और बालुका, पंक धूमतम प्रभा वितान।
सप्तमनरक भूमि जिन भाषित, नाम महातम प्रभा सुजान।।२।।

धम्मा वंशा अरु हैं मेघा, नरक अंजना चौथा जान।
पंचम नरक अरिष्टा जानहु, मघवी और माघवी मान।।३।।

ये भी रूढ़िक नाम नरक के, आगम में वर्णित हैं सार।
रौद्र ध्यान अरु महापाप से, जावें दुःख सहें नहिं पार।।४।।

प्रथम नरक वर्णन

प्रथम नरक की भूमि मनोहर, रत्न प्रभा के हैं त्रय भाग।
खर अरु पङ्क भाग है तीजा, अब्बहुल वर्णित सुविभाग।।५।।

अर्थ— चित्रा पृथ्वी के नीचे से अधो लोक है उसमें सात नरक हैं जो कि एक एक से नीचे हैं, उन सातों नरकों की पृथ्वी के निम्न प्रकार नाम हैं।।१।।

१. रत्न प्रभा, २ शर्करा प्रभा, ३. बालुका प्रभा, ४. पंक प्रभा, ५. धूम प्रभा, ६. तमप्रभा, ७. महातम प्रभा। ये सात नाम जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं।।२।।

शास्त्रों में इन नरकों के दूसरे नाम भी इस प्रकार कहे गये हैं— १. धम्मा, २. वंशा, ३. मेघा, ४. अंजना, ५. अरिष्टा, ६. मघवी, ७. माघवी।।३।।

ये नाम नरकों के रूढ़िक हैं। जो जीव रौद्र ध्यान से पापों में लीन हैं वे नरकों में जाकर जन्म लेते हैं और अपार दुःख सहन करते हैं।।४।।

पहले नरक का वर्णन

पहले नरक की पृथ्वी जिसका नाम रत्न प्रभा है, उसके तीन भाग हैं जिनके नाम पहला खर भाग, दूसरा पङ्क भाग, तीसरा अब्बहुल भाग है।।५।।

रत्न प्रभा इक लक्ष सुयोजन, ऊपर योजन अस्सी हजार।
सोलह सहस्रजु योजन मोटा, ताका इक खर भाग विचार।।६।।

सहस चुरासी योजन मोटा, पंक भाग है निश्चय जान।
अब्बहुल की है मोटाई, अस्सी सहस सुयोजन मान।।७।।

अन्य पृथ्वियों की मोटाई

बत्तिस सहस सुयोजन मोटी, पृथ्वी है शर्करा कहाय।
तीजी अट्ठाईस सहस है, चौथी चौबिस सहस बताय।।८।।

पंचम पृथ्वी है नारक की योजन विंशति सहस प्रमाण।
षष्टम सोलह सहस सुयोजन, सप्तम अष्ट सहस हि जान।।९।।

खर भाग का वर्णन

सोलह पृथ्वी से है राजित, रत्न प्रभा का वह खर भाग।
सबसे ऊपर चित्रा पृथ्वी, मध्य लोक प्रारम्भ विभाग।।१०।।

रत्न प्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, उसमें से खर भाग सोलह हजार योजन मोटा है।।६।।

दूसरा पंक भाग चौरासी हजार योजन मोटा है। तीसरे अब्बहुल भाग की मोटाई अस्सी हजार योजन है।।७।।

अर्थ— दूसरे नरक की पृथ्वी बत्तीस हजार योजन मोटी है। तीसरी बालुका प्रभा अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। चौथी पंक प्रभा चौबीस हजार योजन मोटी है।।८।।

पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी बीस हजार योजन मोटी है। छठी तमप्रभा सोलह हजार योजन मोटी है। सातवीं महातमप्रभा पृथ्वी आठ हजार योजन मोटी है।।९।।

खर भाग का वर्णन

प्रथम नरक की रत्नप्रभा पृथ्वी का ऊपर का खर भाग सोलह अन्य पृथ्वियों से शोभित है, सबसे ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है जिसके तल के भाग से मध्य लोक का प्रारम्भ होता है।।१०।।

वज्रा वैडूर्या लोहित अंक, कामसार कल्पा फिर आन।
गोमेदक प्रवाला शोभित, ज्योति रसा अंजना वितान।११।।
अरु है अंजन मूलिक अंका, स्फटिका और चंदना जान।
सर्वर्थका तथा है बकुला, अन्तिम शैला पृथ्वी मान।१२।।
प्रथम भूमि चित्रा पृथ्वी है, जिस पर है नर लोक महान।
एक सहस योजन मोटी है, पन्द्रह भी उतनी ही मान।१३।।
चित्रा पृथ्वी के नीचे से, अधो लोक प्रारम्भ कहान।
राजू सात तले तक जानहु, अधो लोक परिमाण बताय।१४।।
खर अरु पङ्क भाग में शोभित, बने अकृत्रिम भवन महान।
एक एक अकृत्रिम चैत्यालय, व्यंतर भवन देव का थान।१५।।

नरकों में पटल

प्रथम नरक में पटल त्रयोदश, दूजे ग्यारह पटल कहाय।
तीजे में नव सप्त चतुर्थम, पंचम में है पांच लहाय।१६।।

इन सोलह पृथ्वियों के नाम निम्न प्रकार हैं— १. चित्रा, २. वज्रा, ३. वैडूर्या, ४. लोहित, ५. कामसार कल्पा, ६. गोमेद, ७. प्रवाला, ८. ज्योतिरसा, ९. अंजना, १० अंजन मूलिका, ११. अंका, १२. स्फटिका, १३. चंदना, १४. सर्वर्थका, १५. बकुला और १६वीं शैला पृथ्वी है।११।१२।।

इन सोलह पृथ्वियों में सबसे ऊपर जो चित्रा नाम की पृथ्वी है उसके ऊपर मनुष्य लोक टिका हुआ है, यह पृथ्वी एक हजार योजन मोटी है और उसके नीचे की पन्द्रह पृथ्वियां भी एक–एक हजार योजन मोटी हैं।१३।।

चित्रा पृथ्वी के नीचे के भाग से अधोलोक का प्रारम्भ होता है जो कि नीचे सात राजू तक का इसका परिमाण है।१४।।

इस रत्न प्रभा पृथ्वी के खर भाग और पंक भाग में व्यंतरवासी और भवनवासी देवों के रहने के अकृत्रिम भवन बने हुये हैं। एक–एक भवन में एक–एक महान् दिव्य अकृत्रिम चैत्यालय है।१५।।

नरकों में पटल

पहले नरक में तेरह पटल हैं, दूसरे में ग्यारह, तीसरे में नौ, चौथे में सात, पांचवे में पांच पटल हैं।१६।।

षष्टम नरक विषैं त्रय जानहु, सप्तमें एक पटल है मान।
यों उनचास पटल नरकों में, तिनके नाम यथाक्रम जान।।१७।।
प्रथम पटल सीमान्त निरय अरु, रौरव भ्रान्त तथा उद्भ्रान्त।
अरु सम्भ्रान्तहि असम्भ्रान्त हैं, अष्टम पटल कहा विभ्रांत।।१८।।
त्रस्त त्रसित वक्रान्त पटल हैं, अवक्रान्त अरु धर्म सुथान।
प्रथम नरक के पटल त्रयोदश, कहे द्वितीय को करूं बखान।।१९।।
तनक स्तनक अरु वनक मनक हैं, खड़ा और खड़िका ये नाम।
जिव्हा जिव्हक नोल रु लोलक, लोलवंत एकादश नाम।।२०।।
तप्त तपित अरु तपण तापणा, हैं निदाघ उज्ज्वल का मान।
प्रज्वालिका सज्वालिका नवमा संप्रज्वालिका ये नव जान।।२१।।
आर मार अरु तार कहे हैं, अरु वर्चस्क तथा तम जान।
फड़ा फड़ाय सप्त यों कहिये, नरक चतुर्थम पटल महान।।२२।।
तुक भ्रमक अरु झषक अंधये, अरु तमिस्र पंचम में जान।
हिम वार्धम लल्लक ये तीनों, षष्टम नरक पटल त्रय मान।।२३।।

छठे नरक में तीन और सातवें नरक में एक पटल है, इस प्रकार सातों नरकों में कुल उनचास अर्थात् एक कम पचास पटल हैं इनके नाम क्रम से यहाँ वर्णन किये जाते हैं।।१७।।

प्रथम नरक के तेरह पटलों के नाम हैं— १. सीमान्त, २. निरय, ३. रौरव, ४. भ्रान्त, ५. उद्भ्रान्त, ६. सम्भ्रान्त, ७. असम्भ्रान्त, ८. विभ्रान्त, ९. त्रस्त, १०. त्रसित, ११. वक्रान्त, १२. अवक्रान्त, १३. धर्म, इस प्रकार पहले नरक के पटल हैं। आगे दूसरे आदि नरकों का वर्णन करता हूं।।१८।।१९।।

१. तनक, २. स्तनक, ३. वनक, ४. मनक, ५. खड़ा, ६. खड़िका, ७. जिह्वा, ८. जिह्वक, ९. नोल, १०. लोलक, ११. लोलवंत ये ग्यारह पटल दूसरे नरक में हैं।।२०।।

१. तप्त, २. तपित, ३. तपण, ४. तापण, ५. निदाघ, ६. उज्ज्वलका, ७. प्रज्वलिका, ८. संप्रज्वलिका ये नव पटल तीसरे नरक में हैं।।२१।।

१. आर, २. मार, ३. तार, ४. वर्चस्क, ५. तम, ६. फड़ा, ७. फड़ाय, ये सात पटल चौथे नरक में हैं।।२२।।

१. तुक, २. भ्रमक, ३. झषक, ४. अंध, ५. तमिस्र ये पांच पटल पांचवें नरक में हैं। १. हिम, २. वार्धम, ३. लल्लक ये तीन पटल छठवें नरक में हैं।।२३।।

सप्तम नरक माहिं है केवल, एक पटल है अवधि स्थान।
यों उनचास पटल सातों में नाम सहित वरणें इह जान॥२४॥

नरकों में बिल

इन पटलों के मध्य स्थित जो, बिल हैं तिनका इन्द्रक नाम।
इन्द्रक बिल के आठ दिशाश्रित, श्रेणीबद्ध कहे तिन नाम॥२५॥
आजू बाजू इधर उधर बिल, उन्हें प्रकीर्णक कहते जान।
ढोल समान वज्र भित्तियुत, त्र्यस्कूंटा चौकोर सुजान॥२६॥
महा भयंकर घोर तिमिरयुत, अतिदुर्गंधमयी दुखदाय।
कूकर सूकर बंदरमल सम, घृणित महा अकृत्रिम भयदाय॥२७॥

बिल की संख्या

प्रथम नरक के बिल की संख्या, त्रिंशत लाख कही भगवान।
दूजे पच्चीस लक्ष कही है, तीजे पन्द्रह लाख प्रमान॥२८॥
चौथे नरक लक्ष दश जानहु, पंचम में त्रय लक्ष बखान।
छटे नरक पंच कम इक लख, सप्तम नरक पंच बिल जान॥२९॥

सातवें नरक में केवल एक पटल है जिसका नाम अवधिस्थान है। इस प्रकार सातों नरकों की पृथ्वी में उनचास पटल हैं। उनका यहाँ नाम सहित वर्णन किया है॥२४॥

नरकों में बिलों का वर्णन

पहले कहे पटलों के मध्य में जो बिल हैं उन्हें इन्द्रक बिल कहते हैं। इन्द्रक बिल की आठों दिशाओं में स्थित जो बिल हैं वे श्रेणीबद्ध कहलाते हैं॥२५॥

तथा इधर उधर आजू बाजू में चारों तरफ जो बिल हैं उनको प्रकीर्णक बिल कहते हैं, ये बिल ढोल के समान, वज्र की दीवालों युक्त तिकोने और चौकोर आकार के होते हैं॥२६॥

अत्यन्त भयावने घोर अंधकार वाले ये बिल अत्यन्त दुर्गन्ध से भरे महान दुखदाई होते हैं। कुत्ता, बिल्ली, सूअर और बन्दर के मल के समान घिनावने, भयकारी होते हैं। ये समस्त बिल अकृत्रिम और अविनश्वर हैं॥२७॥

बिल की संख्या

पहले नरक में बिल तीस लाख, दूसरे में पच्चीस लाख, तीसरे नरक में बिल पन्द्रह लाख, चौथे में दस लाख, पांचवें में तीन लाख, छठे में पांच कम एक लाख और सातवें नरक में केवल पांच बिल हैं॥२८॥२९॥

कुल नरकों में बिल की संख्या, लख चौरासी योग मिलाय।
पापी हिंसक जीव जनम ले, लरें कटें मरि मरि दुखपाय।।३०।।

बिलों की स्थिति, शीतोष्णता व भूख प्यास

इन्द्रक श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक, बिल हैं नरक भूमिमधि जान।
ज्यों नर लोक भवन के बनते, मध्य कक्ष चहुं ओर सुजान।।३१।।

लाख बयासी सहस बीस पंच, कहे उष्ण बिल ता में आन।
एक लक्ष अरु सहस पिचत्तर, शीत स्पर्श बिल हैं मतिमान।।३२।।

रत्न प्रभा से लेकर पंचम, पृथ्वी तक बिल उष्ण महान।
पंचम का कुछ अंशरु षष्टम, सप्तम भू बिल शीत सुजान।।३३।।

शीत उष्णता ऐसी जैसे, मेरु समान लोह गलि जाय।
तीन लोक का अन्न खाय पर, भूख न जाय कणा न लहाय।।३४।।

इस प्रकार कुल सातों नरकों में बिलों की संख्या सब मिलाकर चौरासी लाख है। पापी और हिंसक जीव इन बिलों में जन्म लेकर आपस में निरन्तर लड़ते हैं, कटते हैं और बारबार मरते हैं, महादुःख पाते हैं।।३०।।

उन नरकों की भूमि में तीन प्रकार के ऊपर कहे अनुसार बिल होते हैं, इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। जिस प्रकार मनुष्य लोक में कोई बड़ा भवन या महल बना हो, सबके बीच में बड़ा कमरा हो, और उसके आठ विदिशा में कमरे बने हों, तथा कई कमरे यत्र तत्र बीच में बिना क्रम के बने हों उसी प्रकार नरकों में बिल होते हैं।।३१।।

उन बिलों में बयासी लाख पच्चीस हजार बिल तो उष्ण अर्थात् गरम हैं, एक लाख पिचहत्तर हजार बिल ठण्डे हैं।।३२।।

रत्न प्रभा पहली पृथ्वी से लेकर पांचवी पृथ्वी तक बिल गरम हैं, और पांचवी पृथ्वी के कुछ बिल तथा छठी व सातवीं पृथ्वी के बिल ठण्डे हैं।।३३।।

उन नरकों में शीत व गर्मी ऐसी भयंकर पड़ती है कि जिससे सुमेरु पर्वत के समान लोहे का गोला भी गल जाये। भूख नारकी जीवों को इतनी लगती है कि तीन लोक का समस्त अन्न खावे फिर भी भूख मिटे नहीं, किन्तु वहां अन्न का एक भी कण नहीं मिलता है।।३४।।

सिन्धु नीर में प्यास बुझे नहिं, तोपण बूंदन एक लहाय।
बिच्छू सहस डसे उससे भी, अधिक दुःख भू परसत पाय॥३५॥

सेमर असिदल श्रोणित सरिता, कटे, बहे, अरु जलता जीव।
क्षण भर भी नहिं चैन लहे तिहं, घोर महादुख सहे सदीव॥३६॥

नरक में और भी दुःख

नरक दुःख की कहूं कहानी, नहीं लेखनी शक्ति लहाय।
दुःख महा अतिघोर भयंकर, कोटि जीभतें कही न जाय॥३७॥

लरें परस्पर करें निरन्तर, तन सौ शस्त्र बने भयकार।
अरु करोत से चीरें तन को, भालम्मार न दयालगार॥३८॥

नरक में प्यास इतनी लगती है कि समुद्र भर पानी पीवे तो भी प्यास शान्त नहीं हो किन्तु जल की एक बूंद भी वहाँ नहीं मिलती है। वहाँ की पृथ्वी को छूने मात्र से एक हजार बिच्छू काटने से भी अधिक दुःख होता है॥३५॥

इसके अतिरिक्त सेमर वृक्षों के पत्ते तलवार के समान होते हैं उनसे नारकियों का शरीर कट जाता है। वहाँ खून की नदी बहती है उसमें नारकी गिरता है तो उसका शरीर जल जाता है। नारकी जीव को नरक में एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिलती है। निरन्तर भयानक दुःख को सहता है॥३६॥

नरकों में और भी दुःख का वर्णन

नरक के दुःखों का कहाँ तक वर्णन किया जाय, लेखनी की शक्ति उन दुःखों का वर्णन करने की नहीं है। वहाँ के भयंकर घोर दुःख करोड़ों जीभों से भी वर्णन नहीं किये जा सकते॥३७॥

नारकी जीव निरन्तर परस्पर एक दूसरे से लड़ते हैं, विक्रिया से अपने ही शरीर से भयंकर शस्त्र बना लेते हैं। कोई करोंत से शरीर को चीरते हैं, कोई भाले से टुकड़े कर देते हैं। रंच भर किसी को दया नहीं आती है॥३८॥

तपती लोह कढ़ाई में तलि, वैतरणी में दौड़ गिराय।
हिंसक जीव भखें तिह दुखनहिं, सेमर वृक्ष तलें आ जाय।।३९।।
सेमर पत्र विदारें असि ज्यों, तहतें भागि भागि वन जाय,
वन के हिंसक पशु खा जावें, कहीं नहीं विश्राम लहाय।।४०।।
हिंसक व्याघ्र लखें मृग शावक, टूट पड़ें ज्यों लोक मंझार।
श्वान झुण्ड ज्यों नये श्वान पर, झपटें त्यों झपटें लड़िमार।।४१।।
मुद्गर मारें, कोल्हू पेलें, ज्वलित अग्नि में धरि पटकाय।
चक्रवाक शूली करवावें, तपती लोह मूर्ति चिपकाय।।४२।।
क्षणक्षण कटिकटि गिरे, भूमि पर गिरते ही चूरा हो जाय।
पारेसम तन पुनि मिल जावे, पुनि टुकड़े होकर मिल जाय।।४३।।
सिकताम्बान अरु अम्बरीश ये, असुर लड़ावें उन्हें भिड़ाय।
तीजे तक जा वैर याद करि, नरक जीव को बहुत लराय।।४४।।

कोई नारकी तपती लोहे की कढ़ाई में नारकी जीव को तल देते हैं। राध और शोणित से भरी नदी में नारकी गिरता है तो हिंसक जीव उसे भक्षण कर जाते हैं। सेमर वृक्ष के नीचे नारकी जाय तो उसके पत्ते तलवार की धार के समान होने से उसके शरीर के टुकड़े हो जाते हैं। वहाँ से जंगल को भागता है तो जंगल के पशु उसे खा जाते हैं। कहीं पर भी नारकी जीव को विश्राम नहीं मिलता है।।३९।।४०।।

लोक में जिस प्रकार हिंसक व्याघ्र आदि मृग के बच्चे को देखते ही उस पर टूट पड़ते हैं तथा कुत्ते जिस तरह नये कुत्ते को देखकर झपटते हैं उसी प्रकार नवीन नारकी को देखते ही नारकी उस पर झपटते हैं और लड़कर मारते हैं।।४१।।

वहाँ नरकों में मुद्गर से मारते हैं, कोल्हू में पेलते हैं, जलती अग्नि में पकड़ कर गिरा देते हैं, चक्रवाक व शूली से कटवाते हैं और लोहे की मूर्ति को तपाकर शरीर से स्पर्श कर चिपकाते हैं।।४२।।

नारकी जीव क्षण–क्षण में कट–कट कर गिरता है और गिरते ही उसके शरीर का चूरा–चूरा हो जाता है। नारकी जीव का शरीर पारे के समान होता है, जिससे बार–बार टुकड़े होता है और बार–बार फिर से मिल जाता है।।४३।।

असुर कुमार देवों में सिकताम्बान और अम्बरीश जाति के देव तीसरे नरक तक जाकर उनके पूर्वभव के वैर भाव की याद दिलाकर नारकी जीव को बहुत लड़ाते हैं।।४४।।

और घने दुख नरक माहि हैं, स्मरण मात्र तैं गात्र कंपाय।
लिखतें लिखतें कलम थकै पर, दुःख अपार न अन्त लिखाय।।८५।।

केवल तीर्थंकर जब जनमैं नरक जीव क्षण शांति लहाय।
तीर्थंकर प्रकृति बंध प्राणी, मास पूर्वषट् नहीं लड़ाय।।८६।।

कौन जीव नरक जाता है ?

दुष्ट स्वभावी हिंसक तस्कर, अति लोभी नरक गति पाय।
पाप क्रूरतम हो परिणामी, परिग्रह में अति मूर्च्छा पाय।।८७।।

हो निर्लज्ज और अतिकामी, क्रोधी पापी करे शिकार।
अति मोही अरु पतित सेवी, समकित संयमच्युत नरनार।।८८।।

और अधर्मी आमिष भोजी, मद्यपान दुर्व्यसनी होय।
परधन हर्ता वंचक प्राणी, जाय नरक गति निश्चय होय।।८९।।

नरकों में इतने भयंकर घोर दुःख हैं कि उनके स्मरण मात्र से शरीर कांपने लग जाता है। लिखते लिखते कलम भी थक जाय फिर भी नारकी जीव के दुःख का वर्णन पूरा नहीं हो सकता।।८५।।

मनुष्य लोक में तीर्थंकर का जन्म होता है तब क्षण मात्र के लिये नारकी जीव को शान्ति प्राप्त होती है तथा तीर्थंकर प्रकृति का जिसने बंध कर लिया है ऐसा जीव यदि नरक में जाय तो उसके आयु पूर्ण होने के छः मास पूर्व लड़ना लड़ाना बन्द कर देता है बाकी नारकी जीवन भर लड़ते–लड़ाते और परस्पर मारते काटते हैं।।८६।।

नरकायु बंध करने वाले जीव

जो जीव दुष्ट स्वभाव के होते हैं, तथा जीव हिंसा करने वाले, तस्कर, अत्यन्त लोभी, पापी, क्रूर स्वभावी, अति परिग्रही, निर्लज्ज, अत्यन्त कामी, तीव्र क्रोधी, महापापी, जीवों का शिकार करने वाले, अत्यन्त मोही, सम्यक्त्व एवं संयम से भ्रष्ट, धर्म से रहित, मांसाहारी, शराबी, कुव्यसन के सेवी, पराये धन का हरण करने वाले, धोखा देकर ठगने वाले ऐसे जीव मरकर नरक गति में जाते हैं।।८७।।८८।।८९।।

नरक की पृथ्वियों का वर्णन

रत्न प्रभा रत्नों सम राजित, शक्कर सम शर्करा सुखान।
बालू जैसी कही बालुका, पंकप्रभा कीचड़ सम मान।५०॥

धूमप्रभा का वर्ण धूम सम, तम समान तमप्रभा वितान।
घने अंधेरे सम है सप्तम, महातमा पृथ्वी दुख खान।५१॥

नरकों में शरीर की ऊंचाई

प्रथम नरक में तन है ऊंचा, सप्त धनुष त्रयहाथ प्रमान।
छः अंगुल ऊपर है जानहु, क्रमशः बढ़ता दूना मान।५२॥

अन्तिम नरक सातवें में है, धनुष पंचशत ऊँची काय।
काया बड़ी न्यूनतम बिल है, सबसे अधिक तिहाँ दुख पाय।५३॥

नरक की पृथ्वियों के वर्णन

रत्न प्रभा पृथ्वी रत्नों के समान है, शर्करा प्रभा शक्कर के समान, बालुका प्रभा रेती के समान है, पंक प्रभा कीचड़ के समान है, धूम प्रभा का वर्ण धुऐं के समान काला है, तमप्रभा अन्धकार के समान है और अन्तिम सातवी महातमप्रभा पृथ्वी का वर्ण गहरे अन्धेरे के समान है। शर्करा प्रभा कहीं कंकड़ के समान भी लिखी है।५०।५१॥

नारकी जीवों के शरीर की ऊंचाई

प्रथम नरक के नारकी का शरीर सात धनुष तीन हाथ छः अंगुल ऊपर के प्रमाण ऊंचा है इससे आगे–आगे के नरकों में क्रमशः दूना–दूना बढ़ता जाता है।५२॥

अन्तिम सातवें नरक में नारकी जीव का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा है। उस नरक में नारकियों का शरीर तो बड़ा और बिल सबसे कम होते हैं। वहां दुःख भी सबसे अधिक होता है।५३॥

नरकों में जन्म का अन्तर

नरकों में है अन्तर जानहु, जीव जनम तिहँ पावे सोय।
प्रथम नरक में चौईस मुहूरत, अन्तर जनम अधिक ना होय।।५४।।
द्वितीय सप्त दिवसों का अन्तर, तृतीय पखइक अन्तर जान।
और चतुर्थम एक मास का, दोय मास पंचम में मान।।५५।।
षष्टम नरक कहा चउमासा, सप्तम में अन्तर षट्मास।
यों है अन्तर जन्म अधिकतम, नरक जीव का जानहु खास।।५६।।

नरकों में अवधिज्ञान की सीमा

रत्न प्रभा में अवधि ज्ञान की, सीमा कोस कही है चार।
आधा आधा आगे कम है, सप्तम में इक कोस विचार।।५७।।

नरक में उत्पत्ति स्थान का वर्णन

नरक जीव जनमें जिस थल पै, है उपपाद नाम तिन थान।
बिल के तलतैं ऊंचे हैं वे, जनमत गिरैं भूमि पर आन।।५८।।

जन्म का अन्तर

नारकी जीवों के जन्म का अन्तर अधिक से अधिक कितना है इसका वर्णन करते हैं। पहले नरक में २४ मुहूर्त का अन्तर है, दूसरे में सात दिन का, तीसरे में पन्द्रह दिन का, चौथे में एक मास का, पांचवें नरक में दो मास का, छठे नरक में चार मास का, सातवें नरक में छः मास का अन्तर कहा गया है। अन्तर के पश्चात नियम से किसी दूसरे नारकी का जन्म हो जाता है।।५४।५५।५६।।

नरकों में अवधिज्ञान

नरकों में नारकी जीवों के भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है, उसकी सीमा इस प्रकार है। प्रथम नरक में चार कोस तक, दूसरे में साढ़े तीन, तीसरे में तीन, चौथे में ढाई, पांचवें में दो कोस, छठे नरक में डेढ़ कोस और सातवें में एक कोस की मर्यादा है।।५७।।

नरक में उपपाद स्थान

जिस स्थान पर नारकी जन्म लेता है उसको उपपाद स्थान कहते हैं। वे स्थान बिल के तल के भाग से ऊंचे होते हैं, उस जगह जन्म लेते ही नीचे गिर जाता है।।५८।।

चूर चूर होवे तन सारा, पुनि पुनि मिलै खण्ड हो जाय।
आयुष जब तक हो नहीं पूरण, मरण नहीं होवै दुख पाय॥ ५९॥

उपपाद स्थान का व्यास व ऊंचाई

पहले नरक कोस इक ऊंचा, दूजे दोय कोस का व्यास।
तीजे है त्रयकोस चतुर्थम, इक योजन के व्यास प्रमान।६०॥

पंचम नरक दोय योजन है, षष्टम में त्रय योजन सार।
सप्तम नरक कहा शत योजन, है उपपाद व्यास विस्तार।६१॥

अपने अपने व्यास प्रमान हि, पंचगुने ऊंचे ये जान।
इतने ऊंचे जन्मत तत्क्षण, गिरे नरक भू पर ये आन।६२॥

है बिल ऊपर खड्गयुक्त अरु, अर्धवृत्त ये जन्म कुथान।
अधोमुखी हैं जन्म भूमियां, हस्ति गाय अरु अश्व समान।६३॥

और ऊंटनी मुद्गरसम अरु, झालर ध्वज सम है आकार।
चक्रवाक अरु ध्वजा करभ सम, अजगर सम दुर्गन्ध अपार।६४॥

गिरते ही नारकी का समस्त शरीर टुकड़े टुकड़े हो जाता है फिर शरीर मिल जाता है, पुन: खण्ड खण्ड हो जाता है। जब तक आयु पूर्ण नहीं हो जाती नरक के जीव की मृत्यु नहीं होती है। वहीं महादुख पाता है।५९॥

नरक के उपपाद स्थान कितने विस्तार के हैं ? उनका वर्णन करते हैं। प्रथम नरक में एक कोस व्यास के हैं, दूसरे में दो कोस, तीसरे में तीन कोस, चौथे में एक योजन, पांचवें नरक मे दो योजन, षष्टम् नरक में तीन योजन और अन्तिम सातवें नरक में सौ योजन उपपाद स्थान के व्यास अर्थात् विस्तार के हैं।६०।६१॥

ये उपपाद स्थान जितने जितने विस्तार के हैं उनसे पांच गुने नरक के तल भाग से ऊंचे हैं। इतने ऊंचे जन्म स्थान से नारकी जन्म लेता है, उसी समय उसका शरीर पूर्ण होकर पृथ्वी पर गिर जाता है।६२॥

ये उपपाद स्थान तलवारों से युक्त अर्द्ध गोलाकार के होते हैं। ये जन्म भूमियां नीचे मुंह वाली हाथी, गाय, घोड़े, मुद्गर, गधा, झालर, ध्वजा, चक्रवाक, हाथी के बच्चे, अजगर आदि के समान हैं और महा दुर्गन्धमयी हैं।६३।६४॥

हैं जघन्य ये कोस पांच अरु, हैं उत्कृष्ट कोसशत चार।
रहे अन्धेरा और भयानक, जन्मे भय से त्रस्त अपार।।६५।।

नारकी का उछलना

जन्मत पूरण हो तन सारा, गिरे खड्ग शस्त्रों पर आन।
छत्तिस आयुध पर गिरते क्षण, उछले पुनः गिरे तिहिं थान।।६६।।

प्रथम नरक के सप्त सुयोजन, धनुष सहसषट् शतपंच जान।
जीव उछलता ताके आगे, दूना दूना उछले आन।।६७।।

नरक में उत्कृष्ट और जघन्य आयु

प्रथम नरक की उत्तम आयुष, सागर एक कही भगवान।
तीन, सप्त, दस, सत्रह, बाईस, तैंतीस सागर क्रमशः जान।।६८।।

प्रथम नरक की है जघन्य, आयुष्य वर्ष दस सहस प्रमान।
ऊपर नर्क की उत्तम आयुष, है जघन्य वह नीचे जान।।६९।।

ये उपपादस्थान जघन्य पांच कोस एवं उत्कृष्ट चार सौ कोस के विस्तार के हैं। इन जन्म स्थान में भयानक अन्धेरा होता है, वहाँ जन्म लेते ही नारकी अत्यन्त भयभीत और अत्यन्त दुःखी हो जाता है।।६५।।

जन्म होते ही नारकी का शरीर उसी समय पूर्ण हो जाता है। जन्म भूमि (उपपाद स्थान) से तत्काल शस्त्रों पर गिर जाता है। छत्तीस प्रकार के शस्त्रों पर वह गिरता है और गिरते ही गेंद की तरह उछलता है, पुनः उसी स्थान पर गिरता है।।६६।।

पहले नरक में नारकी जीव सात योजन छः हजार पांच सौ धनुष उछलता है उससे आगे के नरकों में इससे दूना दूना उछलता है।।६७।।

पहले नरक की उत्कृष्ट आयु एक सागर की है, दूसरे की तीन सागर तीसरे नरक की सात सागर, चौथे की दस सागर, पांचवें की सत्रह सागर, छठे की बाईस सागर एवं सातवें नरक की उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर है।।६८।।

प्रथम नरक की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है। उसी प्रकार ऊपर ऊपर के नरकों की उत्कृष्ट आयु नीचे वाले नरकों के नारकियों की जघन्य आयु है।।६९।।

नरक में निरंतर जन्म

नरकों में ले जन्म निरन्तर, कितनी बार अधिकतम जाय।
सुनो भविक जन बचो पाप से, जावें नहीं नरक दुखदाय।।७०।।
प्रथम नरक में आठ जनम ले, दूजे सप्त जनम अधिकाय।
तीजे में षट् बार जनम हो, चौथे पंच बार हो जाय।।७१।।
पंचम नरक जाय चउ बारा, षष्टम में त्रय बार हि जाय।
सप्तम नरक जनम लेवे तो, वह दो बार अधिक तिह जाय।।७२।।

नरकों में आहार

पहली धम्मा पृथ्वी में है, कड़वी तीखी मिट्टी अहार।
नीचे की सब पृथ्वियों में, सड़ा अशुभ दुर्गन्ध अहार।।७३।।

नरकों में दुर्गन्ध

धम्मा पृथ्वी की दुर्गन्धी, से इक कोस मरे सब जीव।
आगे आधा कोस वृद्धि हो, क्रमशः जीव मरे न बचीव।।७४।।

नरकों में निरन्तर जन्म कितनी बार होते हैं

नरकों में अधिक से अधिक निरन्तर जन्म एक जीव कितनी बार लेता है उसका वर्णन है भव्य जीवों ! ध्यान से सुनो ! इसको सुनकर पापों से बचें ताकि दुःख देने वाले नरकों में जन्म नहीं लेना पड़े।।७०।।

पहले नरक में निरन्तर जन्म अधिक से अधिक आठ बार होता है, दूसरे में सात बार, तीसरे में छः बार, चौथे में पांच बार, पांचवें में चार बार, छठवें नरक में तीन बार एवं सातवें नरक में अधिक से अधिक निरन्तर जन्म ले तो दो बार जनम लेता है।

विशेषार्थ :— नारकी जीव मरते ही सीधा नरक में जन्म नहीं लेता है यह नियम है यहा निरन्तर जन्म से अभिप्राय नरक से निकल कर सीधा मनुष्य या पशु योनि में एक बार जन्म लेकर पुनः नरक में जाने की अपेक्षा से वर्णन है।।७१।।७२।।

पहले नरक की धम्मा पृथ्वी में नारकी जीव कड़वी और तीखी मिट्टी का आहार करते हैं। उससे नीचे की पृथ्वियों में सड़ा हुआ अशुभ एवं दुर्गन्धमयी नारकियों का आहार होता है।।७३।।

नरकों में दुर्गन्ध कितनी होती है ?

प्रथम नरक की धम्मा पृथ्वी में इतनी दुर्गन्ध होती है कि मनुष्य लोक में वह दुर्गन्ध आ जाये तो एक कोस तक के समस्त जीव मर जायें। उससे आगे दूसरी तीसरी आदि पृथ्वी की आधा आधा कोस बढ़कर जीव मर जायें इतनी दुर्गन्ध होती है।।७४।।

नरकों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण

प्रथम नरक तें तीन नरक तक, जाति स्मरण वेदना जान।
अरु उपदेश निमित्त हेतु ये, समकित कारण निहचै मान।।७५।।
नरक चतुर्थम तें सप्तम तक, दो ही समकित कारण जान।
जातिस्मरण वेदना तें हो, क्षयोपशम उपशम द्वै मान।।७६।।
प्रथम नरक का इन्द्रक बिल है, लक्ष पैंतालिस योजन मान।
स्वर्ग प्रथमका ऋजुविमान अरु, सिद्धशिला नरलोक समान।।७७।।
सप्तम नरक मध्य इन्द्रक बिल, एक लक्ष योजन पहिचान।
जम्बूद्वीप और सरवारथसिद्धि विमान ये तीन समान।।७८।।
इन्द्रक बिल सब संख्यहिं योजन, श्रेणीबद्ध असंख्य महान।
और प्रकीर्णक संख्य तथा कुछ, हैं असंख्य योजन परमान।।७९।।

इति नरकबिल वर्णनम्

नरकों में सम्यक्त्व के कारण

वैसे चारों गतियों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति का अन्तरङ्ग कारण दर्शनमोहनीय का क्षय, उपशम एवं क्षयोपशम है, किन्तु बाह्य निमित्त कारणों में पहले नरक से तीसरे नरक तक जाति स्मरण, वेदना और उपदेश ये तीन कारण हैं।।७५।।

चौथे नरक से सातवें नरक तक जातिस्मरण और वेदना ये दो निमित्त कारण सम्यक्त्व उत्पत्ति के हैं। नरक के जीवों को उपशम और क्षयोपशम ये दो सम्यक्त्व होते हैं, क्षायिक उत्पन्न नहीं होता।।७६।।

प्रथम नरक का इन्द्रक बिल पैंतालीस लाख योजन के विस्तार का है। प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान, सिद्धशिला और मनुष्य लोक ये सब समान हैं व एक दूसरे के ऊपर हैं।।७७।।

सातवें नरक का इन्द्रक बिल एक लाख योजन के विस्तार का है, जम्बू द्वीप और सर्वार्थसिद्धि का इन्द्रक विमान ये तीनों समान विस्तार के हैं।।७८।।

और सब इन्द्रक बिल संख्यात योजन के और श्रेणिबद्ध बिल असंख्यात योजन के हैं, और प्रकीर्णक बिलों में कुछ संख्यात योजन के हैं, कुछ असंख्यात योजन के हैं।।७९।।

इस प्रकार बिलों का वर्णन समाप्त हुआ।

नरकों में गुण स्थान आदि

नरकों में गुण थान कहे हैं, पहले तैं चौथा मतिमान।
छः पर्याप्ति प्राणदश जानहु, संज्ञा चार कही भगवान।।८०।।
वेद नपुंसक ज्ञान कहे षट्, दर्शन त्रय, त्रय लेश्या जान।
अरु भव्यत्व अभव्य भाव हैं, पारिणामिक हैं ये मान।।८१।।
आर्त रौद्र ये ध्यान मुख्यतः, अशुभ क्रूरतम हैं परिणाम।
पूरब कर्म उदय फल भोगैं, तनिक समय भी नहिं विश्राम।।८२।।
अधोलोक की नरक भूमि का, यौं वर्णन कीना मतिवान।
विस्तृत आगम माहिं पढ़हु जन, जासों बढ़ै ज्ञान मतिमान।।८३।।

इति नरक वर्णनम्

अथ निगोद वर्णनम्

है निगोद सप्तम भू नीचे, राजू एक कहा विस्तार।
जीव अनंत भरे तिहं सूक्षम, और समस्त भरा संसार।।८४।।

नरकों में गुण स्थान आदि का वर्णन

नरकों में नारकी जीवों के पहले से चौथा ये चार गुण स्थान होते हैं, पर्याप्तियाँ छहों होती हैं, प्राण दस होते हैं, संज्ञायें चार होती हैं।।८०।।

वेद नपुंसक वेद ही होता है, ज्ञान छः होते हैं, दर्शन तीन होते हैं। लेश्या तीन, भव्यत्व, अभव्यत्व ये पारिणामिक भाव होते हैं।।८१।।

ध्यान मुख्य रूप से आर्त और रौद्र ये दो होते हैं, परिणाम अत्यन्त अशुभ और महाक्रूर होते हैं। पूर्व भव के बंधे पाप कर्म का नारकी जीव निरन्तर फल भोगते हैं, एक समय का भी उन्हें आराम या शान्ति नहीं मिलती है।।८२।।

इस प्रकार मैंने अधोलोक की नरक भूमि का वर्णन यहाँ किया है अगर इसका विस्तृत वर्णन जानना चाहो तो हे बुद्धिमानों ! आगम शास्त्रों को पढ़िये, जिससे ज्ञान की वृद्धि होवे।।८३।।

इस प्रकार नरक का वर्णन समाप्त हुआ।

सातवें नरक की पृथ्वी के नीचे एक राजू के विस्तार में निगोद है वहां अनन्त जीव सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय भरे हुये हैं तथा समस्त लोक इन निगोदिया जीवों से भरा हुआ है।।८४।।

एक श्वास में जन्म मरण लें, अठदश बार जीव दुख पाय।
छ्यासट सहस तीन शत छतिस, अन्तर मुहूरत जन्म लहाय॥८५॥

निगोद के भेद

नित्य निगोद इतर द्वय जानो, भेद निगोद कहे भगवान।
जन्म न पाया अन्य नित्य वे, पाया वे हैं इतर सुजान॥८६॥
अधोलोक सप्तम भू नीचे, गोलक पंच कहे तिहँ थान।
स्कन्धक अण्डर आवास हि, पुलवि नित्य निगोद बखान॥८७॥
लोक असंख्य प्रमाण स्कन्ध हैं, स्कन्ध एक अण्डर हि असंख्य।
अण्डर एक आवास असंखे, इक आवास हि पुलवि असंख्य॥८८॥
एक एक पुलवि में असंखे, बादर जीव निगोद शरीर।
एक निगोद शरीर अनन्ते, जीव धरे भोगें बहुपीर॥८९॥

ये निगोदिया जीव एक श्वास में अठारह बार जन्म लेते हैं और मरते हैं एवं दुःख पाते हैं। एक अन्तर मुहूर्त में छ्यासट हजार तीन सौ छत्तिस बार निगोदिया जीव जन्म मरण करते हैं॥८५॥

निगोद के भेद

निगोदिया जीव नित्य निगोद और इतर निगोद के भेद से दो प्रकार के होते हैं। जिनने कभी भी निगोद से निकलकर अन्य पर्याय में जन्म नहीं लिया वे नित्य निगोद के जीव कहलाते हैं और निगोद से निकल कर अन्य पर्याय में जन्म लेकर पुनः निगोद में उत्पन्न होने वाले जीव इतर निगोद के जीव कहलाते हैं॥८६॥

अधोलोक के सप्तम नरक के नीचे निगोद में पांच गोलक होते हैं। वे नित्य निगोद के जीव स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवि और शरीर इस तरह वहां निवास करते हैं॥८७॥

असंख्यात लोक प्रमाण स्कन्ध हैं। एक एक स्कन्ध में असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर हैं। एक एक अण्डर में असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं॥८८॥

एक एक पुलवि में असंख्यात लोक प्रमाण निगोदिया जीवों के शरीर हैं। निगोदिया जीवों के एक एक शरीर में अनन्त बादर निगोदिया जीव हैं। उदाहरण बतलाते हैं॥८९॥

एक निगोद काय में इतने, जीव भरे संख्या नहिं पार।
सिद्ध क्षेत्र के जीवों से भी, हैं अनन्त गुन जीव अपार।।९०।।

जैसे जम्बू द्वीप द्वीप में भरत क्षेत्र, तिहँ कौशल देश।
एक देश में नगर असंखे, नगर एक घर भरे विशेष।।९१।।

सूक्ष्म काय अति हैं निगोद के, जीव समस्त भरा संसार।
मनुष पशु तन में भी रहते, तद्आकार भरे नहिं पार।।९२।।

पृथ्वी जल पावक वायु अरु, देव नारकी काय मंझार।
आहारक मुनि और केवली, नहिं निगोद अठ काय लगार।।९३।।

हों षट्मास समय अठ ऊपर, छः सौ आठ जीव शिव जाय।
नित्य निगोद निकसि इतने ही, अन्य योनि में जन्म लहाय।।९४।।

कोई जीव निगोद निकसि करि, लहे जन्म यदि त्रस पर्याय।
द्वै सहस्र सागर तक रहता, पुनः निगोद माँहि आ जाय।।९५।।

एक निगोद शरीर में द्रव्य की अपेक्षा सिद्ध राशि से अनन्त गुने निगोदिया जीव रहते हैं। जैसे जम्बू द्वीप में भरत क्षेत्र, भरत क्षेत्र में कौशल देश, एक देश में असंख्य नगर, एक नगर में असंख्य घर होते हैं इसी प्रकार निगोद के जीव स्थान समझना चाहिये।।९०।।९१।।

इसके अतिरिक्त सूक्ष्म निगोदिया जीव समस्त लोक में अनन्तानंत भरे हुए हैं। मनुष्यों एवं पशुओं के शरीर में भी उन्हीं के आकार के निगोदिया जीव रहते हैं।।९२।।

केवल पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, देव, नारकी, आहारक मुनि और केवली इन आठ शरीरों में निगोदिया जीव नहीं होते हैं, अन्यत्र सब जगह होते हैं।।९३।।

छः मास और आठ समय में छः सौ आठ जीव संसार से निकल कर नियम से मोक्ष जाते हैं और उतने ही जीव उतने ही समय में नित्य निगोद से निकलकर नियम से अन्य पर्याय में (व्यवहार में) जन्म लेते हैं।।९४।।

कोई जीव निगोद से निकलकर त्रस पर्याय में जन्म लेता है तो अधिक से अधिक दो हजार सागर तक त्रस पर्याय में रहता है पश्चात् पुनः निगोद में आता है।।९५।।

अड़तालीस मनुष तन पावे, तामें षोडश पुरुष बताय।
षोडश नारी और नपुंसक, भी षोडश ही जन्म सुनाय।।९६।।

इति पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक ग्रन्थे अधोलोक वर्णनोनाम् द्वितीयोऽध्याय:

उन त्रस पर्यायों में ४८ पर्याय मनुष्य जन्म लेता है, उनमें १६ पुरुष पर्याय, १६ स्त्री पर्याय और १६ नपुंसक पर्याय में जन्म लेता है, ऐसा भी वर्णन शास्त्रों में आया है, ऐसा सुना है।।९६।।

इस प्रकार पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ में अधोलोक का वर्णन करने वाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

卐

अथतृतीयोऽध्याय:

मध्यलोक वर्णन

मध्य लोक चित्रा पृथ्वी पर अगिनित द्वीप समुद्र अपार।
थाली सम है गोल भूमि थिर, द्वीप जलधि वेष्टित सुखकार।१॥
सबके मध्य एक लखयोजन, जम्बू द्वीप वृत्त आकार।
जम्बू वृक्ष से नाम पड़ा यह, मध्य सुदर्शन मेरु पहार।२॥
जम्बू द्वीप परिधि है जानहु, तीन लक्ष अरु सोल हजार।
सताईस सुयोजन ऊपर, है परिधि इस लोक मंझार।३॥
जम्बू द्वीप मध्य अति सोहैं, षट्कुलाचल पर्वत जान।
पूरब पश्चिम लवणोदधि को, स्पर्शें ताके नाम महान।४॥
हिमवन महा हैमवन नैषध, नील रुक्मि शिखरी गिरिराय।
हेमार्जुन तप कनक विदूरय, रजत हेम पद वर्ण सुहाय।५॥

मध्यलोक का वर्णन

इस मध्य लोक की चित्रा पृथ्वी के ऊपर असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। ये थाली के समान गोल स्थिर पृथ्वी के ऊपर हैं। ये द्वीप और समुद्र एक दूसरे को बेढ़े हुये दूने दूने विस्तार के हैं।१॥

इन सब द्वीप और समुद्रों के मध्य एक लाख योजन के विस्तार का गोल जम्बू द्वीप है। जम्बू वृक्ष के कारण इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पड़ा है, इसी जम्बू द्वीप के ठीक बीच में सुदर्शन नामक मेरु पर्वत है।२॥

जम्बू द्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार सताईस महायोजन है, परिधि अर्थात् चारों तरफ की गोलाई समझना चाहिये।३॥

इसी जम्बू द्वीप के मध्य में छः कुलाचल पर्वत हैं ये षट्कुलाचल पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र को स्पर्श करते हैं, इनके निम्न प्रकार नाम हैं।४॥

पहला हिमवन, दूसरा महाहिमवन, तीसरा निषध, चौथा नील, पांचवां रुक्मि और छठवां शिखरि नाम के बड़े-बड़े सुन्दर पर्वत हैं। इनके वर्ण अर्थात् रङ्ग इस प्रकार हैं। हिमवान स्वर्ण के समान, महा हिमवान चांदी के समान, निषध तपाये स्वर्ण के समान, नील वैडूर्यमणि के समान, रुक्मि चांदी के समान, और शिखरि स्वर्ण के समान वर्ण के हैं।५॥

षट् पर्वत से बने भाग हैं, सप्त क्षेत्र सुन्दर अभिराम।
भरत हैमवत हरि विदेह, रम्यक् हैरण्यवते शुभनाम।६॥
अन्तिम ऐरावत शुभ राजित, भरतैरावत दोउ समान।
इन दोनों में हो परिवर्तन, आयु काय बल घट बढ़ जान।७॥
हिमवन पर्वत है शत योजन, द्वय शत महा हैमवन जान।
निषध चार शत योजन ऊंचे आधे आधे आगे मान।८॥
क्षेत्रों से पर्वत दूने हैं, पर्वत से दूने हैं क्षेत्र।
हैं विदेह तक दूने विस्तृत, आगे आधे गिरि अरु क्षेत्र।९॥
हिमवन आदि गिरीश बताये, ऊपर नीचे एक समान।
रम्य महाअति सुन्दर शोभित, जलयुत षट् दह ऊपर जान।१०॥
इक-इक गिरिपर इकद्रह शोभित, यों षट्द्रहजलपूरित जान।
हैं निर्मल अतिरम्य मनोहर, मणित जड़ित तटयुत महिमान।११॥

इन षट्कुलाचल पर्वत से जम्बू द्वीप के सात भाग हो गये हैं जिन्हें सात क्षेत्र कहते हैं। इनके सुन्दर-सुन्दर नाम हैं पहला भरत, दूसरा हैमवत, तीसरा हरि, चौथा विदेह, पांचवां रम्यक्, छठा हैरण्यवत, सातवां ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। पहला भरत और अन्तिम ऐरावत क्षेत्र दोनों समान विस्तार वाले हैं, इन दोनों क्षेत्रों में आयु, काय, बल घटते और बढ़ते हैं।६।७॥

हिमवान पर्वत १०० योजन ऊंचा है, दूसरा महा हिमवान २०० योजन ऊंचा है, निषध ४०० योजन ऊंचा है, उससे आगे के पर्वत क्रमशः आधे-आधे ऊंचाई में हैं।८॥

इन क्षेत्रों और पर्वतों में क्षेत्रों से पर्वत दूने विस्तार के हैं और पर्वतों से क्षेत्र दूने दूने बढ़ते जाते हैं। विदेह क्षेत्र तक दूने दूने हैं, उससे आगे फिर पर्वत और क्षेत्र आधे आधे होते जाते हैं।९॥

हिमवन आदि पर्वत ऊपर नीचे एक समान विस्तार के हैं बहुत सुन्दर शोभा वाले हैं, इन प्रत्येक पर्वत के ऊपर एक एक सुन्दर सरोवर है और वे निर्मल जल से भरे हुये हैं।१०॥

एक एक पर्वत के ऊपर एक एक सरोवर है, इस प्रकार छः सरोवर जल से भरे हुये हैं। ये सरोवर अत्यन्त सुन्दर, मन को हरण करने वाले हैं, मणिजड़ित तट वाले रमणीय हैं।११॥

पद्म महापद्म तिगिंछ अरु, केशरि द्रह सुन्दर अभिराम।
महा पुण्डरिक पंचम द्रह है, पुण्डरीक षष्टम शुभ नाम।।१२।।
पद्म सरोवर सहस सुयोजन, लम्बा है विस्तृत परिमाण।
चौड़ा अर्द्ध, गहन दश योजन, कमल एक योजन कर जान।।१३।।
सब कमलों की है ऊंचाई, कही सरोवर दशवां भाग।
काय वनस्पति नहीं कमल ये, पृथ्वीमय अतिरम्य सुभाग।।१४।।
कमल कर्णिका की ऊंचाई, चौथा अंश कमल से जान।
रत्नमयी हैं महल अकृत्रिम, रम्य मनोहर तिन पर मान।।१५।।
श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि अरु, लक्ष्मी ये देवी षट् जान।
रहती हैं उन प्रासादों में, एक पल्य आयुष परिमाण।।१६।।
पद्म द्रह के चारों दिशि में, पंचकूट हिमवन पर मान।
यातें ही हिमवन को कहते, पंचशिखरि भी शास्त्र प्रमाण।।१७।।
पद्म द्रह के कमलों पर है, नगर महा क्षुद्रपुर जान।
भवन बने रमणीय ताहि मधि, रम्य जिनालय जिन भगवान।।१८।।

पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरि, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छः उन द्रहों के शुभ नाम हैं।१२।।

पद्म सरोवर एक हजार योजन लम्बा है और पांच सौ योजन चौड़ा है, दश योजन गहरा है तथा उसमें एक योजन का कमल है।१३।।

सब कमलों की ऊंचाई अपने अपने सरोवर के दशवें भाग प्रमाण है। ये कमल वनस्पति काय नहीं हैं पृथ्वीमय हैं और अत्यन्त सुन्दर हैं।१४।।

कमलों की कर्णिकाओं की ऊँचाई कमल से चतुर्थ अंश प्रमाण है, उन कमलों की कर्णिकाओं पर रत्नों के बहुत सुन्दर अकृत्रिम महल बने हुये हैं।१५।।

उन महलों में श्री, ह्री धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छः प्रकार की देवियाँ सामानिक और पारिषद जाति के अपने देवों के साथ रहती हैं। उनकी एक पल्य की आयु है।१६।।

पद्म द्रह की चारों दिशाओं में हिमवान पर्वत पर पांच कूट हैं इसी कारण हिमवान पर्वत को पंचशिखरि भी शास्त्र में कहा है।१७।।

इसी पद्म द्रह के कमलों पर महाक्षुद्रपुर नगर है, उसमें अत्यन्त सुन्दर भवन बने हुये हैं। उन भवनों में जिनालय है जिनमें जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमायें हैं।। १८।।

दूने दूने पर्वत अरु द्रह, पद्म कर्णिका भवन महान।
है विदेह तक उससे आगे, आधे आधे विस्तृत जान।।१९।।

इन षट् द्रह से निकली चौदह, नदियाँ तिनके नाम महान।
गंगा सिन्धु रोहित रोहितास्या, हरित हरिकान्ता शुभ जान।।२०।।

सीता सीतोदा नारी अरु, नरकान्ता शुभ ये हैं नाम।
सुवरण कूल रूप्यकूला हैं, रक्ता रक्तोदा परमान।।२१।।

यों हैं सप्त युगल शुभ नदियाँ, प्रथम युगल पूरब में जाय।
द्वितीय युगल की नदियाँ बहकर, पश्चिम सागर माहिं समाय।।२२।।

प्रथमरु अन्तिम द्रह से निकली, तीन तीन नदियाँ शुभ जान।
शेष द्रहों से द्वै द्वै निकसीं, यों चौदह का उद्गम थान।।२३।।

गंगा सिन्धु सहायक नदियाँ, चौदह चौदह सहस्र गिनाय।
दूनी दूनी हैं, विदेह तक, आगे आधी नदी सहाय।।२४।।

ये पर्वत, द्रह (सरोवर) कमल और कर्णिकायें एवं भवन सब विदेह क्षेत्र तक दूने दूने विस्तार के हैं और उससे आगे सब आधे आधे विस्तार वाले हैं।। १९।।

इन छः द्रहों से चौदह महानदियाँ निकली हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. गंगा, २. सिन्धु, ३. रोहित, ४. रोहितास्या, ५. हरित, ६. हरिकान्ता, ७. सीता, ८. सीतोदा, ९. नारी, १०. नरकान्ता, ११. सुवर्णकूला, १२. रूप्यकूला, १३. रक्ता, १४. रक्तोदा। इस प्रकार चौदह नदियाँ हैं।।२०।२१।।

इस प्रकार ये चौदह नदियाँ सात युगल कही जाती हैं, इनमें से प्रत्येक युगल की पहली पहली नदी पूर्वी समुद्र में जाकर मिलती है और युगल की दूसरी दूसरी नदी पश्चिमी समुद्र में मिलती है।।२२।।

पहले और अन्तिम सरोवर से तीन तीन नदियाँ निकली हैं और दो दो नदियाँ शेष सरोवरों से निकली हैं। इस प्रकार चौदह नदियों का उत्पत्ति स्थान कहा गया है।।२३।।

गंगा और सिन्धु इन दो नदियों की सहायक नदियाँ चौदह चौदह हजार हैं। आगे विदेह तक दूनी दूनी सहायक नदियां हैं— फिर विदेह से आगे आधी आधी सहायक नदियाँ हैं।।२४।।

विजयार्ध पर्वत वर्णन

भरत क्षेत्र के मध्य महागिरि, है विजयारध पर्वत सार।
पंच विंशति योजन ऊंचा, दूना मूल मांहि विस्तार॥२५॥
ऊपर दश योजन ऊंचा है, उत्तर दक्षिण श्रेणि महान।
पूरब पश्चिम लवणोदधि को, स्पर्शे विद्याधर शुभथान॥२६॥
रजत वर्ण रत्नों से राजित, दोनों श्रेणि अनादि महान।
गोपुर प्रासादों से शोभित, तोरण ध्वजा रत्नमय जान॥२७॥
दक्षिण श्रेणि में है भूषित, नगर पचास कहे भगवान।
उत्तर श्रेणि में है राजित, साठ नगर अतिरम्य महान॥२८॥
उपवन कूप सरोवर शोभित, रत्न धान्य से पूर्ण सुजान।
विद्याधर नर कामदेव सम, पत्नी सहित रहें तिहँ थान॥२९॥
विद्याधर से ऊंची श्रेणि, है दश योजन ऊपर माथ।
है अभियोग्य देवगण आश्रय, रहते देव अङ्गना साथ॥३०॥

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

इस भरत क्षेत्र के बीच में विजयार्ध नाम का एक महान पर्वत है, वह पच्चीस योजन ऊंचा है और मूल में इससे दूने विस्तार वाला है॥२५॥

ऊपर दश योजन ऊंचा है इस विजयार्ध पर्वत के उत्तर दक्षिण दिशा में दो श्रेणियां हैं जिनमें विद्याधर रहते हैं। पूर्व और पश्चिम दिशा में यह पर्वत लवण समुद्र को स्पर्श करता है॥२६॥

इस सफेद चांदी के समान वर्ण वाले विजयार्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी दोनों श्रेणियाँ अनादि काल से हैं। ये अनेक गोपुर और प्रासादों (महलों) से सुशोभित हैं, महलों में तोरण और ध्वजायें रत्नमयी बने हुये हैं॥२७॥

दक्षिण श्रेणी में पचास नगर हैं और उत्तर श्रेणी में साठ सुन्दर नगर हैं॥२८॥

ये नगर अनेक बगीचों, कुऐं, तलाब, वापिका आदि से शोभायमान हैं, धन धान्य से परिपूर्ण सुशोभित हैं। उन नगरों में कामदेव के समान रूप वाले विद्याधर अपनी पत्नी के साथ रहते हैं॥२९॥

विद्याधरों से ऊंची श्रेणी दश योजन ऊपर पर्वत के मस्तक पर है, उसमें अभियोग्य जाति के देवों का निवास स्थान है, देव अपनी देवाङ्गनाओं के साथ वहां निवास करते हैं॥३०॥

दश योजन का शिखर सुहावे, अद्‌भुत रत्न भरे तिहं थान।
स्वर्ण और मणि से शोभित हैं, कूटरम्य नव उच्च महान।।३१।।

प्रथमकूट पर है जिन मन्दिर, स्वर्ण और मणि मण्डित जान।
शेष अष्ट कूटों पर व्यंतर, देवों के हैं भव्य प्रसाद।।३२।।

विजयारध की दोय गुफायें, वसु योजन ऊंची परिमाण।
लम्बी योजन हैं पचास अरु, विस्तृत द्वादश योजन जान।।३३।।

पूरव में तामिस्र गुफा है, पश्चिम खण्डप्रपात कहाय।
वज्र कपाटों से है मण्डित, चक्री भेदकर भीतर जाय।।३४।।

है पंच विंशति योजन आगे, गुफा माहिं द्वे सरिता सार।
नाम उन्मगा और निम्नगा, बहती जल की निर्मल धार।।३५।।

पूरब पश्चिम दिशि से आईं, गंगा सिन्धु नदी तिहं आय।
उत्तर द्वार प्रवेश करें अरु, दक्षिण द्वार निकसि बहिजाय।।३६।।

विजयार्ध पर्वत का शिखर दश योजन ऊंचा अद्‌भुत रत्नों से भरा हुआ है। उस पर स्वर्ण और मणियों से मण्डित बहुत ऊंचे नौ कूट हैं।।३१।।

पहले कूट पर स्वर्ण और मणिमय जिन मन्दिर है। और शेष आठ कूटों पर व्यन्तर देवों के बड़े सुन्दर और विशाल महल हैं।।३२।।

इसी विजयार्ध पर्वत के मध्य दो गुफायें हैं ये आठ योजन ऊंची हैं और पचास योजन लम्बी हैं और बारह योजन विस्तार वाली हैं।।३३।।

पूर्व की गुफा का नाम तामिस्र गुफा है और पश्चिम की गुफा का नाम प्रपात गुफा है। ये गुफायें वज्रमयी कपाटों से बन्द हैं। चक्रवर्ती ही इन किवाड़ों को भेदकर गुफा में प्रवेश करता है।।३४।।

विजयार्ध पर्वत में पच्चीस योजन आगे जाने पर दो नदियाँ बहती हैं। उनके नाम उन्मगा और निम्नगा हैं। पूरब और पश्चिम की तरफ से ये दोनों नदियाँ आई हैं। निर्मल जल की धारा बहाती हैं। इस पर्वत की गुफा के उत्तर द्वार से प्रवेश करती हुई गंगा और सिन्धु नदी गुफा में बहती हैं। वे दक्षिण द्वार से निकल आती हैं।।३५।।३६।।

विजयारध से भरत क्षेत्र के, हैं द्वय भाग खण्ड षट् जान।
उत्तर भरत खण्ड त्रय जानहु, दक्षिण में भी हैं त्रय मान॥३७॥
विजयारध के उत्तर में हैं, तीनों म्लेच्छ खण्ड अभिसार।
दक्षिण दिशि मे म्लेच्छखण्ड द्वय, आर्यखण्ड इक यों षट् सार॥३८॥
पंच म्लेच्छ इक आर्य खण्ड है, यों षट् खण्ड सुक्षेत्र मंझार।
आर्य खण्ड ही में सब आया, विश्व जिसे कहता संसार॥३९॥
भरत क्षेत्र के षट् खण्डों का, राज्य करे चक्री नर राय।
विजयारध की गुफा भेदकर, जीते म्लेच्छ खण्ड सब जाय॥४०॥
चक्रवर्ति जब म्लेच्छ खण्ड की, विजय हेतु करते अभियान।
म्लेच्छ खण्ड के भूपति तब, चक्री को करते कन्या दान॥४१॥

वृषभाचल पर्वत

उत्तर भरत सुत्रय खण्डों में, मध्य खण्ड के मध्य महान।
वृषभाचल इक पर्वत शोभित, चूर करे चक्री अभिमान॥४२॥

विजयार्ध पर्वत के कारण भरत क्षेत्र के दो भाग हो जाते हैं। एक उत्तर भाग दूसरा दक्षिण भाग। प्रत्येक भाग के नदियों से तीन तीन खण्ड होते हैं। इस प्रकार भरत क्षेत्र के उत्तर में तीन और दक्षिण में तीन यों छः खण्ड होते हैं। विजयार्ध के उत्तर में तीनों म्लेच्छ खण्ड हैं और दक्षिण में दो म्लेच्छ खण्ड और एक बीच में आर्य खण्ड है॥३७॥३८॥

इस प्रकार भरत क्षेत्र में पांच तो म्लेच्छ खण्ड हैं और एक आर्य खण्ड इस प्रकार कुल छः खण्ड हैं। आज का विश्व जिसे संसार कहता है वह सब इस आर्य खण्ड में ही गर्भित है॥३९॥

भरत क्षेत्र समस्त छः खण्डों का चक्रवर्ती राज्य शासन करता है। विज–यार्ध पर्वत की गुफा को भेदकर चक्रवर्ती समस्त म्लेच्छ खण्ड विजय करता है॥४०॥

चक्रवर्ति जब म्लेच्छ खण्ड पर विजय करते हैं तब म्लेच्छ खण्ड के राजागण चक्रवर्ती को अपनी कन्यायें विवाहते हैं॥४१॥

वृषभाचल पर्वत वर्णन

उत्तर भरत क्षेत्र के तीनों खण्डों में मध्य के खण्ड के बीच एक वृषभाचल नामका पर्वत शोभायमान है, वह पर्वत चक्रवर्ती के मान को खण्डित करने वाला है॥४२॥

यह पर्वत सौ योजन ऊंचा, पच्चीस योजन नींव कहाय।
मूल माहि शत योजन विस्तृत, मध्य पिचत्तर योजन भाय।।८३।।
शिखर पचास सुयोजन ऊंचा, रत्नमयी सुन्दर सुखदाय।
नाम लिखे पूरब चक्री के, विस्मित हो लखि के नर राय।।८४।।
षट् खण्डों को जयकर चक्री, वृषभाचल जब देखे सार।
तब हो मान गलित चक्री का, गिने चक्री हुए अपार।।८५।।
नाम मिटा पर चक्री का तब, रत्न काकिणी लेय उठाय।
लिखाते नाम प्रशस्ति अपनी, निज परिचय अंकित करवाय।।८६।।

काल परिवर्तन

भरत और ऐरावत क्षेत्रहि, परिवर्तन होता है काल।
अन्य क्षेत्र में नहिं परिवर्तन, रहे एकता नित सब हाल।।८७।।

यह पर्वत सौ योजन तो ऊंचा है और पच्चीस योजन उसकी नींव है, मूल में सौ योजन विस्तार का है और मध्य भाग में पिचहत्तर योजन विस्तार का है।।८३।।

इस वृषभाचल पर्वत का शिखर पचास योजन ऊंचा है, रत्नमयी व अत्यन्त सुन्दर है, इस पर पूर्व में हुये सब चक्रवर्तियों के नाम लिखे होते हैं। जब चक्रवर्ती उन नामों को देखता है तब वह आश्चर्य करता है।।८४।।

भरत क्षेत्र के षट् खण्डों को विजय कर जब वापस लौटते हुए वृषभाचल पर्वत पर असंख्य चक्रवर्तियों के नाम लिखे चक्रवर्ति देखता है तब उसका मान गलित हो जाता है। विचार करता है कि मुझ से पूर्व में असंख्य चक्रवर्ती हो गये हैं।।८५।।

अपना नाम लिखने के लिये सारे पर्वत पर खाली जगह नहीं मिलती है तब दूसरे चक्रवर्ती का नाम मिटा कर कांकणी रत्न से अपना नाम प्रशस्ति परिचय के साथ लिखकर अंकित करवाता है।।८६।।

काल परिवर्तन वर्णन

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है। अन्य क्षेत्रों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, वहाँ सब एक–सा समय हमेशा रहता है।।८७।।

इन दोनों में हो परिवर्तन, आयु काय बल घट बढ़ जान।
तिनका अति संक्षेप सुवर्णन, करूं सुनो भवि मनथिर आन।।४८।।
कल्प काल है विंशति कोड़ा, कोड़ी सागर का परिमाण।
उत्सर्पिणी प्रथम है दूजा, अवसर्पिणी भेद द्वै जान।।४९।।
आयु काय बल बढ़ता जिसमें, उत्सर्पिणी कहा वह काल।
घटता जाता आयु काय बल, अवसर्पिणी कहाया काल।।५०।।
अवसर्पिणी काल दस कोड़ा, कोड़ी सागर का है जान।
उत्सर्पिणी तथैव कहा जिन, कल्प काल दो द्वय मिलिमान।।५१।।
षट् षट् भेद रहे उन दो के, काल चक्र चलता यों जान।
अवसर्पिणी अभी जो चलता, उसके भेद कहूं मतिमान।।५२।।
सुषमा सुषमा प्रथम काल है उत्तम भोग भूमि विधि कीन।
सागर कोड़ा कोड़ी चार तन, तीन कोस आयू पल तीन।।५३।।

उक्त दोनों क्षेत्रों में आयु, काय, बल घटते बढ़ते जाते हैं। उनका अत्यन्त संक्षेप में यहाँ वर्णन करता हूं। सो हे भव्यजीवों ! मन को स्थिर करके उसे ध्यान से सुनो।।४८।।

एक कल्पकाल बीस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है। उसके दो भेद हैं— एक उत्सर्पिणी काल दूसरा अवसर्पिणी काल।।४९।।

जिसमें आयु काय और बल बढ़ता है वह काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है और जिसमें आयु काय बल घटते जाते हैं उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं।।५०।।

अवसर्पिणी काल दस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है और उत्सर्पिणी काल भी उसी प्रकार दस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है इस प्रकार दोनों काल मिलकर एक कल्प काल होते हैं।।५१।।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में प्रत्येक काल के छः छः भेद होते हैं, इस प्रकार काल चक्र घूमता रहता है। अभी वर्तमान में जो चल रहा है उसका नाम अवसर्पिणी काल है। उसके छः भेदों का यहाँ मैं वर्णन करता हूं। सो हे बुद्धिमानों ! उसे पढ़ो और सुनो।।५२।।

पहला काल सुषमा सुषमा कहलाता है, उसमें उत्तम भोग भूमि की रचना होती है, वह चार कोड़ा कोड़ी सागर का होता है। मनुष्यों का शरीर तीन कोस ऊंचा होता है और तीन पल्य की आयु होती है।।५३।।

दूजा सुखमा काल कहावे, भोग भूमि मध्यम खुशहाल।
दोय कोस तन आयु दोय पल, कोड़ाकोड़ी सिन्धु त्रय काल।५४॥

तीजा सुखमा दुखमा जानो, दोयहि कोड़ा कोड़ी प्रमान।
भोग भूमि है जघन काय इक, कोस आयु इक पल्य सुथान।५५॥

काल तीसरे के अन्तिम में, चौदह कुल कर हुये सुनाम।
अन्तिम कुलकर नाभिराय हैं, तिनके पुत्र ऋषभ जिन नाम।५६॥

तीनों काल भोग भूमि थी, आगे कर्म भूमि अभिसार।
नव कोड़ा कोड़ी सागर तक, भोग भूमि त्रय काल मंझार।५७॥

कर्म भूमि इक कोड़ा कोड़ी, सागर समय कहा भगवान।
काल चतुर्थम पंचम षष्टम, कर्म भूमि के काल प्रधान।५८॥

काल तीसरे के अठ महिना, पख एक त्रय वर्ष अशेष।
ऋषभ देव तब मोक्ष पधारे, गिरि कैलाश सुश्रम जिनेश।५९॥

दूसरा काल सुषमा है, मध्यम भोग भूमि की इस काल में रचना होती है, मनुष्यों का शरीर दो कोस का ऊंचा होता है, आयु दो पल्य की होती है और यह काल तीन कोड़ा कोड़ी सागर का होता है।५४॥

तीसरे काल का नाम सुषमा है वह दो कोड़ा कोड़ी सागर का होता है इसमें जघन्य भोग भूमि होती है, मनुष्यों का शरीर एक कोस का और आयु एक पल्य के प्रमाण होती है।५५॥

तीसरे काल के अन्त में चौदह कुलकर हुये हैं, उनमें सबसे अन्तिम कुलकर नाभिराजा हुये हैं, उनके पुत्र प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान हुये।५६॥

तीनों प्रारम्भ के कालों में भोग भूमि थी, अब आगे चौथे काल के प्रारम्भ से इस अवसर्पिणी काल में कर्म भूमि का प्रारम्भ होता है। इन तीनों कालों की भोग भूमि का समय नव कोड़ा कोड़ी सागर का है।५७॥

कर्म भूमि चौथे और पांचवें और छठवें इन तीनों कालों में होती है, जिसका समय एक कोड़ा कोड़ी सागर का है।५८॥

तीसरे काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहने पर ऋषभ देव भगवान कैलाश पर्वत पर मोक्ष पधारे थे।५९॥

वर्ष बयालिस सहस न्यून है, कोड़ा कोड़ी सागर एक।
काल चतुर्थम दुखमा सुखमा, है शिवद्वार न इसमें मेक।९०॥
त्रेशठ शला पुरुष होवे तब, तीर्थंकर चक्री बलवान।
नारायण प्रति नारायण हो, नारद अरु बलभद्र महान।९१॥
महापुरुष मुनि ह्वै शिव जावे, पुण्यवान सुरपूजित होय।
भरत और ऐरावत में ही, परिवर्तन युग का नित होय।९२॥
काल चतुर्थम शेष रहे जब, वर्ष तीन साढ़े अठ मास।
महावीर जिन मोक्ष पधारे, गौतम पाया केवल ज्ञान।९३॥
गौतम गणधर मोक्ष पधारे, केवल पाय सुधर्मा स्वामि।
तिनके मोक्ष गये पर पाया, जम्बू स्वामि सुकेवल नामि।९४॥
तिनके पीछे कोउ न पाया, इस कलयुग में केवल ज्ञान।
पंचम दुखमा काल चला यह, इक्कीस सहस वर्ष परिमान।९५॥

उसके पश्चात् चतुर्थ काल का प्रारम्भ होता है। यह चौथा काल बैयालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का होता है, इस काल का नाम दुखमा सुखमा है। यही काल मोक्ष का दरवाजा वाला है इसमें सन्देह नहीं है। अर्थात् इसी काल में मनुष्य मुनि होकर मोक्ष जाते हैं। तथा इस काल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण नारद, बलभद्र आदि त्रेशठ शलाका महान पुरुष जन्म लेते हैं।९०।९१॥

इसी चतुर्थ काल में महान पुण्यवान पुरुषों का जन्म होता है वे मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर मुनिव्रत धारण कर कर्मों को नाश कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, देव उनकी पूजा करते हैं। इस प्रकार भरत और ऐरावत क्षेत्र में निरन्तर काल का परिवर्तन होता रहता है।९२॥

चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रहने पर महावीर भगवान मोक्ष गये, उसी दिन गौतम गणधर को केवल ज्ञान हुआ था।९३॥

गौतम गणधर जब मोक्ष गये तब उस दिन सुधर्माचार्य ने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। सुधर्माचार्य जिस दिन मोक्ष गये, उस दिन जम्बू स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।९४॥

जम्बू स्वामी के पश्चात् कोई भी केवली इस देश में नहीं हुए। यह पांचवा काल इक्कीस हजार वर्ष का है, इसका नाम दुखमा है।९५॥

गौतम आदि केवली का है, बासठ वर्ष समय उपदेश।
धर्म प्रचार किया भवितरे, कर्म काटि शिव हुए महेश।।६६।।
ताहि अनन्तर पंच हुये हैं, नन्दी नन्दीमित्र महान।
अपराजित गोवर्धन जानहु, भद्रबाहु अन्तिम श्रुतज्ञान।।६७।।
श्रुत केवली हुये ये पांचों, धर्म ध्वजा फहराई जान।
इन पाचों का काल मिलाकर, है शतवर्ष एक परिमान।।६८।।
ता पीछे दश पूरवधारी, ग्यारह हुये महामतिमान।
नाम विशाख और प्रोष्ठिल है, क्षत्रिय जय अरु नाग महान।।६९।।
सिद्धारथ धृतिषेण विजय अरु, बुद्धिल गंगदेव पहिचान।
और सुधर्म हुये ता पीछे, ग्यारह अंगधर पंच महान।।७०।।
नाम कहे नक्षत्र और जय, पाल पाण्डु ध्रुव सेनरु कंस।
इन सबका है समय वर्ष शत, द्वय परिमाण कहा जिनअंश।।७१।।
ताहि अनन्तर हुये चार, आचार अंग के ज्ञाता जान।
नाम सुभद्ररु यशोभद्र है, यशोबाहु लोहार्य महान।।७२।।

गौतम आदि केवलियों का धर्म उपदेश का समय बासठ वर्ष है। पश्चात् ये केवली समस्त कर्मों को नाशकर मोक्ष को प्राप्त हुये।।६६।।

उनके पश्चात् पांच श्रुत केवली हुये हैं, उनके नाम निम्न प्रकार हैं—१. नन्दी, २. नन्दीमित्र, ३. अपराजित, ४. गोवर्द्धन, ५. भद्रबाहु।।६७।।

इस प्रकार ये पांच श्रुत केवली हुये, जिनने धर्म प्रचार किया। इन पांचों का काल मिलाकर सौ वर्ष जानना चाहिये।।६८।।

इनके पश्चात ग्यारह दस पूर्व के ज्ञाता हुये उनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. विशाख, २. प्रोष्ठिल, ३. क्षत्रिय, ४. जय, ५. नाग, ६. सिद्धार्थ, ७. धृतिषेण, ८. विजय, ९. बुद्धिल, १०. गंगदेव, ११. सुधर्म, इन दस पूर्व धारियों के पीछे ग्यारह अंग के धारी पांच आर्य हुये उनके नाम ये हैं— १. नक्षत्र, २. जयपाल, ३. पाण्डु, ४. ध्रुवसेन, ५. कंस। इन पांचों का समय दो सौ वर्ष है।।६९।।७०।।७१।।

उनके पश्चात् चार एक अंग के ज्ञाता हुये उनके नाम इस प्रकार हैं—१. सुभद्र, २. यशोभद्र, ३. यशोबाहु, ४. लोहार्य। ये चार आचारांग के ज्ञाता हुये।।७२।।

इनका समय वर्ष इक शत है अष्टादश वर्षों परिमाण।
गौतम गणधर से इन सबका, छः सौ तिरासी बरस बखान।७३॥

ताके पीछे काल दोष से, अंगधारि नहीं हुआ महान।
पंचम काल माहि अल्प श्रुत, ज्ञान अल्प क्रमशः हो जान।७४॥

वीर जिनेश्वर शिव जाने पर, साठ वर्ष पीछे नृपराज।
पालक नृप तापीछे शत इक, पचपन विजयवंशी का राज।७५॥

तापुनि चालिस वर्ष राज था, मुरुडवंशि राजा का राज।
पुष्यमित्र का राज रहा फिर, तीस वर्ष तक का सिरताज।७६॥

राज रहा पुनि साठ वर्ष तक, अग्निमित्र वसुमित्र कहाय।
सौ वर्ष गन्धर्व राज्य अरु, नर वाहन चालीस बताय।७७॥

ताहि अनन्तर भृत्य आंध्र पे, द्वयशत बयालिस राज कराय।
तापुनि द्वयशत इकतीस वर्षों, गुप्त वंशि नृप राज कहाय।७८॥

इन चारों का समय एक सौ अठारह वर्ष प्रमाण है। गौतम गणधर से लेकर इन आचाराङ्ग ज्ञानधारी का कुल समय छः सौ तिरासी वर्ष आगम में कहे हैं।७३॥

उनके पीछे काल दोष से कोई भी अंगधारी ज्ञानी नहीं हुये। इस दुखमा पंचम काल में आगे आगे श्रुत ज्ञान अनुक्रम से अल्प होता गया।७४॥

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के साठ वर्ष पीछे पालक नाम का राजा हुआ, उसके पश्चात् एक सौ पचपन वर्ष तक विजयवंशियों का राज्य रहा।७५॥

विजयवंशियों के पश्चात् चालीस वर्ष तक मुरुडवंशियों ने राज्य किया, पश्चात् तीस वर्ष तक पुष्यमित्र का राज्य रहा।७६॥

उसके पश्चात् साठ वर्ष तक अग्निमित्र और वसुमित्र का राज्य रहा, फिर सौ वर्ष गन्धर्व का राज्य रहा, उसके पश्चात चालीस वर्ष तक नरवाहन राजा का राज्य रहा।७७॥

उसके पश्चात् दो सौ बयालिस वर्ष तक भृत्य और आंध्र राजा का राज्य रहा, उनके पश्चात् दो सौ इकतीस वर्ष तक गुप्तवंशियों का शासन भारत देश में रहा।७८॥

पीछे कल्की हुआ इन्द्रसुत, नाम चतुरमुख राज सम्हाल।
सत्तर वर्ष आयु का नृप वह, राज बयालिस वर्षहि काल॥७९॥
मुनि अहार के अग्रपिण्ड को, कर लेने से असुर कुपाय।
मरा कल्कि नृप असुर कोपतैं, अजितंजय को राज दिलाय॥८०॥
एक सहस वर्षों में होवे, कल्की एक अधर्मी जान।
पंच पंच शत ही वर्षों में, उप कल्की होवे इह थान॥८१॥
हीन संहनन धर्म न्यून हो, भ्रष्ट अचार भरा नर लोक।
कर्मनाशि नहीं लहे मोक्ष नर, पंचमकाल सहे दुःख भोग॥८२॥
इसके तीन बरस अठ महिना, पन्द्रह दिवस रहें अवशेष।
अन्तिम जैन मुनीश्वर होंगे, नाम वरांगद दोष न लेश॥८३॥
और सर्व श्री होय आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक भविजान।
तथा श्राविका पंगुश्री हो, चारों धर्मिक वृत्ति महान॥८४॥

इसके पश्चात इन्द्र का पुत्र प्रथम कल्की राजा हुआ उसका नाम चतुरमुख था सत्तर वर्ष की उसकी आयु थी और बयालिस वर्ष तक उसने राज्य किया था॥७९॥

उस चतुरमुख कल्की द्वारा मुनिराज के आहार के प्रथम ग्रास को कर के रूप में लेने से असुर के द्वारा क्रोधित होने पर राजा मारा गया तब उसके पुत्र अजितंजय को राज्य दिया गया॥८०॥

इस पंचम काल में प्रत्येक एक हजार वर्ष में एक एक कल्की अधर्मी राजा होगा, और प्रत्येक पांच सौ वर्षों में एक एक उपकल्की होगा॥८१॥

यह पंचम काल जिसका दुषमा नाम है, इसमें हीन संहनन वाले मनुष्य होंगे, मनुष्य भ्रष्ट आचरण करने वाले होंगे। इसकाल में मनुष्य कर्म को नाश कर मोक्ष नहीं पा सकेंगे। अधिकतर मनुष्य दुख के भोगने वाले होंगे॥८२॥

इस पंचम काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहेंगे तब एक अन्तिम दिगम्बर मुनिराज होंगे। उनका नाम वरांगद होगा। वे निर्दोष चरित्र वाले होंगे॥८३॥

उस समय सर्वश्री नाम की एक आर्यिका होगी तथा अग्निदत्त नाम का श्रावक और पंगुश्री नाम की श्राविका होगी। ये चारों धार्मिक आचरण वाले होंगे॥८४॥

अन्तिम कल्की राज करे तब, लेगा कर वह साधु अहार।
व्यन्तर नष्ट करेगा नृप को, मुनि समाधि ले स्वर्ग सिधार।।८५।।
अवधिज्ञान बल जानेंगे मुनि, धर्म कर्म का अन्तहि आय।
तीन दिवस की आयु जान करि, धरि सन्यास मरण में जाय।।८६।।
कार्तिक मास अमावस के दिन, अरु नक्षत्र स्वाति तब आय।
चारों स्वर्ग जाएं सद्दृष्टि, कल्की नारक गति में जाय।।८७।।
वर्ष तीन अठ अर्धमास तब, बीते आवे षष्टम काल।
दुखमा दुखमा अति भयकारी, इक्कीस सहस वर्ष का काल।।८८।।
धर्म कर्म सब नष्ट होयगा, दया क्षमा का रहे न लेश।
पापी आमिष भोजी नर हों, व्रत का नाम रहे नहीं शेष।।८९।।
एक हाथ तन नर का होगा, बीस वरष आयुष दुखकार।
नर्क और पशु गति से आवें, जावें उसमें ही नर नार।।९०।।

उस समय अन्तिम कल्की जिसका नाम वीरांगज होगा राज करेगा वह दुष्ट स्वभावी मुनिराज के प्रथम आहार को कर के रूप में वसूल करेगा, मुनिराज अन्तराय पालकर समाधि धारण कर स्वर्ग जायेंगे। कोई व्यन्तर कुपित होकर राजा को नष्ट कर देगा।।८५।।

तब अवधिज्ञान से मुनिराज जानेंगे कि अब धर्म कर्म नाश होने वाले हैं, पंचम काल की समाप्ति होकर छठवां काल आने वाला है, तीन दिन की आयु शेष जानकर ये चारों ही समाधिमरण धारण कर स्वर्ग में जायेंगे।।८६।।

वह दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्या का दिन होगा और स्वाति नक्षत्र होगा। ये चारों सम्यकदृष्टि मरकर स्वर्ग जायेंगे और कल्की मरकर नरक जायेगा।।८७।।

तब पंचम काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहेंगे, पश्चात् छठवां दुखमा दुखमा काल प्रारम्भ होगा। वह काल महान भयानक होगा और वह भी पांचवें काल के समान इक्कीस हजार वर्ष का होगा।।८८।।

इस षष्टम काल में धर्म कर्म सब नष्ट हो जायेंगे। दया क्षमा व्रत आदि गुणों का नाम भी नहीं रहेगा, सभी मनुष्य मांसाहारी होंगे।।८९।।

काल के अन्त में मनुष्य एक हाथ के लम्बे शरीर वाले होंगे, और उनकी आयु करीब बीस वर्ष की होगी। उस काल के सब मनुष्य नरक और तिर्यचयोनि से ही मनुष्य पर्याय में जन्म धारण करेंगे और मरकर भी नरक तिर्यंच गति में ही जायेंगे।।९०।।

नंगे श्याम वर्ण तन होवे, बहरे अन्धे और कुरूप।
विविध वेदना युक्त कषायी, पापी क्रोधी नर पशु रूप।।९१।।
प्रलय होयगा काल अन्त में, रहें शेषदिन जब गुनचास।
वर्षा होय भयंकर जिनसे, कोई बचने की नहीं आस।।९२।।
शीत क्षाररस विष कठोरअरु, अग्नि धूलि अति धूम्रमहान।
इनकी वर्षा प्रलय होयगा, इक योजन भू जलें वितान।।९३।।
सात तरह की सप्त सप्त दिन, वर्षा होगी अति दुखकार।
महाप्रलय सब जीव मरेंगे, पृथ्वी सब जल जाय न पार।।९४।।
श्रावण वदि प्रतिपदा दिवस से, उत्सर्पिणी अरंभित काल।
आयु काय बल बढ़ें इहां से, उलटा चले प्रथम यह काल।।९५।।
उनपचास दिन हो शुभ वर्षा, सलिल दुग्ध घृत अमृत जान।
भाद्र शुक्ल पंचमी दिवस से शान्ति होयगी दुख की हान।।९६।।

मनुष्य बड़े पापी, नंगे, शरीर का वर्ण काला, गूंगे, बहरे और अन्धे तथा कुरूप व पशु के समान स्वभाव वाले होंगे।।९१।।

जब इस छठवें काल के गुनचास अर्थात् एक कम पचास दिन बाकी रहेंगे तब अत्यन्त भयंकर वर्षायें होंगी, जिससे सब नष्ट हो जायेगा, किसी के बचने की आशा नहीं रहेगी।।९२।।

शीत, क्षार, विष, वज्र, अग्नि, धूल और धूम्र इस प्रकार की सात तरह की सात सात दिन तक भयंकर वर्षायें होंगी; इससे सारी पृथ्वी पर महान् प्रलय हो जायेगा। एक एक योजन तक पृथ्वी जल जायेगी, जल और अग्नि से पृथ्वी जल मग्न हो जायेगी और भस्म हो जायेगी। इस महाप्रलय से सब जीव मर जायेंगे।।९३।।९४।।

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होगा। तब आयु, काय, बल, बुद्धि आदि उत्तरोत्तर बढ़ते जायेंगे। यह काल अवसर्पिणी काल से उलटा चलेगा।।९५।।

इस उत्सर्पिणीकाल के प्रारम्भ से गुनपचास दिन तक सात तरह की जैसे जल, दूध, घृत, अमृत, सुगन्धित पवन आदि की सात सप्ताह तक शुभ वर्षायें होंगी। उससे सर्वत्र शान्ति स्थापित होगी। वह दिन भाद्र शुक्ला पंचमी का दिन होगा।।९६।।

तातैं पर्युषण ता दिन से, पर्व अनादि चले सुखकार।
गिरि कन्दरा जीव बचें जे, निकसि बढ़ायेंगे संसार।९७॥
पहला दुखमा दुखमा बीते, दूजा दुखमा काल कहाय।
षष्ठम पंचम वत् ये दोनों, काल समान दोउ बतलाय।९८॥
इक्कीस इक्कीस सहस वर्ष के, इन दोनों का काल समान।
दूजे दुखमा के अन्तिम में, होय कुलकर राय महान।९९॥
काल तीसरा चले होय तब, तीर्थंकर नारायण जान।
त्रेसठशलाका पुरुष तब होंगे, मोक्ष जांय नर करि कल्याण।१००॥
सर्वप्रथम तीर्थंकर होंगे, श्रेणिकजीव नरकतैं आय।
सहस चुरासी वर्ष आयु को, प्रथम नरक में रहे बिताय।१०१॥
महापद्म शुभ नामसु आयुष, शत इकषोडश वर्ष प्रमान।
सप्तहस्त का दिव्य होहि तन, आयु काय बल बढ़े सुजान।१०२॥

इसी कारण से इस दिन से अनादि काल से पर्युषण पर्व चला आ रहा है, विजयार्ध पर्वत एवं अन्य पर्वतों की गुफाओं में बचे हुये जीव तब बाहर निकलेंगे उनसे संसार बढ़ेगा।९७॥

उत्सर्पिणी काल का पहला दुखमा–दुखमा काल बीतने पर दूसरा दुखमा काल आता है, ये दोनों काल अवसर्पिणी काल के छठवें और पांचवें काल के समान होते हैं।९८॥

इन दोनों काल का समय इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का है, दूसरे दुखमा काल का अन्तिम समय आता है तब १४ कुलंकर होंगे।९९॥

जब तीसरा काल प्रारम्भ होगा तब तीर्थंकर, नारायण प्रतिनारायण चक्रवर्ती आदि त्रेसठशलाका पुरुष उत्पन्न होंगे। उस काल में मनुष्य मुनि होकर कर्मों को क्षयकर मोक्ष भी जायेंगे।१००॥

सबसे प्रथम श्रेणिक राजा का जीव जो कि इस समय चौरासी हजार वर्ष की आयु लेकर पहले नरक में दुःख भोग रहे हैं वे पहले तीर्थंकर होवेंगे।।१०१॥

महापद्म उनका नाम होगा और एक सौ सोलह वर्ष की उनकी आयु होगी। सात हाथ का शरीर ऊंचा होगा। इसी प्रकार आयु, काय, बल, यथाक्रम से बढ़ते जायेंगे।।१०२॥

अन्तिम तीर्थंकर की आयुष, कोटि पूर्व की होगी मान।
धनुष पांच सौ की हो काया, ऋषभदेव तीर्थेश समान॥१०३॥
यह दुखमा सुखमा बीते जब, आवेगा तब चौथा काल।
हो जघन्य शुभ भोग भूमि पुनि, आवेगा पंचम शुभ काल॥१०४॥
मध्यम भोग भूमि की रचना, तापुनि आवे षष्टम काल।
उत्तम भोग भूमि की रचना, सुखमा सुखमा काल विशाल॥१०५॥
अवसर्पिणी काल से उल्टा, होवे उत्सर्पिणी महान।
इसी तरह भरतैरावत में, हो परिवर्तन घट बढ़ि जान॥१०६॥
अन्य क्षेत्र में नहिं परिवर्तन, सबसे बड़ा विदेह महान।
मध्य सुदर्शन मेरु विराजे, चउ गजदन्त नित्य शिवथान॥१०७॥
कर्मभूमि थल है विदेह जहँ, रहे निरन्तर चौथा काल।
एक कोटि पूरब की आयुष, धनुष पांचसत काय विशाल॥१०८॥

इस काल में जो चौबीसवें अन्तिम तीर्थंकर होंगे उनकी एक करोड़ पूर्व की आयु होगी, पांच सौ धनुष का ऋषभदेव तीर्थंकर के समान उनका शरीर होगा॥१०३॥

यह दुखमा सुखमा नामक तीसरा काल व्यतीत होगा तब फिर सुखमा दुखमा नामक चौथा काल प्रारम्भ होगा। उस काल में जघन्य भोग भूमि की रचना होगी। उसके पश्चात् पांचवां काल सुखमा प्रारम्भ होगा। उसमें मध्यम भोग भूमि की रचना होवेगी। उसके पश्चात् सुखमा सुखमा नाम का सबसे बड़ा छठवां काल आवेगा उसमें उत्तम भोग भूमि की रचना होवेगी॥१०४॥१०५॥

अवसर्पिणी काल से उत्सर्पिणी एकदम उल्टा चलता है। इसी प्रकार भरत और ऐरावत क्षेत्र में निरन्तर कम और अधिक हानि, वृद्धि, घटने, बढ़ने का परिवर्तन होता रहता है॥१०६॥

दूसरे क्षेत्रों में परिवर्तन नहीं होता है, उन क्षेत्रों में सबसे बड़ा विदेह क्षेत्र है, जिसके बीच में सुमेरु पर्वत है, उस पर्वत के पास चार गजदंत पर्वत हैं। इस विदेह क्षेत्र से हमेशा मनुष्य मोक्ष जाते रहते हैं॥१०७॥

इस विदेह क्षेत्र में जिस जगह कर्म भूमि है उस जगह निरन्तर चौथे काल जैसी रचना होती है, वहाँ के मनुष्यों की आयु एक कोटि पूर्व की होती है और शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा होता है॥१०८॥

तीर्थंकर भी होय निरन्तर, त्रेशठशला पुरुष नित मान।
आगे वर्णन विस्तृत इसका, करूं सुनो भवि मनथिर आन॥१०९॥
विजयारध की श्रेणीद्वय अरु, पांचों म्लेच्छ खण्ड में जान।
हानि वृद्धि होय तिहाँ पर, समय चतुर्थम काल समान॥११०॥

हुण्डावसर्पिणी काल

असंख्यात बीते अवसर्पिणि, तब हुण्डावसर्पिणी काल।
आवे और वही अब चलता, इसमें होते कुछ बेहाल॥१११॥
तीर्थंकर के पुत्री होवे, अरु उपसर्ग कदाचित होय।
जन्म और निर्वाण भिन्न हो, मानभङ्ग चक्री का होय॥११२॥
नारद और रुद्र भी होवें, अनावृष्टि अतिवृष्टि सभाय।
वज्र और भूकम्पगिरे तब, अनहोनी घटना कुछ थाय॥११३॥
चक्रवर्ती से द्विज की उत्पत्ति, शलपुरुष कुछ कम भी होय।
कोई तीर्थंकर के अन्तर, काल धरम व्युच्छित्ति होय॥११४॥

यहाँ नित्य तीर्थंकर और त्रेशठशलाका पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। आगे मैं इस विदेह क्षेत्र का विस्तार से वर्णन करूंगा, उसे मन से हे भव्यजीवों सुनो॥१०९॥

विजयार्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में और पांचों म्लेच्छ खण्ड में हानि वृद्धि तो होती है, किन्तु समय चौथे काल के समान होता है॥११०॥

हुण्डावसर्पिणी काल का वर्णन

असंख्यात अवसर्पिणी काल के बीतने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, इस काल में कुछ विशेष घटनायें होती हैं॥१११॥

उदाहरण के लिये तीर्थंकर के पुत्री भी होती है जैसे चौथे काल में ऋषभदेव भगवान के पुत्रियाँ हुई थीं। तीर्थंकर के उपसर्ग भी होता है, जैसे पार्श्वनाथ और महावीर के उपसर्ग हुये थे। तीर्थंकरों के जन्म और मोक्ष—अयोध्या और सम्मेद शिखर के सिवाय अन्य क्षेत्रों में भी होते हैं। चक्रवर्ती का इस काल में मानभङ्ग भी होता है, जैसा भरत का हुआ था॥११२॥

इस काल में नारद और रुद्र उत्पन्न होते हैं, अनावृष्टि, अतिवृष्टि वज्र गिरना, भूकम्प होना आदि असम्भव घटनायें होती हैं॥११३॥

चक्रवर्ती से ब्राह्मणों की उत्पत्ति होना त्रेशठशलाका पुरुषों में कम भी होना, कुछ तीर्थंकरों के बीच के समय में धर्म की व्युच्छित्ति होना आदि होते हैं॥११४॥

मनुष्य शरीर वर्णन

पहले काल कोस त्रय ऊंची, नर काया का है परिमाण।
दूजे काल कोस द्वय जानहु, तीजे कोस एक है मान॥११५॥
चौथे प्रारम्भ धनुष पांच सौ, सप्त हस्त पंचम है जान।
षष्टम काल हस्त इक जानहु, अवसर्पिणी काल में मान॥११६॥

वर्ण

प्रथम काल में वर्ण मनुज तन, उगते सूरज सम मतिमान।
दूजे काल चन्द्रसम जानहु, उज्ज्वल धवल तेज युत जान॥११७॥
तीजे हरित्त श्याम वरण है, चौथे पंच वर्ण तन काय।
पंचम में भी पंच वर्ण हैं, नहिं कांति नहिं तेज बताय॥११८॥
षष्टम काल धूम्रवत जानहु, श्याम एक तन वर्ण कुरूप।
यों है वर्ण काल षट् में नर, काया आगम भाषित रूप॥११९॥

मनुष्य शरीर वर्णन

पहले काल के मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई तीन कोस की थी, दूसरे काल में दो कोस की, और तीसरे काल में एक कोस की ऊंचाई थी॥११५॥

चतुर्थ काल के प्रारम्भ में, पांच सौ धनुष मनुष्यों का शरीर ऊंचा था, पांचवें काल में सात हाथ तथा छठवें काल के अन्तिम समय में मनुष्य शरीर एक हाथ का रहेगा। यह अवसर्पिणी काल का जानना चाहिये। उत्सर्पिणी काल में इससे उलटा समझना चाहिये॥११६॥

शरीर का वर्ण

पहले काल में मनुष्यों के शरीर का वर्ण उगते हुये सूर्य के समान था, दूसरे काल में चन्द्रमा के समान, उज्ज्वल सफेद कांतियुक्त वर्ण वाले मनुष्य थे॥११७॥

तीसरे काल में हरित और श्याम वर्ण मिले हुये होते हैं, चतुर्थ काल में पांच वर्ण वाले मनुष्य होते हैं, पांचवें काल के मनुष्य भी पांच वर्ण के होते हैं, और वे कांति व तेज रहित होते हैं॥११८॥

छठवें काल के मनुष्य धुयें के समान काले वर्ण वाले कुरूप मनुष्य होवेंगे, इस प्रकार शास्त्रों में मनुष्य शरीर का वर्णन कहा है॥११९॥

आहार

प्रथम काल त्रयदिन अंतर नर, बदरीफल समलेय अहार।
दूजेकाल अक्ष फल सम है, द्वैदिन अंतर में इकबार॥१२०॥
तीजे काल आंवला सम है, एक दिवस अन्तर में जान।
काल चतुर्थम एक दिवस में, एक बार नर भोजनमान॥१२१॥
पंचम काल माँहि नर भोजन, एक दिवस में ले बहु बार।
अन्तिम षष्टम काल माँहि नर, प्रचुर अहार अनेकहि बार॥१२२॥

कुलंकर वर्णन

काल तीसरे के अन्तिम में, पल्य एक का अष्टम भाग।
शेष रहे तब चौदह कुल कर, जन्मे तिनके नाम विभाग॥१२३॥
प्रथम प्रतिश्रुति और सन्मति, क्षेमंकर क्षेमंधर जान।
सीमंकर, सीमंधर जानहु, और विमलवाहन मतिमान॥१२४॥
चक्षुष्मान यशस्वी अभि, चन्द्र और कहे चन्द्राभ महान।
मरुदेव अरु हैं प्रसेनजित, नाभिराय अन्तिम मतिमान॥१२५॥

मनुष्य आहार वर्णन

पहले काल में मनुष्य का आहार बदरी फल के समान तीन दिन में एक बार होता है। दूसरे काल में अक्ष फल के समान दो दिन अंतर में एक बार होता है। तीसरे काल में आंवले के समान एक दिन अन्तर से आहार होता है। चतुर्थ काल में मनुष्य एक दिन में एक बार भोजन करते हैं। पंचम काल में मनुष्य एक बार, दो बार और दो से अधिक बार एक दिन में भोजन करते हैं। अन्तिम छठवें काल में एक दिन में अनेक बार प्रचुर मात्रा में मनुष्यों का आहार होता है॥१२०॥१२१॥१२२॥

चतुर्दश कुलंकर

तीसरे काल के अन्त में एक पल्य का आठवां भाग शेष रहने पर चौदह कुलंकर उत्पन्न हुये थे। उनके नाम निम्न प्रकार हैं॥१२३॥

१. प्रतिश्रुति, २. सन्मति, ३. क्षेमंकर, ४. क्षेमंधर, ५. सीमंकर, ६. सीमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान, ९. यशस्वी, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. मरुदेव, १३. प्रसेनजित, १४. नाभिराय॥१२४॥१२५॥

नाभिराय के पुत्र ऋषभ जिन, प्रथम हुये तीर्थंकर राय।
यों हैं कुलंकर मान्य चतुर्दश, हा मा धिक ही दण्ड बताय॥१२६॥
और कुलंकर वर्ण कहे जिन, श्याम धवल अरु स्वर्ण समान।
भोग भूमि का अन्तिम क्षण है, कर्म भूमि प्रारम्भित आन॥१२७॥

मनुष्यों की आयु

प्रथम काल में तीन पल्य की, दूजे में दो पल्य बताय।
तीजे पल्य एक की कहिये, चौथे कोटि पूर्व कहाय॥१२८॥
पंचम काल माँहि नर आयुष, वर्ष एक शत विंशति जान।
अन्तिम षष्टम काल माँहि है, पन्द्रह वर्ष मनुज की मान॥१२९॥

पूर्व वर्णन

लख चौरासी वर्षों का है इक पूर्वांङ्ग कहा परिमाण।
लख चौरासी पूर्वाङ्गों का एक पूर्व जानहु मतिमान॥१३०॥

इन चौदह कुलंकरों में अन्तिम कुलंकर नाभिराजा के पुत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुये, इस प्रकार ये चौदह कुलंकर सबके मान्य थे, इनके समय में हा, मा, धिक केवल इन शब्दों से दण्ड दिया जाता था॥१२६॥

कुलंकरों के शरीर के वर्ण श्याम, सफेद और स्वर्ण के समान थे। कुलंकरों के समय में भोगभूमि का अन्त हो रहा था और कर्मभूमि का प्रारम्भ होने वाला था॥१२७॥

मनुष्यों की आयु का वर्णन

मनुष्यों की आयु पहले काल में तीन पल्य की थी, दूसरे काल में दो पल्य की थी, तीसरे काल में एक पल्य की और चौथे काल के प्रारम्भ में एक कोटि पूर्व मनुष्य की आयु थी॥१२८॥

पांचवें काल में एक सौ बीस वर्ष की मनुष्य की आयु है और अन्तिम छठवें काल में केवल अन्तिम समय पन्द्रह वर्ष की मनुष्य की आयु होगी॥१२९॥

पूर्व वर्णन

अब पूर्व का वर्णन करते हैं। चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांङ्ग होता है और चौरासी लाख पूर्वांङ्गों का एक पूर्व होता है॥१३०॥

तीर्थंकर वर्णन

तीर्थंकर इस काल हुये जो, चउविंशति स्तुर्षमकाल।
त्रेसठशला पुरुष में नायक, तिनके नाम कहूं मैं हाल॥१३१॥
प्रथम अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व महान।
चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदन्त हैं, शीतल अरु श्रेयांस बखान॥१३२॥
वासुपूज्य अरु विमल अनन्ता, धर्म शांति कुंथु जिनराय।
अरह मल्लि मुनिसुव्रत नमिजिन, नेमिपार्श्व महावीर जिनाय॥१३३॥

कुमार तीर्थंकर

वासुपूज्य अरुमल्लि जिनेश्वर, नेमि पार्श्व महावीर महान्।
ये जिन पंच बाल ब्रह्मचारी, शेष विवाह किये भविजान॥१३४॥

तीर्थंकरों की काया

प्रथम ऋषभ जिनकी है काया, धनुष पांच सौ की विख्यात।
आगे क्रमशः पचास धनुष कम, महावीर तन सप्त सुहाय॥१३५॥

अब आगे तीर्थंकरों का वर्णन किया जाता है

इस अवसर्पिणी काल में जो २४ तीर्थंकर हुये जो कि त्रेसठशलाका पुरुषों में प्रधान कहे जाते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं॥१३१॥

१. ऋषभदेव, २. अजितनाथ, ३. सम्भवनाथ, ४. अभिनन्दन, ५. सुमतिनाथ, ६. पद्मप्रभु, ७. सुपार्श्वनाथ, ८. चन्द्रप्रभु, ९. पुष्पदन्त, १०. शीतलनाथ, ११. श्रेयांसनाथ, १२. वासुपूज्य, १३. विमलनाथ, १४. अनन्तनाथ, १५. धर्मनाथ, १६. शान्तिनाथ, १७. कुंथुनाथ, १८. अरहनाथ, १९. मल्लिनाथ, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमिनाथ, २२. नेमिनाथ, २३. पार्श्वनाथ, २४. महावीर॥१३२॥१३३॥

कुमार तीर्थंकर

इन चौबीस तीर्थंकरों में वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी हुए हैं। अतः ये कुमार तीर्थंकर कहलाते हैं। बाकी के तीर्थंकरों ने विवाह किया था॥१३४॥

तीर्थंकरों के शरीर की ऊंचाई

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा था। आगे के तीर्थंकरों का क्रमशः पचास पचास धनुष कम होता गया, अन्त में भगवान महावीर स्वामी का सात हाथ लम्बा शरीर था॥१३५॥

तीर्थंकरों की आयु

प्रथम जिनेश ऋषभ की आयुष, चौरासी लख पूरब जान।
घटती घटती महावीर की, केवल वर्ष बहत्तर मान॥१३६॥

तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण

तीर्थंकर जिनवर के तन का, वर्णन करूं वर्ण भविजान।
पद्मप्रभु अरु वासुपूज्य के, रक्तवर्ण तनका पहिचान॥१३७॥
चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदन्त तन, श्वेतवर्ण के कहे सुजान।
अरु सुपार्श्वजिन पार्श्वनाथतन, नील वर्ण सुन्दर महिमान॥१३८॥
नेमिनाथ मुनिसुव्रत द्वै जिन, कृष्णवर्ण काया अभिराम।
शेष कहे षोडश तीर्थंकर, स्वर्ण समान काय शुभनाम॥१३९॥

तीर्थंकरों का वंश

महावीर का नाथ वंश है, उग्र वंश के पारस नाथ।
मुनिसुव्रत अरु नेमि जिनेश्वर, जन्म लिया हरिवंश सुनाथ॥१४०॥
धर्म कुंथु अरु अरह जिनेश्वर, वे कुरुवंश जनम शुभ जान।
सत्रह शेष जिनेश्वर जानहु, इक्ष्वाकुवंशी पर्यमान॥१४१॥

तीर्थंकरों की आयु

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की आयु चौरासी लाख वर्ष पूर्व की थी, आगे के तीर्थंकरों की आयु कम होते–होते महावीर भगवान की केवल बहत्तर वर्ष की आयु थी॥१३६॥

तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण

अब तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण वर्णन करता हूं, हे भव्यजीवों ! उसे सुनिये। पद्मप्रभु और वासुपूज्य ये दो तीर्थंकर लाल वर्ण के थे, चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त का शरीर सफेद वर्ण का था, सुपार्श्व और पार्श्वनाथ सुन्दर नील वर्ण के थे। नेमिनाथ और मुनिसुव्रत ये दो तीर्थंकर श्याम वर्ण के थे। शेष बचे सोलह तीर्थंकरों का सोने के समान सुन्दर शरीर वर्ण था॥१३७॥१३८॥१३९॥

अब तीर्थंकरों का वंश वर्णन करते हैं

भगवान महावीर का नाथ वंश है, पार्श्वनाथ भगवान का जन्म उग्रवंश में हुआ है, मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ भगवान ने हरिवंश में जन्म लिया है, धर्मनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ भगवान कुरुवंश में जन्मे हैं, शेष सत्रह तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंश में जन्मे हैं ऐसा समझना चाहिये॥१४०॥१४१॥

पारणा

ऋषभदेव दीक्षा लेकर पुनि, एक वर्ष में लिया अहार।
इक्षु रस से लिया पारणा, शेष दिवस द्वै बाद अहार॥१४२॥

दुग्ध क्षीर से हुये पारणे, पंचाश्चर्य किये सुरराय।
तपकरी केवल ज्ञानपाय करि, समवसरण उपदेश सुनाय॥१४३॥

कौन आसन से मोक्ष गये

आदिनाथ अरु वासुपूज्य जिन, नेमिनाथ तीर्थेश महान।
पद्मासन से मोक्ष गये हैं, खड्गासन से शेष सुजान॥१४४॥

केवलज्ञान व समवसरण

घातिकरम के क्षय से पाया, केवलज्ञान लखा त्र्यलोक।
पांच सहस्र धनुष उठ जाएं, ऊंचे भूपर से जिन लोक॥१४५॥

दीक्षा के पश्चात् आहार

ऋषभदेव भगवान ने दीक्षा लेने के पश्चात् एक वर्ष में आहार इक्षुरस का लिया था, शेष तेईस तीर्थंकरों ने दीक्षा लेने के दो दिन अनन्तर आहार दूध की खीर का लिया था। समस्त तीर्थंकरों के प्रथम आहार के समय देवताओं द्वारा पंचाश्चर्य की वृष्टि होती है, सभी ने तपश्चर्या से घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया था, और समवसरण में दिव्यध्वनि से धर्मोपदेश दिया था॥१४२॥१४३॥

तीर्थंकरों के मोक्ष का आसन

आदिनाथ भगवान और वासुपूज्य तथा नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर तो पद्मासन से (पर्यंकासन से) मोक्ष गये हैं, बाकी के सब तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं॥१४४॥

अब आगे समवसरण का वर्णन करते हैं

घाति कर्म के क्षय करने से जब भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब भगवान तीनों लोकों को देखते हैं, उस समय जिनेन्द्र पृथ्वी से पांच हजार धनुष ऊंचे ऊपर को उठ जाते हैं॥१४५॥

तेरहवें गुणथान पायपुनि, परमौदारिक देह महान।
तीर्थंकर की प्रकृति उदय हो, गुण अनन्त प्रगटें तब जान॥१४६॥

क्षोभ होय त्रयलोक माहिं तब, सुरपति आसन कंपित होय।
कल्पवासी घर घटे बाजें, भवन शंखध्वनि सुरगृह होय॥१४७॥

सिंहनाद ज्योतिष गृह होवे, पटह शब्द व्यन्तर गृह होय।
तातें सुरगण तत्क्षण जानें, तीर्थंकर जिन केवल होय॥१४८॥

सप्त पैर आगे जा करके, करि प्रणाम हो भक्ति विभोर।
अहमिन्दरभी सप्त पैरपद, आगे बढ़ि वन्दे तिहिं ठौर॥१४९॥

सौधर्मेन्द्र कहे धनपति से, समवसरण रचियो तिहं जाय।
आज्ञा पाय कुबेर आय पुनि, अद्भुत रचना दिव्य रचाय॥१५०॥

उस समय भगवान तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाते हैं, उनका शरीर परमौदारिक दिव्य हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृति के उदय से आत्मा में अनन्त गुण प्रकट होते हैं॥१४६॥

तीनों लोकों में आनन्द होता है, उस समय इन्द्र का आसन कंपाय मान होता है, कल्पवासी देवों के घर घण्टे बजते हैं, भवनवासियों के यहाँ शंख बजते हैं। ज्योतिषियों के यहाँ सिंहनाद होता है, व्यन्तरवासी देवों के यहाँ पटुपटह शब्द होते हैं। जिससे देवगण भगवान का केवलज्ञान का होना जानते हैं॥१४७॥१४८॥

उस समय इन्द्र और देवगण सात पग आगे जाकर भक्ति से आनन्द विभोर होकर नमस्कार करते हैं। अहमिंद्र भी सात कदम आगे बढ़कर उसी जगह नमस्कार करते हैं॥१४९॥

सौधर्मेन्द्र कुबेर को बुलाकर समवसरण रचने की आज्ञा देते हैं। फिर कुबेर इन्द्र की आज्ञा से दिव्य और आश्चर्यकारी समवसरण की रचना करते हैं॥१५०॥

समवसरण का प्रमाण

ऋषभदेव का समवसरण है, द्वादश योजन का परिमाण।
दो दो कोस न्यून है आगे नेमिनाथ तक का है जान।।१५१।।

पार्श्वनाथ का डेढ़ सुयोजन, महावीर इक योजन मान।
अवसर्पिणी काल यों जानहु, उत्सर्पिणी उलटकरि जान।।१५२।।

अरु विदेह में समवसरण है, सब तीर्थंकर एक प्रमान।
बारह योजन का ही जानहु, इन्द्र नीलमणि शोभित जान।।१५३।।

समवसरण की महिमा

समवसरण को अब मैं वरणूं, महिमा वर्णन कही न जाय।
तीन लोक में ऐसी अद्‌भुत, दिव्य विभूति कहीं नहिं पाय।।१५४।।

ऋषभदेव भगवान का समवसरण बारह योजन के विस्तार का था, उसके आगे के तीर्थंकरों का नेमिनाथ भगवान तक दो दो कोस अर्थात् आधा आधा योजन कम होता गया। तेईसवें पार्श्वनाथ भगवान का समवसरण डेढ़ योजन का और अन्तिम तीर्थंकर महावीर का समवसरण एक योजन के विस्तार का था। यह प्रमाण भरत और ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अवसर्पिणी काल का है, उत्सर्पिणी काल में इससे विपरीत प्रमाण जानना चाहिये।।१५१।।१५२।।

विदेह क्षेत्र में समस्त तीर्थंकरों का समवसरण समान विस्तार का अर्थात् बारहयोजन प्रमाण होता है। सभी समवसरण इन्द्र नीलमणि से शोभायमान होते हैं।।१५३।।

समवसरण की महिमा का वर्णन

हे भव्य जीवों ! अब मैं समवसरण की महिमा का कुछ वर्णन करता हूं। समवसरण की महिमा का वर्णन न तो वाणी से कहा जा सकता है और न कलम से लिखा जा सकता है। तीन लोक में ऐसी दिव्य विभूति कहीं भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं।।१५४।।

चारों ओर चार दिशि सीढ़ी, विंशति विंशति सहस प्रमाण।
एक हस्त ऊंची शुभ जानहु, चार कोट वेदी पंच जान॥१५५॥
अष्ट भूमियां भव्य मनोहर, अन्तर त्रय त्रय पीठ सुहाय।
चार चार वीथी हैं सुन्दर, दोय कोस की हैं सुखदाय॥१५६॥
आठों भूमि हैं अति सुन्दर, तोरण वज्र कपाटों युक्त।
हैं वेदी जिनवरतन चउगुन, ऊंचाई है दोष विमुक्त॥१५७॥
सबसे बाहिर धूलिसाल है, कोट ध्वज तोरण से युक्त।
विजय वैजयंत और जयंता, अपराजित चउद्वार संयुक्त॥१५८॥
द्वार पार्श्व गोपुर में शोभित, अष्ट सुमंगल द्रव्य प्रसिद्ध।
झारी कलशरु दर्पण चामर, ध्वजा व्यजन अरु छत्र प्रतिष्ठ॥१५९॥
अरु नवनिधियां रहें धूप घट, पुतली धूप सुगन्धित नाम।
गोपुर द्वार रत्नमय सुन्दर, तोरणरम्य महा अभिराम॥१६०॥

समवसरण के चारों तरफ चारों दिशाओं में बीस–बीस हजार सीढ़ियां होती हैं। ये एक हाथ ऊंची होती हैं। चार कोट और पांच वेदियां होती हैं। उन वेदियों और कोट के बीच में आठ भूमियां होती हैं। बीच में तीन तीन पीठ शोभायमान होते हैं। उसमें चार–चार सुन्दर गलियां हैं। एक एक गली का प्रमाण दो दो कोस है। आगे तीर्थंकरों की गलीका प्रमाण उससे क्रमश: कम होता जाता है॥१५५॥१५६॥

ये आठों भूमियां बहुत सुन्दर हैं, इनके मूल में वज्रमयी कपाटों वाले तोरण द्वार हैं। समवसरण में वेदियों की ऊंचाई जिनेन्द्र भगवान के शरीर से चउगुनी होती है॥१५७॥

सबसे बाहिर के भाग में धूलिसाल कोट है, वह अनेक ध्वजाओं और तोरणों से सुशोभित है, उस कोट के चार द्वार होते हैं जिनके नाम विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित हैं॥१५८॥

प्रत्येक द्वार के पास में गोपुर में, झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, पंखा, छत्र और सुप्रतिष्ठ अर्थात् ठौना ये अष्ट मंगल द्रव्य होते हैं॥१५९॥

तथा काल, महाकाल, पाण्डु, माणवक, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल और नाना रत्न ये नवनिधियां प्रत्येक १०८ होती हैं। वहां अनेक धूप घट होते हैं– पुतलियां नृत्य करती हैं। धूप से सर्वत्र सुगन्ध फैली रहती है। सब गोपुर द्वार रत्नमयी सुन्दर तोरणों वाले होते हैं॥१६०॥

नृत्य करें तिहं देव अङ्गना, शोभित शालनाट्य सुहाय।
उत्तम दण्ड रतनयुत रक्षक, सुरतिहं सीढ़ी रतन बनाय॥१६१॥
धूलिसाल कोट के भीतर, चैत्य भूमि जिन भवन विशाल।
एक एक जिन भवन सुअन्तर, पंच पंच प्रासाद विशाल॥१६२॥
वन समूह नाना विधि वापी, कूपयुक्त पृथ्वी छविमान।
विविध रम्य सुन्दरतायुत हैं, वन खण्डोयुत कोट महान॥१६३॥
पृथ्वी प्रथम नाट्य शालायें, दो दो सुन्दर रम्य महान।
बत्तीस बत्तीस रङ्ग भूमियां, नृत्य करें सुरकन्या जान॥१६४॥
दिक्पालों के क्रीड़ा स्थल हैं, द्वारों मध्य पीठ शुभ जान।
उन पीठों के ऊपर जानहु, मानस्तम्भ उत्तङ्ग महान॥१६५॥
तीर्थंकर तनतें द्वादशगुन, ऊंचे मानस्तम्भ सुजान।
दर्शन मात्र मान भङ्ग होवे, मिथ्यादृष्टि का क्षय मान॥१६६॥

द्वारों के बीच में दोनों पार्श्व भागों में रत्न निर्मित नाट्यशालायें होती हैं जिनमें देवाङ्गनाएं नृत्य करती हैं। द्वारों पर उत्तम दण्ड रत्न को लिए ज्योतिष्क देव रक्षक बने खड़े रहते हैं। द्वार के बाहिर रत्नों की सीढ़ियां बनी हुई होती हैं॥१६१॥

धूलिसाल कोट के भीतर चैत्यभूमि में अनेक बड़े–बड़े जिन भवन बने होते हैं। इन जिन भवनों के अन्तराल में पांच पांच विशाल महल होते हैं॥१६२॥

अनेक प्रकार के सुन्दर वन, वापी, कूए आदि से पृथ्वियाँ बहुत शोभायमान होती हैं। सुन्दर–सुन्दर वन खण्डों में बड़े–बड़े कोट हैं॥१६३॥

प्रथम पृथ्वी में दो–दो नाट्यशालाएं बनी हुई हैं, प्रत्येक नाट्यशाला में बत्तीस–बत्तीस रङ्ग भूमियां हैं, जहाँ देवबालाएं नृत्य करती हैं॥१६४॥

वहां दिक्पालों के क्रीड़ा स्थल बने हुए हैं– द्वारों के बीच में सुन्दर पीठ होते हैं, पीठों के ऊपर ऊंचे महान मानस्तम्भ होते हैं॥१६५॥

मानस्तम्भ तीर्थंकरों की शरीर की ऊंचाई से बारह गुने ऊंचे होते हैं। उन मानस्तम्भों के दर्शन करने मात्र से ही मिथ्यादृष्टियों का मान भङ्ग हो जाता है॥१६६॥

त्रय कोटों के बाहिर चउदिशि, चार–चार वापी शुभ जान।
वीथी आश्रित निर्मल जलयुत, क्रीड़ा देव करें तिहं थान।।१६७।।

वापी आश्रित कुण्ड युगल हैं, सुर नर पद धोवें निज जान।
उत्तम रत्न ध्वजा तोरण अरु, घण्टा युत वेदी शुभ जान।।१६८।।

आठ पृथ्वियों का वर्णन

प्रथम चैत्य पृथ्वी तिहं राजित, चैत्यालय अतिरम्य महान।
द्वितीय खातिका भूमि मनोहर, जलपूरित खातिका सुजान।।१६९।।

पुष्प वाटिका तीजी भू है, रत्नवेल अति सुमन अपार।
चौथी उपवन भू अति सुन्दर, वन उपवन शोभे अतिसार।।१७०।।

ध्वजा भूमि है पंचम पृथ्वी, दशविधि रत्न ध्वज लहराय।
षष्टम कल्प भूमि अति शोभित, दशविध कल्प वृक्ष मनभाय।।१७१।।

तीनों कोटों के बाहिर चारों दिशाओं में चार–चार सुन्दर वापिकाएं होती हैं, जो कि वीथियों आश्रित एवं निर्मल जल से भरी होती हैं, देव वहां क्रीड़ा करते हैं।।१६७।।

प्रत्येक वापी के आश्रित दो–दो कुण्ड होते हैं, वहां देव और मनुष्य समवसरण में जाते हुये अपने–अपने पांव धोते हैं तथा उत्तम–उत्तम रत्नमयी ध्वजा, तोरण घण्टाओं से युक्त वहां सुन्दर वेदियां बनी रहती हैं।।१६८।।

अब आठ पृथ्वियों का वर्णन करते हैं

समवसरण में आठ पृथ्वियां होती हैं, उनमें पहली पृथ्वी का नाम चैत्य पृथ्वी है, उसमें अनेक सुन्दर–सुन्दर चैत्यालय बने होते हैं। दूसरी पृथ्वी खातिका है उसमें जल से भरी खाईयां होती हैं।।१६९।।

तीसरी पृथ्वी का नाम पुष्प वाटिका है वहां रत्नों की बेलों पर अनेक प्रकार के फूल सुशोभित हैं। चौथी उपवन भूमि है। उसमें अनेक वन और उपवन शोभायमान हैं।।१७०।।

पांचवीं पृथ्वी ध्वजा भूमि है, उसमें दस प्रकार की रत्नमयी ध्वजाएं फहराती हैं। छठवीं भूमि कल्प भूमि है, यहां दस प्रकार के कल्प वृक्ष मन को हरण करने वाले होते हैं।।१७१।।

सप्तम पृथ्वी मन्दिर भू है, भवनरम्य नव स्तूप पुतान।
अष्टम भू मण्डप पृथ्वी है, द्वादश कोठे सभा महान।।१७२।।

दीवालें षोडश मणिराजित, द्वादश सभा गोल चहुं ओर।
तिनका वर्णन करूं स्वल्प मैं, सभा जीव बैठे जिहिं ठौर।।१७३।।

बारह सभा

प्रथम सभा में गणधर मुनिगण, कल्प देवियां द्वितीय कहाय।
तृतीय आर्यिका और श्राविका, ज्योतिष देवी और रहाय।।१७४।।

व्यन्तर देवी भवन देवियां, भवन देव अरु व्यन्तर देव।
ज्योतिष देव सुशोभित हैं अरु, कल्प देव जिनभक्त सुसेव।।१७५।।

चक्रवर्ति भूपति नर सब हैं, अन्तिम पशु तिर्यञ्च समाय।
यों है द्वादश सभा विराजित, गन्ध कुटि तिन मध्य सुहाय।।१७६।।

और चतुर्थम् कोठे आगे, मण्डप तल वेदी शुभ जान।
गोलाकार पांचवीं वेदी, मध्य पीठ त्रय राजत मान।।१७७।।

सातवीं पृथ्वी मन्दिर भूमि है, जहाँ अनेक प्रकार के भवन और स्तूप बने होते हैं। आठवीं पृथ्वी मण्डप पृथ्वी है जहाँ सोलह दीवालों के बीच बारह कोठे बने होते हैं। उनमें बारह सभाएं गोल चारों तरफ होती हैं। उनका मैं अति संक्षेप से वर्णन करता हूं। जहाँ बारह प्रकार के जीव उन सभाओं में बैठते हैं।।१७२।।१७३।।

समवसरण की बारह सभाओं का वर्णन

समवसरण के बारह कोठों में अलग–अलग प्राणी दिव्य ध्वनि श्रवण करने बैठते हैं, उनमें पहली सभा में गणधर और मुनि, दूसरी में कल्पवासी देवियां, तीसरे कोठे में आर्यिकाएं और श्राविकाएं, चौथे में ज्योतिषी देवियां, पांचवें में व्यन्तर देवियां, छठवें में भवनवासी देवों की देवियां, सातवें मे भवनवासी देव, आठवें में व्यन्तर देव, नवें में ज्योतिष देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में चक्रवर्ती राजा और मनुष्य तथा अन्तिम बारहवें कोठे में तिर्यञ्च बैठते हैं। इस प्रकार बारह सभाएं होती हैं उनके बीच में गन्धकुटी होती है।।१७४।।१७५।।१७६।।१७७।।

गन्ध कुटी का प्रमाण

प्रथम जिनेश्वर गन्ध कुटी है, छ: सौ धनुष विशेष प्रमाण।
नेमिनाथ तक पच्चिस–पच्चिस, धनुष न्यून हैं क्रमश: जान॥१४८॥

पार्श्वनाथ की गन्ध कुटी है, इकशत पच्चिस धनुष प्रमाण।
महावीर की गन्ध कुटी है, धनुष पचास कही शुभ जान॥१७९॥

गन्ध कुटी के चार तरफ ही, बत्तीस सीढ़ी षोडस द्वार।
रत्न जड़ित सिंहासन शोभे, गन्ध कुटी के मध्य हिसार॥१८०॥

तीर्थंकर तन सम ऊंचाई, स्फटिक मणी निर्मित शुभ जान।
सिंहासन पर सहस पंखुड़ी, कमल स्वर्णमय शोभित मान॥१८१॥

कमल पंखुरीतैं चउ अंगुल, ऊंचे राजित जिन भगवान।
चारों ओर सुदर्शन होवे, सन्मुख मुख तन दिव्य महान॥१८२॥

गन्ध कुटी का प्रमाण

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की गन्ध कुटी छ: सौ धनुष की थी। फिर नेमिनाथ भगवान तक क्रमश: पच्चीस–पच्चीस धनुष कम होती गई॥१७८॥

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की गन्ध कुटी एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण थी। महावीर भगवान की गन्ध कुटी पचास धनुष प्रमाण की जानना चाहिये॥१७९॥

गन्ध कुटी के चारों तरफ सोलह दरवाजे और बत्तीस सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियों पर गन्ध कुटी के बीच में रत्न जड़ित सिंहासन शोभायमान होता है॥१८०॥

सिंहासन स्फटिक मणि का बना होता है और तीर्थंकरों के शरीर के बराबर ऊंचा होता है। सिंहासन पर एक हजार पंखुड़ी वाला स्वर्णमयी कमल होता है॥१८१॥

कमल की पंखुड़ियों से चार अंगुल ऊंचे जिनेन्द्र भगवान विराजमान होते हैं, भगवान चारों तरफ दर्शकों के सन्मुख मुख से दिखाई देते हैं। अद्भुत दिव्य शरीर वाले भगवान के सबको दर्शन होते हैं॥१८२॥

भव्यजीव का गमन तिहांहि, समकित बिन सम्यक्त्वी होय।
क्षायिक भी समकित होवे तिहं, पादमूल जिन कहिये सोय॥१८३॥
बालवृद्ध सब अन्तर मुहूरत, समवसरण में तत्क्षण जाय।
रोगमरण भय जनम वैर नहिं, तृष्णा, भूख न प्यास लहाय॥१८४॥
सिंह गाय मृग मोर सर्प पे, मूसा बिल्ली एक थल जाय।
वैरभाव तजि जीव परस्पर, मैत्री भाव लहे तिहँ आय॥१८५॥
दिव्य ध्वनि जिन वदन गिरे तब, मेघ ध्वनि समगर्जन होय।
शशि अमृत सम खिरैं भव्यजन, सुनकर अति आनन्दित होय॥१८६॥
दिव्य ध्वनि संध्यात्रय खिरती, नव मुहूरत का समयहिं जान।
द्वादशांग श्रुत वर्णन होवे, दिव्य निरक्षर महिमा जान॥१८७॥
अष्टादश अरु सप्त सैंकड़ा, भाषा में परिणत हो जाय।
सुरनर पशु सब अपनी–अपनी, भाषा में ही सब समुझाय॥१८८॥

उस समवसरण में भव्यजीव ही जाते हैं, कोई मिथ्यात्वी जाय तो उसे तत्काल सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, किसी–किसी को वहां समवसरण में क्षायिक सम्यक्त्व भी हो जाता है। क्योंकि उसका प्रधान निमित्त कारण जिनेन्द्र का पादमूल वहां विद्यमान है॥१८३॥

चाहे बच्चे हों या वृद्ध हों, अन्तर मुहूर्त में वे उसी समय समवसरण में पहुंच जाते हैं। वहां किसी भी प्रकार का रोग व मरण का भय नहीं है। जन्म–मृत्यु, भूख–प्यास और वैरभाव वहां नहीं होते॥१८४॥

सिंह, गाय, हिरण, मोर, सर्प, बिल्ली सब एक जगह वैरभाव आपस में छोड़कर मैत्रीभाव से वहां समवसरण में बैठते हैं॥१८५॥

भगवान के मुख से जब दिव्य ध्वनि खिरती है तब मेघ की गर्जना के समान आवाज ध्वनि होती है। चन्द्रमा से अमृत झरने के समान दिव्य ध्वनि खिरती है, भव्यजीव सुनकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं॥१८६॥

दिव्य ध्वनि तीन संध्याओं में नव मुहूर्त अर्थात् अठारह घड़ी तक खिरती है, एक बार में छः घड़ी तक खिरती है। श्रोताओं के कानों में जाकर वह अठारह बड़ी भाषाओं और सात सौ लघु भाषाओं में परिणत हो जाती है। द्वादशाङ्ग का उसमें वर्णन होता है, निरक्षरी होती है। देव मनुष्य, पशु सब अपनी–अपनी भाषा में समझ जाते हैं॥१८७॥१८८॥

चक्री गणधर इन्द्र भाग्य से, और समय भी ध्वनि खिराय।
गणधर प्रश्नोत्तर समझावहिं, इक योजन धुनि शब्द सुनाय॥१८९॥
है अरहंत अवस्था जिनवर, गुणस्थान तेरहवें मान।
मूलगुणन छयालीस सुशोभित, घातिकर्म के क्षयतें जान॥१९०॥
तीर्थंकर के समवसरण हो, गन्धकुटी केवली जिनाय।
समवसरणसम और सभानहिं, नहिं वैभव अन्यत्र बताय॥१९१॥
यों है समवसरण की महिमा वर्णन जिसका कर न सकाय।
जिन उपदेश श्रवण करि भविजन, तजि संसार मोक्ष में जाय॥१९२॥

विहार वर्णन

भविजीवों का भाग्य जहाँ हो, उधर जिनेश्वर होय विहार।
दर्पणसम हो भूमि मनोहर, निर्मल सुरगण करें विचार॥१९३॥
षट ऋतु फूल लगे क्षण एकहि, मन्द सुगन्ध समीर बहाय।
सर्व जीव सुख पावें अरु नर, हो अपंग वह अंग लहाय॥१९४॥

चक्रवर्ती, इन्द्र और गणधरों के पुण्य से दिव्य ध्वनि असमय में भी खिर जाती है। दिव्य ध्वनि एकयोजन तक सुनी जा सकती है। गणधर श्रोताओं के प्रश्नों का उत्तर देकर समझाते हैं॥१८९॥

इस समय भगवान की अरहंत अवस्था होती है उनके तेरहवां गुणस्थान होता है, छैयालिस मूलगुण होते हैं। घातिया कर्मों के क्षय होने से ही ये गुण प्राप्त होते हैं॥१९०॥

सब तीर्थंकरों के समवसरण होता है और सामान्य केवलियों के गन्ध कुटी ही होती है। समवसरण के समान तीन लोक में कोई दूसरी सभा नहीं होती और न वैभव ही होता है॥१९१॥

इस प्रकार समवसरण की बड़ी महिमा है जिसका पूर्ण वर्णन करना असम्भव है, वहाँ जिनेन्द्र भगवान का उपदेश सुनकर भव्य जीव संसार छोड़कर मुनि होते हैं और कर्मों को नाश कर मोक्ष भी जाते हैं॥१९२॥

तीर्थंकर विहार

जिधर भव्य जीवों का भाग्य हो उधर जिनेन्द्र भगवान का स्वतः विहार होता है। विहार में देवगण दर्पण के समान भूमि को निर्मल बना देते हैं॥१९३॥

छहों ऋतु के फूल एक साथ लग जाते हैं, मन्द सुगन्ध हवा बहती है, समवसरण में एवं विहार में सब जीव सुखी रहते हैं कोई मनुष्य अंग रहित हो तो उसका अंग ठीक हो जाता है॥१९४॥

प्यास बुभुक्षा स्वासरु, खांसी, रोग वेदना भय नहिं होय।
जहँ विहार हो भूमि सुनिर्मल, कंटक कंकड़ रहित संजोय॥१९५॥

जब विहार हो प्रभु भूतल से षट् षट् कोस उच्च हों आप।
रचे कमल चउ अंगुल ऊपर, गगन गमन करते जिनराय॥१९६॥

गन्धोदक की वृष्टि करें सुर, अतिशय देव करें तिहँ आय।
दो सौ पच्चीस कमल रचें सुर, चउ अंगुल ऊंचे प्रभु जाय॥१९७॥

चौसठ चमर ढगनमग ढुरते, धर्मचक्र आगे चलिजाय।
अष्ट सुमंगल द्रव्य सुशोभित, जयजयकार करें सुरराय॥१९८॥

नर मुनिवर चउसंघ और पशु, ये पृथ्वी पर चलकरि जाय।
विद्याधर चारणमुनि केवली, ये भी गगन गमन करि जाय॥१९९॥

जीवों को प्यास, भूख, श्वास, खाँसी, बिमारी की वेदना, भय आदि नहीं होते हैं। देवगण मार्ग को निर्मल कंकड़ पत्थर रहित भगवान के विहार में भूमि को करते जाते हैं॥१९५॥

जब भगवान का विहार होता है तब भगवान पृथ्वी से छः कोस ऊंचे हो जाते हैं, देवगण मार्ग में कमल रचते जाते हैं। उन कमलों के ऊपर चार अंगुल अधर आकाश में भगवान गमन करते हैं॥१९६॥

देवगण गन्धोदक की वर्षा करते हैं और भी अतिशय देव करते हैं। देवगण दो सौ पच्चीस कमल रचते हैं, उन पर चार अंगुल ऊंचे प्रभु चलते हैं॥१९७॥

मार्ग में विहार के समय ६४ चंवर ढुरते जाते हैं, धर्म चक्र सबसे आगे चलता रहता है, अष्ट मंगल द्रव्य सुशोभित होते हैं, देवगण सब जय जयकार करते हुए चलते हैं॥१९८॥

मनुष्य, मुनि, चारों संघ और पशु ये सब पृथ्वी पर चलते हुए जाते हैं। विद्याधर, चारणऋद्धिधारी मुनि और केवली ये सब जीव आकाश में गमन करते हुये जाते हैं॥१९९॥

गणधर वर्णन

ऋषभ जिनेश्वर के चौरासी, गणधर अजित सुनब्बे जान।
संभव पञ्च एकशत जानहु, अभिनंदन इकशत त्रय मान॥२००॥
सुमति एकशत सोलह ऊपर, पद्म एकशत ग्यारह जान।
और सुपारस के पञ्चानव, चन्द्रप्रभु तिरानव मान॥२०१॥
पुष्पदन्त अट्ठासी गणधर, शीतल इक्यासी बुधजान।
श्री श्रेयांससतत्तर कहिये, वासुपूज्य छासट मतिमान॥२०२॥
विमलनाथ के पचपन गणधर, और पचास अनते जान।
धर्मनाथ तैयालिस कहिये, शांति जिनेश्वर छतिस मान॥२०३॥
कुंथुनाथ के पैंतिस गणधर, अरहनाथ त्रिंशति पहिचान।
मल्लि अठाइस मुनिसुव्रत जिन, अष्टादश नमि सत्रह जान॥२०४॥
नेमिनाथ गणधर एकादश, पार्श्वनाथ जिन दश पहिचान।
महावीर एकादश गणधर, यों गणधर की संख्या जान॥२०५॥

कौन तीर्थंकर कहाँ से आये ?

कौन कहाँ तैं चयकरि आये, तीर्थंकर का करूं बयान।
मध्य लोक नरजन्म पाय करि, कर्मनाशि पहुचे शिवथान॥२०६॥

अब आगे गणधरों का वर्णन करते हैं

तीर्थंकरो के समवसरण मे मुनियों में चार ज्ञानधारी तपस्वी मुनि गणधर कहलाते हैं। उनकी संख्या प्रत्येक तीर्थंकर की निम्न प्रकार है— प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव के गणधर ८४। अजितनाथ के ९०। सम्भवनाथ के १०५। अभिनन्दन के १०३। सुमतिनाथ के ११६। पद्मप्रभु के १११। सुपार्श्वनाथ के ९५। चन्द्र प्रभु के ९३। पुष्पदन्त के ८८। शीतलनाथ के ८१। श्रेयांसनाथ के ७७। वासुपूज्य के ६६। विमलनाथ के ५५। अनन्तनाथ के ५०। धर्मनाथ के ४३। शान्तिनाथ के ३६। कुंथुनाथ के ३५। अरहनाथ के ३०। मल्लिनाथ के २८। मुनिसुव्रत के १८। नमिनाथ के १७। नेमिनाथ के ११। पार्श्वनाथ के १०। अन्तिम तीर्थंकर महावीर के ११ गणधर थे। इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या कही है।॥२००॥२०१॥२०२॥२०३॥२०४॥२०५॥

कौन तीर्थंकर जन्म से पूर्व कहां से चयकर आये थे उसका वर्णन यहां मैं करता हूं। जिनने इस मध्य लोक में मनुष्य जन्म प्राप्त कर कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया था॥२०६॥

ऋषभ धरम जिन शांति कुंथु ये, सरवारथसिद्धितैं आय।
अभिनंदन अरुअजित जिनेश्वर, विजयविमान चये इह आय॥२०७॥
चन्द्रप्रभु चय वैजयन्त से, आगे और कहूं वरणाय।
मल्लिनमि अरुनेमि जिनेश्वर, अपराजित से चयकरि आय॥२०८॥
सुमति जयन्त विमान चये हैं, पुष्प दन्त आरण से आय।
शीतल अच्युत स्वर्ग चये हैं, तीर्थंकर भवि बोध कराय॥२०९॥
महावीर श्रेयांस अनन्ता, पुष्पोत्तर तैं चयकरि आय।
विमल शतार स्वर्ग तैं आये, मुनिसुव्रत आनत चलि आय॥२१०॥
पार्श्वनाथ प्राणत चय आये, संभव अधः ग्रैवेयिक आय।
अर सुपार्श्व जिन मध्य ग्रैवेयिक, पद्म ऊर्ध्व ग्रैवेयिक आय॥२११॥
वासुपूज्य प्रभु महाशुक्र तैं, आये यों चउबीस बखान।
धर्म तीर्थ के हुए प्रवर्तक, देव किये तिनके कल्यान॥२१२॥

ऋषभदेव, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुंथुनाथ ये चार तीर्थंकर सर्वार्थसिद्धि से चयकर आये थे। अभिनन्दन और अजितनाथ विजय विमान से चयकर जन्म लिया था॥२०७॥

चन्द्रप्रभु वैजयन्त विमान से, मल्लिनाथ और नमिनाथ तथा नेमिनाथ अपराजित विमान से चयकर आये थे॥२०८॥

सुमतिनाथ जयन्त विमान से, पुष्पदन्त आरण स्वर्ग से, शीतलनाथ अच्युत स्वर्ग से चयकर जन्म ले भव्य जीवों को उपदेश दिया था॥२०९॥

महावीर भगवान, श्रेयांस और अनन्त नाथ ये पुष्पोत्तर विमान से चयकर आये थे, विमल नाथ शतार स्वर्ग से और मुनिसुव्रत आनत स्वर्ग से चयकर आये थे॥२१०॥

पार्श्वनाथ प्राणत स्वर्ग से और सम्भव नाथ अधः ग्रैवेयिक से, सुपार्श्वनाथ मध्य ग्रैवेयिक से और पद्मनाथ ने ऊर्ध्व ग्रैवेयिक से चयकर जन्म लिया था॥२११॥

वासुपूज्य भगवान महाशुक्र स्वर्ग से चयकर आये थे, इस प्रकार वर्तमान चौबीस तीर्थंकर धर्म के प्रवर्तक इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में अवतरे थे और देवताओं ने इनके कल्याणक मनाये थे॥२१२॥

तीर्थंकरों के चिह्न

वर्तमान चउबीस जिनेश्वर, के शुभ चिह्न कहूं श्रुणु ध्यान।
दक्षिण पगतल इन्द्र देखिकरि, चिह्न नियत नित तें पहिचान॥२१३॥

वृषभ हस्ति अरु अश्व सुमर्कट चकवा कमल साथिया जान।
चन्द्र मगर अरु कल्प वृक्ष हैं, गैंडा भैंसा शूकर मान॥२१४॥

सेही वज्रदण्ड, मृग जानहु, अज अरु मत्स्य कलश बतलाय।
कछुआ नील कमल जिन लाञ्छन, शंख सर्प अरु सिंह बताय॥२१५॥

यों है तीर्थंकर की महिमा, अति संक्षेप लिखी भविजान।
अधिक जिनागम में पढ़ि जानहु परमपुण्य फल यह पहिचान॥२१६॥

तीर्थंकरों के चिह्न

अब मैं वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न का वर्णन करता हूं उसे ध्यान से सुनिये। इन्द्र भगवान के दाहिने पग पर चिह्न को देखकर चिह्न निश्चित करता है, जिससे तीर्थंकरों की पहचान की जाती है।२१३॥

ऋषभनाथ के बैल, अजितनाथ के हाथी, संभवनाथ के घोड़ा, अभिनन्दन के बन्दर, सुमतिनाथ के चकवा, पद्मप्रभु के कमल, सुपार्श्वनाथ के साथिया, चन्द्र प्रभु के चन्द्रमा, पुष्पदन्त के मगर, शीतल नाथ के कल्पवृक्ष, श्रेयांसनाथ के गैंडा, वासुपूज्य के भैंसा, विमलनाथ के सूअर, अनन्तनाथ के सेही, धर्मनाथ के वज्रदण्ड, शान्तिनाथ के हिरण, कुंथुनाथ के बकरा, अरहनाथ के मत्स्य, मल्लिनाथ के कलश, मुनिसुव्रत के कछुवा, नमिनाथ के नीलकमल, नेमिनाथ के शंख, पार्श्वनाथ के सर्प और महावीर के सिंह चिह्न हैं।२१४।२१५॥

इस प्रकार तीर्थंकरों की महिमा बहुत संक्षेप में मैंने लिखी है। हे भव्यजीवों ! अगर विस्तृत पढ़ना हो तो जिनागम से पढ़कर ज्ञान प्राप्त करो। यह तीर्थंकर प्रकृति उत्तम पुण्य का फल है, चरम शरीरी और महान पुण्य के फल प्राप्त करने वाले को ही इस प्रकृति का बन्ध होता है।२१६॥

चक्रवर्ती वर्णन

त्रेशठ शला पुरुष में तीर्थंकर का वर्णन किया सुजान।
चक्रवर्ति भी महापुरुष हैं, तिनका भी कछु करूं बयान।।२१७।।

भरत क्षेत्र के षट्खन्डों का, राज्य करे इक छत्र महान।
नवनिधि चौदह रत्न अधीश्वर, महापुण्य के भोगी जान।।२१८।।

द्वादश चक्रवर्ती सब जानहु, नाम सुनो उनके ये हाल।
हुये चतुर्थम् काल माहि ये, भरत क्षेत्र अवसर्पिणी काल।।२१९।।

भरत सगर, मघवान सनत हैं, शांतिकुंथु जिन अरह महान।
अरु सुभौम, चक्री जन नायक, महापद्म, हरिषेण सुजान।।२२०।।

जय अरु ब्रह्मदत्त है अन्तिम, तन का वर्ण सुवर्ण समान।
प्रथम भरत तन धनुष पंचशत, अन्तिम सप्त धनुष परिमाण।।२२१।।

अब चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं

त्रेशठशलाका पुरुषों में तीर्थंकरों का वर्णन किया, अब चक्रवर्ती जो कि ये भी महापुरुषों में माने जाते हैं, इनका भी कुछ वर्णन यहाँ मैं करूंगा।।२१७।।

ये चक्रवर्ती भरत क्षेत्र के छ: खण्डों का अखण्ड एकछत्र राज्य करते हैं तथा नवनिधि और चौदह रत्नों के स्वामी, महान् पुण्य के भोगने वाले होते हैं।।२१८।।

ये चक्रवर्ती कुल बारह होते हैं ये भरत क्षेत्र में इसी अवसर्पिणी काल में हुए हैं तिनके नाम इस प्रकार हैं।।२१९।।

१. भरत, २. सगर, ३. मघवान, ४. सनतकुमार, ५. शान्तिनाथ, ६. कुंथुनाथ, ७. अरहनाथ, ८. सुभौम, ९. महापद्म, १०. हरिषेण, ११. जय सेन, १२. ब्रह्मदत्त। इस प्रकार बारह चक्रवर्ती हुये हैं। इनके शरीर का वर्ण सोने के समान था और शरीर की ऊंचाई प्रथम चक्रवर्ती भरत की पांच सौ धनुष और अन्तिम ब्रह्मदत्त की सात धनुष थी।।२२०।।२२१।।

चक्रवर्ती का वैभव

चक्रवर्ती के उत्तम संहनन, नवनिधि चौदह रत्न महान।
छयानव सहस रानियां जानहु, और सहस्रों हैं सन्तान।।२२२।।
कोड़ा कोड़ी हल अरु पृथ्वी, पूर्ण खण्ड षट्केत्र प्रमाण।
तीन कोटि गौ थाल कोटि इक चौरासी लख गज रथ जान।।२२३।।
अश्व अठारह कोटि बताये, कोटि चुरासी सुभट महान।
बत्तिस सहस मुकुटबद्ध राजा, पैदल सैनिक का परिमाण।।२२४।।
अड़तालीस कोटि हैं सैनिक, छयानव कोटि गांव शुभ जान।
शहर पिचत्तर सहस जानहु, खेटसु सोलह सहस प्रमाण।।२२५।।
और दशांग भोग ये जानहु, कहे दिव्यपुर रत्न महान।
निधी, चमू, भाजन, भोजन अरु, शय्या आसन वाहन मान।।२२६।।
अन्तिम नाट्य कहे चक्री के, भोग दशांग पुण्य बल जान।
चक्री वैभव की नहिं संख्या, वरणूं कुछ संक्षिप्त बयान।।२२७।।

अब चक्रवर्ती का वैभव वर्णन करते हैं

चक्रवर्ती के उत्तम संहनन होता है, उसके नवनिधियां और चौदह रत्न होते हैं। छयानवें हजार रानियां और हजारों पुत्र होते हैं। एक कोड़ा कोड़ी हल, छः खण्ड पृथ्वी, तीन करोड़ गायें, एक करोड़ थालियां, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़, सुभटवीर, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, अड़तालीस करोड़ पैदल सैनिक, छयानवे करोड़ गांव, पिचहत्तर हजार शहर, सोलह हजार खेट, ये चक्रवर्ती के होते हैं।।२२२।। २२३।।२२४।।२२५।।

तथा दिव्यपुर, रत्न, निधि, चमू, भाजन, भोजन, शय्या, आसन, वाहन और नाट्य ये दश प्रकार के चक्रवर्ती के दशांग भोग होते हैं। ये सब चक्रवर्ती के पुण्य बल से प्राप्त होते हैं। चक्रवर्ती के समस्त भोगों की संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता, अर्थात् असंख्य भोग सामग्री होती है। उनमें से कुछ का यहाँ संक्षेप से वर्णन करता हूं।

विशेष– चक्रवर्ती के छयानवे हजार रानियों में से बत्तीस हजार राज कन्यायें, बत्तीस हजार विद्याधर कन्यायें और बत्तीस हजार म्लेच्छ कन्यायें होती हैं।।२२६।।२२७।।

नवनिधि

नवनिधि चक्री के नित शोभित, काल महाकाल तसुनाम।
माणवका पिंगल नैसर्प, पद्म पाण्डु हैं उनके नाम॥२२८॥

शंखरु नानारत्न कहे शुभ ये नवनिधि के नाम कहाय।
चौदह रत्न और नवनिधि के, इक इक सहस देव रखाय॥२२९॥

चौदह रत्न

चेतन सप्तरु सप्त अचेतन, चौदह रत्न कहूं तिन नाम।
सहस सहस सुर रक्षक इनके, चक्री के आधीन तमाम॥२३०॥

अश्व हस्ति, गृहपति, रथपति अरु, सेनापति, स्त्रीरत्न सुजान।
और पुरोहितरत्न कहावे, ये हैं चेतन रत्न महान॥२३१॥

छत्ररत्न असिदण्ड चक्र अरु, काकिणी चूडामणि शुभ जान।
अन्तिम चर्म सुरत्न कहावें सप्त अचेतन ये हैं नाम॥२३२॥

नवनिधियां

चक्रवर्ती के जो नवनिधियां होती हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. काल, २. महाकाल, ३. माणवका, ४. पिङ्गल, ५. नैसर्प, ६. पद्म, ७. पाण्डु, ८. शंख, ९. नानारत्न। प्रत्येक निधि के एक–एक हजार देव रक्षक होते हैं। चौदह रत्नों के भी एक–एक हजार देव रक्षक होते हैं॥२२८॥२२९॥

चौदह रत्न

चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में सात चेतन और सात अचेतन रत्न होते हैं। हजार–हजार देव इनके रक्षक होते हैं ये सब चक्रवर्ती के आधीन रहते हैं॥२३०॥

१. अश्व, २. हस्ति, ३. गृहपति, ४. रथपति, ५. सेनापति, ६. स्त्री, ७. पुरोहित ये सात तो चेतन रत्न हैं और १. छत्र, २. असि, ३. दण्ड, ४. चक्र, ५. काकिणी, ६. चूडामणि, ७. चर्म ये सात अचेतन रत्न होते हैं॥२३१॥२३२॥

रत्नों का उपयोग

वृषभाचल पर चक्री लिखते, रत्न काकिणी से निज नाम।
चूड़ामणि से होय गुफा में, तेज प्रकाश सुदिव्य ललाम॥२३३॥

चर्म रत्न की छाया से ही, जलवर्षा से सैन्य बचाय।
दण्ड रत्न से द्वार गुफा का, उद्घाटित इस रत्न सहाय॥२३४॥

युद्ध विजय अरु शत्रु निवारण, चक्र रत्न के बल ही जान।
और रत्न सब विविध कार्य में, बने सहायक पुण्य निधान॥२३५॥

कौन चक्री कहाँ गये ?

मघवा सनत्कुमार गये हैं, स्वर्ग तीसरे में शुभ जान।
नरक सातवें गये चक्रिद्वय, हैं सुभौम ब्रह्मदत्त महान॥२३६॥

शेष अष्ट चक्री तजि वैभव, मुनि ह्वै मोक्ष गये शिवथान।
चक्री के ये तीन मार्ग हैं, नर्क स्वर्ग या मोक्ष सुथान॥२३७॥

रत्नों का उपयोग

चक्रवर्ती किस रत्न का क्या उपयोग करते हैं ? इसका वर्णन। काकिणी रत्न से वृषभाचल पर्वत पर अपना नाम चक्रवर्ती लिखते हैं। चूड़ामणि रत्न से गुफा में तेज प्रकाश करते हैं॥२३३॥

चर्म रत्न से जब वर्षा हो तब छाया कर सेना का बचाव किया जाता है। दण्ड रत्न से गुफा का द्वार उद्घाटित होता है॥२३४॥

चक्र रत्न से युद्ध विजय एवं शत्रुओं को आधीन किया जाता है। तथा और रत्न भी चक्रवर्ती के विविध कार्यों में काम आते हैं। पुण्योदय से प्राप्त ये रत्न सब चक्रवर्ती के सहायक होते हैं॥२३५॥

कौन चक्रवर्ती कहाँ गये ?

मघवा और सनत कुमार चक्रवर्ती तीसरे स्वर्ग में गये हैं ? सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक में गये हैं॥२३६॥

शेष आठ चक्रवर्ती मुनिपद धारण कर कर्मों को नाशकर मोक्ष गये हैं। चक्रवर्ती के जाने के ये तीन मार्ग या स्थान हैं, स्वर्ग, नरक या मोक्ष॥२३७॥

चक्रवर्ती के पूर्व पुण्य बल, आयुधशाला में उपजाय।
चक्ररत्न उत्पति होवे, जिन पूजन अभिषेक रचाय।।२३८।।
तब चक्री निज दल बल लेकर, विजय हेतु करते प्रस्थान।
प्रथम पूर्वदिशि को प्रयाण करि, आधे भरत क्षेत्र जय आन।।२३९।।
भूपति सब वशकारि के आगे, विजयारध की विजय कराय।
श्रेणिद्वय के विद्याधर पर, विजय प्राप्त चक्री कर जाय।।२४०।।
तदनन्तर चढ़ि अश्व रत्न पर, सेनापति शत सीढ़ी चढ़ेय।
पश्चिम दिशा बढ़े आगे जा, दक्षिण दिशि सैन्य उतरेय।।२४१।।
और नदी वन मध्य चालिकारि, चक्री की आज्ञा तब पाय।
विजयारध की गुफा कपाटों, दण्ड रत्न ठोकर धरिधाय।।२४२।।
तब भीषण ध्वनि होय गर्जना, उष्ण हवा भय तुरत भगाय।
बारह योजन क्षेत्र लाघि छिन, दूर चले सेनापति धाय।।२४३।।

चक्रवर्ती के पूर्वपुण्य के उदय से आयुधशाला में चक्र रत्न की उत्पत्ति होती है, चक्रवर्ती उस समय जिनेन्द्रपूजन और अभिषेक करते हैं।।२३८।।

चक्रवर्ती चक्र रत्न के उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण सैन्य बल के साथ समस्त भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने हेतु प्रस्थान करते हैं। प्रथम पूर्व दिशा में प्रयाण कर गमन करते हैं और आधे भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर सब राजाओं को अपने आधीन करते हुये विजय करने आते हैं। और विजयार्धपर्वत की दोनों श्रेणियों के विद्याधरों को अपने आधीन करते हैं।।२३९।।२४०।।

उसके पश्चात– सेनापति अश्व रत्न पर चढ़कर विजयार्ध की सौ सीढ़ियाँ चढ़ जाते हैं और पश्चिम दिशा की तरफ आगे बढ़ जाते हैं; सेना को दक्षिण दिशा की तरफ उतार कर नदी वन के मध्य चलकर विजयार्ध की गुफा के पास पहुँचते हैं। उसके पश्चात् चक्रवर्ती की आज्ञा लेकर सेनापति अश्व रत्न पर चढ़े हुए दण्ड रत्न से प्रहार कर गुफा के किवाड़ों को खोलते हैं।।२४१।।२४२।।

उस समय भारी गर्जना से आवाज होती है, भयंकर गर्म हवा गुफा से निकलती है, सेनापति अश्व रत्न को उसी समय भगाकर बारह योजन दूर क्षेत्र लांघ जाते हैं।।२४३।।

भेदि गुफा का द्वार अनन्तर, करि प्रवेश उत्तरदिशि जाय।
उत्तर के त्रयखण्ड जीतकर, विजय प्राप्त करि वापस आय॥२४४॥

उत्तर दक्षिण भरत क्षेत्र के, त्रय त्रय खण्ड विजय कर जाय।
पंच म्लेच्छ इक आर्य खण्ड ये, विजय खण्ड षट् करते राय॥२४५॥

तब वृषभाचल पर्वत पर वह, अंकित चक्री नाम मिटाय।
रत्न कांकणी से उस गिरि पर, अपना नाम लिखें तिहं आय॥२४६॥

इस ही वृषभाचल पर देखें, चक्री भरत अनेकों नाम।
अन्य पूर्वचक्री अगिनत लखि, गलित हुआ उनका अभिमान॥२४७॥

यह पर्वत शत योजन ऊंचा, पच्चिस योजन नींव कहाय।
मूल मांहि शत योजन है अरु, मध्य पिचहत्तर योजन थाय॥२४८॥

गुफा का द्वार खुल जाने के पश्चात् गरम हवा शान्त होने पर गुफा में सैन्य के साथ चक्रवर्ती प्रवेश करते हैं और विजयार्ध के उत्तर के तीनों खण्डों को जीतते हैं तथा वहाँ के सब म्लेच्छ राजाओं को आधीन कर वापस लौटते हैं॥२४४॥

उत्तर भरत क्षेत्र और दक्षिण भरत क्षेत्र के तीन-तीन खण्डों को अर्थात् समस्त भरत क्षेत्र के पांच म्लेच्छ खण्ड और एक आर्य खण्ड इन छः खण्डों पर चक्रवर्ती विजय प्राप्त करते हैं॥२४५॥

उसके पश्चात् उत्तर भरत क्षेत्र के मध्य वृषभाचल पर्वत पर चक्रवर्ती आते हैं वहां पर अंकित हुए पूर्व चक्रवर्तियों में से किसी एक चक्रवर्ती के नाम को मिटाकर कांकणी रत्न से अपना नाम लिखते हैं॥२४६॥

प्रथम चक्रवर्ती भरत जब षट् खण्ड विजय प्राप्त करने पर इसी वृषभाचल पर्वत पर पूर्व में हुए असंख्य चक्रवर्तियों के नाम देखते हैं तो उसी समय उनका अभिमान चूर हो जाता है॥२४७॥

यह वृषभाचल पर्वत सौ योजन ऊंचा है और पच्चीस योजन इसकी नींव है। मूल में यह पर्वत सौ योजन विस्तार का है और बीच के भाग में यह पिचहत्तर योजन विस्तार वाला है॥२४८॥

शिखर पचास सुयोजन शोभित, रत्न विनिर्मित भवन सुहाय।
व्यन्तर देव रहें नित तिह थल, नाम भरा चक्री नरराय॥२४९॥

इति चक्रवर्ती वैभववर्णनम्।

नारायण वर्णन

नवनारायण नाम कहें तिन, प्रथम त्रपृष्ठ, द्विपृष्ठ कहाय।
और स्वयं भू पुरुषोतम हैं, पुरुष सिंह पंचम नरराय॥२५०॥
पुरुष पुण्डरिक और पुरुषदत्त, लक्ष्मण, कृष्ण भये बलवान।
ये सब नरक गये विधि बल तैं, निकट भव्य शिव लहैं सुजान॥२५१॥

कौन कहाँ गये ?

प्रथम नरायण गये सातवें और द्वितीय तैं षट् तक जान।
षष्टम नरक गये हैं ये पंच, पुरुषदत्त पंचम में मान॥२५२॥
लक्ष्मण चौथे नरक गये हैं, कृष्ण तीसरे नरक बताय।
राज त्याग संयम नहिं धारा, तातैं सर्व अधोगति जाय॥२५३॥

इसका शिखर पचास योजन है, उस पर रत्नों के बने महल हैं, जहाँ व्यन्तर देवों के रहने का स्थान है। यह समस्त पर्वत चक्रवर्तियों के नामों और प्रशस्तियों से भरा हुआ है॥२४९॥

इस प्रकार चक्रवर्ती का वर्णन समाप्त हुआ।

नारायण का वर्णन

नारायण जिन्हें वासुदेव भी कहते हैं वे नव होते हैं। वर्तमान नव नारायणों के नाम इस प्रकार हैं— १. त्रपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषदत्त, ७. पुण्डरीक, ८. लक्ष्मण, ९. कृष्ण। ये सब नारायण महाबलवान हैं। कर्म उदय से सब अधोगति में गये हैं किन्तु ये सब आसन्न भव्य हैं और बहुत शीघ्र कुछ ही भवों में मोक्ष जाएंगे॥२५०॥२५१॥

कौन नारायण कहाँ गये ?

पहले नारायण मरकर सातवें नरक गये और दूसरे से छठवें तक के पांच नारायण छठवें नरक में गये हैं, पुरुषदत्त पांचवें नरक में गये हैं, लक्ष्मण चौथे नरक में और कृष्ण तीसरे नरक में गये हैं, इन सब नारायणों ने राज्य त्याग कर संयम नहीं धारण किया, अतः सब नरक में गये हैं॥२५२॥२५३॥

प्रतिनारायण

अश्वग्रीव, तारक, मेरक अरु, है निशंभु मधुकैटभ जान।
बली प्रहरण रावण अरु अन्तिम जरासिंध ये नाम महान॥२५४॥

ये प्रतिनारायण नव जानहु, भूमि गोचरी एक कहाय।
शेष अष्ट विद्याधर कहिये, भोग भोगि सब नर्क लहाय॥२५५॥

ये त्रय खण्ड अधीश्वर जानहु, चक्री अर्ध महा बलवान।
नारायण के हाथों मृत्यु, होय नियम यह भाग्यविधान॥२५६॥

९ बलभद्र

विजय अचल सौधर्म सुप्रभु, और सुदर्शन नन्दी जान।
नन्दीमित्र राम अरु अन्तिम, पद्म कहे बलभद्र महान॥२५७॥

अष्ट आदिके मोक्ष गये हैं, नवमें पद्म स्वर्ग में जाय।
पंचम स्वर्ग गये वहतें चय, कृष्ण तीर्थ में मोक्ष लहाय॥२५८॥

प्रतिनारायण

इसी प्रकार नव प्रतिनारायण होते हैं उनके नाम हैं— १. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. निशंभु, ५. मधुकैटभ, ६. बली, ७. प्रहरण, ८. रावण, ९. जरासंध। ये नव प्रतिनारायण हैं, इनमें एक भूमिगोचरी और शेष सब विद्याधर थे। ये सभी भोगों को भोगकर नरक गये हैं।२५४।२५५॥

ये प्रतिनारायण तीन खण्ड के स्वामी बड़े बलवान अर्धचक्री कहलाते हैं, नारायण के हाथों से युद्ध में इनकी मृत्यु होती है, यह विधि का विधान है।२५६॥

९ बलभद्र

इसी अवसर्पिणी काल में नव बलभद्र हुये हैं, उनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. विजय, २. अचल, ३. सुधर्म, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. नन्दी, ७. नन्दीमित्र, ८. राम, ९. पद्म।२५७॥

इन नौ बलभद्रों में से प्रारम्भ के आठ ही मोक्ष गये हैं और नवमें बलभद्र पांचवें स्वर्ग में गये हैं, वे स्वर्ग से चयकर श्रीकृष्ण जब तीर्थंकर होंगे तब मनुष्य भव पाकर नियम से मोक्ष जाएंगे।२५८॥

नारायण के हैं ये भ्राता, प्रेम परस्पर रहा अगाध।
नारायण के शव को लेकर, भ्रमैं मास षट् मोह अबाध॥२५९॥

९ नारद

भीम महाभीम अरु रुद्रहि, महारूप अरु काल महान।
महाकाल दुर्मुख नरकमुख, और अधोमुख अन्तिम जान॥२६०॥
ये नव नारद कलह करावें, धर्मलीन कबहु हो जांय।
नारायण के काल माहि हो, ये मरि निश्चय नरक लहाय॥२६१॥

११ रुद्र

भीमावली, जितशत्रु कहाये, रुद्र विशालनयन मतिमान।
सुप्रतिष्ठ बल पुण्डरीक हैं, अजितंधर, जितनाभि सुजान॥२६२॥
पीठ, सात्यकीतनय अन्त में, रुद्र कहे एकादश जान।
ये भी नर तन धयकरि जावें, नरक माँहि पर भव्य महान॥२६३॥
ये विद्यानुवाद पूरव के, ज्ञाता रुद्र महान कहाय।
संयम भ्रष्ट निकट भव्यों में, कुछ ही भव में मोक्ष लहाय॥२६४॥

ये बलभद्र सब नारायण के भाई होते हैं, इनमें आपस में अगाध प्रेम होता है, नारायण की मृत्यु होने पर उसके शव को मोह से छः मास तक उठाकर भ्रमण करते हैं।२५९॥

नव नारद हुए हैं उनके नाम हैं— १. भीम, २. महाभीम ३. रुद्र, ४. महारूप, ५. काल, ६. महाकाल, ७. दुर्मुख, ८. नरक मुख, ९. अधोमुख ॥२६०॥

ये नव नारद प्रायः कलहप्रिय होते हैं, झगड़ा कराते रहते हैं। कभी–कभी धर्म कार्य में भी रत रहते हैं, नारायण के समय में ही होते हैं। मरकर नियम से नरक जाते हैं।२६१॥

११ रुद्र वर्णन

वर्तमान ११ रुद्रों के नाम इस प्रकार हैं— १. भीमावलि, २. जितशत्रु, ३. रुद्र, ४. विशालनयन, ५. सुप्रतिष्ठ, ६. बल, ७. पुण्डरीक, ८. अजितंधर, ९. जितनाभि, १०. पीठ, ११. सात्यकीतनय। ये ग्यारह रुद्र मरकर नरक में गये हैं। किन्तु निकट भव्य हैं, विद्यानुवाद पूर्व के ज्ञाता हैं, ये संयम से भ्रष्ट होते हैं, कुछ भवों में अवश्य मोक्ष जाएंगे॥२६२।२६३।२६४॥

प्रथम रुद्र तन धनुष पांच सौ, घटते घटते अन्त घटाय।
सात हाथ अन्तिम की काया, यों तन ऊंचाई समुझाय॥२६५॥
प्रथम रुद्र की आयुष जानहु, लाख तिरासी पूर्व महान।
घटते घटते अंतिम की है, वर्ष एक कम सत्तर जान॥२६६॥

कौन कहां गये?

पहले दूजे रुद्र गये हैं, सप्तम नरक माहि दुख पाय।
और तृतीय से सप्तम तक के, पांचों षष्टम नरक लहाय॥२६७॥
अष्टम रुद्र गये हैं पंचम, नरक माहि नव दशवें जान।
नर्क चतुर्थम गये अन्त के, रुद्र तीसरे नरक पयान॥२६८॥

त्रेशठशलाका पुरुष

तीर्थंकर चउवीस कहे अरु, द्वादश चक्रवर्ती मतिमान।
नौ बलभद्र नारायण नव हैं, प्रतिनारायण भी नव जान॥२६९॥
त्रेशठ शला पुरुष ये जानहु, कर्मभूमि में होय महान।
उत्सर्पिणी तीसरे होवें, अवसर्पिणी चतुर्थम जान॥२७०॥

पहले रुद्र का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा था, फिर क्रमशः घटते–घटते अन्तिम रुद्र का शरीर सात हाथ ऊंचा था॥२६५॥

प्रथम रुद्र की आयु तिरासी लाख पूर्व की थी, आगे के रुद्रों की घटते–घटते अन्तिम रुद्र की आयु उनसत्तर वर्ष की जानना॥२६६॥

कौन रुद्र मरकर कहाँ गये ?

पहले और दूसरे रुद्र मरकर सातवें नरक में गये हैं, वहां भयंकर दुःख को सहन कर रहे हैं, तीसरे से सातवें रुद्र तक पांच रुद्र छठवें नरक को प्राप्त हुए हैं॥२६७॥

आठवें रुद्र पांचवें नरक में गये हैं, नवमें और दशवें रुद्र चौथे नरक में गये हैं और अन्तिम ग्यारहवें रुद्र तीसरे नरक में गये हैं॥२६८॥

त्रेशठ शलाका पुरुष

त्रेशठ शलाका पुरुष होते हैं, वे इस प्रकार हैं— २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९. बलभद्र, ९ नारायण ९ प्रतिनारायण॥२६९॥

इस प्रकार ये त्रेशठ शलाका पुरुष कर्मभूमि में उत्सर्पिणी काल के तीसरे काल में और अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल में होते हैं॥२७०॥

कर्मभूमि में तीर्थंकर हों, त्रेशठ शला पुरुष इक साथ।
अधिक एकशत सत्तर जानहु, कम से कम विंशति जिननाथ।।२७१।।

सुख वर्णन

नर में चक्रवर्ति अति सुख है, चक्रवर्ति तैं सुख अति जान।
भोगभूमि में सौख्य अनन्ते, तातैं सौख्य अनन्ते मान।।२७२।।
है धरणेन्द्र अनन्ते तातैं, सौख्य अनन्त कहा सुरराय।
सुरपति सुख तें है अनन्त सुख अहमिन्द्र के सौख्य लहाय।।२७३।।
ये सब सौख्य कहावे जग में, पुण्य उदय सांसारिक सार।
सिद्धों के क्षण एक सौख्य का, कोई भी सम पावन पार।।२७४।।

भरत क्षेत्र के आगे के क्षेत्रों का वर्णन

भरत क्षेत्र के आगे हिमवन, गिरि है ताके आगे जान।
क्षेत्र हैमवत भोगभूमि है, कही जघन्य महासुख खान।।२७५।।

अधिक से अधिक समस्त कर्मभूमियों में तीर्थंकर और त्रेशठ शला के पुरुष यदि एक साथ हों तो एक सौ सत्तर होते हैं और कम से कम हों तो बीस होते हैं।।२७१।।

किससे किसको सुख अधिक है

मनुष्यों में सबसे अधिक चक्रवर्ती को सुख होता है, चक्रवर्ती से अनन्त गुणा सुख भोगभूमि के मनुष्यों को होता है, उससे अनन्त गुणा धरणेंद्रों को होता है, उससे अनन्त गुना इन्द्र को सुख है, इन्द्र से अनन्त गुना सुख अहमिन्द्रों को होता है।।२७२।।२७३।।

यह सब सुख सांसारिक जीवों का कहा है जो कि पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त होता है, सिद्धों के एक समय के सुख की कोई भी संसारी जीव समानता प्राप्त नहीं कर सकता है।।२७४।।

अन्य क्षेत्रों का वर्णन

भरत क्षेत्र के आगे उत्तर की तरफ हिमवान पर्वत है, उसके आगे हैमवत नाम का दूसरा क्षेत्र है, वहाँ जघन्य भोगभूमि की रचना है– वहाँ के जीवों को सुख ही सुख है, दुख नहीं है।।२७५।।

ताके आगे महा है मवन, गिरि आगे हरिक्षेत्र महान।
मध्यम भोगभूमि की रचना, आगे पर्वत निषध सुजान॥२७६॥

महा विदेह वर्णन

निषध गिरि के उत्तर में अरु, नीलगिरि के दक्षिण भाग।
क्षेत्र विदेह महा है शोभित, जम्बूद्वीप मध्य के भाग॥२७७॥

योजन तैंतीस सहस छ शतक, चौरासी योजन परिमाण।
ताँपर चार भाग उन्नीस है, यह विदेह चौड़ाई जान॥२७८॥

मध्य विदेह क्षेत्र लम्बाई, पूरब पश्चिम में परिमाण।
एक लक्ष योजन है विस्तृत, लवण सिंधु स्पर्शे तट जान॥२७९॥

सुमेरु पर्वत वर्णन

क्षेत्र विदेह मध्य है पर्वत, नाम सुदर्शन मेरु महान।
एक सहस योजन तल कहिये सहस निन्यानव भू परवान॥२८०॥

उसके आगे महाहिमवन पर्वत है, महाहिमवन के आगे हरि नाम का तीसरा क्षेत्र है उसमें मध्यम भोगभूमि की रचना है, हरि क्षेत्र के आगे निषध नाम का पर्वत है॥२७६॥

महाविदेह का वर्णन

निषध पर्वत के उत्तर में और नील पर्वत के दक्षिण में अर्थात् इन दोनों पर्वतों के मध्य में सबसे बड़ा विदेह क्षेत्र है। यह जम्बूद्वीप के बीच के हिस्से में पड़ता है॥२७७॥

यह महाविदेह तैंतीस हजार छः सौ चौरासी योजन और चार भाग उन्नीस प्रमाण विस्तार वाला है। इस प्रकार यह विदेह क्षेत्र की चौड़ाई का प्रमाण है॥२७८॥

विदेह क्षेत्र की लम्बाई पूर्व पश्चिम ठीक मध्य भाग में एक लाख योजन है दोनों किनारे लवण समुद्र को स्पर्श करते हैं॥२७९॥

विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में सुदर्शन नाम का सुमेरु पर्वत है, यह पर्वत सब पर्वतों से बड़ा है, एक हजार योजन पृथ्वी के नीचे इसकी नींव है और निन्यानवे हजार योजन पृथ्वी से ऊपर ऊंचा है॥२८०॥

चालिस योजन की चोटी है ऋतु विमान सुरपति तकसार।
नीचे बारह योजन चोटी, मुख पर चउ योजन विस्तार॥२८१॥

मेरु सुदर्शन के तल भूपर, भद्रशाल वन शोभित सार।
नाना उपवन से है शोभित, चउदिशि चैत्यालय शुभकार॥२८२॥

भद्रशाल वन पूरब पश्चिम, योजन बाईस सहस्र प्रमान।
दक्षिण उत्तर योजन द्वयशत, और पचास कहा परिमाण॥२८३॥

ताके ऊपर की कटनी पर, नंदन वन रमणीय अपार।
तिसपर वन अतिरम्य सुशोभित, नाम सौमनस अति सुखकार॥२८४॥

ये दो वन हैं चौड़े जानहु, पञ्च शतक योजन परिमाण।
अन्तिम उच्च शिखर पाण्डुक वन, चार शतक चौरानव जान॥२८५॥

एक–एक वन के चउदिशि में, चार–चार चैत्यालय जान।
यों हैं चार वनों के मिलि करि, चैत्यालय सोलह परिमाण॥२८६॥

चालीस योजन की इसकी चोटी (चूलिका) है, यह चूलिका सौधर्म स्वर्ग के ऋतु विमान से एक बाल के अन्तराल में है, अर्थात् एक बाल के अग्र भाग का ही फासला है। नीचे से यह चूलिका बारह योजन के विस्तार की है और ऊपर चार योजन विस्तार की है॥२८१॥

सुदर्शन मेरु के नीचे के भाग में भद्रशाल नाम का वन है, वह वन अनेक उपवनों से सुशोभित है उसकी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं॥२८२॥

यह भद्रशाल पूर्व और पश्चिम बाईस हजार योजन प्रमाण है और उत्तर दक्षिण दो सौ पचास योजन विस्तार वाला है॥२८३॥

भद्रशाल वन के ऊपर की कटनी पर बहुत सुन्दर नन्दन नाम का वन है, उसके ऊपर की कटनी पर सौमनस नाम का अत्यन्त आनन्ददायी वन है॥२८४॥

ये दोनों वन पांच सौ योजन के परिमाण चौड़े हैं, सौमनस वन के ऊपर अन्तिम पाण्डुक नाम का वन है यह वन चार सौ चुरानवे योजन चौड़ा है॥२८५॥

एक एक वन के चारों दिशाओं में चार–चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं, इस प्रकार सुदर्शन मेरु के चारों वनों में चारों दिशाओं में कुल सोलह अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं॥२८६॥

सोलह वापी निर्मल जलयुत, लम्बी योजन कही पचास।
पच्चिस योजन की चौड़ी है, महल सुशोभित देव निवास॥२८७॥
चारों वन में सबसे ऊंचा, पाण्डुक वन रमणीय महान।
पाण्डुकशिला चारविदिशा में, चार महारमणीय सुजान॥२८८॥
पाण्डुक, पाण्डुकंबला और है, रक्ता रक्तकंबला नाम।
तीर्थंकर के जन्म होय तब, सुर अभिषेक करें अभिराम॥२८९॥
पाण्डुक शिला बड़ी शत योजन, चौड़ी योजन कही पचास।
मोटी है वसु योजन जानहु, अर्द्ध चन्द्र आकार सुपास॥२९०॥
प्रथम शिला पर भरत क्षेत्र के, तीर्थंकर का हो अभिषेक।
द्वितियशिला पर हो विदेह के, पश्चिम तीर्थंकर अभिषेक॥२९१॥
तृतीय शिला पर ऐरावत के, तीर्थंकर अभिषेक कराय।
पूरव क्षेत्र विदेह जिनेश्वर, शिला चतुर्थम न्हवन कराय॥२९२॥

तथा निर्मल जल से भरी सोलह वापिकाएं हैं ये वापिकाएं पचास योजन लम्बी और पच्चीस योजन चौड़ी हैं, इनमें सुन्दर–सुन्दर महल हैं, जिनमें देवगण निवास करते हैं॥२८७॥

चारों वनों में सबसे ऊंचा पाण्डुक वन है, वह बहुत ही सुन्दर है उसके चार विदिशाओं में चार पाण्डुक शिलाएं हैं, उनके नाम हैं– १. पांडुक २. पाण्डुकंबला, ३. रक्ता, ४. रक्तकंबला। जब तीर्थंकरों के जन्म होते हैं, तब देवगण इन्हीं पाण्डुक शिलाओं पर अभिषेक करते हैं॥२८८॥२८९॥

पाण्डुकालिकाएं सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और मध्य भाग में आठ योजन मोटी हैं और अर्धचन्द्र के आकार की हैं।

विशेषार्थ :– इन पाण्डुक शिलाओं का वर्ण क्रमश: स्वर्ण, चांदी, तपाये हुए स्वर्ण और रक्त (लाल वर्ण) के समान है॥२९०॥

पहली पाण्डुक नाम की शिला पर भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है, दूसरी पाण्डुकंबला नाम की शिला पर पश्चिम विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है॥२९१॥

तीसरी रक्ता नाम की शिला पर ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है और चौथी रक्त कंबला नाम की शिला पर पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है॥२९२॥

सहस एक वसु ऊपर जानहु, सुरपति कलश ढुरैं बहुमान।
वदन उदर अवगाह कलश का, एक चार वसु योजन जान॥२९३॥

क्षीर समानसुनिर्मल जल लैं, क्षीरोदधि तैं सुरगण लाय।
तत्क्षण जन्में जिनवर पर सुर, ढौरें कलश महासुखदाय॥२९४॥

जय जय कार करैं सुरगण सब, हर्षित हो अभिषेक कराय।
इतना जल हो जाय तिहाँ पर, ज्योतिष देव विमान कंपाय॥२९५॥

पाण्डुक वन के मध्य विराजित, चालीस योजन चोटी जान।
तल में द्वादश योजन चौड़ी, ऊपर चउ योजन परिमाण॥२९६॥

है वैडूर्यरत्नमय राजित, कही चूलिका मेरु महान।
बाल एक अन्तर है जानहु, प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान॥२९७॥

जिनेन्द्र भगवान पर एक हजार आठ कलशों से इन्द्र और देवगण अभिषेक करते हैं, पाण्डुक शिला पर जो कलश ढुरते हैं उन कलशों का मुह एक योजन, उदर चार योजन और अवगाहना आठ योजन प्रमाण होती है॥२९३॥

दूध के समान सफेद जल को देवगण क्षीर समुद्र से लाते हैं और तत्काल के जन्में जिनेन्द्र भगवान पर बड़े आनन्द के साथ कलश ढोरते हैं॥२९४॥

सब देवगण हर्षित होकर जयजयकार करते हैं और बड़ी धूमधाम से अभिषेक करते हैं, अभिषेक का जल इतना हो जाता है कि ज्योतिष देवों के विमान जल से डोलने लग जाते हैं॥२९५॥

पाण्डुक वन के बीच में सुदर्शन मेरु की चूलिका अर्थात् चोटी चालीस योजन ऊंची है। नीचे उस चूलिका का विस्तार बारह योजन है और ऊपर चार योजन चौड़ी है॥२९६॥

यह चूलिका वैडूर्य रत्न के समान रत्नमयी है, बहुत सुन्दर है और प्रथम स्वर्ग के इन्द्र के ऋजु विमान से एक बाल अन्तराल में है॥२९७॥

पाण्डुक शिलाओं पर सिंहासन

पाण्डुकशिला चारपर चउदिशि, त्रय त्रयसिंहासन तिहँ थान।
मध्य सिंहासन जिनवर राजैं, दक्षिण प्रथम सुरेन्द्र सुथान॥२९८॥
उत्तर के सिंहासन तिष्ठैं, ईशानेन्द्र सुरेश महान।
सिंहासन रमणीय रतनमय, धनुष पञ्च शत ऊँचे जान॥२९९॥

मेरु पर्वत का और भी वर्णन

ढाई द्वीप में पञ्च मेरु हैं, प्रथम सुदर्शन उच्च महान।
विजय अचल अरु मन्दिर मेरु सु विद्युतमाली पंचम जान॥३००॥
प्रथम सुदर्शन मेरु उच्च है, इक लख योजन का विस्तार।
जम्बूद्वीप विदेह मध्य है, ताके वन का वर्णन सार॥३०१॥
तल में भद्रसाल तैं ऊंचा, नन्दन वन शत योजन पांच।
नन्दन तैं सौमनस उच्च है, साढ़े बासठ सहस पचास॥३०२॥
तापर ऊंचा पाण्डुक वन है, छत्तिस सहस सुयोजन जान।
यों है प्रथम मेरु का वर्णन, चारों का अब करूं बयान॥३०३॥

चारों पाण्डुक शिलाओं पर चारों दिशाओं में तीन-तीन सिंहासन हैं उसमें बीच के सिंहासन पर जिनेन्द्र भगवान विराजमान होते हैं और उनके दायें अर्थात् दक्षिण की तरफ सौधर्म इन्द्र विराजमान होते हैं और उत्तर की तरफ ईशान इन्द्र विराजमान होते हैं। ये सिंहासन अत्यन्त सुन्दर और रत्नमयी होते हैं और पांच सौ धनुष ऊंचे होते हैं।२९८।२९९॥

मेरु पर्वतों का वर्णन

ढाई द्वीप में पांच मेरु पर्वत हैं, उनमें पहला सुदर्शन मेरु सबसे ऊंचा व बड़ा है, दूसरा मेरु विजय, तीसरा अचल, चौथा मन्दिर मेरु और पांचवां विद्युन्माली पर्वत है।३००॥

प्रथम सुदर्शन मेरु जो कि एक लाख योजन ऊंचा है, यह जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र के बीच में है उसके वनों का वर्णन यहाँ किया जाता है।३०१॥

इस सुमेरु पर्वत के नीचे के भाग में भद्रसाल नाम का वन है, भद्रसाल वन से पांच सौ योजन ऊंचा नन्दन वन है, नन्दन वन से साढ़े बासठ हजार योजन सौमनस वन है, सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊंचा पाण्डुक वन है, यह तो सुदर्शन मेरु के वनों का वर्णन है अब चार मेरु का वर्णन करता हूं।३०२।३०३॥

चार मेरु वर्णन

द्वीप धातकी मध्य महागिरि, विजय अचल द्वय मेरु महान।
मन्दिर मेरु तथा विद्युत है, पुष्करार्ध में भी द्वय मान।।३०४।।
ये चउमेरु समान उच्च हैं, योजन सहस चुरासी जान।
चारों के तल में है राजित, भद्रशाल वन रम्य महान।।३०५।।
तिन पर नन्दन वन हैं ऊंचे, पञ्चशतक योजन परिमान।
नन्दन वन तैं ऊंचे सुमनस, साढ़े पचपन सहस प्रमान।।३०६।।
तिन पर चारों पाण्डुक वन हैं, योजन सहस अठाइस जान।
चारों मेरु समान चार वन, शोभा भी सबकी सम मान।।३०७।।
ये चउवन रमणीय महा अति, वर्णन इनका कर न सकाय।
प्रतिवन चार चार चैत्यालय, पञ्च मेरु अस्सी हो जाय।।३०८।।
पांचों मेरु मूल पृथ्वी में इक इक सहस सुयोजन मान।
चित्रा भू के तल तक जानहु, नींव मेरु सब एक समान।।३०९।।

चार मेरु वर्णन

धातकी खण्ड द्वीप के बीच में विजय और अचल नाम के दो मेरु पर्वत हैं उसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में भी मन्दिर मेरु और विद्युन्माली नाम के दो पर्वत हैं।।३०४।।

ये चारों मेरु चौरासी–चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं और सब चारों एक समान हैं, इन चारों मेरु पर्वतों के तल भाग में भद्रशाल नाम के वन हैं, भद्रशाल वनों के ऊपर पांच सौ योजन ऊंचे नन्दन वन हैं, नन्दन वन से साढ़े पचपन हजार योजन ऊंचे सौमनस वन हैं, सौमनस वनों से अट्ठाईस हजार योजन ऊंचे पाण्डुक वन हैं। ये चारों सुमेरु पर्वत पर समान चारों वन हैं। ये सब समान शोभा वाले हैं।।३०५।।३०६।।३०७।।

चारों ही वन अत्यन्त सुन्दर हैं जिनका वर्णन करना कठिन है, प्रत्येक वन के चारों दिशाओं में चार–चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं, इस प्रकार पांचों मेरु पर अस्सी जिन चैत्यालय हैं।।३०८।।

पांचों मेरु पृथ्वी के नीचे एक–एक हजार योजन हैं, अर्थात् इस चित्रा पृथ्वी के नीचे उन पांचों मेरु की नींव सबकी एक समान है।।३०९।।

मेरु जिनालय दिव्य अकृत्रिम, रत्नमयी हैं तोरण द्वार।
मणिमय स्वर्ण जड़ित अतिमहिमा, दिव्य विभूति न उनका पार॥३१०॥
एक एक चैत्यालय राजित, प्रतिमा अद्भुत इकशत आठ।
वीतराग छवि पल्यंकासन, समचतुरस्र आकार सुठाठ॥३११॥
चौसठ चंवर ढोलते चौसठ, युगल देव की प्रतिमा जान।
अनुपमदिव्य अलौकिक महिमा, सुरगण वंदे नित बहुमान॥३१२॥
यों हैं ढाई द्वीप मध्य में, पञ्च मेरु चउ चउ वन जान।
एक मेरु सोलह चैत्यालय, पञ्च मेरु अस्सी मतिमान॥३१३॥
मेरु पास रमणीय सुहाने, उत्तम भोग भूमि विख्यात।
देवकुरु उत्तरकुरु जानहु क्षेत्र विदेह मध्य सुविख्यात॥३१४॥
चउ गजदन्त गिरीश मेरुढिग, हस्तिदन्तसम रूप बखान।
माल्यवान अरु महासौमनस, विद्युत्प्रभ गंधमादन जान॥३१५॥

सुमेरु पर्वत पर जो अकृत्रिम चैत्यालय हैं वे रत्नमयी तोरण वाले द्वारों से युक्त हैं। मणि और स्वर्ण से युक्त अनेक दिव्य विभूति वाले हैं, उनकी महिमा का कोई पार नहीं पा सकता॥३१०॥

एक एक चैत्यालय में आश्चर्यकारी एक सौ आठ आठ वीतराग मुद्रा वाली पल्यंकासन प्रतिमायें विराजमान हैं, ये सब प्रतिमायें समचतुरस्र आकार की हैं॥३११॥

जिन प्रतिमाओं के आजू बाजू चौसठ देवगण चौसठ चमरें ढोरते हुए उन देवों की प्रतिमायें हैं वहां की शोभा की कोई उपमा नहीं दी जा सकती, देवगण वहाँ पर नित्यप्रति वंदना करने आते हैं और बड़ी भक्ति के साथ पूजन वंदन करते हैं॥३१२॥

इस प्रकार ढाई द्वीप में पांच मेरु पर्वत हैं एक एक मेरु पर चार चार वन हैं, एक एक वन में चार चार चैत्यालय हैं, इस तरह एक मेरु पर सोलह चैत्यालय हैं, पांचों मेरु पर मिलाकर अस्सी अकृत्रिम चैत्यालय हैं॥३१३॥

सुमेरु पर्वत के पास विदेह क्षेत्र के मध्य उत्तर और दक्षिण दिशा में उत्तम भोग भूमि हैं, जिनके नाम देवकुरु, उत्तरकुरु भोग भूमि हैं॥३१४॥

सुमेरु पर्वत के पास चार गजदन्त पर्वत हैं, ये हाथी के दन्त के समान आकार वाले हैं, इनके नाम हैं– १. माल्यवान, २. महासौमनस, ३. विद्युत्प्रभ, ४. गन्धमादन॥३१५॥

हैं वैडूर्यमणि चांदी सम, तप्तस्वर्ण अरु स्वर्ण समान।
क्रमश: वर्ण कहे गजदन्तन, नील निषधगिरि स्पर्शे जान।।३१६।।
पूरव पश्चिम के विदेह में, सीता सीतोदा तट जान।
चार विदेह कहावें तिहं थल, एक विदेह भाग अठ जान।।३१७।।
यों है जम्बूद्वीप मध्य मे, सर्व विदेह कहे बत्तीस।
ढाई द्वीप में कुल विदेह हैं, साठ एकशत भाषत ईश।।३१८।।
एक विदेह मध्य हैं राजित, बत्तिस बत्तिस देश महान्।
छ्यानव कोटि गाँव हैं उनमें, एक–एक उप जलधि सुजान।।३१९।।
उप समुद्र में छप्पन छप्पन, अन्तर द्वीप कहे सुविशाल।
छब्बिस सहस कहे रत्नाकर, रत्न उपजते नित्य रसाल।।३२०।।
देवकुरु उत्तरकुरु अन्तिक, वृक्षशाल्मली स्थल शुभ जान।
शाखायें तसु चार रत्नमय, रत्नविनिर्मित पत्ते मान।।३२१।।
सर्व शाल्मली वृक्षयोग मिलि, एक लक्ष चालीस हजार।
एक शतक विंशति हैं संख्या, रत्नमयी थुर रहे सम्हार।।३२२।।

ये चारों गजदन्त पर्वत क्रम से वैडूर्यमणि, चान्दी, तपाये स्वर्ण और स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं।।३१६।।

पूर्व विदेह और पश्चिम विदह में सीता और सीतोदा नदी के किनारों पर चार चार विदेह होते हैं, एक एक विदेह के आठ आठ भाग होते हैं। इस प्रकार जम्बू द्वीप में सब मिलाकर बत्तीस विदेह कहे जाते हैं।।३१७।।

ढाई द्वीप के कुल मिलाकर एक सौ साठ विदेह हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।।३१८।।

एक एक विदेह में बत्तीस बत्तीस देश है, एक एक देश में छियानवे करोड़ गांव है और एक एक उप–समुद्र है।।३१९।।

एक एक उप–समुद्र में छप्पन छप्पन अन्तर द्वीप है। उनमें छब्बिस हजार रत्नाकर हैं, जहां निरन्तर रत्न उत्पन्न होते रहते हैं।।३२०।।

विदेह क्षेत्र में जो देवकुरु उत्तरकुरु नाम से उत्तम भोग भूमि हैं, उनके पास की जगह में शाल्मली वृक्ष है। शाल्मली वृक्ष की चार महाशाखाओं पर रत्न निर्मित पत्ते हैं। ये वृक्ष अनादिनिधन हैं।।३२१।।

सभी शाल्मली वृक्ष मिलाकर एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस हैं– ये सब रत्नमयी तोरण और वेदियों से युक्त अकृत्रिम हैं।।३२२।।

पूर्व विदेह उभय तट सीता, देवारण्य कहा शुभ सार।
अपर विदेह सुसीतोदा तट, शोभित भूतारण्य अपार।।३२३।।
सीता सरिता उभय पार्श्व में, चउ चउ गिरि वक्षार महान।
तीन तीन सरिता विभंग युत, आठ आठ हैं क्षेत्र सुथान।।३२४।।
देवारण्य रु भूतारण्य हैं, शत उनतीस बीस द्वय सार।
योजन कहे एक इक जानहु, अतिरमणीय कहा विस्तार।।३२५।।
क्षेत्र विदेह सुसीता उत्तर, विजयारध दक्षिण दिशि जान।
रक्ता अरु रक्तोदा मध्याहि, आर्य खण्ड शोभित तिह थान।।३२६।।
क्षेमा नाम रम्य नगरी है, रजधानी चक्री की जान।
है अनादि रमणीय रत्नमणि, द्वादश योजन लम्बी मान।।३२७।।
नौ योजन की चौड़ी नगरी, एक सहस हैं गोपुर द्वार।
क्षुद्रद्वार हैं पञ्च शतक पुनि, द्वादश सहस वीथी हैं सार।।३२८।।

पूर्व विदेह के सीता नदी के दोनों तटों पर देवारण्य नाम का सुन्दर वन है और अपर विदेह की सीतोदा नदी के तट पर भूतारण्य नाम का महान वन है।।३२३।।

सीता नदी के दोनों पार्श्व भागों में चार चार वृक्षारगिरि हैं, वहां तीन तीन विभंग नदियों सहित आठ–आठ क्षेत्र हैं।।३२४।।

देवारण्य और भूतारण्य इन दोनों वनों का उनतीस सौ बाईस योजन विस्तार है, ये दोनों वन अत्यन्त रमणीय हैं।।३२५।।

विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर और विजयार्द्ध के दक्षिण में रक्ता और रक्तोदा नदी के बीच में एक आर्य खण्ड है।।३२६।।

उस आर्य खण्ड में क्षेमा नाम की बहुत सुन्दर नगरी है, यह चक्रवर्ती की राजधानी है, अनादि निधन है, रत्नों से भरी बहुत रमणीय है, बारह योजन की यह नगरी लम्बी और नौ योजन चौड़ी है, इस नगरी में एक हजार गोपुर द्वार हैं तथा पांच सौ क्षुद्र द्वार अर्थात् साधारण दरवाजे हैं। बारह हजार इस नगर में गलियां हैं।

विशेष– विदेह क्षेत्र की यह नगरी अनेक तरह के बाजार, मन्दिर, चौक, सुन्दर, वन उपवन सड़कें आदि से किसी भी शहर से अधिकतम सुन्दर हैं।।३२७।।३२८।।

और चतुष्पथ एक सहस हैं, रत्नविनिर्मित हैं प्रासाद।
विविध वापिका रम्य सरोवर, वन उपवन शोभितपुर आन।।३२९।।

तीर्थंकर अरु चक्रवर्ति तिहं, और केवली नित्य रहाय।
नारायण अरु ऋद्धिधारि मुनि, बलदेवादि बसें सुखदाय।।३३०।।

राजा अधिराजा महाराजा, मण्डलीक राजा तिहं होय।
अर्ध मण्डलिक महामण्डलिक, सकल मण्डलिक भी नृप होय।।३३१।।

म्लेच्छखण्ड हैं पञ्चतिहां पल बर्बरम्लेच्छ किरात निवास।
नाहल क्रूर पुलिंद वंश के, म्लेच्छ खण्ड में इनका वास।।३३२।।

म्लेच्छखण्ड के मध्य यहाँ भी, वृषभाचलगिरि शोभित आन।
मान गलित होवे चक्री का, भरतैरावत क्षेत्र समान।।३३३।।

पूर्वापर शुभ क्षेत्र विदेहहि, उत्तर पार्श्व महावन आन।
देवारण्य और है दूजा, भूतारण्य द्वय एक समान।।३३४।।

एक हजार इस नगरी में चतुष्पथ अर्थात् चौराहे हैं, रत्नों से बने बड़े–बड़े महल हैं, अनेक वापिकाएं तथा तालाब, बगीचे, वन आदि से नगरी शोभायमान है।।३२९।।

वहां पर नित्य तीर्थंकर, चक्रवर्ती, केवली, नारायण, ऋद्धिधारी मुनि, बलदेव, राजा, अधिराजा, महाराजा, मण्डलीक, अर्धमण्डलीक, महामण्डलीक, सकलमण्डलीक आदि राजा होते ही रहते हैं।।३३०।।३३१।।

वहां के मनुष्यों की आयु एक कोटिपूर्व तथा शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष नित्य होती है। आर्यखण्ड के अतिरिक्त शेष वहां पांच म्लेच्छ खण्ड हैं— बर्बर, म्लेच्छ, किरात, नाहल, पुलिंद आदि वंशों के मनुष्य रहते हैं।।३३२।।

म्लेच्छ खण्ड के बीच में भरत और ऐरावत क्षेत्र के समान वहां भी वृषभाचल पर्वत है, जो कि चक्रवर्ती के मान को भङ्ग करने वाला होता है, वहां चक्रवर्ती अपना नाम अंकित करते हैं।।३३।।

पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में देवारण्य और भूतारण्य नामक दो सुन्दर वन हैं, जिनका उल्लेख पूर्व में कर आये हैं, ये दोनों वन एक समान हैं।।३३४।।

विदेह क्षेत्र की कर्म भूमि का ऋतु वर्णन

सप्त मेघ तिहं सात सात दिन, बरसैं बरषा वर्षाकाल।
इकशत तैंतीस दिवस वर्ष में, होवे वरषा निश्चित काल॥३३५॥
नहिं विदेह में अनावृष्टि हो, नहिं अतिवृष्टि और अकाल।
मूसा टिड्डी शत्रुभय रञ्च न, ईतिभीति नहीं होय त्रिकाल॥३३६॥
कुलिङ्गी कुमति नर नहिं हों, मरी रोग नहिं प्लेग समाय।
हैजा, भूकंप, छूत रोग नहिं, परिवर्तन नहिं काल कदाय॥३३७॥
तीर्थंकर, अरुशाल पुरुष हों, मुनिह्वै कर्म नाशि शिवजाय।
महापुरुष अरु महानारी तिहं जन्में नाम अमर कर जाय॥३३८॥
है विदेह सब क्षेत्रों से बड़, क्षेत्र कहावे रम्य महान।
कर्मभूमि अरु भोग भोमि तिहं, दोऊ रचना नित्य सुजान॥३३९॥

इति विदेह क्षेत्र वर्णन

विदेह क्षेत्र की ऋतु का वर्णन

विदेह क्षेत्र में जहां कर्मभूमि है, वहां पर वर्षा काल में सात प्रकार के मेघ सात सात दिन बरसते हैं, वर्षा काल वहां एक सौ तैंतीस दिन का होता है॥३३५॥

विदेह क्षेत्र में अनावृष्टि अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष, मूसा, टिड्डी, स्वसैन्य, शत्रु सैन्य आदि सप्तभय सर्वथा नहीं होते। ईतिभीति त्रिकाल नहीं होते॥३३६॥

कुलिङ्गी, कुमति मनुष्य, मरी रोग, प्लेग, हैजा, भूकम्प, छूत रोग आदि वहां नहीं होते, काल का कभी भी विदेह में परिवर्तन नहीं होता है, सदा एक सा काल रहता है॥३३७॥

तीर्थंकर आदि त्रेसठशलाका पुरुष वहां निरंतर जन्मते रहते हैं। वहां के मनुष्य निरंतर मुनि होकर कर्मों को नाशकर मोक्ष जाते रहते हैं। महान पुरुष और नारी जन्म लेकर अपना नाम अमर कर जाते हैं॥३३८॥

सात क्षेत्रों में सबसे बड़ा विदेह क्षेत्र है, अत्यंत सुंदर रमणीय है—यहां कर्म भूमि और भोग भूमि दोनों रचनाएं एक साथ हमेशा बनी रहती हैं। ऐसी इस क्षेत्र की महिमा है॥३३९॥

इस प्रकार विदेह क्षेत्र का वर्णन समाप्त हुआ।

विदेह से आगे का वर्णन

है विदेह के अन्त महागिरि, नील क्षेत्र रम्यक शुभ जान।
मध्यम भोग भूमि की रचना है तिसथल हरिक्षेत्र समान।।३४०।।

उसके आगे रुक्मि महागिरि, महा हैमवत गिरिसम जान।
तागिरि अन्तिक क्षेत्र महाशुभ, है हैरण्यवत शुभ मान।।३४१।।

क्षेत्र हैमवत समजघन्य यह, भोग भूमि की रचना धाम।
आगे पर्वत रम्य उच्च है, शिखरि कुलाचल गिरिशुभ नाम।।३४२।।

शिखरि अन्त में क्षेत्र सुसप्तम, ऐरावत है भरत समान।
हों परिवर्तन काल तिहाँ थल, भरत तुल्य ऐरावत जान।।३४३।।

भरतक्षेत्र दक्षिणदिशि स्पर्शे, लवणोदधि जल निश्चय जान।
ऐरावत उत्तर में स्पर्शे, अर्द्ध चन्द्रसम दोऊ समान।।३४४।।

यों है जम्बूद्वीप मनोहर, द्वीप जलधि के मध्य सुजान।
एक लक्ष योजन है विस्तृत, लवणोदधि वेष्टित शुभ मान।।३४५।।

विदेह क्षेत्र के अन्त में नीलगिरि पर्वत है, उस नीलगिरि के आगे रम्यक क्षेत्र है, उसमें मध्यम भोग भूमि की रचना है यह क्षेत्र हरिक्षेत्र के समान है।।३४०।।

रम्यक क्षेत्र के आगे रुक्मि नाम का पर्वत है, यह महाहैमवत पर्वत के समान है। उस पर्वत के आगे हैरण्यवत नाम का क्षेत्र है।।३४१।।

यह क्षेत्र हैमवत क्षेत्र के समान जघन्य भोग भूमि की रचना वाला है, इस क्षेत्र के आगे शिखरी नाम का कुलाचल पर्वत है।।३४२।।

शिखरी पर्वत के अन्त में सातवां ऐरावत नाम का क्षेत्र है, यह भरत क्षेत्र के समान है, यहाँ पर भरत क्षेत्र की तरह काल का परिवर्तन होता रहता है।।३४३।।

भरत क्षेत्र तो जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र को स्पर्श करता है और ऐरावत क्षेत्र उत्तर की तरफ लवण समुद्र को स्पर्श करता है।।३४४।।

इस प्रकार असंख्य द्वीप और समुद्रों के बीच में यह जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन के विस्तार वाला है, यह द्वीप चारों ओर से लवण समुद्र से वेष्टित है, अर्थात् इसके चारों तरफ लवण समुद्र है।।३४५।।

जम्बूद्वीप में क्षेत्र और पर्वत

जम्बूद्वीप सुदर्शन गिरि इक, मेरु कुलाचल गिरि षट् जान।
चार यमक दो सौ कांचन गिरि, दिग्गज पर्वत वसु है मान।।३४६।।

अस्वक्षार गिरिषोडश हैं, शुभ गजदन्त सुपर्वत चार।
चौतिसविजयारध गिरिजानहु, वृषभाचल भी चउतिस सार।।३४७।।

चार नाभिगिरि पर्वत हैं सब, तीन शतक ग्यारह परिमाण।
चौदह नदी और द्रह छब्बिस, सप्त क्षेत्र शोभित शुभजान।।३४८।।

इकशत सत्तर म्लेच्छ खण्ड हैं, कर्मभूमि चउतीस प्रमान।
भोगभूमि षट् कूट पंचशत, अड़सठ जम्बूद्वीप सुजान।।३४९।।

यों है जम्बूद्वीप मध्य शुभ, गिरि अरु क्षेत्र नदी द्रह सार।
कर्म भूमि अरु भोग भूमि की, संख्याकूट सहित विस्तार।।३५०।।

अथ भोग भूमि वर्णनम्

जम्बूद्वीप असंख्यनु आगे, द्वीप जलधि अगनित नहीं पार।
तिनका वर्णन करूं प्रथम भवि, भोग भूमि वरणूं इत सार।।३५१।।

जम्बू द्वीप में क्षेत्र पर्वत आदि का वर्णन

जम्बूद्वीप में सुदर्शन नामक एक मेरु पर्वत है, छ: कुलाचल पर्वत हैं, चार यमक गिरि, दो सौ कांचन गिरि, आठ दिग्गज पर्वत, सोलह वक्षार गिरि, चार गजदन्त, चौंतीस विजयार्ध पर्वत, चौंतीस वृषभाचल, चार नाभिगिरि इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं, इसके अतिरिक्त चौदह बड़ी नदियां, छब्बीस द्रह, सात क्षेत्र, एक सौ सत्तर म्लेच्छ खण्ड, चौंतीस कर्म भूमि, छ: भोग भूमि और पांच सौ अड़सठ कूट हैं।।३४६।।३४७।।३४८।।३४९।।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में प्रमुख प्रमुख पर्वत, क्षेत्र नदी, द्रह, कर्म भूमि और भोग भूमि कूट आदि की संख्या का विस्तार समझना चाहिये।।३५०।।

अब भोग भूमि का वर्णन करते हैं

इसी जम्बूद्वीप के आगे असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनकी संख्या का पार नहीं है। उनका वर्णन अब मैं आगे करूंगा, उसके पहिले यहां भोग भूमि का वर्णन करता हूं।।३५१।।

ढाई द्वीप के मनुज लोक में, कर्मभूमि पन्द्रह हैं जान।
पंचभरत अरु पन्चैरावत, पन्च विदेह सुक्षेत्र महान।।३५२।।

त्रिंशत भोगभूमि शुभ जानहु, पन्च मेरु शोभित सुखकार।
पन्च हैमवत पन्च क्षेत्र हरि, रम्यक पन्च कही भूसार।।३५३।।

अरु हैरण्य क्षेत्रमधि सोहत, भोगभूमि शुभ पन्च कहाय।
देवकुरु उत्तर कुरु पंच पंच, यों विदेह मिलि तीस गिनाय।।३५४।।

भरतैरावत क्षेत्र माहिं हैं, प्रथम द्वितीय अरु तीजे काल।
भोगभूमि की रचना जानहु, अवसर्पिणी कही इस काल।।३५५।।

उत्सर्पिणी काल में कहिये, चौथा पंचम छठवां काल।
ये त्रयकाल सुभोग भूमि हैं, उलटे चलें नियत ये काल।।३५६।।

विंशति कोड़ा कोड़ी सागर, का है कल्पकाल इक मान।
कर्मभूमि द्वय कोड़ा कोड़ी, भोग भूमि अष्टादश मान।।३५७।।

ढाई द्वीप के अन्दर मनुष्य लोक में पन्द्रह कर्म भूमियां हैं, पांच तो भरत क्षेत्र में, पांच ऐरावत क्षेत्र में और पांच विदेह क्षेत्र में। इस प्रकार १५ कर्म भूमियां हैं।।३५२।।

और भोग भूमियां तीस हैं, पांच हैमवत, पांच हरि क्षेत्र, पांच रम्यक क्षेत्र, पांच हैरण्यवत क्षेत्र, पांच देवकुरु और पांच उत्तर कुरु जो कि विदेह क्षेत्र के अन्तरगत हैं इस प्रकार कुल तीस भोग भूमियां हैं।।३५३।।३५४।।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल में पहले, दूसरे तथा तीसरे काल में भोग भूमि की रचना होती है और उत्सर्पिणी काल में चौथा, पांचवां और छठवां काल में भोग भूमि की रचना होती है, क्योंकि अवसर्पिणी काल से उत्सर्पिणी काल उल्टा चलता है।।३५५।।३५६।।

एक कल्प काल बीस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है, उसमें दो कोड़ा कोड़ी सागर तो कर्म भूमि की रचना इन भरत और ऐरावत क्षेत्रों में होती है और अठारह कोड़ा कोड़ी सागर तक भोग भूमि की रचना होती है।।३५७।।

भोग भूमि में पुण्यवान ही, जन्म लेय भोगें सुख पाय।
मंद कषायी हो मिथ्यात्वी, पैशून्यादि रहित नर जाय॥३५८॥

पंच पाप के त्यागी अरु, ब्रह्मचारी नरमुनि दानी होय।
व्रतधारक मुनिभक्त दान दे, निर्मल परिणामी जो होय॥३५९॥

पापी जिनलिङ्गी तज नर हों, सम्यक्त्वी च्युत होवे कोय।
और कुलिङ्गी दान देय जो, भोगभूमि तिर्यञ्च हि होय॥३६०॥

भोगभूमि के नरपशु आयुष, नवमास जब शेष रहाय।
तबै गरभ में जीव आय तिहँ, रत्न महल सम तहां बसाय॥३६१॥

जन्मे युगल त्वरित मर जावें, दम्पति द्वय युग नर अरु नार।
पुरुष छींक जंभाई नारी, होवे और न दुःख लगार॥३६२॥

शरद मेघ सम छिन्न भिन्न सब, उनके तन होवे तत्काल।
जन्मे युगल युवा होते ही, दम्पति हो जावें खुशहाल॥३६३॥

भोग भूमि में पुण्यात्मा जीव ही जन्म लेते हैं, वहां जन्म लेकर सुख का भोग करते हैं, मंद कषाय वाले, मिथ्यात्वी पैशून्य आदि रहित तथा पांच पाप के त्यागी, ब्रह्मचारी, मुनि को आहार दान देने वाले, व्रती जिनेन्द्र व मुनि भक्त, निर्मल परिणाम वाले जीव भोग भूमि में जन्म लेते हैं।३५८।३५९॥

और जो मनुष्य पापी हों, मुनिव्रत धारण कर च्युत हो गये हों, सम्यक्त्व से गिर गये हों, कुलिंगियों को दान देते हों। ऐसे मनुष्य भोग भूमि में तिर्यंच होते हैं।।३६०॥

भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों की आयु के जब नौ महिना शेष रह जाते हैं, तब गर्भ में जीव कोई जाता है, रत्नों के महल के समान गर्भ स्थान होता है, किसी प्रकार का मलमूत्र आदि अशुद्ध पदार्थ मां के उदर में नहीं होते।३६१॥

जब बच्चे का जन्म होता है तब उसी समय पति पत्नी दोनों की मृत्यु हो जाती है। पुरुष को केवल छींक आती है और स्त्री को केवल जंभाई आती है और कोई कष्ट नहीं होता है।३६२॥

बालक शय्या ही में सोकर, अंगूठा चूंसे दिन सात।
पीछे सप्तदिवस तक जानहु, घुटने बल पुनि मंद चलात।।३६४।।
अरु सप्ताह तृतीय में मीठी, तुतली बोली बोले सोय।
चौथे में थिर पावहि चलि हैं, पंचम कला रूप गुण होय।।३६५।।
षष्ठम सप्ताहों में होवें, नव यौवन तिहि काल मंझार।
अरु सप्ताह सातवें लहि हैं, सम्यग्दर्शन योग्य सम्हार।।३६६।।
तीन दिवस अंगूठा चूंसें, त्रय दिन बैठें और चलाय।
त्रयदिन बोली बोलें पुनि वह, त्रय दिन थिरपग चलें सकाय।।३६७।।
तीनदिवस पुनिकला प्राप्त हो, पुनि त्रयदिन तारुण्य लहाय।
तापुनि त्रय दिन सम्यकित होवे, यों भी आगम में वरणाय।।३६८।।

शरद ऋतु के बादलों के समान उनके शरीर उसी समय छिन्न–भिन्न हो जाते हैं, वे ही युगल जो कि एक साथ जन्म लेते हैं। युवावस्था को प्राप्त होने पर पति पत्नी हो जाते हैं और वे बड़े प्रसन्न चित्त रहते हैं।।३६३।।

बच्चा शय्या पर सोते सोते सात दिन तक अंगूठा चूसता है, पीछे सात दिन तक घुटने के बल चलता है, तीसरे सप्ताह में मीठी मीठी तोतली भाषा बोलता है, चौथे सप्ताह में पांवों को जमाकर चलने लगता है। पांचवें सप्ताह में कला और रूप आदि गुणों वाला हो जाता है। छठवें सप्ताह में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और सातवें सप्ताह में सम्यग्दर्शन के धारण करने के योग्य हो जाता है।।३६४।।३६५।।३६६।।

भोग भूमि का मनुष्य जन्म लेने के पश्चात् तीन दिन तक अंगूठा चूसता है, तीन दिन में बैठना उठना प्रारम्भ करता है, फिर तीन दिन में बोलना प्रारम्भ करता है, पश्चात् तीन दिन में स्थिर पग से चलने लगता है, इसके पश्चात् तीन दिन में कला को प्राप्त होता है। उसके पश्चात् तीन दिन में युवावस्था को प्राप्त होता है, उसके पश्चात् तीन दिन में सम्यक्त्व को प्राप्त करने की योग्यता आती है, ऐसा भी आगम में वर्णन है।

विशेषार्थ– उत्तम भोगभूमि में युगल पुत्र पुत्री इक्कीस दिन में यौवन अवस्था को प्राप्त होते हैं और मध्यम भोगभूमि में युगल जन्में पुत्र पुत्री पैंतीस दिन में यौवन अवस्था को प्राप्त करते हैं जघन्य भोग भूमि में पुत्र पुत्री उनचास दिनों में युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।।३६७।।३६८।।

भोग भूमि में बल और सुख

भोग भूमि के नर का बल है, नौ सहस हाथी बल जान।
जहां न सर्दी और न वर्षा, निशा नहीं तम भय नहिं मान।।३६९।।

विरह न दीन प्रमाद न हो तिहं, नहिं कामज्वर भोग विच्छेद।
क्रोध लोभ माया अभिमान न, द्वेष विषमता और न खेद।।३७०।।

सर्प बिच्छू विकल त्रय नहिं हों, ऋतु परिवर्तन भी न होय।
नाहिं बुढ़ापा रोग न शोक न, निद्रा चिन्ता भी नहिं होय।।३७१।।

नहिं अकाल में मरण तिहां हो, अल्पायु न विरोध सुजान।
सुन्दर तन अरु रोग न बैर न, मंदकषायी मनुज मान।।३७२।।

चक्रवर्ति के सुख से भी सुख, अधिक तिहां पावे नर जान।
समचतुरस्त्रवज्र वृषभ हैं, शुभ संस्थान संहनन मान।।३७३।।

भोग भूमि के बल और सुख का वर्णन

भोग भूमि के मनुष्य का बल नौ हजार हाथियों के बराबर होता है। भोग भूमि में न तो सर्दी (शीत) पड़ती है, न वर्षा होती है, वहां रात्रि नहीं होती और किसी प्रकार का भय नहीं है।।३६९।।

वहां विरह का दुख नहीं है, वहां कोई गरीब नहीं, प्रमाद नहीं, कामज्वर नहीं, भोग का विच्छेद अर्थात् अभाव नहीं, क्रोध, लोभ, माया, अभिमान वहां के मनुष्यों में होता ही नहीं, द्वेष नहीं, विषमता नहीं, किसी भी प्रकार का खेद नहीं।।३७०।।

वहां पर विकलत्रय नहीं होते, सर्प बिच्छू आदि विषैले जन्तु नहीं होते, वहां ऋतुओं का परिवर्तन नहीं होता, भोग भूमि के मनुष्यों को न तो बुढ़ापा आता है, न कोई रोग होता है, न निद्रा, न चिन्ता होती है।।३७१।।

वहां अकाल मरण नहीं है, अल्प आयु नहीं, आपस में विरोध नहीं, सबका शरीर अत्यन्त सुन्दर होता है, शरीर में कभी भी कोई रोग नहीं होता, बैरभाव नहीं होते, वहां के मनुष्य सब मंदकषायी होते हैं।।३७२।।

चक्रवर्ती के सुख से भी वहां अधिक सुख होता है, वहां के मनुष्यों को समचतुरस्त्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन होता है।।३७३।।

दुग्ध मिष्टजल मधु घृतरस सम, निर्मल वापी मणिमय जान।
और सरोवर निर्मल जलयुत, भोगभूमि दर्पण सम मान॥३७४॥
जन्म मृत्यु इक साथ होय तिहं, दम्पति युगल सुनिश्चय मान।
'आर्य' पुरुष को और नारि को, 'आर्या' सम्बोधैं पहिचान॥३७५॥
मिथ्या दृष्टि मरि भवनत्रिक, देव योनिकों निहचै पाय।
सम्यग्दृष्टि भोग भूमि नर, प्रथम द्वितीय स्वर्गों में जाय॥३७६॥

कल्पवृक्ष वर्णन

भोग भूमि में कल्पवृक्ष हैं, दशविध तिनके हैं ये नाम।
तिनतें नरपशु इच्छित वस्तु, भोगेंभोग होय सब काम॥३७७॥
हैं मद्यांग और वादित्रि, भूषणाङ्ग मालांग कहाय।
अरु दीपांग ज्योति रंग गृह रंग, भोजनाङ्ग ये नाम बताय॥३७८॥
भाजनांग वस्त्रांग जाति के, कल्पवृक्ष ये दशविध जान।
इनतें पावें भोग विविध नर, पुण्योदय तें स्वर्ग समान॥३७९॥

वहाँ दुग्ध, मीठा जल, मधु, घृत के स्वाद के समान निर्मल जल की वापिकायें होती हैं, उनके तट सीढ़ी आदि मणियों की होती हैं। निर्मल जल के सरोवर होते हैं वहाँ की भूमि काँच के समान स्वच्छ होती है।३७४॥

भोग भूमि के मनुष्य दोनों युगल एक साथ जन्मते और मरते हैं, स्त्री पुरुष को आर्य कहकर सम्बोधित करती है और पुरुष नारी को आर्या कहकर सम्बोधित करते हैं।३७५॥

भोग भूमि के मिथ्यादृष्टि जीव मरकर भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं और सम्यग्दृष्टि पहले, दूसरे स्वर्ग में देव होते हैं।३७६॥

अब भोग भूमि के कल्पवृक्षों का वर्णन करते हैं

भोग भूमि में दस प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं, जिनसे वहाँ के मनुष्य और तिर्यंच मनवांछित भोग भोगते हैं। कल्प वृक्षों के नाम निम्न प्रकार हैं।३७७॥

१. मद्यांग, २. वादित्र, ३. भूषणांग, ४. मालांग, ५. दीपांग, ६. ज्योतिरंग, ७. गृहरंग, ८. भोजनांग, ९. भाजनांग, १०. वस्त्रांग। ये दस प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं, इन कल्प वृक्षों से भोग भूमि के मनुष्य स्वर्ग के देवों के समान भोग प्राप्त करते हैं। यह सब पुण्योदय से प्राप्त होते हैं।३७८।३७९॥

भोग भूमि में आहार

उत्तम भोग भूमि में नर का, बदरीफल सम है आहार।
मध्यम भोगभूमि में बहेड़ा, फलसम मानव का आहार॥३८०॥
अरु जघन्य भूमि में भोजन, कहा आंवले सम शुभ जान।
मंदकषायी जीव सभी हैं, नहिं निहार सब एक समान॥३८१॥

भोग भूमि में आयु व काय वर्णन

तीन दोय इक पल्यहि आयुष, तन त्रय दुय इक कोस प्रमान।
उत्तम मध्यम जघन यथाक्रम, भोगभूमि में नर तन जान॥३८२॥

छहों काल में आहार वर्णन

प्रथम काल में चौथे दिन है, बदरी फलसम अल्प अहार।
दूजे काल तीसरे दिन में, अक्ष समान लहें आहार॥३८३॥
तीजे काल दूसरे दिन में, है भोजन आंवले समान।
चौथे काल सुएक दिवस में, एक बार ही भोजन मान॥३८४॥
पंच काल माहिं भोजन है, प्रतिदिन पीव अनेकहिं बार।
षष्टम काल प्रचुरतम भोजन, बार बार नर करहिं अहार॥३८५॥

भोग भूमि के जीवों का आहार वर्णन

उत्तम भोग भूमि में मनुष्य का भोजन बदरीफल के बराबर होता है। मध्यम भोग भूमि में बहेड़ा के समान और जघन्य भोग भूमि में आंवले के समान आहार होता है। वहाँ के सभी मनुष्य मंदकषायी होते हैं उनके निहार (मलमूत्र) नहीं होता॥३८०।३८१॥

भोग भूमि में आयु व काय

उत्तम, मध्यम और जघन्य इन तीनों भोग भूमियों में क्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य की आयु होती है और शरीर यथाक्रम तीन कोस, दो कोस और एक कोस का होता है॥३८२॥

छहों कालों में आहार का वर्णन

पहले काल में चौथे दिन बैर के फल के समान थोड़ा सा आहार होता है। दूसरे काल में तीसरे दिन बेहड़ा फल के समान आहार होता है। तीसरे काल में दो दिन में आंवले के समान मनुष्यों का आहार होता है। चौथे काल में एक दिन में एक बार, और पांचवें काल में एक दिन में कई बार भोजन होता है— तथा छठवें काल में मनुष्यों का दिन में अनेकों बार प्रचुर मात्रा में भोजन होता है॥३८३।३८४।३८५॥

भोग भूमि में जन्म के कारण

उत्तम मध्यम जघन पात्र के, दान प्रभाव जनम नर पाय।
उत्तम मध्यम जघनहि क्रमशः, भोग भूमि में जन्म लहाय।।३८६।।
अरु कुपात्र को दान देय जो, मिथ्यादृष्टि जनम वो पाय।
जायकुभोग भूमि में निश्चय, तातैं भविजन बोध लहाय।।३८७।।

भोग भूमि में सम्यक्त्व के कारण

जाति स्मरण देवमुनि चारण का उपदेश तिहां भवि पाय।
सुखदुख अवलोकन जिनदर्शन, अरुस्वभाव सम्यक्त्व लहाय।।३८८।।

इति भोग भूमि वर्णनम्

अथ लवण समुद्र वर्णनम्

जम्बूद्वीप लक्षयोजन से, वेष्टित लवणोदधि चहुं ओर।
दोय लक्षयोजन का विस्तृत, दूना जम्बूद्वीप सुठौर।।३८९।।

भोग भूमि में जन्म के कारण

उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्र के दान देने से मनुष्य क्रम से उत्तम, मध्यम और जघन्य भोग भूमि में जन्म लेता है।।३८६।।

और कुपात्र को आहार देने से मिथ्या दृष्टि जीव मरकर कुभोग भूमि में जन्म धारण करता है। इसलिये भव्य जीवों को इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।।३८७।।

भोग भूमि में सम्यक्त्व के कारण

भोग भूमि में निम्न कारणों से— जाति स्मरण, देव और चारण– ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश तथा सुख–दुख अवलोकन एवं जिन प्रतिमा दर्शन और स्वभाव से भव्य जीवों को सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।।३८८।।

इस प्रकार भोग भूमि का वर्णन समाप्त हुआ।

अब लवण समुद्र का वर्णन करते हैं

एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप को घेरे हुये दो लाख योजन के विस्तार का लवण समुद्र नाम का समुद्र है। यह समुद्र जम्बूद्वीप से दूना विस्तार वाला है।।३८९।।

गोल खाईसम द्वीप घेरकर, चित्रा पृथ्वी पर है जान।
चित्रा भू के तल तें ऊंचा, सात शतक योजन परमान।।३९०।।

लवणोदधि के मध्य भाग में, चारों ओर कहे पाताल।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, एक सहस वसु कहें पताल।।३९१।।

सीमंतक बिल ऊपर जानहु, वज्र भित्तियुत ज्येष्ठ पताल।
भित्ती पांच शतक योजन हैं, मोटी दृढ़ हैं महापताल।।३९२।।

ज्येष्ठ पताल मध्य विदिशा में, मध्यम दृढ़तम हैं पाताल।
दशवां भाग ज्येष्ठ ते विस्तृत, हैं अनादि मध्यम पाताल।।३९३।।

उभय तटों से हो प्रवेश तब, सहस नव्याणव योजन मान।
पञ्च शतक योजनता ऊपर, करि प्रवेश पाताल हि मान।।३९४।।

प्रति पाताल भाग त्रय जानहु, पहले में वायु है जान।
दूजे में जल और पवन है, तीजे केवल जल है मान।।३९५।।

यह लवण समुद्र समस्त जम्बूद्वीप को घेरे हुये चित्रा पृथ्वी के ऊपर है। चित्रा पृथ्वी के नीचे के भाग से सात सौ योजन के परिमाण ऊंचा है।।३९०।।

इस लवण समुद्र के चारों तरफ उत्तम, मध्यम और जघन्य ऐसे तीन प्रकार के पाताल हैं, जिनकी संख्या एक हजार आठ है।।३९१।।

ये पाताल अधोलोक के सीमंतक बिल के ऊपर हैं, इनकी भित्ति अर्थात् दीवालें बहुत मजबूत वज्र की बनी हुई हैं। ये दीवालें बड़े उत्तम पातालों की पांच सौ योजन की मोटी हैं।।३९२।।

बड़े पातालों के बीच में विदिशाओं में मध्यम पाताल हैं ये मध्यम पाताल ज्येष्ठ पातालों से दशवें भाग परिमाण वाले हैं।।३९३।।

लवण समुद्र के दोनों तटों से प्रवेश करने पर नव्यानवे हजार पांच सौ योजन जाने पर ये पाताल आते हैं।।३९४।।

प्रत्येक पाताल के तीन-तीन भाग होते हैं, उनमें से पहले भाग में केवल हवा होती है, दूसरे में जल और हवा दोनों होते हैं, तीसरे भाग में केवल जल होता है।।३९५।।

शुक्ल पक्ष में पातालों में, पवन बढ़े क्रमश: अधिकाय।
कृष्ण पक्ष में घटता जाए, पूर्णमासी पूरा बढ़ि जाय।।३९६।।
पूनम के दिन पातालों के, तीन भाग में से धरिज्ञान।
तल के दोउ भाग वायु हो, ऊपरि भाग सलिल है मान।।३९७।।
और अमावस के दिन क्रमश: दोउ भाग ऊपर जल जान।
नीचे तल के भाग तीसरे, केवल पवन रहे यह मान।।३९८।।
पवन बढ़े जल बढ़े जलधि में, पवन घटे जल घटता जाय।
कृष्ण पक्ष में घटे इसी विधि, शुक्ल पक्ष जल बढ़ता जाय।।३९९।।
शुक्ल पक्ष में सागर जल यों, योजन सहस पंच बढ़ि जाय।
कृष्ण पक्ष में उतना ही जल, क्रमश: घटता घटता जाय।।४००।।
दिवस अमावस में हो जावे, लवणोदधि भू सदृश सुजान।
भूतल तैं ऊंचा लवणोदधि, योजन ग्यारह सहस प्रमान।।४०१।।
लवणोदधि के मध्य दोउ तट, नगरी अधिक सहस्रों जान।
जिनमें बहु प्रासाद बने हैं, उपवन जिन मन्दिर शुभ मान।।४०२।।

महिने में जब शुक्ल पक्ष आता है तब क्रम से धीरे–धीरे पातालो में हवा बढ़ती जाती है और कृष्ण पक्ष में क्रम–क्रम से हवा घटती जाती है प्रत्येक पूर्णमासी में हवा पूर्णत: वृद्धि को प्राप्त होती है।।३९६।।

पूर्णमासी के दिन पातालों के तीन भागों में से नीचे के दोनो भागों मे वायु और ऊपर के एक भाग में केवल जल रहता है।।३९७।।

तथा अमावस्या के दिन पातालों के ऊपर के दोनों भागों में जल रहता है और नीचे के एक भाग में केवल वायु रहती है।।३९८।।

ज्यो ज्यो पातालों में पवन बढ़ता जाता है त्यों त्यों समुद्र का जल भी बढ़ता जाता है और पवन घटता है तब जल भी घटता जाता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में समुद्र का जल घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में बढ़ता जाता है।।३९९।।

इस प्रकार समुद्र का जल शुक्ल पक्ष में पांच हजार योजन बढ़ जाता है और कृष्ण पक्ष में उतना ही घट जाता है।।४००।।

लवण समुद्र अमावस्या के दिन पृथ्वी के समान हो जाता है। यह समुद्र पृथ्वी के तल भाग से ग्यारह हजार योजन ऊंचा है।।४०१।।

लवण समुद्र के भीतर दोनों किनारों पर हजारो नगरियां बनी हुई हैं जिनमें अनेक महल बाग बगीचे आदि बने हुए हैं।।४०२।।

पातालों के अन्तिक जानहु, हैं वसु पर्वत उच्च महान।
योजन द्वयलख हैं विस्तृत ये, अर्ध घटक सम ऊंचे जान।।४०३।।

एक सहस योजन ऊंचाई रत्न रजत निर्मित गिरि मान।
तोरण वेदी महल अकृत्रिम व्यन्तर सुर का क्रीड़ा थान।।४०४।।

पातालों की पश्चिमदिशि में, कौस्तुभगिरि हैं शोभित जान।
कौस्तुभासगिरि पूर्व दिशा में हैं उतङ्ग रमणीय महान।।४०५।।

है कदम्ब पाताल हि उत्तर, उदकनाम गिरि रम्य महान।
उदकाभास नामगिरि, शोभित, दक्षिण दिशामाहि है मान।।४०६।।

बड़वामुख पाताल पूर्वदिशि, शंख महागिरि है शुभ थान।
पश्चिम दिशा माहि है जानहु, महाशंख गिरि शोभित मान।।४०७।।

लवण समुद्र के दोनों किनारों से बयालिस हजार योजन प्रवेश करने पर उक्त पातालों के पास में आठ पर्वत हैं, ये पर्वत सब मिलकर दो लाख योजन के विस्तार में हैं, इनकी आकृति अर्ध घटक अर्थात् आधे घड़े के समान है।।४०३।।

ये पर्वत ऊंचाई में एक–एक हजार योजन ऊंचे हैं, रत्नों से बनी हुई तोरण और वेदियों से युक्त हैं इनके ऊपर अनेक महल बने हुये हैं जिनमें व्यन्तर देव क्रीड़ा करते हैं।।४०४।।

लवण समुद्र के पातालों की पश्चिम दिशा मे कौस्तुभ गिरि नाम का और पूर्व दिशा में कौस्तुभास नाम का ये दो पर्वत दोनों दिशाओं में बहुत ऊंचे और रमणीय हैं।।४०५।।

कदम्ब पाताल की उत्तर दिशा में उदक नाम का पर्वत है और दक्षिण दिशा में उदकाभास नाम का पर्वत है।।४०६।।

उसी प्रकार बड़वामुख नामक पाताल की पूर्व दिशा मे शंख नाम का पर्वत है और पश्चिम दिशा मे महाशंख नाम का पर्वत है इनमें व्यंतर आदि देव क्रीड़ा करते हैं।।४०७।।

जम्बू द्वीप भूमि से योजन, आगे है बयालीस हजार।
सूर्य द्वीप के नामहि जानहु, अष्ट द्वीप शोभित हैं सार।।४०८।।
मणिमय द्वीप प्रकाशित हैं ये, होय रत्न से द्वीप प्रकाश।
ऐरावत के जलधि माहि हैं, मागध वर तनु द्वीप प्रभास।।४०९।।
लवणोदधि की चार दिशा में अन्तर चार दिशा परिमाण।
हैं वैताढ्य गिरीश आठ शुभ पर्वत शोभित रम्य महान।।४१०।।
लवणोदधि में हैं अड़तालिस, अन्तर द्वीप उभय तट सार।
पचपन पच्चिस और पचाससु योजन है तिनका विस्तार।।४११।।
हैं वनखण्ड सरोवर वापी, नदी आदि शोभित शुभ द्वीप।
रहते हैं तिहँ थान कुमानुष विविध रूप तन धरैं अजीब।।४१२।।
पूर्वादिक दिशि के द्वीपों में, एक आंख अरु सिंग पुछान।
पूंछ धरे गूंगे होते हैं, तिहाँ कुमानुस जन्महि जान।।४१३।।
आग्नेयादि चार विदिशा में चारों द्वीप कुमानुष जान।
कर्णशष्कुली कर्ण प्रावरण लम्ब कर्ण शशकर्ण समान।।४१४।।

जम्बू द्वीप की जगती से बयालीस हजार योजन जाते हुये सूर्य द्वीप नाम के आठ द्वीप हैं। ये द्वीप मणिमय दीपकों से प्रकाशित हैं तथा ऐरावत क्षेत्र के समुद्र में मागध, वरतनु और प्रभास आदि द्वीप हैं।।४०८।।४०९।।

लवण समुद्र की चार दिशाओं में सुंदर आठ वैताढ्य नाम के पर्वत हैं वे बड़े रमणीय हैं और शुभ हैं।।४१०।।

लवण समुद्र के दोनों तटों में अड़तालीस अर्थात एक–एक तट में चौबीस–चौबीस अंतर द्वीप हैं। वे अंतर द्वीप पचपन, पच्चीस और पचास योजन के विस्तार के हैं।।४११।।

ये अंतरद्वीप वनखंडों, सरोवरों, वापिकाओं और नदी आदि से सुशोभित हैं। उनद्वीपों में अनेक रूपवाले कुमानुष रहते हैं।।४१२।।

पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाओं के द्वीपों में कुमानुष एक आंख वाले, सिंग वाले, पूंछ वाले और गूंगे होते हैं।।४१३।।

आग्नेयादि चारों विदिशाओं में शष्कुली कर्ण वाले, ढके हुये कान वाले, लंबे कान वाले तथा शश अर्थात खरगोश जैसे कान वाले कुमानुष होते हैं।।४१४।।

अन्तर दिशामाहि चमुद्वीपहि, होय कुमानुष क्रमश: जान।
सिंह अश्व कुक्कुर महिष मुख, है वराह शार्दूल समान।।४१५।।

धूक और मर्कट समसुख के, होय कुरूप कुमानुष जान।
हिमवत पूर्वपश्चिम दिशि में, मत्स्यकाल मुख के नर मान।।४१६।।

दक्षिण विजयारध की प्रणिधि, माहि मेषमुख गोमुख जान।
शिखरिप्रणिधि में रहे मेघमुख, विद्युत मुखमानुष तिहँथान।।४१७।।

उत्तरविजयारधगिरि प्रणिधिहि मुखआदर्श हस्तिमुखमान।
एकोरुक नर गुफा माहि रह, शेष वृक्ष तल रहें सुजान।।४१८।।

मिट्टी खाते गुफा माँहि के, वृक्ष तले फल फूलहि खान।
खण्ड धातकी कालोदधि तट, चौईस चौईस द्वीप बताय।।४१९।।

यों है छ्यानव अन्तर द्वीपसु, वरणे ढाई द्वीप मंझार।
रहें कुमानुष अरु पशु जानहु, गर्भ जन्म नहिं दु:ख लगार।।४२०।।

अन्तर दिशाओं में स्थित कुमानुष क्रम से सिंह, अश्व, श्वान, महिष, वराह शार्दूल, धूक और बन्दर के मुख के समान मुख वाले हैं। तथा हिमवत पर्वत के पूर्व पश्चिम दिशाओं में क्रम से मत्स्य मुख और काल मुख वाले मनुष्य होते हैं।।४१५।।४१६।।

दक्षिण विजयार्ध पर्वत की सीमा पर मेषमुख और गोमुख वाले कुमानुष हैं तथा शिखरि पर्वत की सीमा में मेघमुख और विद्युत मुख वाले कुमानुष होते हैं।।४१७।।

उत्तर विजयार्ध की प्रणधि में आदर्श मुख और हस्ति मुख वाले कुमानुष होते हैं। इनमें से एकोरुक कुमानुष गुफाओं में रहते हैं, मीठी मिट्टी खाते हैं, शेष कुमानुष वृक्ष के नीचे रहते हैं और फलफूल खाते हैं। इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के कालोदधि समुद्र के तट में भी चौबीस–चौबीस अन्तर द्वीप हैं।।४१८।।४१९।।

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में छ्यानवे अन्तर द्वीप कहे गये हैं, वहा पर कुमानुष और पशु रहते हैं, उन्हें गर्भ जन्म आदि का दुख अल्प भी नहीं है।।४२०।।

धनुष सहस्र दो उच्चकाय है, मंदकषायी हैं नर जान।
वर्ण प्रियंगु के समश्यामहि, एक पल्य की आयुष मान।।४२१।।

कुमानुष कौन होते हैं ?

मिथ्यात्वी अरु मंदकषायी, प्रियवादी अरु कुटिल स्वभाव।
पंचाग्नी तप तपने वाले, अभिमानी मुनि निन्दक पाव।।४२२।।

पापी संयम तप विरहित जो, दुराचार युत मोही जान।
एक विहारी मुनि अरु क्रोधी, मुनि तप संयमच्युत नरमान।।४२३।।

और परिग्रह धारी ये सब, होय कुमानुष जन्म लहाय।
सम्यक्त्वी सौधर्म स्वर्ग में, मिथ्यात्वी भवनत्रिक जाय।।४२४।।

लवण समुद्र के मत्स्य का वर्णन

लवणोदधि का मत्स्य नदी मुख, नौ योजन लम्बी है काय।
साढ़े चार सुयोजन विस्तृत, मोटे दो योजन बतलाय।।४२५।।

उन कुमानुषों की शरीर की ऊंचाई दो हजार धनुष प्रमाण है, वे मंदकषायी होते हैं उनके शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान श्यामवर्ण का होता है और आयु एक पल्य की होती है।।४२१।।

कौन जीव मरकर कुमानुष होते हैं

जो मनुष्य मिथ्यादृष्टि हो, मंदकषाय वाले हों मधुर व प्रिय वचन बोलते हों, कुटिल अर्थात् कपट युक्त जिनका स्वभाव हो, तथा पंचाग्नि तप तपने वाले, अभिमानी एवं मुनियों की निन्दा करने वाले, पापी, संयम और तप से रहित, निंद्य आचरण वाले, मोही प्राणी, एकल विहारी मुनि, क्रोधकषायी, जिन लिंग धारण कर संयम से च्युत होने वाले तथा स्वर्ण आदि परिग्रह को धारण करने वाले हों वे मरकर कुमानुष होते हैं। जो सम्यग्दृष्टि हो वे मरकर प्रथम स्वर्ग में जाते हैं और मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक में देव होते हैं।।४२२।।४२३।।४२४।।

लवण समुद्र के मच्छ का वर्णन

लवण समुद्र में नदीमुख नाम का मच्छ नौ योजन लम्बा होता है उसके शरीर का विस्तार साढ़े चार योजन होता है तथा उसकी मोटाई दो योजन कही गई है।।४२५।।

मध्य भाग लवणोदधि में है, मध्य कहे दूने विस्तार।
शेष जलधि में विविध मत्स्य हैं, लघुअरु बड़े अनेक प्रकार।।४२६।।

और अनेक जीव जलचर हैं, कश्यप मेंढक मकर लहाय।
शिशुमार अहि आदि जीव हैं और अनेकों जीव समाय।।४२७।।

यों है लवणोदधि का वर्णन, सलिल स्वाद है लवण समान।
ताके आगे खण्ड धातकी, तिनका वर्णन करूं बखान।।४२८।।

इति लवण समुद्र वर्णनम्।

धातकी खण्ड द्वीप वर्णन

लवणोदधि से आगे वेष्टित, गोलद्वीप मण्डल आकार।
खण्ड धातकी द्वीप नाम है, विस्तृत है योजन लख चार।।४२९।।

वलयाकृति का गोल द्वीप यह, खण्ड धातकी है अभिराम।
मध्य द्वीप में वृक्ष धातकी, तातें पड़ा धातकी नाम।।४३०।।

लवण समुद्र के बीच मध्य में जो मच्छ हैं वे इससे दुगुने विस्तार के हैं तथा शेष बचे हुये लवण समुद्र में अनेक प्रकार के छोटे व बड़े आकार के मत्स्य होते हैं।।४२६।।

लवण समुद्र में और भी छोटी बड़ी विविध अवगाहना वाले कछुए, मगर, शिशुमार, मैंढक आदि अनेक जीव भरे रहते हैं।।४२७।।

इस प्रकार लवण समुद्र का संक्षेप से वर्णन यहां किया गया है। इस समुद्र का जल नमक के समान खारा है। अब मैं इससे आगे धातकी खण्ड का वर्णन करूंगा।।४२८।।

इस प्रकार लवण समुद्र का वर्णन समाप्त हुआ।

धातकी खण्ड द्वीप का वर्णन

लवण समुद्र को घेरे हुए गोल मण्डल के आकार का धातकी खण्ड नाम का दूसरा द्वीप है, यह द्वीप चार लाख योजन के विस्तार का है।।४२९।।

वलय (चूड़ी) के समान यह द्वीप गोल आकार का है, इस द्वीप के बीच में धातकी वृक्ष होने के कारण इसका धातकी खण्ड द्वीप नाम पड़ा है।।४३०।।

लवणोदधि कालोदधि मध्यसु, खण्ड धातकी द्वीप महान।
गोल चूड़िसम रचना जानहु, मेरु, क्षेत्र, गिरि दूने जान॥४३१॥

खण्ड धातकी दक्षिण उत्तर दो पर्वत हैं इष्वाकार।
लवणोदधि अरु कालोदधि को, स्पर्शे योजन एक हजार॥४३२॥

स्वर्णमयी रमणीय महाअति, बाण समान सुशोभित जान।
दोउ गिरि के पार्श्व भाग में, एक एक वेदी शुभ जान॥४३३॥

दोनों पार्श्व भाग वेदी के, तोरण वापी युक्त सुहाय।
हैं वनखण्ड सुरम्य भवन जिन युत प्रासाद देवचितभाय॥४३४॥

देव मनुज का वास तिहां पर, गिरि पर कूट चार अभिराम।
प्रथम कूट जिन भवन अकृत्रिम, शेष व्यन्तरों के पुरधाम॥४३५॥

लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के बीच में यह धातकी खण्ड द्वीप गोल चूड़ी के समान रमणीय महान शोभा वाला विशाल द्वीप है, इस द्वीप में दो मेरु पर्वत तथा भरतादि क्षेत्र दो दो तथा कुलाचल पर्वत भी दो दो की संख्या में है॥४३१॥

धातकी खण्ड द्वीप के दक्षिण और उत्तर भाग में इस द्वीप को विभाजित करने वाला दक्षिण उत्तर लम्बा एक एक इष्वाकार है अर्थात् दोनों तरफ दो इष्वाकार नाम के पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत लवण समुद्र तथा कालोदधि समुद्र को स्पर्श करते हैं, ये दोनो एक एक हजार योजन के विस्तार वाले हैं॥४३२॥

ये इष्वाकार पर्वत स्वर्णमयी हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं तथा इषु अर्थात् बाण के आकार के हैं, इन दोनों पर्वतों के पार्श्व भाग में एक एक वेदी सुन्दर बनी हुई है॥४३३॥

दोनों वेदियों के पार्श्व भाग में सुन्दर तोरणयुक्त वापिकाओं सहित वनखण्ड हैं, उनसे जिनेन्द्र भवन व देवताओं के चित्त को लुभाने वाले देव मनुष्यों युक्त भव्य प्रासाद हैं॥४३४॥

प्रत्येक पर्वतों के ऊपर चार चार उत्तम कूट हैं, उनमें प्रथम कूट पर जिन भवन हैं, शेष कूटों पर व्यन्तर देवों के पुर अर्थात् नगर हैं॥४३५॥

दोउ इस्वाकार मध्य में, भरत क्षेत्र हैं दो दो मान।
षट् कुलाचल भी दो दो हैं, मेरु महागिरि भी दो जान॥४३६॥
ये कुलाचल पर्वत शोभित, विविध सरोवर कुण्ड सुतान।
सरिता उपवन छवित सुंदर, महिमा अतिरमणीय महान॥४३७॥
जंबू द्वीपरु खण्ड धातकी में, सब पर्वत क्षेत्र समान।
इन सबकी शोभा समान है, विस्तृत हैं सब एक समान॥४३८॥
मेरु गिरि को छोड़ और सब गिरि सरिता हैं एक समान।
जम्बू द्वीप में एक एक हैं, खण्ड धातकी दो दो मान॥४३९॥
भरत और ऐरावत में हैं, दो दो विजयारध गिरि जान।
लवणोदधि अरु कालोदधि को, स्पर्शे दोनों पर्वत मान॥४४०॥
दक्षिण इष्वाकार सुपर्वत, पार्श्व दोय द्वै भरत सुजान।
उत्तर इष्वाकार पार्श्व में, ऐरावत दो क्षेत्र महान॥४४१॥
क्षेत्र पर्वत गाड़ी पहिये, के चक्के सम वर्णित जान।
पहिये के आरे सम गिरि हैं, मध्य छेद सम क्षेत्र बखान॥४४२॥

दोनों इष्वाकार पर्वतों के बीच में भरतादि सात क्षेत्र दो दो की संख्या में हैं, इसी तरह षट कुलाचल पर्वत भी दो दो की संख्या में अर्थात् जम्बू द्वीप से दूने दूने हैं। सुमेरु पर्वत भी धातकी खण्ड में दो हैं॥४३६॥

ये कुलाचल पर्वत अनेक प्रकार के तालाब कुण्ड, नदी, उपवन से सुशोभित अत्यन्त रमणीय हैं॥४३७॥

जम्बू द्वीप में और धातकी खण्ड द्वीप में क्षेत्र और पर्वत सब समान विस्तार वाले हैं। इनकी शोभा व रचना सब समान है॥४३८॥

सुमेरु पर्वत जम्बू द्वीप के सुदर्शन मेरु से कुछ ऊंचाई में कम हैं, शेष क्षेत्र, पर्वत, नदी आदि दोनों द्वीपों के समान हैं, संख्या में जम्बू द्वीप में एक एक है और धातकी खण्ड में दो दो हैं॥४३९॥

धातकी खण्ड के भरत और ऐरावत क्षेत्र में दो दो विजयार्ध पर्वत हैं जो कि एक तरफ लवण समुद्र को तथा दूसरी तरफ कालोदधि समुद्र को छूते हैं॥४४०॥

दक्षिण इष्वाकार पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में दो भरत क्षेत्र हैं तथा उत्तर इष्वाकार पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में दो ऐरावत क्षेत्र हैं॥४४१॥

ये क्षेत्र और पर्वत गाड़ी के पहिये के समान हैं। गाड़ी के चक्के के बीच के आरे के समान तो पर्वत है और आरों के बीच के छेद के समान क्षेत्र हैं॥४४२॥

क्षेत्र पर्वत खण्ड धातकी, में भी उनका है विस्तार।
हैं विदेह तक दूने दूने, आगे आधे आधे सार।।४४३।।
दो विदेह के मध्य दीप हैं, मेरु पर्वत महा विशाल।
चार चार वन षोडश षोडश, हैं जिन मन्दिर भव्य विशाल।।४४४।।
वलयाकृति सम गोल द्वीप है, खण्ड धातकी शुभ अभिराम।
वृक्ष धातकी मध्य द्वीप में, तातैं पड़ा धातकी नाम।।४४५।।
यों है द्वीप धातकी रचना गोल चूड़ी सम वर्णन सार।
लवणोदधि कालोदधि मध्य सु, लक्ष चार योजन विस्तार।।४४६।।

इति धातकी खण्ड वर्णनम्।

कालोदधि समुद्र एवं पुष्कर द्वीप वर्णन

खण्ड धातकी द्वीप अग्र है, कालोदधि सागर शुभ सार।
बेढ़े द्वीप सर्व दिशि जानहु, पूर्व द्वीप दूना विस्तार।।४४७।।

धातकी खण्ड में ये सब पर्वत और क्षेत्र विदेह क्षेत्र तक दूने दूने विस्तार के हैं और उससे आगे आधे आधे विस्तार के होकर प्रारम्भ व अन्त के क्षेत्र व पर्वत समान विस्तार के हैं।।४४३।।

इस धातकी खण्ड द्वीप में दो विदेह क्षेत्र हैं इन दोनों विदेहों में दो सुमेरु पर्वत हैं, जिनके नाम विजयमेरु और अचल मेरु हैं। प्रत्येक सुमेरु पर्वत में जम्बू द्वीप के सुदर्शन मेरु की तरह चार चार वन और सोलह सोलह अकृत्रिम चैत्यालय हैं। ये जिन भवन अत्यन्त भव्य एवं विशाल हैं।।४४४।।

यह धातकी खण्ड द्वीप गोल वलय के आकार वाला है, इसके बीच में धातकी नाम का पार्थिव वृक्ष होने से इस द्वीप का नाम धातकी पड़ा है।।४४५।।

इस प्रकार यह धातकी खण्ड द्वीप गोल चूड़ी के समान आकार वाला है जिसके एक तरफ लवण समुद्र तथा दूसरे तट पर कालोदधि समुद्र स्पर्श किए हुए है।।४४६।।

इस प्रकार धातकी खण्ड द्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

कालोदधि समुद्र एवं पुष्कर द्वीप वर्णन

इस धातकी द्वीप के आगे कालोदधि नाम का विशाल समुद्र है द्वीप को चारों ओर बेढ़े हुए अपने से पहले वाले धातकी द्वीप से दूना अर्थात् आठ योजन विस्तार का है।।४४७।।

कालोदधि में लवणोदधिसम, अन्तर द्वीप युगल तट जान।
तहँ कुमानुष तत्सम रचना, संख्या भी अड़तालिस मान।।४४८।।
कालोदधि है वसु लख योजन, द्वीप धातकी दूना जान।
यातें आगे द्वीप सुपुष्कर, षोडश लख सुयोजन मान।।४४९।।
कालोदधि को बेढ़े चहुदिशि, पुष्कर द्वीप विराजित सार।
यह भी गोल चूड़िसम जानहु, कालोदधि दूना विस्तार।।४५०।।
इसी द्वीप के मध्य सुशोभित, मनुषोत्तर गिरि एक महान।
यह भी गोल चूड़िसम जानहु, तातैं द्वीप भाग द्वय जान।।४५१।।
अर्धद्वीप कालोदधि अग्रिम, अर्ध द्वीप पर्वत उस पार।
ढाई द्वीप कहावे गिरि तक, सीमा मनुज लोक निरधार।।४५२।।
मानुषोत्तर शिखर मध्य में, मनुज लोक मर्यादा सार।
लख पैंतालिस योजन जानहु, ढाई द्वीप का है विस्तार।।४५३।।

इस कालोदधि समुद्र में लवण समुद्र के समान इसके दोनों तट पर चौबीस चौबीस अर्थात् कुल अड़तालीस कुभोग भूमियां हैं, जिनमें कुमानुष रहते हैं।।४४८।।

यह कालोदधि समुद्र ऊपर लिखे अनुसार धातकी खण्ड द्वीप से दूना आठ लाख योजन विस्तार का है। इसके आगे सोलह लाख योजन विस्तार का पुष्कर द्वीप है।।४४९।।

यह पुष्कर द्वीप कालोदधि समुद्र को चारों तरफ से बेढ़े हुए गोल चूड़ी के आकार कालोदधि समुद्र से दुगुने विस्तार वाला है।।४५०।।

इसी पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य भाग में गोल मानुषोत्तर नाम का महान् पर्वत है यह भी चूड़ी के समान गोलाकृति वाला है, इस पर्वत से पुष्कर द्वीप के दो भाग पड़ गये हैं।।४५१।।

आधा द्वीप कालोदधि समुद्र के आगे की तरफ है और आधा द्वीप मानुषोत्तर पर्वत के उस तरफ आगे है। जम्बू द्वीप से आधे पुष्कर द्वीप तक ढाई द्वीप की संख्या मानी जाती है, यह मानुषोत्तर पर्वत मनुष्य लोक की सीमा है।।४५२।।

मानुषोत्तर पर्वत के शिखर के ठीक बीच में मनुष्य लोक की सीमा निश्चित है। पैंतालिस लाख योजन ढाई द्वीप अर्थात् मनुष्य लोक का विस्तार है।।४५३।।

मनुषोत्तर गिरि के आगे नहिं, जांय मनुष कबहु उस पार।
केवल पशु अरु रहें देवगण, मानव तिहां रहें नलगार।।८५४।।

यदि कोई नर या विद्याधर, सीमा आगे बल करि जाय।
तत्क्षण उसके प्राण त्याग हो, कहा जिनागम नहिं शंकाय।।८५५।।

मानुषोत्तर पर्वत वर्णन

मनुष लोक की बाजू ऊंचा मनुषोत्तर है एक समान।
नीचे से ऊपर सम जानहु, दूजी तरफ न एक समान।।८५६।।

ढाई द्वीप की दूजी बाजू तल में चौड़ा अधिक प्रमान।
ऊंचा ऊंचा न्यून न्यून है, चौड़ा मनुषोत्तर गिरि जान।।८५७।।

कटे हुए फल भूपर रक्खे, सम है ऊंचा भिति समान।
एक सहस अरु सप्त शतक, इक विंशति योजन ऊंचा जान।।८५८।।

मानुषोत्तर पर्वत के उस पार कोई भी मनुष्य जीवित अवस्था में नहीं जा सकता केवल वहां पशु और देव रहते हैं, मनुष्य सर्वथा नहीं रहते।।८५४।।

अगर कोई मनुष्य या विद्याधर मनुष्य लोक की सीमा से आगे अपने बल से जाने का प्रयत्न भी करे तो उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाएगी ऐसा जिनागम में कहा है इसमें किसी को शंका नहीं करनी चाहिये।।८५५।।

मानुषोत्तर पर्वत

मानुषोत्तर पर्वत मनुष्य लोक की तरफ एक समान ऊंचा दीवाल की तरह है, तथा दूसरी तरफ एक समान नहीं होकर नीचे अधिक और ऊपर कम विस्तार की चौड़ाई वाला है, अर्थात् कटे हुये नींबू के चौथाई भाग को जमीन पर रखने के समान है।।८५६।।

ऊपर कहे अनुसार यह पर्वत इस तरफ समान ऊंचाई वाला व दूसरी तरफ ऊपर ऊपर ऊंचाई पर कम कम चौड़ाई वाला तथा नीचे अधिक चौड़ाई वाला है।।८५७।।

कटे हुये भूमि पर रक्खे फल के समान एक तरफ भिति के समान एक हजार सात सौ इक्कीस योजन ऊंचा है।।८५८।।

ऊपर मुख पर है चौड़ाई, व्यास चार सौ चौईस मान।
है भू भाग तले चौड़ाई सहस एक बाईस प्रमाण।।४५९।।

कालोदधि मनुषोत्तर मध्यसु, पुष्करार्ध यह द्वीप कहाय।
तामें द्वय द्वय भरत क्षेत्र हैं षट कुलाचल भी द्वय भाय।।४६०।।

इसमें भी गाड़ी पहिये सम क्षेत्र गिरि की रचना जान।
खण्ड धातकी सम मेरु द्वय, सब ही रचना एक समान।।४६१।।

ढाई द्वीप का विशेष वर्णन

ढाई द्वीप में पंच मेरु हैं, पांच भरत शुभ क्षेत्र सुजान।
ऐरावत भी पंच कहे हैं, पंच विदेह क्षेत्र परिमाण।।४६२।।

इस पर्वत की चौड़ाई ऊपर चोटी पर चार सौ चौईस योजन है, तथा पृथ्वी तल में एक हजार बाईस योजन प्रमाण चौड़ाई है।।४५९।।

कालोदधि समुद्र तथा मानुषोत्तर पर्वत के मध्य में जो आधा पुष्कर द्वीप है उसमें दो दो भरत क्षेत्र और दो दो षट कुलाचल पर्वत हैं।।४६०।।

इसमें भी गाड़ी के पहिये के आरे के समान धातकी खण्ड द्वीप की तरह क्षेत्र तथा पर्वतों की रचना है, इस पुष्करार्ध द्वीप में भी पूर्व पश्चिम भाग में दो सुमेरु पर्वत हैं, जिनके नाम मन्दिर मेरु और विद्युतमाली हैं ये दोनों सुमेरु पर्वत धातकी खण्ड के मेरु पर्वतों के समान ऊंचाई वाले अर्थात् चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं, इनकी रचना पूर्व मेरु पर्वतों के समान चार चार वन और सोलह सोलह चैत्यालयों से शोभायमान हैं।।४६१।।

ढाई द्वीप में क्षेत्र पर्वत आदि

अढ़ाई द्वीप में कुल पांच सुमेरु पर्वत हैं, पांच भरत क्षेत्र हैं, पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं, पांच विदेह क्षेत्र हैं।।४६२।।

पन्द्रह कर्म भूमि अतिशोभित, भोगभूमि त्रिंशत परिमाण।
पंच हैमवत पंच क्षेत्र हरि, रम्यक पंच पंच शुभ जान॥४६३॥

अरु हैरण्य क्षेत्र में सोहत, भोगभूमि शुभ पंच कहाय।
देव कुरु उत्तर कुरु में भी पंच पंच यों तीस गिनाय॥४६४॥

पंच भरत अरु पंचैरावत, पंच विदेह सुक्षेत्र मंझार।
पन्द्रह कर्मभूमि हैं जानहु मनुज लोक के मध्य सम्हार॥४६५॥

कर्मभूमि में तीर्थंकर हों त्रेशठ शला पुरुष इक साथ।
अधिक एक शत सत्तर जानहु, न्यून विंशति हों जिन नाथ॥४६६॥

जम्बूद्वीप सुदर्शन मेरु सु, इक लख योजन ऊंचा मान।
और धातकी पुष्करार्ध में, द्वै द्वै मेरु उच्च परिमाण॥४६७॥

इन चारों की है ऊंचाई, योजन सहस चुरासी जान।
पांचों मेरु मूल में सम हैं, सहस सहस योजन इक मान॥४६८॥

इसी प्रकार सभी क्षेत्र और पर्वत पांच पांच हैं तथा पन्द्रह कर्म भूमि, तीस भोगभूमि हैं, ये तीस भोगभूमि इस प्रकार हैं, पांच हैमवत हैं, पांच हरि में, पांच रम्यक में, पांच हैरण्यवत में तथा पांच देव कुरु में एवं पांच उत्तर कुरु में इस प्रकार सब मिलाकर ढाई द्वीप में तीस भोग भूमियां हैं, ये भोग भूमियाँ शाश्वत हैं॥४६३॥४६४॥

पांच भरत क्षेत्र में, पांच ऐरावत क्षेत्र में और पांच विदेह क्षेत्र में, इस प्रकार पन्द्रह कर्म भूमियाँ मनुष्य लोक में हैं॥४६५॥

ढाई द्वीप की कर्म भूमि में तीर्थंकर और त्रेशठ शला के पुरुष एक साथ अधिक से अधिक हों तो एक सौ सत्तर होते हैं और कम से कम हों तो बीस तो नियम से होते ही हैं॥४६६॥

जम्बू द्वीप में जो सुदर्शन मेरु पर्वत है वह एक लाख योजन ऊंचा है तथा धातकी खण्ड एवं पुष्करार्द्ध द्वीप में जो दो दो सुमेरु पर्वत हैं उन चारों पर्वतों की ऊंचाई चौरासी चौरासी हजार योजन हैं, ये पांचों ही सुमेरु पर्वत मूल में एक एक हजार योजन बराबर हैं॥४६७॥४६८॥

मनुषोत्तर पर्वत के आगे, पुष्कर द्वीप अर्ध शुभ जान।
आगे पुष्कर जलधि सुशोभित द्वीप समुद्र असंख्य प्रमान।।८६९।।

एक दूसरे से हैं वेष्टित, दूने दूने हैं विस्तार।
जम्बू द्वीप मध्य में पहला, अन्तिम जलधि स्वयं भू सार।।८७०।।

द्वीप अन्त में सागर जानहु, सागर अन्त द्वीप हैं जान।
पहले द्वीप अन्त में सागर मध्य लोक रचना यों मान।।८७१।।

सागर में पहला लवणोदधि, अन्त स्वयंभूरमण कराय।
जम्बूद्वीप प्रथम द्वीपों में अन्त स्वयं भू द्वीप सुहाय।।८७२।।

लवणोदधि कालोदधि में अरु अन्तिम जलधि स्वयंभू मान।
जलचर जीव कहे इनमें ही और जलधि नहिं जीव लगान।।८७३।।

ढाई द्वीप मनुषोत्तर आगे अर्ध स्वयंभू द्वीप मंझार।
है जघन्य तिहं भोगभूमि फिर, स्वयं प्रभ पर्वत इस पार।।८७४।।

मानुषोत्तर पर्वत के आगे आधा पुष्कर द्वीप है, उसके आगे पुष्कर नाम का समुद्र है, पुष्कर समुद्र के आगे असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, वे एक दूसरे को घेरे हुए गोल चूड़ि के समान दून दूने विस्तार वाले हैं। उन सब में सबके मध्य में पहला जम्बू द्वीप है और अन्त में स्वयंभूरमण नाम का समुद्र है।।८६९।।८७०।।

प्रत्येक द्वीप के अन्त में समुद्र है और समुद्र के अन्त में द्वीप है, सर्वप्रथम द्वीप है और सबके अन्त में समुद्र है, इस प्रकार मध्य लोक की रचना है।।८७१।।

समुद्र में पहला समुद्र लवण समुद्र और अन्तिम समुद्र स्वयंभू रमण है तथा द्वीपों में पहला जम्बू द्वीप है और अन्तिम स्वयंभू नाम का द्वीप है।।८७२।।

लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र तथा अन्त के स्वयंभूरमण समुद्र में जलचर जीव हैं और समुद्रों में सर्वथा जलचर जीव नहीं हैं।।८७३।।

ढाई द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत से आगे आधे स्वयंभू द्वीप तक स्वयंप्रभ पर्वत के इस ओर जघन्य भोगभूमि की रचना है।।८७४।।

तीन तरह के मानुष कहिये, हैं पर्याप्त निवृत्त पर्याप्त।
और लब्ध्य पर्याप्त कहावें, आर्य खण्ड में तीनों प्राप्त।।८७५।।

गुणस्थान आदि

मनुष्य लोक में कर्मभूमि में पहले से चौदह गुण थान।
भोगभूमि में दो ही जानहु पहला या चौथा मतिमान।।८७६।।

विद्याधर की श्रेणी जानहु, पहला, चौथा, पंचम मान।
विद्या त्यागि होय मुनि चौदह गुनिश्रुत धारि लहैं शिव थान।।८७७।।

मनुष जन्म तैं दशही प्राणहु, संज्ञायें भी चउ नर लोक।
पंचेन्द्रिय अरु योग त्रयोदश, दर्शन ज्ञान दोउ उपयोग।।८७८।।

तीनों वेद मनुष में होंवे, वेद रहित नवमें गुण थान।
सभी कषायें नर के होंवे, दशवें आगे एक न जान।।८७९।।

गर्भ जन्म अरु सम्मूर्च्छन हैं दोऊ जन्म लहैं नर मान।
तीन पल्य की उत्तम आयुष अन्तर मुहुरत न्यून सुजान।।८८०।।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं एक पर्याप्तक दूसरे निर्वृत्य पर्याप्तक तीसरे लब्ध्य पर्याप्तक, ये तीनों प्रकार के मनुष्य आर्य खण्ड में होते हैं।।८७५।।

गुणस्थान आदि वर्णन

मनुष्य लोक में कर्मभूमि में पहले से चौदह गुणस्थान होते हैं। तथा भोगभूमि में पहला या चौथा ये दो ही गुणस्थान होते हैं।।८७६।।

विद्याधरों की श्रेणी में पहला, चौथा और पाँचवा ये तीन गुणस्थान होते हैं। विद्याधर यदि विद्या को छोड़कर मुनि हो जाय तो उनके चौदह ही गुणस्थान होते हैं, अर्थात् वे कर्मों को नाशकर मोक्ष जा सकते हैं।।८७७।।

मनुष्य के जन्म से ही, दशों प्राण होते हैं तथा चारों संज्ञायें, पाँच इन्द्रिय, तेरह योग, दोनों उपयोग, तीन वेद, वेद रहित नवमें गुणस्थान के ऊपर के होते हैं। कषायें पच्चीस, दशवें गुणस्थान से ऊपर वाले कषाय रहित होते हैं।।८७८।।८७९।।

दो प्रकार के जन्म, गर्भ और सम्मूर्च्छन, तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु और जघन्य अन्तर मुहूर्त की आयु होती है।।८८०।।

नरयोनि में सप्त योनि हैं शीत, उष्ण शीतोष्ण सुजान।
सचित अचित अरु सचिताचित हैं तथा निवृत ये सप्त बखान।।४८१।।

अरु योनि के भेद चुरासी लक्ष विशेष कहे जिनराय।
तामें चौदह लक्ष मनुज की योनि जिन आगम बतलाय।।४८२।।

इति ढाई द्वीप मनुष्य लोक वर्णनम्।

१६ द्वीप व समुद्र

मेरु तल तैं लक्ष सुयोजन ऊंचा तिर्यक लोक प्रमाण।
लम्बा चौड़ा है इक राजू, लोक पूर्ण है थावर थान।।४८३।।

मध्य लोक चित्रा भू ऊपर, द्वीप असंख्य समुद्र अपार।
तिनमें षोडश षोडश के हैं, नाम कहे जिन आगम सार।।४८४।।

प्रथम द्वीप अरु प्रथम जलधि तैं षोडश तक ये नाम कहाय।
अन्तिम जलनिधि द्वीपहि अन्तिम तैं षोडश के नाम बताय।।४८५।।

नरयोनियों में शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त और सचित्ता चित्त तथा निवृत्त ये सात योनियां मनुष्यों में होती हैं।।४८१।।

दूसरे प्रकार से जो समस्त संसारी जीवों के योनि के चौरासी लाख भेद जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं उनमें मनुष्य के चौदह लाख योनि होती हैं।।४८२।।

इस प्रकार ढाई द्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

सुमेरु पर्वत के तल भाग से लेकर एक लाख योजन ऊंचा तिर्यक लोक है, यह लम्बा चौड़ा एक राजू प्रमाण है तथा स्थावर लोक सम्पूर्ण लोक के बराबर विस्तार वाला है।।४८३।।

मध्य लोक की इस चित्रा पृथ्वी पर असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनमें से सोलह सोलह तो प्रारम्भ के और सोलह सोलह अन्त के नाम जिनागम में वर्णित हैं।।४८४।।

उन द्वीप और समुद्रों में पहले द्वीप से और पहले समुद्र से लेकर सोलह द्वीप और समुद्र तथा अन्तिम समुद्र और अन्तिम द्वीप से प्रारम्भ कर सोलह सोलह नाम निम्न प्रकार बताये गये हैं।।४८५।।

जम्बूद्वीप, धातकी, पुष्कर, वारुणीवर अरु क्षीर सुनाय।
घृतवर, क्षौद्र और नन्दीश्वर, अरुण और है अरुणाभास।।४८६।।

कुण्डलवर, अरुशंख, रुचिकवर और भुजंगवर कुशवरजान।
सोलहवा है द्वीप क्रौंचवर, आगे अगिनित द्वीप महान।।४८७।।

१६ समुद्र

लवण समुद्र प्रथम है जलनिधि, कालोदधि पुष्करवर जान।
वारुणीवर अरु क्षीर जलधि है, घृतवर और क्षौद्र शुभ मान।।४८८।।

नन्दीश्वर, अरु जलधिअरुणवर, अरुणाभास समुद्र महान।
कुण्डलवर अरु नाम शंखवर, रुचक, भुजंगवर, कुशवर जान।।४८९।।

सोलहवां है जलधि क्रौंचवर, हैं असंख्य आगे नहिं पार।
अन्तिम तैं षोडश के अब में, द्वीप समुद्र कहूं विस्तार।।४९०।।

---

१. जम्बू द्वीप, २. धातकी खण्ड, ३. पुष्करवर, ४. वारुणीवर, ५. क्षीरवर, ६. घृतवर, ७. क्षौद्रवर, ८. नन्दीश्वर, ९. अरुणवर, १०. अरुणाभास, ११. कुण्डलवर, १२. शंखवर, १३. रुचकवर, १४. भुजंगवर, १५. कुशवर, १६. क्रौंचवर। इस प्रकार ये प्रारम्भ के द्वीप से सोलह द्वीपों के नाम हैं। आगे असंख्यात द्वीप बड़े बड़े विशाल हैं।।४८६।।४८७।।

उसी प्रकार प्रारम्भ के समुद्र से लेकर १६ समुद्रों के नाम निम्न प्रकार हैं— १. लवण समुद्र २. कालोदधि समुद्र, ३. पुष्करवर, ४. वारुणी वर, ५. क्षीर सागर, ६. घृतवर, ७. क्षौद्रवर, ८. नन्दीश्वर, ९. अरुणवर, १०. अरुणाभास, ११. कुण्डलवर, १२. शंखवर, १३. रुचकवर, १४. भुजंगवर, १५. कुशवर, १६. क्रौञ्चवर। इनके आगे असंख्यात समुद्र हैं। अन्तिम द्वीप और अन्तिम समुद्र से प्रारम्भ कर भीतर के भाग के १६ द्वीप और १६ समुद्रों के नाम का वर्णन करता हूं।।४८८।।४८९।।४९०।।

अन्तिम प्रथमस्वयंभूजलनिधि, तो फिरअहीन्द्रवर शुभ नाम।
तृतीय देववर और यक्षवर, तथा भूतवर जलधि सुनाम॥४९१॥

और कहे वैडूर्य वज्रवर, कांचन और रूप्यवर जान।
हिंगुल अंजनवर अरु श्याम हि, सिन्दुर अरु हरिलाल महान॥४९२॥

सोलहवां है जलनिधि सुन्दर मनः शील शुभ नाम सुहाय।
जो समुद्र के नाम बताये वे ही द्वीप नाम बतलाय॥४९३॥

समुद्रों के जल का स्वाद

लवणोदधि के जल का जानहु, लवण समान क्षार रस जान।
क्षीरोदधि का स्वाद दुग्धसम, घृतवर का घृतसमरस मान॥४९४॥

कालोदधि अरु पुष्करवर का तथा स्वयंभू रमण महान।
इनके जल का स्वाद नीरसम, है सामान्य न अन्तर जान॥४९५॥

शेष समस्त जलधि का जल है इक्षुरस के सम है स्वाद।
यों समुद्र के जल का रस है, इनको भविजन करलो याद॥४९६॥

---

१. स्वयंभूरमण समुद्र, २. अहीन्द्रवर, ३. देववर, ४. यक्षवर, ५. भूतवर, ६. नागवर, ७. वैडूर्य, ८. वज्रवर, ९. कांचन, १०. रूप्यवर, ११. हिंगुल, १२. अंजनवर, १३. श्याम, १४. सिन्दूर, १५. हरिलाल, १६. मनः शील। ये १६ नाम अन्तिम समुद्र से प्रारम्भ कर भीतर की तरफ के हैं। उसी प्रकार १६ द्वीपों के भी वे ही नाम हैं जो नाम समुद्रों के नाम हैं॥४९१॥४९२॥४९३॥

समुद्रों के जल का स्वाद

लवण समुद्र के जल का स्वाद नमक के समान खारा है, क्षीर समुद्र के जल का स्वाद दूध के समान है, घृतवर समुद्र के पानी का स्वाद घृत के समान है॥४९४॥

कालोदधि तथा पुष्करवर समुद्र एवं स्वयंभू रमण समुद्र के जल का स्वाद सामान्य जल के समान है, इनमें कोई अन्तर नहीं है॥ ४९५॥

बाकी के बचे समस्त समुद्रों के जल का स्वाद इक्षुरस अर्थात् सांठे के रस के समान है, इस प्रकार समस्त समुद्रों के जल का स्वाद है, हे भव्यजीवों ! इसको तुम याद कर लो॥४९६॥

पंचम जलनिधि क्षीरोदधि है, वर्ण स्वाद है दुग्ध समान।
तीर्थंकर अभिषेक करें सुर, उस जल का माहात्म्य महान॥४९७॥

लवणसमुद्र और कालोदधि तथा स्वयंभू रमण महान।
इनमें जलचर जीव भरे हैं और समुद्र न जलचर जान॥४९८॥

नन्दीश्वर द्वीप वर्णन

अब मैं वर्णन करूं भव्यजन, अष्टमद्वीप महान सुरम्य।
जिसके इकदिशि तेरह मन्दिर, चउदिशि बावन चैत्य अगम्य॥४९९॥

जम्बूद्वीप तैं अष्टम शोभित, नन्दीश्वर है द्वीप महान।
योजन इक सौ त्रेसठ कोटिक, लाख चुरासी ऊपर जान॥५००॥

छ: सौ पचपन कोटि और हैं तैंतिस लाख बाह्य विस्तार।
बाह्य परिधि है नन्दीश्वर की, उसका वर्णन करूं विचार॥५०१॥

दोय सहस्र बहत्तर कोटिक, तैंतिस लख चौवन हजार।
एक शतक नब्बे योजन है, आगम में वर्णित अनुसार॥५०२॥

पाँचवां समुद्र क्षीर समुद्र है, उसका वर्ण और स्वाद दोनों दुग्ध के समान है, तीर्थंकरों का जन्माभिषेक इन्द्र व देवगण इसी क्षीर समुद्र के जल से करते हैं, अत: इस समुद्र के जल का बड़ा माहात्म्य है॥४९७॥

लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और अन्तिम महान् स्वयंभू रमण समुद्र इनमें जलचर जीव होते हैं शेष समस्त समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते हैं॥४९८॥

नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन

हे भव्यजीवों ! अब मैं आठवां महान् व सुन्दर नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन करता हूं जिसके एक दिशा में तेरह अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, चारों दिशाओं में कुल बावन जिनालय हैं॥४९९॥

जम्बू द्वीप से आठवां नन्दीश्वर नाम का विशाल द्वीप है यह द्वीप एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन के विस्तार का है॥५००॥

इसका बाह्य विस्तार छ: सौ पचपन करोड़ तैंतीस लाख योजन का है तथा इस महान द्वीप की बाह्य परिधि नीचे लिखे अनुसार है॥५०१॥

दो हजार बहत्तर करोड़ तैंतिस लाख चौवन हजार एक सौ नब्बे योजन बाह्य परिधि नन्दीश्वर द्वीप की आगम में कही है॥५०२॥

वलयाकार गोल मण्डलसम, गिरिवन उपवन रम्य तमाम।
चउदिशि इकइक अंजनगिरि हैं, इन्द्रनील अंजन समश्याम।५०३॥

अंजन गिरि के चारों दिशि में चार चार वापी हैं सार।
एक एक वापीमधि शोभित, दधिमुख गिरि इकरम्य अपार।५०४॥

एक एक वापी दोउ कोने, दो दो रतिकर पर्वत जान।
यौं इकदिशिइक अंजनगिरि चउदधिमुख वसुरतिकरमान।५०५॥

एक दिशा तेरह पर्वत हैं, चउदिशि बावन के परिमाण।
एकएक गिरि पर जिनमन्दिर, बावन चैत्यालय अवहान।५०६॥

कार्तिक फागुनअरु अषाढ़ के, अन्त आठदिन सुरगण आय।
दिव्य जिनालय जिन प्रतिमा को, बंदे पूजें भक्ति रचाय।५०७॥

अंजनगिरि हैं श्याम वर्ण के दधिमुख श्वेत वर्ण के जान।
रतिकर रक्त वर्ण के जानहु, यों हैं पर्वत वर्ण महान।५०८॥

यह नन्दीश्वर द्वीप गोल वलय के आकार मंडल जैसा है पर्वतों वनों एवं उपवनों से अत्यन्त सुन्दर शोभायमान है। इसके चारों दिशाओं में एक एक अंजन गिरि नाम का पर्वत है, यह अंजन गिरि पर्वत इन्द्र नीलमणि या अंजन के समान काला है।५०३॥

अंजनगिरि पर्वत की चारों दिशाओं में चार वापिकायें अर्थात् बावड़ियाँ हैं, एक एक वापी के बीच में बहुत सुन्दर एक एक दधिमुख नाम का पर्वत है।५०४॥

प्रत्येक वापी के आगे के दोनों कोनों पर दो दो रतिकर नाम के पर्वत हैं, इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप की एक दिशा में एक अंजनगिरि चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार एक दिशा में तेरह चैत्यालय हैं एवं चार दिशाओं में सब बावन अकृत्रिम चैत्यालय जानना चाहिये।५०५।५०६॥

कार्तिक फागुन और आषाढ़ मास के अन्तिम आठ दिनों में देवगण आकर इन अद्‌भुत चैत्यालयों के जिन प्रतिमाओं की जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, फल आदि विविध द्रव्यों से पूजा, अर्चा व वंदना करते हैं।५०७॥

अंजनगिरि सब काले रंग के हैं, दधिमुख सफेद रंग के हैं, रतिकर लाल वर्ण के हैं, इस प्रकार पर्वतों के वर्ण जानना चाहिये।५०८॥

अंजनगिरि है योजन ऊंचा, सहस चुरासी का विस्तार।
गहरा एक सहस योजन है, दधिमुख योजन दशक हजार।।८०९।।

रतिकर एक सहस योजन के, सब गिरि खड़े ढोल आकार।
वापी सब समचतुष्कोण है, लख योजन ताका विस्तार।।८१०।।

लम्बी चौड़ी सम है योजन, गहरी एक सहस परिमाण।
मणिमय सीढ़ि शुद्ध जलपूरित, अतिसुरम्य रमणीय महान।।८११।।

है चौकोर वेदिका चवदिशि विविध वृक्षवन शोभित जान।
जलचरजीव रहित निर्मल जल भरी रम्यतर रचित मान।।८१२।।

ये वापी चउवन से राचित विविध वृक्ष सुरभित अभिराम।
है अशोक वन सप्तच्छदवन, चम्पक आम्र यों चउवन नाम।।८१३।।

अंजनगिरि पर्वत चौरासी हजार योजन ऊंचा है और एक हजार योजन गहरा मूल में है तथा दधिमुख पर्वत दस हजार योजन ऊंचे हैं।।८०९।।

रतिकर पर्वत एक एक हजार योजन ऊंचे हैं। ये सब पर्वत खड़े ढोल के समान आकार के हैं। वापिकायें चारों कोने बराबर एक एक लाख योजन के विस्तार की हैं।।८१०।।

अर्थात् इनकी लम्बाई चौड़ाई बराबर है। गहरी एक हजार योजन हैं। मणियों की सीढ़ियाँ तथा निर्मल जल से भरी हुई ये वापिकायें अत्यन्त सुन्दर व रमणीय हैं।।८११।।

इनके चारों दिशाओं में चौकोर वे वेदियां हैं, अनेक प्रकार के वनों से शोभायमान हैं। वापिकाओं के तट सुन्दर मणियों के हैं सभी वापिकाओं का जल निर्मल शुद्ध तथा जलचर जीवों से रहित होता है।।८१२।।

ये वापिकायें चार वनों से सुशोभित अनेक वृक्षों व पुष्पों से सुगंधित व सुन्दर हैं। उन वनों के नाम हैं— १. अशोक वन, २. सप्तच्छद वन, ३. चम्पक वन, ४. आम्र वन।।८१३।।

प्रतिमा वर्णन

नन्दीश्वर के बावन मन्दिर, तिनकी महिमा कह न सकाय।
दिव्यरत्नमय मणिमय शोभित, तोरण द्वार सुरम्य सुहाय।।८१४।।
प्रति जिनमन्दिर इकशतवसु हैं, गर्भ गृह भीतर शुभ जान।
अरु इकशत वसु प्रतिमा सुन्दर, रत्नमयी अतिभव्य महान।।८१५।।
धनुष पंचशत ऊंची प्रतिमा, पद्मासन अतिदिव्य महान।
नखमुख मणिमय रक्त वर्ण के, श्याम श्वेत हैं नयन सुजान।।८१६।।
श्याम वर्ण शिरभोष केश हैं, हंसमुख छवि अद्भुत सुखदाय।
कोटिक चन्द्रभानु दुतिछिप हैं, महिमा मुखसे कही न जाय।।८१७।।
दर्शन पूजन तैं उसही क्षण, उपजे समकित अरु वैराग्य।
नर नहिं जाय न दर्शन करहिं, सुरगण पूजे अति सद्भाग्य।।८१८।।
अंजन गिरि की पूर्व दिशा में, चउवापी शोभित अभिराम।
नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तर, नन्दीघोषा हैं तिन नाम।।८१९।।

प्रतिमा वर्णन

नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिन मन्दिरों का वर्णन किया नहीं जा सकता है, वे सब आश्चर्यकारी रत्नों व मणियों के तोरण व द्वारों से अत्यन्त सुन्दर व सुसज्जित मन को हरण करने वाले हैं। प्रत्येक जिन मन्दिर में एक सौ आठ गर्भ गृह हैं। उनमें एक सौ आठ जिन प्रतिमायें भव्य रत्नमयी व विशाल रमणीय हैं।।८१४।।८१५।।

प्रत्येक प्रतिमा पांच सौ धनुष ऊंची पद्मासन युक्त हैं, वे प्रतिमायें अत्यन्त सुन्दर व दिव्य हैं, उनके नख और मुख लाल मणि के हैं और भौंहे तथा आंखें सफेद और काली मणियों की हैं।।८१६।।

प्रतिमाओं के सिर के बाल काले हैं मुख की आकृति हंसती हुई अद्भुत है। करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा की कांति को दबा देने वाली कांति युक्त प्रतिमायें अवर्णनीय महिमा वाली हैं।।८१७।।

वहां केवल देवगण ही सद्भाग्य से आते हैं और भक्तिभाव से दर्शन पूजा करते हैं, जिनके दर्शनमात्र से उसी क्षण सम्यक्त्व प्रगट हो जाता है। मनुष्य वहां नहीं जा सकता है।।८१८।।

अंजनगिरि की पूर्व दिशा की चारों वापिकाओं के नाम निम्न प्रकार हैं— १. नन्दा, २. नन्दवती, ३. नन्दोत्तरा, ४. नन्दीघोषा।।८१९।।

अंजनगिरि की दक्षिणदिशि में, अरजा विरजा वापी जान।
और अशोका वीत शोक है, ये चारों वापी शुभ आन।।८२०।।

पश्चिमदिशि अंजनगिरि जानहु, विजयवैजयन्ती शुभनाम।
और जयन्ती तथा चतुर्थी, अपराजित शोभित अभिराम।।८२१।।

ताके उत्तरदिशि में भी चउ, रम्यारमणीया शुभ जान।
और सुप्रभा तथा सर्वतो, भद्रा वापी चार महान।।८२२।।

अंजनगिरि के वन में शोभित रम्यसु चौसठ हैं प्रासाद।
जिनमें सुरगण परिवारोंयुत, विचरैं रहैं भ्रमें दिन रात।।८२३।।

अष्टाह्निका परव जब आये, सुरगण आ जिन पूज रचाय।
विविध नृत्य बहुबाजे युत ये, करें प्रदिक्षण आनन्ददाय।।८२४।।

पूर्व दिशा में कल्पवासी सुर, भवन देव दक्षिण दिशि आय।
व्यंतर पश्चिम दिशि में पूजैं, उत्तर ज्योतिष पूज रचाय।।८२५।।

अंजनगिरि की दक्षिण दिशा में चार वापिकाओं के नाम हैं— १. अरजा, २. विरजा, ३. अशोका, ४. वीतशोका।।८२०।।

अंजनगिरि की पश्चिम दिशा में— १. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता ये चार वापिकायें सुन्दर शोभायमान हैं।।८२१।।

अंजनगिरि की उत्तर दिशा मे— १. रम्या, २. रमणीया, ३. सुप्रभा, ४. सर्वतोभद्रा, नाम की चार विशाल वापिकायें हैं।।८२२।।

अंजनगिरि पर्वत के पास के वनों में चौसठ बड़े सुन्दर महल बने हुये हैं उनमें देवगण अपने परिवारों के साथ रहते हैं व प्रतिदिन घूमते रहते हैं।।८२३।।

अष्टाह्निका पर्व जब आता है तब देवगण वहाँ आकर जिनेन्द्र भगवान की बड़ी भक्ति से पूजन करते हैं तथा अनेक प्रकार के बाजों के साथ नृत्य करते हैं, पूजन, वंदन, स्तुति के पश्चात् सब देव प्रदिक्षणा करते हैं बड़े आनन्द में देवगण मग्न हो जाते हैं।।८२४।।

नन्दीश्वर द्वीप के समस्त चैत्यालयों में पूर्व दिशा में कल्पवासी देव, दक्षिण दिशा में भवनवासी देव, पश्चिम दिशा में व्यंतर देव और उत्तर दिशा में ज्योतिषी देव पूजन करते हैं।।८२५।।

चारों विधि के देव भक्तियुत, अभिनय करते रम्य महान।
जिनवर चरित दिखावें नाटक, महिमा तिनकी सुखकर जान।।२६।।

प्रथम इन्द्र सौधर्म हाथ में श्रीफल ऐरावत चढ़ि आय।
अरु ईशान सुरेन्द्र सुपारी फलले गज चढ़ि आ हरषाय।।२७।।

सनत कुमार सिंह चढ़ि आवे, फल लेकर वे सुन्दर आम।
अरु माहेन्द्र अश्व पर आरूढ़, केले का फलले अभिराम।।२८।।

प्रति अष्टान्हिक अष्ट दिनों में अष्टम तैं पूनम तक जान।
चार समय दिन रात पूजतें सुरगण भजन भक्तियुत मान।।२९।।

है पूर्वान्ह तथा अपरान्हसु, पूर्व रात अरु पश्चिम रात।
विविध शक्तियुत पूजरचेंसुर, करें प्रदक्षिण सह सुखदात।।३०।।

द्वादश इन्द्र स्वर्ग के आवें, सब परिवार सहित सुखदाय।
अक्षत पुष्प विविध द्रव्यों से इन्द्र ध्वज पूजन रचवाय।।३१।।

वहाँ नाट्यशालाओं में देवगण अत्यन्त भक्ति भाव के साथ सुन्दर अभिनय करते हैं, जिनेन्द्र भगवान के चरित्र और कल्याणकों के भव्य दृश्य दिखाते हैं। वह दृश्य बड़ा आनन्द देने वाला होता है।।२६।।

नन्दीश्वर द्वीप में जब देवगण आते हैं तब सौधर्म इन्द्र के हाथ में श्रीफल होता है वह ऐरावत हाथी पर बैठकर आता है तथा ईशान इन्द्र के हाथ में सुपारी का फल होता है वह भी हाथी पर चढ़कर आता है।।२७।।

सानत्कुमार इन्द्र सिंह पर चढ़कर आता है, उसके हाथ में आम्र फल होता है तथा माहेन्द्र घोड़े पर चढ़कर आता है वह केले का फल हाथ में लिये आता है।।२८।।

प्रत्येक अष्टान्हिका पर्व में देव सब आते हैं और अष्टमी से पूर्णमासी तक १. पूर्वान्ह, २. अपरान्ह, ३. पूर्व रात्रि, ४. पश्चिम रात्रि। इस प्रकार चार समय बड़ी भक्ति भाव से भजन, साज व नृत्य के साथ पूजन करते हैं, पश्चात सब प्रदक्षिणा देते हैं।।२९।।३०।।

स्वर्ग के बारह ही इन्द्र अपने परिवार सहित आते हैं और अक्षत, पुष्प आदि विविध द्रव्यों से पूजन करते हैं।।३१।।

साथ अनेक प्रकार बजें अति, मधुर नृत्य संगीत सुहाय।
जिनवर कल्याणक अभिनय को करें सुरेन्द्र न हर्ष समाय।।५३२।।

यों नन्दीश्वर द्वीप जिनालय बावन ही रमणीय महान।
रत्नमयी प्रतिमा भविमनहर, वन्दन करूं सकल मन आन।।५३३।।

इति नन्दीश्वर द्वीप वर्णनम्।

कुण्डल गिरि वर्णन

ग्यारम द्वीप नाम कुण्डलवर, रम्य मनोहर वृत महान।
गोलचूड़िसम द्वयतट जलनिधिकुण्डल गिरिता मध्यसु जान।।५३४।।

पुष्कर द्वीप मानुषोत्तरगिरि, सम है कुण्डल गिरिवर मान।
गोल महा विस्तृत है चऊदिशि, तातें द्वीप भाग द्वय जान।।५३५।।

कुण्डल गिरि है मूल भाग में, चौड़ा योजन दशक हजार।
है अवगाह सहस इक योजन, ऊंचा है बयालीस हजार।।५३६।।

देवगण अनेक प्रकार के बाजों व मधुर संगीत के साथ नृत्य करते हैं तथा जिनेन्द्र भगवान के पंच कल्याणकों के दृश्य अभिनय करके दिखाते हैं, उस समय सब देव भक्ति से इतने आनन्द मग्न हो जाते हैं कि उनका हर्ष मन में समाता नहीं है।।५३२।।

इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालय तथा जिनालय की रत्नमयी प्रतिमा का वर्णन संक्षेप से किया है। उन सम्पूर्ण प्रतिमाओं को मैं भाव से वन्दना करता हूं।। ५३३।।

इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

कुण्डलगिरि वर्णन

इस मध्य लोक की पृथ्वी पर असंख्यात द्वीप और समुद्रों में ग्यारहवां द्वीप कुण्डल द्वीप है, यह द्वीप भी गोल चूड़ि के समान है जिसके दोनों तट पर समुद्र हैं, उस द्वीप के बीच में कुण्डलगिरि नाम का पर्वत है।।५३४।।

पुष्कर द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत के समान यह कुण्डलगिरि गोल है द्वीप के बीच में चारों तरफ द्वीप को दो भागों में विभाजित करता है।।५३५।।

कुण्डलगिरि पर्वत मूल भाग में दश हजार योजन चौड़ा है, इसकी अवगाहना एक हजार योजन है और ऊंचा बयालिस हजार योजन है।।५३६।।

स्वर्णमयी हैं समतल ऊपर, चउदिशि रम्यकूट हैं चार।
नामसिद्धवर हैं अतिमनहर, जिन चैत्यालय चार विचार॥८३७॥

बीसकूट गिरि पर हैं शोभित व्यन्तर देव करें तिहं वास।
चउ चैत्यालय की अति महिमा सुरगण पूजित नरनहिं वास॥८३८॥

इति कुण्डलगिरि वर्णनम्।

रुचिकवर द्वीप वर्णन

तेरहवां है द्वीप रुचिकवर, ताके मध्य गिरीश महान।
नाम रुचिकवर गिरि है यह भी गोल मंडलाकार सुजान॥८३९॥

ऊपर नीचे मध्य भाग में, है समान रमणीय महान।
ऊंचा योजन सहस चुरासी, अरुअवगाह सहस इक जान॥८४०॥

ता पर्वतपरि दिव्य कूट हैं, द्वयशत बैयालीस महान।
पंच शतक योजन ऊंचे हैं, मूल भाग भी उतने जान॥८४१॥

इस कुण्डलगिरि पर्वत पर स्वर्णमयी चारों दिशाओं में चार सिद्धवर नाम के कूट हैं जिन पर चार अकृत्रिम चैत्यालय हैं॥८३७॥

इस पर्वत पर बीस कूट और हैं जिन पर व्यंतर देवों के निवास हैं वहां कुण्डल द्वीप के अधिपति व्यंतर देव अपने परिवार सहित रहते हैं। कुण्डलगिरि के चारों अकृत्रिम चैत्यालय की महिमा अत्यन्त मनोहर है जहां देवगण पूजन करते हैं मनुष्यों का वहां गमन नहीं है॥८३८॥

इस प्रकार कुण्डलगिरि पर्वत का वर्णन समाप्त हुआ।

रुचिकवर द्वीप और पर्वत का वर्णन

अब इससे आगे तेरहवां द्वीप रुचिकवर द्वीप है उसके बीच में भी रुचिकवर नाम का पर्वत है यह पर्वत भी गोल मण्डलाकार चारों तरफ से द्वीप को दो भागों में विभाजित करता है॥८३९॥

ऊपर तथा नीचे व बीच में सब भागों में यह पर्वत समान रमणीय है। ऊंचा चौरासी हजार योजन है तथा इसकी अवगाहना एक हजार योजन है॥८४०॥

इस रुचिकवर पर्वत पर दो सौ बयालिस सुन्दर कूट हैं– ये कूट पांच सौ योजन ऊंचे हैं और मूल भाग में भी पांच सौ योजन है॥८४१॥

ऊपरि भाग ढाई सौ योजन, है विस्तार विशाल सुसार।
इन कूटों पर भवन बने हैं, भव्य मनोहर अति सुखकार।।५४२।।

तिनमें दिक्कन्यायें रहतीं, आयुष एक पल्य की जान।
यह पर्वत रमणीय सुशोभित, सार्थक नाम रुचिक महिमान।।५४३।।

इन कूटों के मध्य भाग में, चार कूट हैं सिद्ध महान।
तिनपर जिनमंदिर पउराजित, भव्य अकृत्रिम मणिमय जान।।५४४।।

इति रुचिकवर वर्णनम्।

द्वितीय जम्बूद्वीप वर्णन

जम्बूद्वीपसुलेप असंख्ये, द्वीप जलधि आगे हैं जान।
है अतिशययुत रम्य मनोहर, दूजा जम्बू द्वीप महान।।५४५।।

इसमें देवों की नगरी हैं, रम्य महा महिमा नहिं पार।
एक एक दिशि पच्चिस पच्चिस मणिमयतोरण गोपुर द्वार।।५४६।।

बासठ योजन ऊंचे विस्तृत, भवन बने रमणीय महान।
बारह सौ योजन का विस्तृत, राजाङ्गण नगरी में जान।।५४७।।

ऊपर के भागों में ढाई सौ योजन के विस्तार के कूट हैं, इन कूटों पर अत्यन्त सुन्दर भवन बने हुये हैं, उनमें दिक्कुमारियां जिनकी आयु एक पल्य की होती है, वे सपरिवार रहती हैं। यह पर्वत अत्यन्त मनोहर व सुन्दर होने से इसका रुचिक नाम सार्थक है।।५४२।५४३।।

इन कूटों के बीच में चार सिद्धकूट हैं, उन चारों पर चार अकृत्रिम जिनालय रत्नमयी मणियों से शोभायमान हैं।।५४४।।

इस प्रकार रुचिकवर पर्वत का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रथम जम्बूद्वीप से लेकर असंख्यात द्वीप और समुद्रों के आगे एक बहुत सुन्दर व मनोज्ञ दूसरा जम्बू नाम का द्वीप है।।५४५।।

इस द्वीप में देवों की अनेक सुन्दर सुन्दर नगरियां हैं। इन नगरों की एक एक दिशा में पच्चीस पच्चीस मणिमय तोरणों से युक्त गोपुर द्वार हैं।।५४६।।

इन नगरों में जो भवन हैं उनकी ऊंचाई बासठ योजन और विस्तार इससे आधा है तथा अवगाह दो कोस है, इन नगरियों के मध्य में अनेक भवनों से रमणीय बारह सौ योजन विस्तार वाला एवं एक सौ योजन ऊंचा राजांगण है।।५४७।।

राजाङ्गण के मध्य माँहि है, मणिमय तोरणयुत प्रासाद।
वज्रकपाटों से राजित वसु, योजन ऊंचा द्वार प्रासाद।।५४८।।
इसके भी चारोंदिशि जानहु, चउ प्रासाद रम्य सुखदाय।
ताके आगे चार चार गुन, हैं प्रासाद रम्य अधिकाय।।५४९।।

प्रासादों के मण्डल छः हैं, तिनमें रत्न विनिर्मित जान।
हैं प्रासाद अनेक सुशोभित, उत्तर पूरब तिनके मान।।५५०।।

सभा अनेक बनी हैं तिनमें, नाम सुधर्म मन्त्र उपपाद।
अरु अभिषेक सभा आदिक हैं, अतिरमणीय मध्य प्रासाद।।५५१।।

प्रासादों में रत्नमयी हैं, सिंहासन रमणीय महान।
देव देवियों निजपरिकर सह, रहे तिहाँ तिन क्रीड़ा थान।।५५२।।

इन नगरों के बाहिर हैं तिहि, बड़े बड़े हैं खण्ड महान।
ऐसा सुन्दर द्वीप मनोहर, दूजा जम्बू द्वीप सुजान।।५५३।।

इति द्वितीय जम्बूद्वीप वर्णनम्।

राजांगण के बीच में मणिमय तोरणों से युक्त प्रासाद हैं, ये प्रासाद वज्र के कपाटों से युक्त आठ योजन ऊंचे द्वारों से सुशोभित हैं।।५४८।।

इन प्रासादों के चारों दिशाओं में चार चार और रमणीय प्रासाद (महल) हैं तथा इनके आगे चार चारगुने और अधिक प्रासाद मण्डल हैं।।५४९।।

इनके प्रासादों के छः मण्डल हैं उनमें रत्नमयी रमणीय प्रासाद हैं।।५५०।।

उन प्रासादों में उत्तर पूर्वी भाग में सुधर्म सभा, उपपाद सभा और अभिषेक सभा, अलंकार सभा, मन्त्र सभा आदि अनेक सभायें हैं।।५५१।।

इन प्रासादों में रत्नमयी अत्यन्त सुन्दर सिंहासन हैं, इनमें देव और देवियाँ अपने परिवार सहित रहते हैं, उनके क्रीड़ा व निवास का यह स्थान है।।५५२।।

इन नगरों के बाहरी भाग में बड़े–बड़े भारी वनखण्ड हैं, इस प्रकार का यह दूसरा सुन्दर व मनोहर जम्बूद्वीप है।।५५३।।

इस प्रकार द्वितीय जम्बूद्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

स्वयंभूरमण द्वीप एवं समुद्र वर्णन

अन्तिम द्वीप समस्त द्वीप में नाम स्वयंभूरमण महान।
सबसे बड़ा द्वीप यह सुन्दर, इससे बड़ा न द्वीप सुजान।।८५४।।

द्वीप मध्य है ठीक बीच में, चारों ओर गोल सुविशाल।
नाम स्वयंप्रभ पर्वत रुचिकर, मनुषोत्तर कुण्डल समहाल।।८५५।।

यह भी गोल द्वीप मधि सोहत, तातें अर्ध अर्ध द्वै भाग।
आधा द्वीप इधर गिरि ते है आधा गिरि के आगे भाग।।८५६।।

पुष्कर द्वीप अर्ध तैं लेकर, अर्ध स्वयंभू द्वीप मंझार।
है जघन्यतिहि भोग भूमिथिर, नहिं विकलत्रय जीव लगार।।८५७।।

स्वय प्रभ पर्वत से आधे, द्वीप स्वयंभू अर्ध सुलेय।
अन्त स्वयंभूरमण जलधि तक, कर्मभूमि रचना अवसेय।।८५८।।

तथास्वयंभू अन्तिम जलनिधि, लवणोदधि कालोदधि जान।
तिनमें जलचरजीव रहे हैं, शेष जलधि जलचर नहिंमान।।८५९।।

समस्त द्वीपों से सबसे अन्त का द्वीप स्वयंभूरमण द्वीप है, यह द्वीप सब द्वीपों से बड़ा व सुन्दर है, इससे बड़ा कोई द्वीप नहीं है।।८५४।।

इस द्वीप के ठीक बीच में गोल चूड़ी के आकार स्वयंप्रभ नाम का पर्वत है यह पर्वत भी रुचिक, मानुषोत्तर और कुण्डलगिरि के समान गोल है।।८५५।।

यह स्वयंप्रभ पर्वत स्वयंभूरमणद्वीप के मध्य में द्वीप के आधे भाग में द्वीप के दो भाग करता है, अर्थात् पर्वत से आधा भाग द्वीप का एक तरफ इधर है और आधा भाग दूसरी तरफ उधर है।।८५६।।

पुष्कर द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत से आगे के आधे भाग से लेकर अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप के आधे भाग तक स्थायी रूप से जघन्य भोग भूमि की रचना है, इनमें विकलत्रय जीव नहीं होते हैं।।८५७।।

स्वयंप्रभ पर्वत से आगे आधे स्वयंभूरमण द्वीप तथा अन्तिम समुद्र स्वयंभूरमण तक कर्मभूमि की रचना जानना चाहिये।।८५८।।

अन्त के स्वयंभूरमण समुद्र तथा लवणसमुद्र एवं कालोदधि समुद्र में जलचर जीव हैं शेष समुद्रों में जलचर जीव नहीं हैं।।८५९।।

महामत्स्य

मध्य स्वयंभू रमण जलधि में महामत्स्य का तन अवगाह।
एक सहस योजन लम्बाई, पांच शतक चौड़ाई आह।।५६०।।
तथा मत्स्य की है ऊंचाई, योजन ढाई शतक प्रमान।
वज्रवृषभ संहनन है तिनका, नर्क सातवें जावें जान।।५६१।।
महामत्स्य अरु कर्ण मत्स्य द्वै, हिंसक हिंसक भाव समाय।
मरिकर सप्तम नरक रहे हैं, तैंतिस सागर तक दुख पाय।।५६२।।

इति स्वयंभूरमण द्वीप समुद्र वर्णनम्।

अथ जीव भेद वर्णनम्

जीव भेद दो हैं संसारी और मुक्त ये नाम महान।
संसारी भी हैं त्रस थावर, दोय भेद इनके भी जान।।५६३।।
त्रस के भेद चार हैं जानहु, द्वै तें पंचेन्द्रियुत जान।
विकल त्रय के भेद तीन हैं, द्वय त्रय, चउ इन्द्रिय ये मान।।५६४।।

महामत्स्य का वर्णन

स्वयंभूरमणसमुद्र में जो महामत्स्य होता है उसके शरीर की अवगाहना एक हजार योजन की लम्बाई एवं पांच सौ योजन की चौड़ाई है।।५६०।।

तथा महामत्स्य की ऊंचाई ढाई सौ योजन की है। इस महामत्स्य के वज्रवृषभ नाराच संहनन होता है, यह मरकर सातवें नर्क मे जाता है।।५६१।।

महामत्स्य और इसके कान में रहने वाला तन्दुल मत्स्य ये दोनों हिंसक और हिंसा के भाव करने के कारण दोनों ही सातवें नर्क जाते हैं और वहाँ तैंतीस सागर तक भयानक दुख पाते हैं।।५६२।।

इस प्रकार स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र का वर्णन समाप्त हुआ।

जीव के भेदों का वर्णन

जीव दो प्रकार के होते हैं एक मुक्त दूसरे संसारी। संसारी जीव भी त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के जानना चाहिये।।५६३।।

त्रसजीव चार प्रकार के हैं दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जानो। विकलत्रय तीन प्रकार के हैं, दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय एवं चार इन्द्रिय जीव।।५६४।।

थावर पंच भेद हैं पृथ्वी, जल, वायु, अरु तेज सुजान।
वनस्पति कायिक ये जानहु, एकेन्द्रियस्पर्शन धर मान।।५६५।।
वनस्पति के भेद दोय हैं, साधारण प्रत्येक कहाय।
अरु प्रत्येक प्रतिष्ठित कहिये, अप्रतिष्ठित अपर बताय।।५६६।।
पंचेन्द्रिय तिर्यंच भेद त्रय, थलचर, नभचर, जलचर जान।
सब पंचेन्द्रिय जीव भेद द्वै, संज्ञी और असंज्ञी मान।।५६७।।
स्थावर पंचोंहि एक एक के, चउ चउ भेद कहे भगवान।
पृथ्वी, पृथ्वी कायरु पृथ्वी, कायिक, पृथ्वी जीव सुजान।।५६८।।
उसी तरह जलकायिक आदिक, भेद कहे हैं चार हि चार।
अब थावर की आयुष उत्तम, वरणूं आगम के अनुसार।।५६९।।
पृथ्वी द्वादश सहस वर्ष है, खर पृथ्वी बाईस हजार।
जलकी सप्त सहस वर्ष की, तेजकाय त्रय दिवस विचार।।५७०।।
वायुकायिक सहस त्रय हैं वर्ष कही जिन धर्म मंझार।
वनस्पति दश सहस वर्ष की, आयुष है उत्कृष्ट विचार।।५७१।।

स्थावर जीव पांच प्रकार के होते हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक ये पांचों प्रकार के स्थावर जीव पहली स्पर्शन इन्द्रिय वाले होते हैं।।५६५।।

वनस्पति के दो भेद हैं, एक साधारण दूसरी प्रत्येक, प्रत्येक वनस्पति भी सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित के भेद से दो प्रकार की है।।५६६।।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च तीन प्रकार के होते हैं थलचर, नभचर, जलचर। तथा समस्त पंचेन्द्रिय जीव सैनी और असैनी के भेद से दो प्रकार के होते हैं।।५६७।।

पांच प्रकार के जो स्थावर जीव हैं उनमें एक एक के चार चार भेद हैं, जैसे पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक और पृथ्वीजीव।।५६८।।

इसी प्रकार जलकायिक आदि के भी चार चार भेद जान लेना चाहिये। अब स्थावर जीवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन करता हूं जैसा कि जिनागम में कहा है।।५६९।।

पृथ्वी की आयु बारह हजार वर्ष की है, खर पृथ्वी की बाईस हजार वर्ष, जल की सात हजार वर्ष, अग्निकायिक जीव की तीन दिन, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष तथा वनस्पति कायिक जीव की उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है।।५७०।।५७१।।

दो इन्द्रिय की उत्तम आयुष, द्वादश वर्ष कही परिमाण।
त्रयइन्द्रिय की उनपचास दिन, चउइन्द्रिय छः मास प्रमाण।३.७२।।
पंचेन्द्रिय में सरीसृप की आयुष दिन उनचास कहाय।
पक्षी जीव बहत्तर सहसे वर्ष जिनागम में बतलाय।३.७३।।
सर्पों की है सहस बयालिस वर्ष आयु उत्कृष्ट महान।
शेष पशु पंचेन्द्रिय उत्तम आयु कोटि पूरब इक जान।३.७४।।
भोग भूमि के पशु की आयुष, उत्तम मध्यम जघन बताय।
क्रमशः त्रय द्वय एक पल्य की मानुषवत् परिमाण कहाय।३.७५।।
तिर्यंचों की अन्तर मुहूरत है जघन्य आयुष परिमाण।
मानुषवत् ही कही जिनागम, यों आयुष का वर्णन जान।३.७६।।

तिर्यंचों के जन्म, गुणस्थान आदि

तिर्यंचों के गर्भ जन्म अरु सम्मूर्च्छन द्वय जन्म सुजान।
गुण स्थान पहले से पंचम, भोग भूमि में चार ही मान।३.७७।।

दो इन्द्रिय जीव की बारह वर्ष, तीन इन्द्रिय की उनचास दिन, चार इन्द्रिय की छः मास की उत्कृष्ट आयु है। पंचइन्द्रिय जीवों में सरीसृप की आयु उनपचास दिन की है तथा पक्षी की उत्कृष्ट आयु बहत्तर हजार वर्ष की जिनागम में बताई गई है।३.७२।३.७३।।

सर्पों की उत्कृष्ट आयु बयालिस हजार वर्ष की है, बाकी के समस्त पंचेन्द्रिय पशुओं की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की जानो।३.७४।।

भोग भूमि के मनुष्य तथा पशुओं की आयु उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भोगभूमि में क्रमशः तीन पल्य, दो पल्य तथा एक पल्य की आयु होती है।३.७५।।

तिर्यञ्चों की जघन्य आयु मनुष्यों के समान अन्तर मुहूर्त की है। इस प्रकार आयु का वर्णन जिनागम के अनुसार किया गया है।३.७६।।

तिर्यंचों के विविध वर्णन

तिर्यंचों के गर्भ जन्म और सम्मूर्च्छन ये दो जन्म होते हैं तथा पहले से पांचवा गुणस्थान होता है। भोग भूमि में पहले से चार गुणस्थान होते हैं।३.७७।।

म्लेच्छ खण्ड में प्रथम एक है तिर्यञ्चों का ही गुण थान।
दशों प्राण चारों संज्ञायें, पंचेन्द्रिय, षट्काय सुजान।५७८॥

ग्यारह योग वेद त्रय जानों, अरु कषाय चारों ही मान।
है षट्ज्ञान तथा संयम दो, दर्शन त्रय समकित द्वय जान।५७९॥

भव्य अभव्य भाव ये दोनों, समकित के कारण यों जान।
प्रतिबोधित, जिन बिम्ब सुदर्शन, सुख दुख देखत वेदन मान।५८०॥

जाति स्मरण आदि से होवे, समकित वेदक उपशम मान।
क्षायिक का नहिं योग तिहां है, कर्मभूमि नर ही को जान।५८१॥

तिर्यंचों के तन अवगाहन

तिर्यंचों के तन अवगाहन, उत्तम योजन सहस्र प्रमाण।
घन अंगुल के असंख्यातवें, भाग जघन्य शरीर सुजान।५८२॥

म्लेच्छ खण्ड के तिर्यंचों में पहला ही गुणस्थान होता है तथा तिर्यंचों में दशों प्राण चारों संज्ञायें पांचों इन्द्रियों व छः काय होती हैं। तथा ग्यारह योग तीन वेद, चारों कषाय, छः ज्ञान, दो संयम, तीन दर्शन और सम्यक्त्व दो तिर्यंचों के होते हैं।५७८।५७९॥

तिर्यंचों के भाव भव्य और अभव्य ये दोनों होते हैं तथा तिर्यंचों के सम्यक्त्व की उत्पत्ति उपदेश श्रवण से, जिन बिम्ब दर्शन से, सुख दुख के वेदन तथा जाति स्मरण से होती है। सम्यक्त्व उपशम या वेदक अर्थात् क्षयोपशम होता है क्षायिक सम्यक्त्व तिर्यंचों के उत्पन्न नहीं होता, कारण उसका योग वहाँ नहीं है। यह क्षायिक सम्यक्त्व केवल कर्मभूमि के मनुष्य को ही उत्पन्न होता है।५८०।५८१॥

शरीर की अवगाहना

तिर्यंचों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन है तथा जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।५८२॥

एक इंद्रिय में कमल कोस इक, से लेकर शत योजन जान।
द्वि इंद्रिय में शंख जीव का, द्वादश योजन तन परिमाण।।५८३।।

त्रिइंद्रिय में बिच्छू जानहु, तीन कोस तन का विस्तार।
चउ इंद्रिय में भौंरे का तन, चउ योजन उत्कृष्ट सुसार।।५८४।।

पंचेन्द्रिय में महामत्स्य तन, सहस एक योजन परिमाण।
चौड़ाई शतपंच सुयोजन, ऊंचा ढाई शत पहिचान।।५८५।।

यों उत्कृष्ट कही अवगाहन, घन अंगुल असंख्य सुभाग।
कही निगोद जघन्य कायकी, मध्यम विविध अनेक प्रमाण।।५८६।।

यों है तिर्यक लोक सुविस्तृत, मध्य लोक है अपर सुनाम।
लंबा चौड़ा है इक राजू, लख योजन ऊंचा परिमाण।।५८७।।

एक इन्द्रिय जीवों में कमल का शरीर उत्कृष्ट एक कोस से एक सौ योजन तक जानना चाहिये। द्वि इन्द्रिय जीवों में शंख का शरीर बारह योजन कहा है।।५८३।।

तीन इन्द्रिय जीवों में बिच्छू का शरीर तीन कोस प्रमाण है चार इन्द्रिय जीवों में भौंरे के शरीर की चार योजन प्रमाण उत्कृष्ट अवगाहना है।।५८४।।

पंचेन्द्रिय जीवों में स्वयंभू रमण समुद्र में रहने वाले महामत्स्य का शरीर एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा तथा ढाई सौ योजन ऊंचा अवगाहन वाला है।।५८५।।

इस प्रकार तिर्यंचों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कही है और जघन्य अवगाहन कम से कम निगोदिया जीवों के शरीर की घनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की है।।५८६।।

इस प्रकार तिर्यक लोक है, जिसका मध्य लोक दूसरा नाम है उसका विस्तार एक राजू लम्बा चौड़ा तथा ऊंचा एक लाख योजन से कुछ अधिक प्रमाण है।।५८७।।

मध्यलोक की रचना जानहु, नर पशु ज्योतिष देव निवास।
वर्णन तिनका किया भविकजन, आगे सुनों देव आवास।।५८८।।

इति पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक
मध्यलोकवर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः।

इस मध्य लोक की रचना जिसमें मनुष्य तिर्यंच तथा ज्योतिषी देव आदि का निवास स्थान है यहाँ उसका वर्णन किया है। हे भव्यजीवों ! आगे अकृत्रिम चैत्यालय, ऊर्ध्व लोक तथा स्वर्ग के देवों का वर्णन करता हूं उसे ध्यान से सुनिये।।५८८।।

इस प्रकार पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ में मध्य लोक का वर्णन करने वाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन

अकृत्रिम जिनालय सुन्दर, रत्नमयी त्रय लोक मंझार।
विविध रम्यरत्नों से मंडित, बने भव्य तोरण युत द्वार।१।।

अद्भुत महिमा जिनका वर्णन, नहीं लेखनी वचन कहाय।
किन्तु स्वल्प वर्णन मैं करता, जैसा जिन आगम बतलाय।२।।

है उत्कृष्ट मध्यम मन्दिर, अरु जघन्य त्रयविध ये खास।
उत्तम शत योजन के विस्तृत, मध्यम योजन कहे पचास।३।।

अरु जघन्य हैं योजन पच्चिस, यों है तीनों का विस्तार।
विद्याधर नर सुरनित वंदें, भाव भक्ति का है नहिं पार।४।।

भद्रशाल नन्दन वन मेरुन, नन्दीश्वर अरु स्वर्ग मंझार।
है उत्कृष्ट जिनालय तिनमें, रचना दिव्य भव्य सुखकार।५।।

अब चौथा अध्याय प्रारम्भ होता है

अकृत्रिम चैत्यालय का वर्णन

अकृत्रिम चैत्यालय बहुत सुन्दर और रत्नमयी होते हैं। ये चैत्यालय तीनों लोकों में अनादि काल से हैं, अनेक रत्नों से युक्त उनके तोरण और दरवाजे होते हैं।१।।

इन चैत्यालयों की महिमा बड़ी आश्चर्यकारी होती है। जिसका लेखनी या वचनों से वर्णन नहीं किया जा सकता है। किन्तु कुछ संक्षिप्त वर्णन मैं जिनागम में कहे अनुसार करता हूं।२।।

ये चैत्यालय उत्तम, मध्यम और जघन्य इस प्रकार तीन प्रकार के होते हैं। उत्कृष्ट १०० योजन के, मध्यम ५० योजन के और जघन्य २५ योजन के विस्तार के होते हैं। इनकी वंदना विद्याधर, और देव बड़ी भक्ति भावना से गीत, नृत्य, भजन आदि के साथ करते हैं।३।।४।।

भद्रशाल तथा सुमेरु पर्वत के नन्दन वन में एवं नन्दीश्वर द्वीप तथा स्वर्ग के विमानों में उत्कृष्ट चैत्यालय भव्य जीवों को सुख देने वाले होते हैं।५।।

वन सौमनस रुचक कुण्डलगिरि, अरु वक्षारसु इष्वाकार।
मनुषोत्तर गिरि और कुलाचल, तिनमें मध्यम चैत्य विचार।६।।

पाण्डुक वन अरु शेष विविध थल, हैं जघन्य चैत्यालय जान।
ये त्रयविध चैत्यालय अकृत्रिम, तिनका संक्षिप करूं बयान।७।।

एक जिनालय तीन कोट हैं, मानस्तम्भ एक इक जान।
एक वीथी अरु गर्भ गृह हैं, अष्ट एक शत संख्या मान।८।।

प्रति गर्भ गृह इक इक प्रतिमा, यों हैं शत इक ऊपर आठ।
नीलकेश छवि लाल होठ हैं, भौं हैं श्याम सुमणिमय ठाट।९।।

वीतराग छवि दिव्य मनोहर, ज्योति भव्य अनुपम दरशाय।
दर्शन तैं कट जांय पाप सब, सम्यक् दर्शन भी प्रकटाय।१०।।

बत्तीस युगल यक्ष की प्रतिमा, चमर युक्त चौसठ परिमाण।
यक्ष यक्षिणी हैं तिहं शोभित, मंगलद्रव्य अष्टयुत जान।११।।

तथा मेरु पर्वत के सौमनस वन में, रुचक पर्वत पर, कुण्डलगिरि पर वक्षारगिरि तथा मानुषोत्तर पर्वत पर और षट्कुलाचल पर मध्यम चैत्यालय होते हैं।६।।

एवं पाण्डुक वन तथा शेष सर्वत्र जघन्य चैत्यालय जानना चाहिये। ये तीन प्रकार के अकृत्रिम चैत्यालय हैं इनका संक्षेप से वर्णन करता हूं।७।।

प्रत्येक जिनालय में तीन–तीन कोट हैं, एक एक मानस्तम्भ तथा एक एक गली एवं एक सौ आठ गर्भ गृह प्रत्येक चैत्यालय में होते हैं।८।।

प्रत्येक गर्भ गृह में एक एक प्रतिमा होती है, इस प्रकार एक जिनालय में एक सौ आठ जिन प्रतिमायें होती हैं, उन प्रतिमाओं के नीले श्याम केश, लाल होंठ, भौंहें काली, मणिमय होती हैं।९।।

अत्यन्त दिव्य व वीतराग मुद्रा, अनुपम ज्योति वाली प्रतिमा होती हैं, जिनके दर्शन करने मात्र से अत्यन्त पाप कट जाते हैं और सम्यक् दर्शन उत्पन्न होता है।१०।।

उन चैत्यालयों में बत्तीस युगल यक्ष की प्रतिमायें हैं, चौसठ चौसठ चमर युक्त होती हैं एवं यक्ष यक्षिणियां तथा अष्ट मंगल द्रव्यों से सुशोभित हैं।११।।

बतीस सहस स्वर्णघट तिनमें, स्वर्णमाल चउबीस हजार।
विविध थान तिहं घण्ट टंगे हैं, मण्डप शोभित रम्य अपार।९२॥

लम्बा योजन शत अरु चौड़ा, मण्डप योजन अर्ध प्रमाण।
चौसठ योजन पीठ सुहावें, चालिस योजन स्तूप महान।९३॥

द्वादश योजन उच्च शिखर हैं, चउ योजन का वृक्ष सुहाय।
वृक्ष मूल में है सिंहासन, ऊपर चउ दिशि सिद्ध जिनाय।९४॥

वृक्ष मूल अरहंत जिनेश्वर, प्रतिमा शोभित भवहर जान।
हैं अशोक सप्तच्छद चंपक, आम्रचार ये वन तिहं थान।९५॥

मूंगा की डाली वृक्षों की, अरु वैडूर्य रतन फल जान।
दश प्रकार के कल्प वृक्ष हैं, सुरगण सेवित ललित महान।९६॥

चारों विध, सुर तिहं आवें, गीत नृत्ययुत पूजरचाय।
मंगल गान स्तवन वंदन कर, अतिशय महापुण्य फल पाय।९७॥

बतीस हजार सोने के घड़े, उसमें चौबीस हजार सोने की मालायें होती हैं, अनेक स्थानों पर घण्टे टंगे रहते हैं तथा उसमें अनेक प्रकार से सभा मण्डप की शोभा सुन्दर व अपार होती हैं।९२॥

वे मण्डप सौ योजन लम्बे और पचास योजन चौड़े होते हैं। तथा उनमें चौसठ योजन के पीठ और चालीस योजन के स्तूप होते हैं।९३॥

प्रत्येक जिनालय के बारह योजन ऊंचे शिखर होते हैं, तथा चार योजन का वृक्ष होता है। वृक्ष के मूल में सिंहासन होता है, सिंहासन पर चारों दिशाओं में सिद्ध भगवान की प्रतिमायें होती हैं।९४॥

वृक्ष के तल भाग में अरहंत भगवान की भव्य प्रतिमा होती है तथा उस जगह अशोक, सप्तच्छद, चंपक व आम्र। इस प्रकार चार प्रकार के वृक्षों वाले वन होते हैं।९५॥

उन वृक्षों की डालियां मूंगे की और फल वैडूर्य मणि के होते हैं। तथा दस प्रकार के कल्प वृक्ष वहां होते हैं, देवगण वहां क्रीड़ा करते रहते हैं।९६॥

चारों प्रकार के देव वहां आते हैं और गीत नृत्य के साथ पूजन भक्ति करते हैं, मंगलगान स्तुति वंदना कर वे अनन्त पुण्य का बंध करते हैं।९७॥

चैत्यालय की संख्या जानहु, तीन लोक में जो परिमाण।
तिनका वर्णन करूं इहां मैं, यथा कही श्री जिन भगवान॥१८॥
अधोलोक में हैं जिन मन्दिर, सात करोड़ बहत्तर लाख।
मध्यलोक में चार शतक अरु, अट्ठावन कहे जिन भाख॥१९॥
ऊर्ध्व लोक में लख चौरासी, सहस सतानव तेईस जान।
व्यंतरज्योतिष और अधिक हैं, तिनसंख्या का नहीं परिमाण॥२०॥
आठ करोड़ छप्पन लखरु, सहस सतानव चउ शत जान।
और इक्यासी अकृत्रिम मन्दिर, हैं त्रय लोक सर्व पहचान॥२१॥
अधोलोक में जितनी संख्या, चैत्यालय की है परिमाण।
हैं उतने ही भवन अकृत्रिम, व्यंतर भवन देव का वास॥२२॥
अधोलोक की प्रथम भूमि के, खर अरुपंक भाग में जान।
भवन और व्यंतर देवों के, अकृत्रिम भवन बने तिहं थान॥२३॥
ऊर्ध्व लोक में जितनी संख्या, में हैं शोभित स्वर्ग विमान।
उतने ही हैं रम्य जिनालय, प्रति विमान इक मन्दिर जान॥२४॥

अकृत्रिम चैत्यालय की संख्या तीन लोक में जिनेन्द्र भगवान ने जैसी कही है उसके अनुसार मैं यहां वर्णन करता हूं॥१८॥

अधोलोक के अकृत्रिम चैत्यालय सात करोड़ और बहत्तर लाख हैं तथा मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन हैं॥१९॥

ऊर्ध्वलोक में चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस अकृत्रिम जिनालय हैं। इसके अतिरिक्त व्यंतर तथा ज्योतिषी देवों के आवासों व विमानों में जो अकृत्रिम चैत्यालय हैं उनकी संख्या असंख्यात है॥२०॥

ऊपर कही चैत्यालयों की तीनों लोकों की कुल संख्या आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ इक्यासी जानना चाहिये॥२१॥

अधोलोक में जितनी संख्या अकृत्रिम चैत्यालयों की है उतने ही यहां व्यंतर व भवनवासी देवों के भवन हैं॥२२॥

वे भवन प्रथम नरक की रत्नप्रभा भूमि के खर और पंक भाग में बने हुये हैं॥२३॥

ऊर्ध्व लोक में जितने विमान देवों के हैं उतने ही अकृत्रिम चैत्यालय की संख्या जानना चाहिये। अर्थात् प्रत्येक विमान में एक एक अकृत्रिम चैत्यालय है॥२४॥

मध्यलोक के ४५८ अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

मध्यलोक के द्वीप त्रयोदश, तक चैत्यालय शोभित सार।
चार शतक अट्ठावन संख्या, रम्य अकृत्रिम अति सुखकार।।२५।।
पंच मेरु पर अस्सी जानहु, तीस कुलाचल पर हैं सार।
हैं गजदन्त वक्षगिरि ऊपर, शत इक चैत्य कहे सुखकार।।२६।।
इष्वाकार गिरीन्द्र चार शुभ, मानुषोत्तर पर भी चार।
विजयारध पर एकशतक अरु, सत्तर जिनचैत्यालय धार।।२७।।
जम्बू वृक्ष पर पंच जिनालय, पंच चैत्य शाल्मली कहाय।
नन्दीश्वर अष्टम द्वीपान्तर, बावन चैत्यालय सुखदाय।।२८।।
कुण्डलगिरि पर चार जिनालय, रुचक द्वीपगिरि परभी चार।
यों हैं चार शतक अट्ठावन, चैत्यालय वन्दूं उर धार।।२९।।
तीनलोक के अकृत्रिम मन्दिर, जिनकी महिमा अगम अपार।
विद्याधर सुर चारण वंदे, इत ''महेश'' वंदे उर धार।।३०।।

मध्य लोक के ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय

मध्यलोक के प्रथम जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रुचक द्वीप तक चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं और ये अत्यन्त सुन्दर एवं सुख देने वाले हैं।।२५।।

उनकी संख्या निम्न प्रकार है— पांचों सुमेरु पर्वत पर ८०। षट्कुलाचलों पर ३०। गजदन्त तथा वक्षारगिरि पर १००। इष्वाकार पर्वत पर ४ मानुषोत्तर पर भी ४। विजयार्ध पर्वत पर १७०। जम्बू वृक्ष पर ५। शाल्मली वृक्ष पर ५। नन्दीश्वर द्वीप में ५२। कुण्डलगिरि पर्वत पर ४ और रुचक द्वीप के रुचक पर्वत पर ४। इस प्रकार कुल चार सौ अट्ठावन (४५८) अकृत्रिम चैत्यालय मध्य लोक में अनादि निधन विराजमान हैं उनको मैं भक्ति भाव से हृदय में धारण कर वंदना करता हूं।। २६।२७।२८।२९।।

अब अधिक वर्णन न कर इतना लिखना ही पर्याप्त है कि तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों की महिमा अगम्य और अपार है, जिसका वर्णन लेखनी से बाहर है। उन चैत्यालयों की वंदना देव, विद्याधर व चारणऋद्धिधारी मुनि करते हैं। यहां पर स्थापना कर मनुष्य भी वंदन पूजन कर पुण्य संचय कर सकते हैं। मैं ''महेश'' ग्रन्थ रचयिता हृदय से श्रद्धा के साथ उन चैत्यालयों के मध्य जिनबिम्बों की यहां वंदना करता हूं।।३०।।

एक भवावतारी तथा दो भवावतारी का वर्णन

सौधर्मेंद्र शची तिनकी अरु, लोकपाल सुरपति के जान।
दाक्षिणेन्द्रषट् अरु लोकान्तिक, ब्रह्म स्वर्ग देवर्षि महान।।३१।।

अरु सर्वार्थ सिद्धि के सुर सब, जो अहमिन्द्र कहावें मान।
ये सब एक भवाअवतारी, नरभव पाय लहैं शिव थान।।३२।।

विजयादिक चउनव अनुदिश के, सुर अहमिन्द्र पुण्यबल पाय।
द्विभव पायचरम मानुष तन, निश्चय शिव पुर को वे जांय।।३३।।

इति पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक
ग्रन्थेऽकृत्रिम चैत्यालय वर्णनोनाम
चतुर्थोऽध्यायः।

एक भव से मोक्ष जाने वाले तथा दो भवों से मोक्ष जाने वालों का वर्णन करते हैं—

प्रथम सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र तथा उनकी शची (मुख्य इन्द्राणी) सौधर्मेंद्र के लोकपाल, छः दाक्षिणेन्द्र, पांचवें ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में रहने वाले लोकान्तिक देव जो कि महान देवर्षि कहलाते हैं, एवं सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र ये सब एक भवावतारी कहे जाते हैं, अर्थात् देव पर्याय से चयकर मनुष्य भव पाकर नियम से मोक्ष जाते हैं।।३१।।३२।।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार अनुत्तरके तथा नव अनुदिशों के अहमिन्द्र दो मनुष्य भव प्राप्त कर नियम से मोक्ष जाते हैं इसलिये वे द्विचरम कहे जाते हैं।।३३।।

इस प्रकार पं. महेन्द्र कुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्यतिलक ग्रन्थ में अकृत्रिम चैत्यालय तथा एक भव एवं दो भवों से मोक्ष जाने वालों का वर्णन करने वाला चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भवनत्रिक देव वर्णनम्

देवों के भेद

देव चार परकार कहे हैं, भवन और व्यंतर शुभ जान।
अरु ज्योतिष्क तथा वैमानिक, चार निकाय कहो भगवान॥१॥

भवनवासि के भेद कहे दश, व्यंतर देव अष्टविध जान।
ज्योतिष पंच प्रकार बताये, वैमानिक द्वादश विध मान॥२॥

भवनवासी देव

भवनदेव दश भेद कहावें, तिनके नाम कहूं मतिमान।
अधोलोक की रत्न प्रभा में, भवन अकृत्रिम वास महान॥३॥

असुरकुमार, नाग, विद्युत हैं, अरु सुपर्ण शुभ अग्निकुमार।
वात, स्तनित, उदधि अरु कहिये, द्वीपकुमार अरु दिक्कुमार॥४॥

देवों के भेद

देव चार प्रकार के होते हैं, अर्थात् देवों के चार निकाय (समूह) होते हैं। १. भवनवासी, २. व्यंतर, ३. ज्योतिष्क तथा ४. वैमानिक॥१॥

भवनवासी दस प्रकार के व्यंतर आठ प्रकार के ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के तथा वैमानिक देव बारह प्रकार के होते हैं॥२॥

भवनवासी देव वर्णन

भवनवासी देव के दस भेद कहता हूं जिनके कि अधोलोक की रत्न प्रभा भूमि के खर भाग और पंक भाग में अकृत्रिम भवन बने हुये हैं जहां ये देव रहते हैं॥३॥

उनके नाम निम्न प्रकार हैं— १. असुर कुमार, २. नाग कुमार, ३. विद्युत कुमार, ४. सुपर्ण कुमार, ५. अग्नि कुमार, ६. वात कुमार, ७. स्तनित कुमार, ८. उदधि कुमार, ९. द्वीप कुमार १०. दिक् कुमार॥४॥

मुकुट चिन्ह

भवनवासि दशविध देवों के, मुकुट चिन्ह हैं क्रमश: जान।
चूडामणि, अरु सर्प, गरुड हैं, हाथी मगर साथिया मान।५॥
वज्र, सिंह अरु कलश, तुरगहैं, ये दशचिन्ह भवन सुरवास।
अधोलोक की रत्न प्रभा के, खर अरु पंक भाग में वास।६॥
सात करोड़ बहत्तर लाख, सुभवन अकृत्रिम बने विशाल।
हैं प्रत्येक भवन में इक इक, जिन चैत्यालय वंद्य त्रिकाल।७॥
समचतुष्क हैं कोन भवन के, वज्रभित्तियुत शोभित द्वार।
तीन शतक योजन ऊंचे हैं, हैं असंख्य योजन विस्तार।८॥
बनी वेदियां चैत्य वृक्ष हैं, है अशोक चंपक वन सार।
सप्तच्छद अरु आम्र वनों से, शोभित भवन महासुखकार।९॥
बने जिनालय रत्नमयी हैं, मानस्तम्भ सुशोभित सार।
अष्ट सुमंगल द्रव्य विराजित, जिन चैत्यालय रम्य अपार।१०॥

दस प्रकार के भवन देवों के मुकुट के चिन्ह निम्न प्रकार हैं— १. चूड़ामणि, २. सर्प, ३. गरुड़, ४. हाथी, ५. मगर, ६. साथिया, ७. वज्र, ८. सिंह, ९. कलश, १०. तुरंग। ये देव अधोलोक की रत्न प्रभा के खर भाग और पंक भाग में रहते हैं।५।६॥

समस्त भवन सात करोड़ और बहत्तर लाख अकृत्रिम बने हुये हैं, ये बहुत विशाल हैं, प्रत्येक भवन में एक–एक अकृत्रिम चैत्यालय हैं जो कि त्रिकाल देवों द्वारा वंद्य है।७॥

ये भवन समचतुष्ककोन वाले हैं, इनकी भित्तियां (दीवारें) वज्र की होती हैं, इनके दरवाजे सुन्दर होते हैं, तीन सौ योजन ऊंचे और असंख्य योजन के विस्तार वाले भवन हैं।८॥

भवन में अनेक वेदियां बनी होती हैं तथा चैत्य, अशोक, सप्तच्छद और आम्रवनों से ये भवन सुशोभित हैं, देवों को भवन बहुत सुख देने वाले हैं।९॥

भवन में जो चैत्यालय हैं वे सब रत्नमयी हैं, इनमें मानस्तम्भ बने हुये हैं तथा अष्ट प्रकार के मंगल द्रव्य आदि से जिन चैत्यालय सुशोभित हैं। इस प्रकार समस्त चैत्यालय अत्यन्त सुन्दर और रमणीय होते हैं।१०॥

भवन देव के भवन भूमियां, मणिमय दीपक शोभित जान।
स्वर्णमयी हैं कूप मनोहर, वन उपवन शोभित छविमान।६१॥
तिन भवनों के अंतिक में हैं, रत्नमयी शैय्यायें जान।
भवन सुरों के इन्द्र सामानिक, आदि भेददश विध हैं मान।६२॥
विंशति इन्द्र उपेन्द्र बीस हैं, यों चालीस इन्द्र हैं जान।
तिनके नाम कहे आगम में, वर्णन करूं पढ़ु मतिमान।६३॥
असुर कुमारों में हैं सुरपति, चमर और वैरोचन जान।
नाग कुमार देव में कहिये, भूतानन्द धरणानन्द मान।६४॥
और सुपर्ण कुमारों में हैं, वेणू वेणू–धारी जान।
द्वीप कुमार देव में सुरपति, पूर्ण व शिष्ट सुरेश महान।६५॥
उदधि कुमारोंमें हैं शोभित, जलप्रभ अरु जलकान सुजान।
स्तनित कुमारों में हैं सुरपति, घोष महाघोट हैं मान।६६॥
विद्युत में हरिषेण और हैं, शुभ हरिकान्त सुरेन्द्र महान।
दिक्कुमार में अमितगति अरु, अमित वहन शोभित मतिमान।६७॥

भवनवासी देवों के भवनों की पृथ्वी भी मणिमय दीपकों से सुशोभित होती है। स्वर्णमयी कुए तथा वन उपवनों से वे सुन्दर शोभायमान हैं।६१॥

उन भवनों के मध्य में रत्नमयी शैयायें हैं। उन भवनवासी देवों के इन्द्र सामानिक आदि दसभेद हैं (जिनका वर्णन आगे वैमानिक देवों के वर्णन में आयेगा)।६२॥

भवनवासी देवों के बीस इन्द्र और बीस ही उपेन्द्र इस प्रकार चालीस इन्द्र होते हैं, उनके नाम जैसे कि आगम में वर्णित हैं यहाँ वर्णन करता हूं। हे बुद्धिमान सज्जनों ! उन्हें पढ़िये।६३॥

असुर कुमारों में इन्द्र हैं— चमर और वैरोचन। नाग कुमारों में भूतानन्द और धरणानन्द।६४॥

सुपर्ण कुमारों में वेणू और वेणूधारी। द्वीप कुमारों मे इन्द्र हैं, पूर्ण तथा शिष्ट।६५॥

उदधि कुमारों मे इन्द्र हैं जलप्रभ और जलकान। स्तनित कुमारों में इन्द्र हैं घोष और महाघोट।६६॥

विद्युत्कुमार देवों में इन्द्र हैं हरिषेण और हरिकान्त। दिक्कुमार देवों में अमितगति और अमितवाहन इन्द्र हैं।६७॥

वायु कुमार देव में सुरपति, वेलम्ब और प्रभञ्जन जान।
अग्नि कुमार में अग्निशिखी हैं, और अग्निवाहन हैं मान।।१८।।

बल

भवन देव तन इतना बल है, जम्बूद्वीप उलट दें जान।
और वहाँ के मनुज तिर्यञ्च, मार सकें रक्षक भी मान।।१९।।

अन्य विवरण

भवन देव में गुणस्थान हैं, पहले से चउ तक यों चार।
पर्याप्ति छह प्राण दशों हैं, दर्शन त्रय चउ लेश्या सार।।२०।।

पुरुष और स्त्री वेद दोउ हैं, और कषायें पूरण जान।
अरु षट् ज्ञान न संयम किञ्चित्, चारों संज्ञायें मतिमान।।२१।।

भव्य और अभव्य भाव दो, समकित, द्वयविधकहे सुजान।
दो उपयोग संज्ञी हैं ये सुर, भवन देव भूतल सुमकान।।२२।।

वायु कुमार देवों के इन्द्र हैं वेलम्ब और प्रभञ्जन तथा अग्नि कुमार देवों के अग्निशिखी और अग्निवाहन नाम के इन्द्र हैं।।१८।।

भवन सुरों का बल

भवनवासी देवों का बल इतना होता है कि समस्त जम्बूद्वीप को उलट सकें तथा जम्बूद्वीप के समस्त मनुष्य व तिर्यञ्चों को मार सकें या उनकी रक्षा कर सकें।।१९।।

अन्य विवरण

भवनवासी देवों के पहले से चार तक गुणस्थान होते हैं, छहों पर्याप्ति तथा दसों प्राण, तीन दर्शन, चार लेश्यायें होती हैं।।२०।।

पुरुष वेद व स्त्री वेद ये दो वेद व समस्त कषायें, छः ज्ञान, असंयम और संज्ञायें चारों होती हैं।।२१।।

भव्य और अभव्य ये दो भाव, सम्यक्त्व दो प्रकार के, दो उपयोग और सैनी ये गुण भवनवासी देवों के होते हैं जिनके भवन अधोलोक में हैं।।२२।।

भवन देव तहतें चय पावें, मनुज अरु पशु तन ही धार।
कर्म भूमि में ही जन्में वे, अरु अन्यत्र न योनि मंझार।।२३।।

भवन सुर कौन होवें ?

मिथ्यात्वी नर पशु ये ही भवि, भवन देव में जन्म लहाय।
विनय रहित अनृतभाषी, अरु हास्य खुशामद नर सुरथाय।।२४।।
भूतिकर्म कौतूहलकारी, चाटुकार नर जन्महिं लेय।
इतने जीव मनुष भव चय करि, जन्म भवन पर्याय लहेय।।२५।।
कोई त्यागी संयमच्युतमुनि, समकितच्युत विषयी जो होय।
वह भी मरकरि भवनदेव हो, आगम में यह वर्णन सोय।।२६।।
सुर भवनों में शैया पर जब, जन्म देव का हो उपपाद।
भेरी बजती घण्टा बाजें, गीत गाय देवी मिलि साथ।।२७।।
सुर अवधि तें जानें सब विध, पहले जिन प्रतिमा दरशान।
गीत नृत्य में मग्न होय पुनि, भोगें बहुत भोग भोगान।।२८।।

भवनवासी देव वहाँ से मरकर मनुष्य या पंचेन्द्रिय पशु पर्याय ही प्राप्त करते हैं। वा भी कर्मभूमि के मनुष्य व पशु योनि पाते हैं और दूसरी योनियों में जन्म नहीं लेते।।२३।।

कौन भवनवासी देव होते हैं ?

मिथ्यात्वी मनुष्य और पशु भवनवासी देवों में जन्म लेते हैं, तथा विनय रहित, झूठ वचन बोलने वाले, हंसी व खुशामद करने वाले, भूति कर्म अर्थात् अनेक प्रकार के कौतूहल करने वाले, चापलूस मनुष्य भवनवासी देव होते हैं।।२४।२५।।

कोई संयम तथा सम्यक्त्व से च्युत हुआ साधु या त्यागी हो, इन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त हो, ऐसे मनुष्य भी मर कर भवनवासी देव होते हैं। ऐसा शास्त्रों में वर्णन है।।२६।।

भवनवासी देवों की शैया पर जब उपपाद जन्म किसी देव का होता है तब भेरी बजती है, घण्टे बजते हैं, देवियाँ मिलकर गीत गाती हैं।।२७।।

जब अवधि ज्ञान से उन देवों को सब ज्ञात होता है तब सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन करते हैं फिर देवाङ्गनाओं के संग गीत नृत्य आदि में लीन होकर बहुत भोग भोगा करते हैं।।२८।।

सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण

भवन देव में समकित होवे, जिन प्रतिमा दर्शन तैं मान।
जिन कल्याणक के दर्शन अरु, देव ऋद्धि उपदेश सुजान।।२९।।
जातिस्मरण आदि तैं होवें, भवन देव के समकित जान।
यों है भवन देव का वर्णन, अब आयुष्य कहूं मतिमान।।३०।।

आयु वर्णन

आयुष भवन जघन्य सु कहिये, दस हजार शुभ वर्ष प्रमान।
आयुष उत्तम तिनकी जानहु, क्रमशः उनका करूं बखान।।३१।।
असुर कुमार एक सागर की, नाग कुमार पल्य त्रय जान।
और सुपर्ण कुमार देव की, ढाई पल्य कही भगवान।। ३२।।
द्वीप कुमार पल्य दो आयुष, शेष अर्धयुत एक प्रमान।
यों है भवन देव की उत्तम, तिनका वर्णन किया बखान।।३३।।

इति भवन देव वर्णनम्।

अथ व्यंतर देव वर्णनम्

व्यंतर अष्ट प्रकार देव हैं, किन्नर अरु किम्पुरुष महान्।
महोरग गन्धर्व यक्ष अरु, राक्षस भूत पिशाच सुजान।।३४।।

भवनवासी देवों में सम्यक्त्व के उत्पन्न होने के निम्न निमित्त कारण होते हैं। जिनेन्द्र भगवान के कल्याणकों के दर्शन, देव ऋद्धि, धर्मोपदेश, जाति स्मरण आदि हैं। अब भवनवासी देवों के आयु का वर्णन करता हूं।।२९।।३०।।

भवनवासी देवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है तथा उत्कृष्ट आयु क्रमशः निम्न प्रकार है।।३१।।

असुर कुमारों की एक सागर, नाग कुमारों की तीन पल्य, सुपर्ण कुमारों की अढाई पल्य, द्वीप कुमारों की दो पल्य, शेष बचे नाग कुमारों की आयु डेढ डेढ पल्य की है। इस प्रकार भवनवासी देवों की आयु का उत्कृष्ट वर्णन किया है।।३२।।३३।।

इस प्रकार भवनवासी देव का वर्णन समाप्त हुआ।

अब व्यंतर देवों का वर्णन करते है

व्यंतर देव आठ प्रकार के होते हैं।१. किन्नर, २. किम्पुरुष, ३. महोरग, ४. गन्धर्व, ५. यक्ष, ६. राक्षस, ७. भूत, ८. पिशाच।।३८।।

अधोलोक की रत्न प्रभा भू, तिनके पंक भाग खर भाग।
भवनअकृत्रिम तिहं निवास हैं, और विविध थल रहें सुभाग।।३५।।
वज्रा चित्रा भू के मध्यहि, और समस्त द्वीप द्रह माहि।
अन्तिम जलधि स्वयंभू तक वे, निवसैं मध्य लोक के ताहि।।३६।।
तीन तरह के भवन तीन हो, भवन, भवनपुर अरु आवास।
रत्नप्रभा अरु द्वीप समुद्र हि, भवन अकृत्रिम तिहां निवास।।३७।।
भवनों में उत्कृष्ट भवन हैं, योजन बारह सहस प्रमान।
हैं जघन्य सबसे छोटे जो, पच्चिस योजन के परिमाण।।३८।।
भवनों के हैं मध्य वेदियां, चउवन कूटक तोरण द्वार।
कूटों पर रमणीय जिनालय, मंगल द्रव्य अष्ट हैं सार।।३९।।
पद्य देवयुत हैं जिन प्रतिमा, भक्ति करैं सुरतिहं अधिकाय।
कूटों के चउ दिशि में शोभित, हैं व्यंतर प्रसाद सुहाय।।४०।।

अधोलोक की रत्नप्रभा भूमि के खर भाग और पंक भाग में इनके भी भवन बने हुये हैं, वे अकृत्रिम भवन हैं उनमें व्यंतर देव रहते हैं, तथा और भी विविध स्थानों में रहने से इनका व्यंतर नाम सार्थक है।।३५।।

वज्रा और चित्रा पृथ्वी में समस्त द्वीपों और द्रहों में, पर्वतों में अन्तिम समुद्र स्वयंभू रमण तक इन व्यंतर देवों का निवास है।।३६।।

इन व्यंतरों के भवन तीन प्रकार के हैं भवन, भवनपुर, और आवास। रत्नप्रभा भूमि और अनेक द्वीप समूहों में अकृत्रिम भवन हैं उनमें व्यंतर देवों का निवास है।।३७।।

भवनों में उत्कृष्ट भवन बारह हजार योजन के हैं तथा जघन्य जो कि सबसे छोटे पच्चीस योजन विस्तार के हैं।।३८।।

भवनों के बीच में वेदियां हैं, चार चार वन हैं, कूट हैं, तोरण युक्त दरवाजे हैं। कूटों के ऊपर रमणीय मंगलमय जिन मन्दिर हैं जो कि आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों से सुशोभित हैं।।३९।

जिन मन्दिरों में विराजमान प्रतिमाएं यक्षों से युक्त हैं, यहां देव गण आकर बहुत भक्ति, वंदना, स्तुति गान, आदि करते हैं, कूटों की चारों दिशाओं में व्यंतरो के महल बने हुये हैं।।४०।।

भवनों के सन्मुख हैं शोभित, चैत्य वृक्ष इक इक सुखकार।
वे हैं आठ तरह के जानहु, पृथ्वीकाय अकृत्रिम सार।।४१।।
प्रथम अशोकरु चम्पक कहिये, नागद्रुम तुम्बरु सुहाय।
हैं न्यग्रोध सुकण्टक वृक्षरु, तुलसी और कदम्ब सुभाय।।४२।।

प्रत्येक व्यंतरों के भेद

किन्नर किम्पुरुष महोरग, अरु गन्धर्व देव ये चार।
दश दश विध प्रत्येक जानहु, यक्षहि द्वादश भेद प्रकार।।४३।।
राक्षस सप्तरूभूत सप्तविध, अरु पिशाच चौदह विध जान।
यों हैं व्यंतर देव प्रभेदसु, तिन प्रत्येक हि करूं बयान।।४४।।

किन्नर के दस भेद

किन्नर भेद कहे दशविध हैं, किंपुरुष, किन्नर मतिमान।
हृदयंगम अरु रूपमाली हैं, किन्नर किन्नर शुभ पहिचान।।४५।।
और अनिन्दित तथा मनोरम, किन्नरोत्तम रतिप्रिय जान।
अन्तिम दशवें ज्येष्ठ कहावें, ये दश किन्नर देव सुजान।।४६।।

प्रत्येक महल के सामने एक एक चैत्य वृक्ष हैं, ये बहुत सुख देने वाले हैं। ये चैत्य वृक्ष आठ प्रकार के होते हैं पृथ्वी काय होते हैं और अकृत्रिम होते हैं।।४१।।

चैत्य वृक्षों के नाम निम्न प्रकार हैं। १. अशोक, २. चम्पक, ३. नागद्रुम, ४. तुम्बरु, ५. न्यग्रोध, ६. कण्टकवृक्ष, ७. तुलसी, ८. कदम्ब।।४२।।

व्यंतरों के एक एक के भेद

किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व ये चार प्रकार के देव प्रत्येक दस दस प्रकार के होते हैं। तथा यक्ष बारह प्रकार के, राक्षस और भूत सात–सात प्रकार के तथा पिशाच चौदह प्रकार के होते हैं। इस प्रकार व्यंतरों के भेद जानो। उनका प्रत्येक का वर्णन करता हूं।।४३।।४४।।

किन्नर देवों के दस भेद निम्न प्रकार हैं। १. किंपुरुष २. किन्नर, ३. हृदयंगम, ४. रूपमति, ५. किन्नरकिन्नर, ६. अनिन्दित, ७. मनोरम, ८. किन्नरोत्तम, ९. रतिप्रिय तथा १०वां ज्येष्ठ, ये दस किन्नर देवों के भेद जानने चाहिये।।४५।।४६।।

किंपुरुष के दश भेद

पुरुष और पुरुषोत्तम, कहिए, सत्पुरुष, महापुरुष बखान।
पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरु हैं, अरु मरुदेव मरुप्रभ जान॥४७॥

यशस्वान दशवें सुर जानहु, यों दशविध किंपुरुष महान।
महोरग दश भेद कहे हैं, तिनके नाम सुनहु मतिमान॥४८॥

महोरग के दश भेद

भुजग,भुजंगशाली, महातनु, हैं अतिकाय, स्कंध, शुभशालि।
तथा मनोहर, अशनिजव हैं, महेश्वर गंभीर सम्हालि॥४९॥

प्रिय दर्शन ये दश विख्यातहु, महोरग दश भेद महान।
हैं तथैव गंधर्व भेद दश, तिनके नाम कहूं मतिमान॥५०॥

गंधर्वों के दश भेद

हाहा, हूहू, नारद, तुम्बर, वासव और कदम्ब महान।
तथा महास्वर और गीतरति, नवम गीतरस वज्रसुवान॥५१॥

किंपुरुष के दस भेद

१. पुरुष, २. पुरुषोत्तम, ३. सत्पुरुष, ४. महापुरुष, ५. पुरुषप्रभ, ६. अतिपुरुष, ७. मरु, ८. मरुदेव ९. मरुप्रभ १०. यशस्वान, ये दस भेद किंपुरुष के कहे हैं, अब महोरग के नाम हे बुद्धिमानों! सुनो॥४७॥४८॥

महोरग के दस भेद

१. भुजग, २. भुजंगशाली, ३. महातनु, ४. अतिकाय, ५. स्कंधशाली, ६. मनोहर, ७. अशनिजव, ८. महेश्वर, ९. गंभीर, १०. प्रिय दर्शन, ये दस भेद महोरग जाति के व्यंतर देवों के हैं अब गंधर्वों के भेद कहता हूं उसे सुनिये॥४९॥५०॥

गंधर्वों के दस भेद

१. हाहा, २. हूहू, ३. नारद, ४. तुम्बर, ५. वासव ६. कदम्ब, ७. महास्वर, ८. गीतरति, ९. गीतरस १०. वज्रवान। ये दस गंधर्वों के भेद हैं॥५१॥

यक्षों के बारह भेद

यक्ष भेद द्वादश यों कहिये, मणीभद्र अरु पूरण भद्र।
शैलभद्र, अरुमनोभद्र हैं, भद्रक और कहेय सुभद्र।।८२।।

सर्वभद्र, मानुष धनपालसु, और सरूप यक्ष मतिमान।
यक्षोत्तम अरु मनोहरण ये, द्वादश भेद यक्ष सुरजान।।८३।।

राक्षसों के सात भेद

भीमसु, महाभीम, सुविनायक, उदक और राक्षस ये नाम।
राक्षसराक्षस, ब्रह्मसुराक्षस, राक्षस सप्त भेद यों जान।।८४।।

भूतों के सात भेद

प्रथम स्वरूप, और प्रतिरूपसु, भूतोत्तम प्रतिभूत सुजान।
महाभूत प्रतिछन्न कहावें, अरु आकाश भूत ये मान।।८५।।

यक्षों के बारह भेद

१. मणिभद्र, २. पूरणभद्र, ३. शैलभद्र, ४. मनोभद्र, ५. भद्रक, ६. सुभद्र, ७. सर्वभद्र, ८. मानुष, ९. धनपाल, १०. सरूपयक्ष, ११. यक्षोत्तम, १२. मनोहरण। ये बारह यक्षों के भेद हैं।८२।८३।।

राक्षसों के सात भेद

१. भीम, २. महाभीम, ३. विनायक, ४. उदक, ५. राक्षस, ६. राक्षस–राक्षस, ७. ब्रह्मराक्षस। ये सात भेद राक्षसों के हैं।८४।।

भूतों के सात भेद

१. स्वरूप, २. प्रतिरूप, ३. भूतोत्तम, ४. प्रतिभूत, ५. महाभूत, ६. प्रतिच्छन्न, ७. आकालभूत। ये सात भेद भूतों के हैं।८५।।

पिशाचों के चौदह भेद

देव पिशाच चतुर्दशविध हैं, शुभ कुष्माण्ड यक्ष मतिमान।
राक्षस अरु संमोह तारका, अशुचिनामक काल बखान।।५६।।
महाकाल शुचि और सतालक, देह महादेह सुर सांच।
हैं तुष्णीक और प्रवचन ये, भेद चतुर्दश देव पिशाच।।५७।।

व्यंतरों के इन्द्र

व्यंतर के प्रत्येक भेद में, दो दो इन्द्र कहे शुभनाम।
किन्नर के किम्पुरुष किन्नर , ये दो सुरपति दिव्य ललाम।।५८।।
किम्पुरुष के सत्पुरुष अरु, महापुरुष ये इन्द्र महान।
महोरग के महाकाय अतिकाय इन्द्र शुभ नाम सुजान।।५९।।
गंधर्वों के इन्द्र गीतरति, और गीतरस सुरपतिआन।
यक्षों के मणिभद्र तथा हैं, पूर्ण भद्र सुर ईश महान।।६०।।
भीम रु महाभीम राक्षस के, इन्द्र दोउ हैं शुभ मतिमान।
तथा स्वरूप और प्रतिरूपक, भूतों के हैं इन्द्र महान।।६१।।

पिशाचों के चौदह भेद

१. कुष्माण्ड, २. यक्ष, ३. राक्षस, ४. संमोह, ५. तारक, ६. अशुचि नामक, ७. काल, ८. महाकाल, ९. शुचि, १०. सतालक, ११. देह, १२. महादेह, १३. तूष्णीक, १४. प्रवचन, ये चौदह भेद पिशाचों के हैं।५६।५७।।

व्यंतरों के इन्द्र

व्यंतरों के प्रत्येक भेद में दो दो इन्द्र होते हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं। किन्नरों के किम्पुरुष और किन्नर ये दो इन्द्र हैं।५८।।

किम्पुरुष के सत्पुरुष और महापुरुष ये दो इन्द्र हैं, महोरग के महाकाय और अतिकाय नाम के इन्द्र होते हैं।५९।।

गंधर्वों के इन्द्र गीतरति और गीतरस होते हैं, यक्षों के मणिभद्र तथा पूर्णभद्र ये दो इन्द्र होते हैं।६०।।

राक्षसों के इन्द्र भीम तथा महाभीम हैं, तथा भूतों के स्वरूप एवं प्रतिरूप इन्द्र होते हैं।६१।।

काल महाकाल ये दोनों, इन्द्रपिशाचों के हैं जान।
यों व्यन्तर सुर एक एक दल, दुय दुय इन्द्र कहे गुणवान।६२।।

व्यंतरों के शरीर का वर्ण

किन्नर वर्ण प्रियंगु सम है, किम्पुरुष तन स्वर्ण समान।
महोरंग का कालश्यामल, शुद्ध स्वर्ण गंधर्व बखान।६३।।
यक्ष कालश्यामल तन कहिये, राक्षस शुद्ध श्याम तन जान।
भूत कालश्यामल तन वर्ण सु, अरु पिशाच काजल समजान।६४।।

व्यंतरों के नगर

व्यंतर देव समस्त दिव्यतन, महातेज के धारक जान।
तिनके नगर बने द्वीपों में, उनके नाम सुनहु मतिमान।६५।।
प्रथम अंजनक, वज्र धातु का, अरु सुवर्ण मनः शीलाक।
वज्र, रजत, हिंगुलक जानहु, अरु हरिताल द्वीप मधि लाक।६६।।
इन द्वीपों में नगर बने है, तिन चारों दिशि वन शुभजान।
वृक्ष अशोक सप्तछद चम्पक, आम्रवृक्ष युत शोभामान।६७।।

पिशाचों के काल और महाकाल इन्द्र होते हैं। इस प्रकार व्यन्तर देवों के एक एक भेद में दो दो इन्द्र होते हैं।६२।।

व्यंतरों के शरीर का वर्ण

किन्नरों का वर्ण प्रियंगु समान है किम्पुरुष का शरीर सोने के समान पीले वर्ण वाला है, महोरंग का वर्ण काला गंधर्वों का शुद्ध सोने के समान, यक्षों का वर्ण काला, राक्षसों का शुद्ध श्याम वर्ण, भूतों का रंग काला श्यामल है, तथा समस्त पिशाचों का रंग काजल के समान काला है।६३।६४।।

समस्त व्यंतर देवों का शरीर दिव्य तथा महातेजधारी होता है, उनके द्वीपों में अनेक नगर बने हुए हैं उनके नाम सुनिये।६५।।

अंजनक, वज्रधातु, सुवर्णमन, शीलाक, वज्र, रजत, हिंगुलक और हरिताल।६६।।

इन द्वीपों में जो व्यन्तरों के नगर बने हैं उनके चारों ओर चारों दिशाओं में अच्छे–अच्छे वन हैं। जो कि अशोक, सप्तच्छद चम्पक, और आम्र आदि वृक्षों से शोभायमान हैं।६७।।

इन नगरों में देव रहे हैं, व्यन्तर देव सहित परिवार।
क्रीड़ा करते हैं तनरक्षक, एक इन्द्र के सोल हजार।।६८।।
सैना तिनकी कही सप्तविध, हाथी घोड़े पैदल जान।
अरु गंधर्वसु नर्तक जानहु, रथ अरु बैल सप्त ये मान।।६९।।
हैं प्रत्येक इन्द्र के इकइक, शुभ प्रतीन्द्र तिन शोभित जान।
चार सहस्र देव सामानिक, सुर हैं तिनके पुण्य महान।।७०।।

व्यंतरों की आयु व आहार

व्यंतर सुर की एक पल्य की, उत्तम आयुष है भविजान।
मध्यम वर्ष असंख्य कहावे, अरु जघन्य आयु है मान।।७१।।
दश सहस्र वर्ष की जानहु, आयुष-व्यंतर सुर की जान।
अरु आहार दोउ दिन अन्तर, उत्तम पंच दिवस में मान।।७२।।

अवधि विषय

अवधि विषय है व्यंतर सुर का, उत्तम कहिये कोस पचास।
अरु जघन्य अवधि की सीमा, पांच कोस तक जाने आस।।७३।।

इन नगरों में व्यन्तर देव अपने परिवार सहित रहते हैं, तथा क्रीड़ा करते हैं, व्यन्तरों के इन्द्र के अङ्ग रक्षक सोलह हजार एक इन्द्र के होते हैं।।६८।।

व्यंतरों के इन्द्र की सात प्रकार की निम्न प्रकार सैना होती है। हाथी, घोड़े, पैदल, गन्धर्व, नर्तक, रथ और बैल ये सात प्रकार की सेना कही है।।६९।।

प्रत्येक इन्द्र के एक एक प्रतीन्द्र चार चार हजार सामानिक देव होते हैं वे व्यंतर बड़े पुण्य शाली होते हैं।।७०।।

व्यंतर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ अधिक है, और जघन्य दश हजार वर्ष की है, मध्यम आयु के असंख्यात भेद हैं तथा व्यंतर देवों का आहार जघन्य दो दिन से तथा उत्कृष्ट पांच दिनों के अन्तर में होता है।।७१।।७२।।

अवधि विषय

व्यंतर देवों के अवधि ज्ञान का विषय उत्कृष्ट पचास कोस और जघन्य पांच कोस तक जानते हैं।।७३।।

बल

शतमानुष मारें अरुपालें, धनुष डेढ़ सौ क्षेत्र उखाड़।
फेंके अल्पतम बल है इतना, व्यंतर देव जघन्य विभाड़।।१७४।।
है उत्कृष्ट शक्ति बल तिनके, पूरण भरत क्षेत्र उलटाय।
और समस्त क्षेत्र के जीवन, मारें पालें बल कहलाय।।१७५।।

विक्रियाशक्ति

सौ रूपों को बदले व्यन्तर, उत्तम शक्ति विक्रिया जान।
है जघन्य सप्त रूपों को, करे शक्ति है इतनी मान।।१७६।।

गमनशक्ति

गमन शक्ति व्यन्तर देवों की, संख्य असंख्यसु योजन जान।
तन ऊंचाई व्यंतर सुरकी, कही धनुष दश की परिमाण।।१७७।।
गुण स्थान, अरु प्राण भेद ये, पर्याप्ति संज्ञारू कषाय।
ज्ञान भाव आदिक व्यंतर के, भवन देव सुर सम वरणाय।।१७८।।

इति व्यंतरदेव वर्णनम्।

बल

व्यंतर देवों का शरीरबल जघन्य इतना होता है कि सौ मनुष्य मारे और डेढ़ सौ धनुष क्षेत्र को उखाड़ कर फेंक सकते हैं।।१७४।।

तथा व्यंतर देवों का उत्कृष्ट बल समस्त भरत क्षेत्र को उलट सके तथा समस्त भरत क्षेत्र के जीवों को मार सकते हैं या रक्षा कर सकते हैं इतना होता है।।१७५।।

व्यंतर देव यदि अपने शरीर की विक्रिया करे तो उत्कृष्ट शक्तिवाला देव सौ रूप बना सकता है, तथा जघन्य शक्ति वाले देव की सात तरह के रूप बनाने की शक्ति होती है।।१७६।।

व्यंतर देव के गमन की शक्ति संख्यात योजन और उत्कृष्ट असंख्यात योजन एक समय में जा सकते हैं, तथा व्यंतरों के शरीर की ऊंचाई दस धनुष प्रमाण कही गई है।।१७७।।

व्यंतर देवों के गुणस्थान, प्राण, पर्याप्ति, संज्ञा, कषाय, ज्ञान भाव भवनवासी देवों के समान जानना चाहिये।।१७८।।

इस प्रकार व्यंतर देवों का वर्णन समाप्त हुआ।

अथ ज्योतिष्क देव वर्णनम्

ज्योतिष देव विमान फिरे नित, जिनसे होते हैं दिन रात।
उनका वर्णन करूं भविकजन, सुनो ध्यानधरि मनथिर आन।।७९।।
ज्योतिष देव पंच विध जानहु, तिनके नाम प्रसिद्ध महान।
सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र रु, तथा प्रकीर्णक तारे जान।।८०।।
ढाई द्वीप के मनुज लोक में, भ्रमें मेरु गिरि के चहुं ओर।
रात्रि दिवस पक्ष अरु महीना, ऋतु अरु वर्ष होय सिरमौर।।८१।।
ढाई द्वीप के आगे ज्योतिष, देव विमान सभी थिर जान।
तिहाँ न रात्रि दिवस भेद है, अरु जघन्य भोग भू मान।।८२।।

पृथ्वी से ज्योतिष्क देवों की ऊंचाई

योजन सात शतक नब्बे है, ऊंचे तारे भू हैं जान।
ताके ऊपर रवि है ऊंचा, योजन आठ शतक भविमान।।८३।।

ज्योतिष्क देवों के विमान निरंतर सुमेरु पर्वत के चारों तरफ घूमते रहते हैं, जिससे दिन और रात्रि का भेद होता है। उन ज्योतिषी देवों का अब मैं वर्णन करता हूं, सो हे भव्यजीवो! उसको मन स्थिर करके ध्यान से सुनो।।७९।।

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक अर्थात् फैले हुए तारे ये पांच भेद ज्योतिष्क देवों के होते हैं।।८०।।

जम्बू द्वीप, धातकी खण्ड द्वीप तथा आधे पुष्कर द्वीप जिसे ढाईद्वीप और मनुष्य लोक कहते हैं उनमें ये ज्योतिष्क देव सुमेरु पर्वत के चारों ओर निरन्तर प्रदक्षिणा करते हैं जिससे पृथ्वी पर रात्रि, दिन, पक्ष मास, वर्ष, ऋतु आदि की गणना होती है। विशेष :— जम्बू द्वीप में सब ज्योतिषी देवों के समूह मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं, तथा धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध में आधे ज्योतिषी देव मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं।।८१।।

ढाई द्वीप के आगे असंख्यात द्वीप और समुद्रों में सभी ज्योतिषी देवों के विमान स्थिर रहते हैं वहां रात्रि दिन का भेद नहीं है और जघन्य भोगभूमि की रचना है।।८२।।

पृथ्वी से ज्योतिषी देवों की ऊंचाई

इस चित्रा पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन ऊंचे तारे हैं, उनके ऊपर सूर्य विमान है वह पृथ्वी से आठ सौ योजन ऊंचा है।।८३।।

चन्द्र विमान उच्च भूतलतैं, आठ शतक अस्सी योजन।
उन पर है नक्षत्र आठ सौ, चौरासी योजन परिमाण॥८४॥

तिन पर बुध है आठ शतक अरु, अट्ठासी योजन सुविचार।
शुक्र आठ सौ अरु इक्कानव, बृहस्पति त्रय ऊपर सार॥८५॥

मंगल योजन आठ शतक अरु, सत्तानवे सुयोजन मान।
अंतिम शनि भूतलतैं ऊंचा, शतनव योजन का परिमाण॥८६॥

यों है एक शतक दश योजन, ज्योतिष सुर मोटाई आन।
सप्त शतक नब्बे योजन हैं, नौसौ योजन उच्च महान॥८७॥

चन्द्र सूर्य संख्या में सम है, चन्द्र इन्द्र हैं सूर्य प्रतीन्द्र।
एक चन्द्र के ग्रह अट्ठासी, अरुनक्षत्र कहे अठ बीस॥८८॥

छाछट सहस नौ सौ पिचहत्तर, कोड़ाकोड़ी तारे जान।
यों परिवार एक शशि का है, जम्बू द्वीप द्वि चन्द्र बखान॥८९॥

सूर्य से ऊंचा चन्द्र विमान है, वह पृथ्वी से आठ सौ अस्सी योजन ऊंचा है। उस पर नक्षत्रों के विमान पृथ्वी से आठ सौ चौरासी योजन ऊंचे हैं। उनके ऊपर बुध के विमान आठ सौ अट्ठासी योजन ऊंचे हैं, बुध से शुक्र विमान पृथ्वी तल से आठ सौ इक्कानवे योजन ऊंचे हैं। उनसे बृहस्पति के विमान तीन योजन ऊंचे अर्थात् पृथ्वी से आठ सौ चौरानवे योजन ऊंचे हैं।८४।८५॥

उनके ऊपर मंगल विमान पृथ्वी से आठ सौ सत्तानवे योजन ऊंचे हैं सबसे ऊपर अंतिम विमान शनि का है, वह पृथ्वी से नौ सौ योजन ऊंचा है।८६॥

इस प्रकार सात सौ नब्बे योजन की ऊंचाई से नौ सौ योजन ऊंचाई तक ज्योतिषी विमान हैं। इनकी मोटाई कुल एक सौ दस योजन है।८७॥

चन्द्रमा और सूर्य की संख्या समान है, चन्द्र इन्द्र है और सूर्य प्रतीन्द्र है। एक चन्द्रमा के परिवार में अठासी ग्रह, अठाईस नक्षत्र, छाछट हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ा कोड़ी तारे हैं। इस प्रकार चन्द्रमा का परिवार है, जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा कहे गये हैं।८८।८९॥

चित्रा भू के ऊपर हैं शशि, मण्डल तिनके बड़े विमान।
योजन आठ शतक अस्सी हैं, ऊंचे तेज कांतिमय जान।।९०।।
चन्द्र विमान अर्द्ध गोलाकृति, मणिमय तेज कांतियुत जान।
द्वादश सहस ज्योतिमय किरणें, अतिशय शीतल तेज महान।।९१।।
चन्द्र विमान एक योजन का, इकसठवां है भाग प्रमाण।
तिस पर छप्पन भाग सुविस्तृत, तेज किरण युत चन्द्रविमान।।९२।।
सूर्य विमान, अर्द्ध गोलाकृति, किरणें द्वादश सहस सुभान।
इकयोजन के इकसठ हिस्से, तिनमें अड़तालीस विभाग।।९३।।
शुक्र विमान कोस इक जानहु, बृहस्पति कछु न्यून प्रमाण।
बुध अरु मंगल और शनिश्चर, आधा कोस प्रमान विमान।।९४।।
ताराओं के हैं विमान, उत्कृष्ट कोस इक का परिमाण।
मध्यम अर्द्ध कोस के जानहु, अरु जघन्य चौथाई जान।।९५।।
अरु नक्षत्र विमान जानिये, कोस एक इक के परिमान।
राहू केतु के विमान हैं, योजन इक कछु न्यून बखान।।९६।।

इस चित्रा पृथ्वी के ऊपर चन्द्रमा के सब विमान आठ सौ अस्सी योजन ऊंचे हैं, ये विमान बहुत तेज कांति वाले हैं, अर्द्धगोलाकार हैं मणिमय हैं, और बारह हजार प्रत्येक विमान की शीतल किरणें हैं ये बहुत ज्योतिमय अर्थात् प्रकाशवान हैं।।९०।।९१।।

चन्द्र विमान के उपरिम तल का विस्तार एक योजन के इकसठ भाग करने पर छप्पन भाग प्रमाण है। वह विमान तेज किरणों वाला है।।९२।।

सूर्य विमान अर्द्धगोलक के आकार का है, वह एक योजन के इकसठ भाग करने पर अड़तालीस भाग प्रमाण विस्तार का है।।९३।।

शुक्र का विमान एक कोस का है, बृहस्पति का विमान उससे कुछ कम है। बुध, मंगल, और शनिश्चर के विमान आधे आधे कोस के प्रमाण हैं।।९४।।

ताराओं के विमान उत्कृष्ट एक कोस, मध्यम आधा कोस, जघन्य पाव कोस के होते हैं।।९५।।

तथा नक्षत्रों के विमान एक एक कोस प्रमाण हैं, राहू और केतू के विमान एक योजन से कुछ कम हैं।।९६।।

राहू विमान चन्द्र तल जानहु, केतु विमान सूर्य तल जान।
षट् षट् मास अनंतर ये दो, चन्द्र सूर्य आच्छादें मान॥९७॥

राहू ढके निशाचर को अरु, रवि को ढकता केतु विमान।
इनके भ्रमण ग्रहण हो भूतल, षट्षट् मास अनंतर जान॥९८॥

चन्द्र सूर्य के षोडश षोडश, सहस देव तैं चलैं विमान।
सिंह, वृषभ, गज, अश्व आदि के, रूप धारि खींचे सुविमान॥९९॥

जम्बू द्वीप उपरि, द्वेशशि हैं, अरु रवि भी हैं द्वय शुभजान।
एक लक्ष तैंतीस सहस नव, शत पच्चास कहे परिमाण॥१००॥

कोड़ा कोड़ि तारे हैं शुभ, दें प्रकाश ये संख्या आन।
मेरु सुदर्शन करें परिक्रम, निशदिन नित्य भ्रमें अविराम॥१०१॥

भरत क्षेत्र में सात शतक पंचास सु कोड़ा कोड़ी जान।
ये तारों की संख्या जानहु, अरु विदेह तक दूनें मान॥१०२॥

जम्बू द्वीप भूमि ऊपर द्वै, चन्द्र दोय सूरज द्वै जान।
प्रतिदिन एक वीथी में करते, गमन दोउ भू ऊपर मान॥१०३॥

राहू का विमान चन्द्रमा के नीचे है, और केतु का विमान सूर्य के नीचे है, ये दोनों छः छः मास के अन्तर में चन्द्रमा और सूर्य को आच्छादित करते हैं॥९७॥

राहू चन्द्रमा को और केतू सूर्य को ढकते हैं, इन्हीं के ढकने से छः छः मास में पृथ्वी पर ग्रहण होता है॥९८॥

चन्द्रमा तथा सूर्य के विमान को सोलह सोलह हजार देव सिंह, बैल, हाथी, घोड़ा आदि के रूप धारण कर खींचते हैं॥९९॥

जम्बू द्वीप के ऊपर दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं तथा एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ा कोड़ी तारे हैं। ये बड़े शुभ और प्रकाश देने वाले हैं ये तारे सुदर्शन मेरु की परिक्रमा दिन रात निरन्तर करते हैं॥१००॥

भरत क्षेत्र में सात सौ पचास कोड़ा कोड़ी तारे हैं, और विदेह क्षेत्र तक इससे दूनी दूनी संख्या के हैं॥१०१॥१०२॥

जम्बू द्वीप के ऊपर दो सूर्य दो चन्द्रमा हैं, वे प्रतिदिन एक एक वीथी में गमन करते हैं॥१०३॥

चन्द्र भ्रमण की पन्द्रह वीथी, इकशत चौरासी रवि मान।
एक एक दिन एक वीथी में, गमन करें शशि रवि नित जान॥१०४॥
कर्क राशि में जब प्रवेश करि, रवि अभ्यंतर वीथी चलाय।
मकर राशि में रवि प्रवेश हो, तब वह बाह्य वीथी में जाय॥१०५॥
बाह्य मार्ग में चन्द्र सूर्य जब, आवें शीघ्र हि गमन कराय।
अभ्यंतर पथ में प्रवेश हो, तब वह गमन मंद गति जाय॥१०६॥
चन्द्र तले राहू विमान का, चार प्रमाणांगुल ध्वज दण्ड।
कछु कम इक योजन परिमित है, अंजन सम है श्याम सवर्ण॥१०७॥
राहू विमान चार गोपुर युत, अरुजिन चैत्यालययुत भान।
प्रतिदिन एक कला आच्छादे, चन्द्रकान्ति हो क्षीण सुजान॥१०८॥
त्यों ही एक कला को छोड़े, यों पन्द्रह दिन शशि नित भान।
पूर्ण ढ़के मावस जब आवे, यों शशि क्रमशः घटै वितान॥१०९॥

जम्बू द्वीप में चन्द्रमा के भ्रमण की पन्द्रह गलियां हैं और सूर्य भ्रमण की एक सौ चौरासी गलियां हैं, एक एक दिन में एक एक गली में ये भ्रमण करते हैं॥१०४॥

जब सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता है तब वह अभ्यन्तर गली में चलता है, और जब मकर राशि में सूर्य प्रवेश करता है तब वह बाह्य गली में चलता है॥१०५॥

बाह्य पथ अर्थात् गली में जब सूर्य गमन करे तब वह शीघ्र गमन करता है और अभ्यंतर पथ में जब प्रवेश करे तब वह मंद गति से गमन करता है॥१०६॥

चन्द्रमा के नीचे राहू को विमान का ध्वज दण्ड चार प्रमाणांगुल होता है। राहू के विमान एक योजन से कुछ कम विस्तार के हैं, वे अरिष्ट रत्नों से निर्मित अंजन के समान काले रंग के होते हैं॥१०७॥

राहू के विमान चार चार गोपुर सहित जिन चैत्यालयों से युक्त होते हैं। प्रतिदिन चन्द्रमा की एक एक कला को आच्छादित करते हैं अर्थात् ढकते हैं। तब चन्द्रमा की कान्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है॥१०८॥

इसी प्रकार दूसरे पक्ष में एक एक कला को छोड़ता जाता है इस प्रकार पन्द्रह पन्द्रह दिन नित्य राहू चन्द्रकला को ढकता है और छोड़ता है जब पूर्ण रूप से चन्द्रमा को ढकता है तब अमावस्या कहलाती है इस प्रकार चन्द्रमा को पन्द्रह दिन में पूर्ण ढक लेता है॥१०९॥

चन्द्र बिम्ब जब एक पक्ष में, घटे कृष्ण वह पक्ष कहाय।
बढ़े निरन्तर एक पक्ष में, शुक्ल पक्ष वह जग मन भाय॥११०॥
राहू चन्द्र को छह महिनों में, पूरणमासी की निशि जान।
पूरण आच्छादित वह करदे, तब वह चन्द्र ग्रहण पहिचान॥१११॥
जम्बू द्वीप मध्य रवि भ्रमते, योजन इक शत अस्सी मान।
लवणोदधि में सूर्य गमन है, योजन त्रयशत तीस सुजान॥११२॥
सूर्य विमान तले चउ अंगुल, अन्तर में है केतु विमान।
वह भी अञ्जन वर्ण श्याम है, सूर्य ढके रवि ग्रहण सुजान॥११३॥
सूर्य गमन जब प्रथम वीथी में, दिवस अठारह मुहूरत जान।
और रात्रि हो मुहूरत द्वादश, यों दिन रात होय यों मान॥११४॥
अंतिम बाह्य वीथी में सूरज, गमन करे जब भूपर आन।
तबै रात्रि अठ दश मुहूर्त की, द्वादश मुहूरत का दिन जान॥११५॥
श्रावण मास सूर्य जब करता, गमनवीथी अभ्यंतर मान।
निषध गिरि के ऊपर से रवि, उदित होय ता समय सुजान॥११६॥
नगर अयोध्या मध्यविनिर्मित, उच्च महल के ऊपर जान।
चक्रवर्ती तब खड़ा होय कर, देखे उदित बिम्ब रविमान॥११७॥

चन्द्रमा जिस पक्ष में घटता है वह कृष्ण पक्ष कहलाता है और जिस पक्ष में बढ़ता है वह शुक्ल पक्ष कहलाता है॥११०॥

राहू छः महिनों में पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा को आच्छादित करता है तब चन्द्र ग्रहण कहा जाता है॥१११॥

सूर्य का गमन जम्बू द्वीप में एक सौ अस्सी योजन है, तथा लवण समुद्र में सूर्य का गमन तीन सौ तीस योजन है॥११२॥

विमान के नीचे चार अंगुल अन्तराल में केतु का विमान है। वह भी अंजन के समान श्याम वर्ण का है और सूर्य को आच्छादित करता है तब सूर्य ग्रहण होता है॥११३॥

जब सूर्य पहली गली में गमन करता है तब दिन अठारह मुहूर्त का होता है, और रात्रि बारह मुहूर्त की होती है, इस प्रकार दिन रात का समय होता है॥११४॥

तथा सूर्य जब अपनी अंतिम गली में गमन करता है तब रात्रि अठारह मुहूर्त की होती है और दिन बारह मुहूर्त का होता है॥११५॥

श्रावण मास में जब सूर्य अभ्यन्तर गली में गमन करता है, तब सूर्य निषध गिरि के ऊपर से उदित होता है, उस समय अयोध्या के बीच ऊंचे महल के ऊपर चक्रवर्ती खड़ा होकर उदित होते हुए सूर्य के विमान में जिन बिम्ब के दर्शन करता है॥११६॥११७॥

भरतैरावत क्षेत्र सूर्य जब, रहे दिवस तब क्षेत्र मंझार।
हो उस काल निशा तब निश्चित, क्षेत्र विदेह मध्य शुभसार॥११८॥
अट्ठासी ग्रह का इक जानहु, है संचार क्षेत्र इक मान।
उनकी भी हैं वीथी तथा है, परिधि जिनागम वर्णित जान॥११९॥
चन्द्र सूर्य के हैं विमान सब, अर्ध सुगोलाकार समान।
चन्द्र किरण शीतल हैं अरु रवि, किरणें हैं अति उष्ण महान॥१२०॥
द्वादश सहस दोउ की किरणों, की है संख्या का परिमाण।
इन किरणों से इस भूतल पर, हो प्रकाश निशदिन अभिराम॥१२१॥
चन्द्र सूर्य के जो विमान तिन, मध्य सुवेदी शोभितकार।
वेदी बीच सुशोभित हैं, रमणीय महाराजाङ्गण भार॥१२२॥
राजांगण के मध्य रत्नमय, दिव्यकूट रमणीय अपार।
उन कूटों पर महाजिनालय, चैत्यालय राजित अति सार॥१२३॥
ये जिन भवन अकृत्रिम सुन्दर, रत्न दीप वसु मंगल सार।
वंदन मालक तोरण हैं पड़, रत्नमयी सब रम्य विचार॥१२४॥

भरत और ऐरावत के क्षेत्र में जब सूर्य रहता है इन दोनों क्षेत्रों में दिन होता है और विदेह क्षेत्र में तब रात्रि होती है उसी तरह जब सूर्य विदेह क्षेत्र में होता है तब उसमें दिन और भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में रात्रि होती है॥११८॥

अठासी ग्रहों का एक संचार क्षेत्र होता है, उन ग्रहों की भी गमन करने की गलियां और परिधि जिनागम में वर्णित की है॥११९॥

चन्द्रमा और सूर्य के सब विमान अर्ध गोलाकार हैं, चन्द्रमा की किरणें शीतल और सूर्य की किरणें अत्यन्त उष्ण हैं॥१२०॥

चन्द्रमा और सूर्य इन दोनों की बारह बारह हजार किरणें होती हैं, इन्हीं किरणों से पृथ्वी पर प्रकाश होता है जिससे दिन और रात्रि का भेद होता है॥१२१॥

चन्द्रमा और सूर्य के विमानों के मध्य में सुन्दर वेदियां होती हैं, उनके बीच में महाराजाङ्गण होता है॥१२२॥

उन राजाङ्गणों के बीच सुन्दर व दिव्य कूट होते हैं, उन कूटों पर भव्य अकृत्रिम जिनालय (चैत्यालय) होते हैं॥१२३॥

ये चैत्यालय अकृत्रिम अत्यन्त सुन्दर रत्नमय होते हैं, इनमें रत्नों के दीपक एवं मंगलद्रव्य, वंदन मालाएं व तोरण होते हैं॥१२४॥

इन भवनों में स्थान स्थान पर, नाट्य सभा वादित्र बजाय।
भामंडल सिंहासन चमरों, से शोभित चैत्यालय भाय॥१२५॥
यक्षयाक्षिणी युत प्रतिमा हैं, वीतराग छवि दिव्य सुहाय।
देव देवियां पूजन करते, नृत्य गीत बहुभक्ति रचाय॥१२६॥
वन उपवन प्रासाद युक्त ये, चन्द्र सूर्य के दिव्य विमान।
हैं रमणीय अकृत्रिम मणिमय, तिन की महिमा बड़ी महान॥१२७॥
कूटों के चारों दिशि में हैं, चन्द्र सूर्य प्रासाद महान।
मरकत मणि अरु कुन्द पुष्पसम, धवलाकार रु स्वर्ण समान॥१२८॥
मूंगा और बर्फ सम इनके, वर्ण कहे अति शोभित हाल।
इन भवनों में मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला सभा विशाल॥१२९॥
सभा भवन उपपाद सुमंदिर, भूषण गृह अभिषेक सुथान।
उत्तमकोट चित्रमय शोभित, दीवालें अरु तोरण जान॥१३०॥
उपवन वापी स्वर्ण स्तंभ युत, शशि रवि के हैं रम्य प्रसाद।
तथा सुगंधित धूप आदि से, सुरभित रहते हैं प्रासाद॥१३१॥

इन भवनों में जगह जगह पर नाट्यशालाएं व सभाएं बनी होती हैं, तथा ये चैत्यालय–भामण्डल चमर आदि से सुशोभित होते हैं॥१२५॥

उन चैत्यालयों में वीतराग मुद्रा युक्त रत्नमयी प्रतिमाएं यक्ष याक्षिणी सहित विराजमान हैं। उनमें देव देवियां पूजन, भजन, स्तवन व भक्ति सहित नृत्य करते हैं॥१२६॥

चन्द्रमा और सूर्य के विमान अत्यन्त दिव्य सुन्दर अकृत्रिम रत्नमयी बड़ी महिमा वाले होते हैं। ये वन, उपवन व महल आदि से सुशोभित हैं॥१२७॥

विमान में जो कूट हैं उनके चारों दिशाओं में चन्द्रमा और सूर्य के महल हैं, ये महल मरकतमणि के व कुन्द पुष्प के समान सफेद, एवं स्वर्ण के समान तथा मूंगा और बर्फ के समान वर्ण वाले हैं। इनकी शोभा अवर्णनीय है, इनमें मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला और सभाशालाएं बनी हुई हैं॥१२८॥१२९॥

तथा सभा भवन, उपपाद शय्या, आभूषणगृह, स्नानगृह उन महलों में बने हुए हैं। महलों की दीवारें अनेक चित्रों से सुसज्जित हैं, तथा ये प्रासाद वापिकाओं स्वर्ण–स्तंभों से युक्त हैं। सुगंधित धूप से ये महल नित्य सुगंध युक्त होते हैं॥१३०॥१३१॥

इन प्रासादों मध्य सुशोभित, रत्नमयी सिंहासन जान।
तिन पर चन्द्र व सूर्य विराजें, चार चार पट्टदेवी मान॥१३२॥

चन्द्राभा, स्रोसीमा, दूजी, प्रभंकरा देवी शुभ नाम।
अर्चिमालिनी नाम चतुर्थी, पट देवी चउ शशि की आम॥१३३॥

प्रथम द्युतिश्रुति, प्रभंकरा शुभ, सूर्य प्रभा देवी बहुमान।
अर्चिमालिनी ये चउ देवी, अग्रदेवियां दिनकर जान॥१३४॥

चार चन्द्र की चार सूर्य की, अग्रदेवियां हैं विख्यात।
सहस चार परिवार देवियां, इक इक की संख्या तिन साथ॥१३५॥

देवों के दश भेद कहे हैं, तिनमें चन्द्र सूर्य परिवार।
न्यून दोय वसु भेद जानिये, ज्योतिष देव जिनागम सार॥१३६॥

सूर्य चन्द्र ऊपर नक्षत्रों, के हैं नगर मनोहर जान।
ताके ऊपर ग्रह नगरी हैं, तिन पर बुध की नगरी मान॥१३७॥

इन महलों के बीच में रत्नमयी सिंहासन होते हैं, उन पर चन्द्रमा और सूर्य विराजते हैं उनके चार चार पट्टदेवी होती हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं॥१३२॥

चन्द्राभा, सोसीमा, प्रभंकरा, और अर्चिमालिनी ये चार चन्द्रमा की पट्ट देवियां हैं॥१३३॥

द्युति श्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी ये चार सूर्य की पट्टदेवियां हैं॥१३४॥

इस प्रकार चार तो चन्द्रमा की और चार सूर्य की अग्र देवियां हैं– इनके प्रत्येक के कुल देवियों का चार चार हजार का परिवार है॥१३५॥

देवों के जो दश भेद कहे गये हैं उनमें चन्द्रमा और सूर्य तथा ज्योतिष देवों के दो भेद कम होते हैं अर्थात् त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये ज्योतिष देवों में नहीं होते॥१३६॥

सूर्य चन्द्रमा के ऊपर नक्षत्रों के सुन्दर नगर हैं, तथा नक्षत्रों के ऊपर ग्रह और ग्रहों के ऊपर बुध के नगर हैं॥१३७॥

ये सब नगरी स्वर्णमयी हैं, अर्द्ध गोल तिनका आकार।
चन्द्र सूर्य सम हैं विमान में, राजाङ्गण अरु कूट अपार॥१३८॥

राजाङ्गण के मध्य कूट पर, सबमें हैं जिन मंदिर जान।
द्वै द्वै सहस देव इकइक दिशि, बुध के हैं जानहु गणमान॥१३९॥

बुध से ऊपर शुक्र नगर हैं, तिन पर बृहस्पति पुर जान।
तिन पर मंगल नगर सुशोभित, सबसे उच्च नगर शनि मान॥१४०॥

शेष ग्रहों की नगरी हैं बुध, और शनिश्चर मध्य सुजान।
यों हैं एक शतक दश योजन, मोटाई ज्योतिष सुर मान॥१४१॥

लोक अंत तक तारागण हैं, इनकी संख्या का नहिं पार।
लघु बड़े विमान रत्नमय, ऊर्ध्वमुखी चमकें निशि सार॥१४२॥

ढाई द्वीप के मनुष लोक में, गमन करें ज्योतिष सुर जान।
करें प्रदक्षिण मेरु महागिरि, आगे थिर सब ज्योतिष मान॥१४३॥

ये सब नगर स्वर्णमयी हैं, अर्द्धगोल इनका आकार है। चन्द्रमा और सूर्य के विमान की रचना के समान ही बुध के विमानों की रचना है। इनके विमानों में भी राजाङ्गण हैं, राजाङ्गण के बीच में कूट हैं, कूटों पर जिन मंदिर सुशोभित हैं, एक एक दिशा में दो दो हजार बुध के देव हैं॥१३८॥१३९॥

बुध के ऊपर शुक्र के नगर हैं शुक्र के ऊपर बृहस्पति के नगर हैं, बृहस्पति के ऊपर मंगल के नगर हैं, सबसे ऊंचे अर्थात् मंगल से ऊंचे शनि के नगर हैं॥१४०॥

शेष ग्रहों के नगर बुध और शनिश्चर के बीच में हैं, इस प्रकार एक सौ दस योजन की मोटाई में समस्त ज्योतिषी देवों का निवास है॥१४१॥

ताराओं का विस्तार सम्पूर्ण लोक के अन्त तक है, ये असंख्य हैं अर्थात् इनकी संख्या का पार नहीं है, इन ताराओं के छोटे व बड़े विमान होते हैं, ये विमान ऊर्ध्व मुखी होते हैं और रात्रि में चमकते हैं॥१४२॥

ढाई द्वीप के मनुष्य क्षेत्र में ये ज्योतिषी देव निरन्तर भ्रमण करते हैं, और सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं, ढाई द्वीप के आगे सब स्थिर हैं॥१४३॥

२८ नक्षत्र

है नक्षत्र अठाइस जानहु, तिनके नाम यथाक्रम जान।
ताराओं सम है विमान ये, ये भी भ्रमें निरंतर मान॥१४४॥
प्रथमकृतिका और रोहिणी, मृगशीर्षा, आर्द्रा है जान।
पुनर्वसु पुष्या, अश्लेषा, मघा, पूर्व फाल्गुनी सुजान॥१४५॥
तथा उतरा, फाल्गुनी है, हस्त चित्रा स्वाति विसाखा।
अनुराधा, ज्येष्ठा अरुमूला, पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़॥१४६॥
अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पूर्वाभाद्रपदा है जान।
उत्तरभाद्रपदा अरु जानहु, रेवती, अश्विनी, भरणी मान॥१४७॥
ये नक्षत्र बीस वसु तिनमें, उत्तम, मध्यम, जघन कहाय।
चन्द्र गली के मध्य गमन है, आगम में वर्णन अधिकाय॥१४८॥

गमनशक्ति

बावन सौ त्रेपन सौ योजन, मुहूरत इकमें गमन कराय।
इनतैं तेज गमन करते हैं, तारागण सब दिशा चलाय॥१४९॥
चन्द्र देव तैं सूरज जल्दी, गमन करें रवि तैं ग्रह जान।
और ग्रहों से शीघ्र गमन है, नक्षत्रों का शुभ पहिचान॥१५०॥

नक्षत्र कुल २८ हैं इनके नाम यथा क्रम से निम्न प्रकार है— १.कृत्तिका, २.रोहिणी, ३.मृगशीर्षा, ४.आर्द्रा, ५.पुनर्वसु, ६.पुष्य, ७.अश्लेषा, ८.मघा, ९.पूर्वा फाल्गुनी, १०.उत्तरा फाल्गुनी, ११.हस्त, १२.चित्रा, १३.स्वाति, १४.विशाखा, १५.अनुराधा, १६.ज्येष्ठा, १७.मूला, १८.पूर्वाषाढ़ा, १९.उत्तराषाढ़ा, २०.अभिजित, २१.श्रवण, २२.धनिष्ठा, २३.शतभिषक, २४.पूर्वा भाद्रपदा, २५.उत्तरा भाद्रपदा, २६.रेवती, २७.अश्विनी, २८.भरणि, इनके ताराओं के समान विमान होते हैं, ये भी निरन्तर भ्रमण करते हैं॥१४४॥ से १४७॥

इस प्रकार २८ नक्षत्र हैं इनमें कुछ जघन्य हैं, कुछ मध्यम हैं कुछ उत्तम कहे गये हैं। चन्द्रमा की वीथी में इनका गमन है अधिक वर्णन इनका आगम शास्त्रों से जानना चाहिये॥१४८॥

गमन शक्ति

ये नक्षत्र एक मुहूर्त में बावन सौ त्रेपन सौ योजन तक गमन करते हैं इनसे शीघ्र गमन ताराओं का है। चन्द्रमा से सूर्य शीघ्र गमन करता है। सूर्य से ग्रह, और ग्रहों से नक्षत्र शीघ्र गमन करते हैं॥१४९॥१५०॥

नक्षत्रों से शीघ्र गमन है, तारागण का निश्चय जान।
सूर्य चन्द्र नित गमन करे हैं, अपने अपनों में ही जान॥१५१॥
दक्षिण अयन आदि रवि का है, उत्तर अयन अपर पहिचान।
दो अयनों में एक अयन दिन, इकशत और तिरासी जान॥१५२॥
एक मुहूर्त समय रवि लांघे, गमनखण्ड अठदश शततीस।
तथा मुहूर्त में चन्द्र उलंघे, सत्रह सौ अड़सठ नभ पीस॥१५३॥
हो आषाढ़ मास की पूनम, तब युग पूरन होय सुजान।
श्रावणवदि प्रतिपदा दिवसतैं, हो अभिजित नक्षत्र महान॥१५४॥
तथा चन्द्रमा योग होय तब, नवयुग का प्रारम्भ सुजान।
उत्सर्पिणी काल कहलावे, तादिन से प्रारम्भ महान॥१५५॥
माघ मास के कृष्ण पक्ष की, दिवस सप्तमी रुद्रमुहूर्त।
तबै दक्षिणायन से चलकरि, चलें उत्तरायन नभ सूर्य॥१५६॥
कार्तिक कृष्णपक्ष की तृतीया, का दिन होवे तब पहिचान।
तब होवे नक्षत्र रोहिणी, निशा दिवस तब एक समान॥१५७॥

नक्षत्रों से तेज गति ताराओं की होती है। सूर्य और चन्द्रमा निरंतर अपने अपने अयनों में गमन करते हैं॥१५१॥

सूर्य का प्रथम अयन दक्षिणायन कहलाता है और दूसरा अयन उत्तरायन कहा जाता है, दोनों अयनों में एक अयन एक सौ तिरासी दिनों का होता है॥१५२॥

सूर्य एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी में अठारह सौ तीस गगन खण्डों को लांघता है, तथा चन्द्रमा एक मुहूर्त में सत्रह सौ अड़सठ नभ खण्डों को लांघता है॥१५३॥

जब आषाढ़ शुक्ला पूर्णमासी का दिन होता है तब युग की समाप्ति होती है, श्रावण कृष्ण प्रतिपदा अभिजित नक्षत्र और चन्द्र योग होवे तब उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होता है, वही नवयुग का प्रारम्भ कहा जाता है॥१५४॥१५५॥

माघ महिने की कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन रुद्र मुहूर्त में सूर्य दक्षिणायन से चलकर उत्तरायण में गमन प्रारम्भ करता है। और श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन में गमन प्रारम्भ करता है॥१५६॥

कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की तृतीया के दिन रोहिणी नक्षत्र के रहते दिन और रात्रि समान होते हैं॥१५७॥

अढ़ाई द्वीप में ज्योतिषी देवों की संख्या व वीथी

जम्बू द्वीप दोय रवि शशि हैं, लवणोदधि में हैं ये चार।
खण्ड धातकी में बारह हैं, कालोदधि ब्यालीस विचार॥१५८॥
पुष्करार्ध में सूर्य चन्द्र हैं, तिहां बहत्तर के परिमाण।
दो रवि दो शशि का इक जानो, है संचार क्षेत्र इकथान॥१५९॥
जम्बू द्वीप चन्द्र वीथी हैं, पन्द्रह अरु लवणोदधि तीस।
खण्ड धातकी नब्बे जानहु, अरु कालोदधि बरनें ईश॥१६०॥
तिनमें तीन शतक पन्द्रह हैं, चन्द्रवीथी का है परिमाण।
पुष्करार्द्ध में पंच शतक चालीस, वीथी हैं संख्या जान॥१६१॥
इक संचार क्षेत्र में जानहु, सूर्य वीथी का है परिमाण।
इकशत चौरासी है संख्या, तिनमें गमन करे रवि जान॥१६२॥

ग्रह वर्णन

लवणोदधि में ग्रह की संख्या, तीन शतक बावन परिमाण।
खण्ड धात की द्वीप सहस इक, छप्पन ग्रह हैं संख्या जान॥१६३॥

ढाई द्वीप में ज्योतिषी देवों की संख्या तथा गलियां

जम्बू द्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं— लवण समुद्र में चार, धातकी खण्ड में बारह, कालोदधि समुद्र में बयालीस हैं॥१५८॥

तथा पुष्करार्ध में बहत्तर सूर्य और बहत्तर चन्द्रमा हैं। दो सूर्य और दो चन्द्रमा का मिलकर एक संचार क्षेत्र होता है॥१५९॥

जम्बूद्वीप में चन्द्रमा की गलियां पन्द्रह हैं, लवण समुद्र में तीस, और धातकी खण्ड द्वीप में नब्बे, एवं कालोदधि समुद्र में तीन सौ पन्द्रह चन्द्रमा की गलियां हैं, तथा पुष्करार्ध द्वीप में पांच सौ चालीस चन्द्र गलियां हैं॥१६०॥१६१॥

एक संचार क्षेत्र अर्थात् जम्बू द्वीप में सूर्य की एक सौ चौरासी गलियां हैं, सूर्य उन गलियों में ही गमन करता है॥१६२॥

ग्रह वर्णन

लवण समुद्र में ग्रहों की संख्या तीन सौ बावन हैं, धातकी खण्ड द्वीप में एक हजार छप्पन ग्रह हैं॥१६३॥

कालोदधि में तीन सहस छः शतक छयानवे के परमाण।
पुष्करार्द्ध में त्रेसठ शत अरु, षट् विंशति ग्रह संख्या जान।।१६४।।

ढाई द्वीप में नक्षत्र

लवणोदधि में इकशत बारह, हैं नक्षत्र कहे शुभ जान।
खण्ड धातकी में हैं त्रयशत, अरु छत्तीस कहे परिमाण।।१६५।।
कालोदधि में ग्यारह शत अरु, छयत्तर हैं नक्षत्र महान।
पुष्करार्द्ध में द्वैसहस अरु, सोलह हैं संख्या परिमाण।।१६६।।

तारे

लवणोदधि में दोउ लक्ष सड़सठ सहस अर नौ सौ जान।
कोड़ा कोड़ी हैं तारागण, खण्ड धातकी करूं बखान।।१६७।।
आठ लक्ष त्रयसहस सप्त शत, कोड़ा कोड़ी तारे जान।
कालोदधि में लक्ष अठाईस, द्वादश सहसरु नवशत मान।।१६८।।
अरु पचास कोड़ा कोड़ी हैं, तारागण तिस जलधि मंझार।
पुष्करार्द्ध में अड़तालीस हैं लक्ष और दुइबीस हजार।।१६९।।
द्वैशत कोड़ा कोड़ी तारे, पुष्कर आधे द्वीप मंझार।
यों हैं ढाई द्वीप जलधि परि, तारे ग्रह नक्षत्र सुसार।।१७०।।

कालोदधि में तीन हजार छः सौ छयानवे, और पुष्करार्ध में त्रेसठ सौ छब्बीस ग्रहों की संख्या है।।१६४।।

लवण समुद्र में एक सौ बारह नक्षत्र हैं, धातकी खण्ड में तीन सौ छत्तिस, कालोदधि समुद्र में ग्यारह सौ छयत्तर नक्षत्र हैं, तथा पुष्करार्ध द्वीप में दो हजार सोलह के प्रमाण नक्षत्रों की संख्या है।।१६५।।१६६।।

ताराओं की संख्या

लवण समुद्र में दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोड़ा कोड़ी तारे हैं, और धातकी खण्ड द्वीप में आठ लाख तीन हजार सात सौ कोड़ा कोड़ी तारे हैं। कालोदधि में अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोड़ा कोड़ी तारे हैं, तथा पुष्करार्ध द्वीप में अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोड़ा कोड़ी तारे हैं इस प्रकार लवणसमुद्र से लेकर ढाई द्वीप (पुष्करार्द्ध) तक ग्रह नक्षत्र और तारों की संख्या ऊपर लिखे अनुसार है।।१६७।।१६८।।१६९।।१७०।।

ध्रुव तारे

ध्रुव तारे जो थिर रहते हैं, उनकी संख्या भिन सुजान।
लवणोदधि में इकशत अरु हैं, न्यून एक चालीस महान॥१७१॥

खण्ड धातकी में ध्रुव तारे, एक सहस ऊपर दश जान।
इकतालीस सहस इकशत अरु, विंशति कालोदधि में मान॥१७२॥

पुष्करार्द्ध में त्रेपन सहसरु, द्वैशत ऊपर त्रिंशत जान।
यों हैं ढाई द्वीप जलधि में, ध्रुव तारागण का परिमाण॥१७३॥

मानुष लोक पार्श्व इक भागहि, छासठ चन्द्र सूर्य हैं जान।
दोऊ पार्श्व भाग में दूने, हैं ये ज्योतिष इन्द्र महान॥१७४॥

ढाई द्वीप में सहस इकादश षट्शत षोडश ग्रह हैं जान।
सहस तीन अरु षट्शत छयानव, हैं नक्षत्र लोकनरथान॥१७५॥

लक्ष अठासी ऊपर चालिस, सहस सात सौ ऊपर जान।
कोड़ा कोड़ी हैं तारागण, ध्रुव तारागण यों मतिमान॥१७६॥

ध्रुव तारों की संख्या

ध्रुव तारे अर्थात् स्थिर रहने वाले तारों की संख्या निम्न प्रकार है, लवण समुद्र में एक सौ उनतालीस ध्रुव तारे हैं। धातकी खण्ड द्वीप में एक हजार दस ध्रुव तारे हैं कालोदधि में इकतालीस हजार एक सौ बीस ध्रुव तारे हैं। तथा पुष्करार्ध द्वीप में त्रेपन हजार दो सौ तीस स्थिर तारे हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में ध्रुव तारों की संख्या जानना चाहिये॥१७१॥१७२॥१७३॥

मनुष्य लोक के भीतर एक पार्श्व भाग में छासठ सूर्य और चन्द्रमा हैं, दोनों पार्श्व भाग में इससे दूने सूर्य चन्द्र हैं॥१७४॥

मनुष्य लोक अर्थात् अढ़ाई द्वीप में ग्यारह हजार छ: सौ सोलह ग्रह हैं, और तीन हजार छ: सौ छयानवे नक्षत्र हैं॥१७५॥

पंचानवे सहस ता ऊपर, कहे पंचशत पैंतिस जान।
यों हैं ढ़ाई द्वीप ज्योतिष सुर, तिनकी संख्या नियत सुजान।।१७७।।

मनुषोत्तर पर्वत से आगे, अंतिम जलधि स्वयं भू आन।
ज्योतिष देव असंख्य सर्वथिर, प्रथम द्वितिय तिन वलय महान।।१७८।।

ज्योतिष देवों की आयुष्य

चन्द्र देव की एक पल्य की, है उत्कृष्ट आयु पहिचान।
एक पल्य इक सहस वर्ष की है उत्कृष्ट सूर्य की जान।।१७९।।

तथा शुक्र की एक पल्य अरु, इकशत वर्ष कही भगवान।
बृहस्पति की एक पल्य की, अर्द्ध पल्य ग्रह शेष प्रमान।।१८०।।

तारागण की उत्तम आयुष, पल्य एक का चौथा भाग।
है जघन्य आयुष्य तिन्हीं की, पल्य एक का अष्टम भाग।।१८१।।

अट्ठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोड़ा कोड़ी तारे हैं। तथा पंचानवे हजार पांच सौ पैंतीस ध्रुव तारे हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में ज्योतिष्क देवों की निश्चित संख्या है।।१७६।।१७७।।

मानुषोत्तर पर्वत अर्थात् द्वीप से आगे अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप व स्वयंभूरमण समुद्र तक असंख्यात नक्षत्र, तारे, ग्रह आदि ज्योतिषी देव हैं वे सब एक स्थान पर अपने अपने प्रथम व द्वितीय वलयों में स्थिर रहते हैं।।१७८।।

आयु का विवरण

चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक पल्य की है, सूर्य की एक पल्य और एक हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु है।।१७९।।

शुक्र की उत्कृष्ट आयु एक पल्य और सौ वर्ष की है। बृहस्पति की एक पल्य की और शेष सब ग्रहों की आधे पल्य की, ताराओं की एक पल्य का चौथाई भाग अर्थात् पाव पल्य की आयु है। ज्योतिष देवों की जघन्य आयु एक पल्य के आठवें भाग प्रमाण है।।१८०।।१८१।।

ज्योतिष देव आहार श्वास अरु, तन ऊंचाई, शक्ति, ज्ञान।
जन्म, मरण, सम्यक्त्वहेतु गुणथान, आदि सुरभवन समान॥१८२॥

इति ज्योतिष्क देव वर्णनम्।

इति पं. महेन्द्रकुमार जैन "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक
ग्रन्थे भवनत्रिकसुर वर्णनोनाम
पंचमोऽध्यायः।

ज्योतिषी देवों के शरीर की ऊंचाई शक्ति, श्वास, ज्ञान, आहार, जन्म, मरण, सम्यक्त्व के कारण गुणस्थान आदि भवनवासी देवों के समान जानना चाहिये॥१८२॥

इति पं. महेन्द्रकुमार जैन "महेश" विरचिते त्रैलोक्य तिलक
ग्रन्थ में भवनवासी, व्यंतर व ज्योतिष्क
देव के वर्णन करने वाला पंचम
अध्याय समाप्त हुआ।

अथ षष्टमोऽध्यायः

ऊर्ध्वलोक वर्णनम् प्रारभ्यते

अब मैं ऊर्ध्व लोक का वर्णन, करूं जिनागम के अनुसार।
देव, इन्द्र, अहमिन्द्र रहें तिहं, सुख भोगें नित स्वर्ग मंझार॥१॥

मेरु सुदर्शन की चोटी से, बाल एक अन्तर अभिराम।
प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान है, ऊर्ध्व लोक प्रारम्भ सुनाम॥२॥

दो दो स्वर्ग युगल वसुविधि हैं, सब विमान यों ऊपर जान।
लख चुरासी हजार सतानव, तेईस हैं सब देव विमान॥३॥

षोडश स्वर्ग युगल द्वै द्वै में, ऊपर ग्रैवेयिक नव जान।
तीन अधः त्रयमध्य और हैं, ऊर्ध्व तीन यों नव पहिचान॥४॥

छठवां अध्याय

ऊर्ध्वलोक वर्णन प्रारम्भ

हे भव्य जीवों ! अब मैं उस ऊर्ध्वलोक का वर्णन प्रारम्भ करता हूं जिसमें देव, इन्द्र और अहमिन्द्र रहते हैं और निरन्तर सांसारिक सुख भोगते हैं॥१॥

सुदर्शन मेरु पर्वत के शिखर की चोटी के एक बाल अन्तर से प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान है, वहीं से ऊर्ध्वलोक का प्रारम्भ होता है॥२॥

स्वर्गों में दो दो युगल स्वर्ग अर्थात् आठ युगलों में सोलह स्वर्ग हैं, यों सब स्वर्ग विमानों में हैं, ऊर्ध्व लोक के कुल विमानों की संख्या चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस है॥३॥

दो दो युगलों में सोलह स्वर्ग हैं, स्वर्गों के ऊपर नव ग्रैवेयिक हैं, तीन अधः ग्रैवेयिक हैं, तीन मध्य और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयिक हैं इस प्रकार नव ग्रैवेयिक एक एक से ऊपर हैं॥४॥

ताके ऊपर नव अनुदिश हैं, मध्य एक वसु हैं चहुं ओर।
तिन पर पञ्च अनुत्तर राजैं, एक मध्य चउदिशि चऊ ठौर।५॥

यों है ऊर्ध्व लोक की रचना, सबसे ऊपर है शिव लोक।
सबके नाम कहूं अनुक्रमतैं, सुनहु ध्यान धरिके भविलोक।६॥

स्वर्गों के नाम

प्रथम स्वर्ग सौधर्म कहावे, दूजा स्वर्ग कहा ईशान।
तीजा सानत स्वर्ग चतुर्थम, है माहेन्द्र स्वर्ग शुभ जान।७॥

ब्रह्म पांचवां अरु ब्रह्मोत्तर, षष्टम स्वर्ग कहा शुभ जान।
लान्तव अरु कापिष्ठ कहावें, सप्तम अष्टम ये पहिचान।८॥

शुक्र, महाशुक्र नवदशमें, एकादशम शतार महान।
सहस्रार द्वादशम कहावे, आनत तेरहवां शुभ जान।९॥

प्राणत, आरण, अच्युत ये त्रय, यों शोडश हैं स्वर्ग महान।
इनको कल्प कहें आगम में, इनके भेद कहे दश जान।१०॥

ग्रैवेयिकों के ऊपर नव अनुदिश हैं, उनमें एक बीच में और आठ चारों ओर दिशाओं और विदिशाओं में हैं। अनुदिश के ऊपर पंच अनुत्तर विमान हैं, एक बीच में और चार चारों दिशाओं में हैं।५॥

इस प्रकार ऊर्ध्वलोक की रचना है, इन सबसे ऊपर मोक्ष है, हे भव्य जीवों ! अब मैं इन सबके नाम क्रम से कहता हूं उसे ध्यान से सुनो।६॥

स्वर्गों के नाम

पहला सौधर्म, दूसरा ईशान, तीसरा सानत्कुमार, चौथा माहेन्द्र, पांचवां ब्रह्म, छटवां ब्रह्मोत्तर, सातवां लान्तव, आठवां कापिष्ठ, नवमां शुक्र, दशवां महाशुक्र, ग्यारहवां शतार, बारहवां सहस्रार, तेरहवां आनत, चौदहवां प्राणत, पन्द्रहवां आरण, सोलहवां अच्युत, इस प्रकार ये सोलह स्वर्गों के नाम हैं इन्हें कल्प भी कहते हैं, कारण इन स्वर्गों के देवों में दस प्रकार के कल्प अर्थात् भेद होते हैं, जिनका वर्णन आगे करेंगे।।७।८।९।१०॥

नव ग्रैवेयिक

प्रथम सुदर्शन है अमोघ अरु, सुप्रबद्ध ग्रैवेयिक जान।
तथा यशोधर अरु सुभद्र हैं, षष्टम ग्रैवेयिक शुभमान॥११॥
सप्तम सुमनस अरु सोमनस, अंतिम प्रीतिंकर सुविमान।
तीन अध: त्रयमध्य और त्रय, ऊर्ध्व कहे ग्रैवेयिक जान॥१२॥

नव अनुदिश

शुभ आदित्य प्रथम अरु अर्चा, अर्चिमालिनी वैर सुजान।
वैरोचन अरु सोम सातवां, सोमरूप अरु अर्क महान॥१३॥
नवमां स्फाटिक नाम अनुदिश, यों अनुदिश नवविध पहिचान।
श्रेणिबद्ध हैं चार प्रकीर्णक, चार और इक इन्द्रक जान॥१४॥

पंच अनुत्तर विमान

प्रथम विजय अरु अपर वैजयंत, और जयंत तीसरा नाम।
तथा चतुर्थम अपराजित है, अरु सर्वार्थ सिद्धि अभिराम॥१५॥

नव ग्रैवेयिक

प्रथम सुदर्शन, दूसरा अमोघ, तीसरा सुप्रबुद्ध, चौथा यशोधर, पांचवां सुभद्र, छटवां ग्रैवेयिक, सातवां सुमनस, आठवां सोमनस, नवमां प्रीतिंकर, इस प्रकार नव ग्रैवेयिक एक एक के ऊपर हैं जिन्हें तीन अध:, तीन मध्य और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयिक कहते हैं॥११॥१२॥

नव अनुदिश निम्न प्रकार हैं—

१. आदित्य, २. अर्चा, ३. अर्चिमालिनी, ४. वैर, ५. वैरोचन, ६. सोम, ७. सोमरूप, ८. अर्क, ९. स्फाटिक, इस प्रकार नव अनुदिश विमान एक ही पटल में स्थित हैं इनमें चार श्रेणीबद्ध हैं जो चारों दिशाओं में हैं और चार प्रकीर्णक हैं जो चार विदिशाओं में हैं, और एक इन्द्रक है जो कि सबके बीच में है॥१३॥१४॥

पांच अनुत्तर

पांच अनुत्तर विमान निम्न प्रकार हैं—

१. विजय, २. वैजयंत, ३. जयंत, ४. अपराजित, ५. सर्वार्थ सिद्धि॥१५॥

सबके मध्य सुशोभित ऊंचा, है सर्वार्थसिद्धि सुविमान।
सप्तम नरक मध्य इन्द्रकबिल, जम्बूद्वीप त्रय एक समान॥१६॥

तिस पर द्वादश योजन ऊंची, भू अष्टमईषत्प्राग्भार।
सिद्ध शिला तिस भू पर राजे, तापर सिद्ध अनंत अपार॥१७॥

यों है ऊर्ध्व लोक की महिमा, तिनका कुछ मैं करूं बयान।
देव और अहमिन्द्र रहें तिहं, बरणूं पटल तथा सुविमान॥१८॥

स्वर्गों में पटल

ऊरध लोक पटल त्रेसठ हैं, तिनमें शोभित देव विमान।
सोलह स्वर्ग मध्य बावन हैं, ग्रैवेयिक नव में नवमान॥१९॥

अनुदिशि एक अनुत्तर में भी, एक पटल यों त्रेसठ मान।
यों है ऊर्ध्व लोक की रचना, अब श्रुणु वर्णन देव विमान॥२०॥

चार चारों दिशाओं में और सबके बीच में सबसे ऊंचा सर्वार्थसिद्धि विमान है। यह सर्वार्थ सिद्धि का विमान और सातवें नरक का इन्द्रक बिल, और जम्बू द्वीप ये तीनों बराबर बराबर एक लक्ष योजन के विस्तार के हैं॥१६॥

सर्वार्थ सिद्धि के विमान से बारह योजन ऊंची ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है, उसके बीच में पैंतालीस लाख योजन के विस्तार में सिद्धशिला है, उस सिद्धशिला पर अनंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं॥१७॥

इस प्रकार ऊर्ध्व लोक की अत्यन्त महिमा है उस ऊर्ध्व लोक में देव, इन्द्र और अहमिन्द्र रहते हैं वहां के पटल और विमान वगैरह का वर्णन यहां करता हूं॥१८॥

ऊर्ध्व लोक में त्रेसठ पटल हैं, उन पटलों में देवों के विमान होते हैं। सोलह स्वर्गों में बावन पटल हैं नव ग्रैवेयिक में नव पटल हैं॥१९॥

नव अनुदिश में एक पटल है और पंच अनुत्तर में एक पटल है इस प्रकार कुल ६३ पटल है, ऊर्ध्व लोक की रचना इसी प्रकार की है अब देवों के विमानों का वर्णन सुनिये॥२०॥

स्वर्गों में विमान

हैं विमान स्वर्गों में तातैं, वैमानिक ये देव कहाय।
इन्द्रक श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक, हैं विमान देवन सुखदाय॥२१॥
चौरासी लख सहस सतावन, तेईस ऊर्ध्व लोक सुविमान।
एक एक में एक जिनालय, तिनकी संख्या एक समान॥२२॥
प्रथम स्वर्ग सौधर्म माँहि हैं, बत्तिस लक्ष कहे सुविमान।
अरु ईशान विमान अठाईस, लक्ष कहे आगम परमान॥२३॥
तीजे द्वादश लक्ष कहे हैं, चौथे में वसु लक्ष प्रमान।
पंचम षष्टमयुगल चार लख, सप्तम अष्टम सहस पचास॥२४॥
नवमें दशवें स्वर्ग युगल में, हैं विमान चालीस हजार।
ग्यारम बारहमें षट् सहसक, तेरह तैं षोडश तक सार॥२५॥
सप्त शतक है संख्या जानहु, यों विमान हैं स्वर्ग मंझार।
अधः ग्रैवेयिक त्रयमें जानहु, एक शतक एकादश सार॥२६॥
मध्य ग्रैवेयिक त्रय में शोभित, इकशत तथा सप्त सुविमान।
ऊर्ध्व तीन ग्रैवेयिक में हैं, इक्कावन की संख्या जान॥२७॥
नव अनुदिश में नव विमान हैं, पंच अनुत्तर पंच विमान।
यों हैं ऊर्ध्व लोक में शोभित, सुरगण सेवित देव विमान॥२८॥

स्वर्ग विमान वर्णन

स्वर्गों में विमान होते हैं इसीलिये स्वर्ग के देव वैमानिक कहलाते हैं ये विमान देवों को बहुत आराम व सुख देने वाले इन्द्रक श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक नाम से कहे जाते हैं॥२१॥

कुल विमान चौरासी लाख सतावन हजार तेईस की संख्या में हैं प्रत्येक विमान में एक एक जिनालय है, इनकी संख्या भी विमानों के समान है॥२२॥

पहले स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान हैं, दूसरे ईशान स्वर्ग में अठाईस लाख, तीसरे स्वर्ग में बारह लाख, चौथे स्वर्ग में आठ लाख, पांचवें छटवें स्वर्ग में चार लाख, सातवें आठवें स्वर्ग में पचास हजार विमान हैं। नवमें दशवें स्वर्ग में चालीस हजार विमान हैं। ग्यारहवें बारहवें स्वर्ग में छः हजार, तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक सात सौ विमान हैं। तीन अधः ग्रैवेयिक में एक सौ ग्यारह विमान हैं, तीन मध्य ग्रैवेयिक में एक सौ सात विमान हैं और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयिक में इकावन विमान हैं। नव अनुदिश में नव विमान हैं तथा पांच अनुत्तर में पांच विमान हैं इस प्रकार ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग के विमानों की संख्या है जिनमें देवगण रहते हैं॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

स्वर्गों में नगर

स्वर्गों में है नगर बने तिहिं, स्वयं अनादि अकृत्रिम जान।
तिनकी संख्या कही जिनागम, घटें बढ़ें नहिं निश्चित मान।।२९।।

प्रथम स्वर्ग में नगर कहाये, सहस चुरासी दिव्यमहान।
द्वितिय स्वर्ग में सहस्र सुअस्सी, तृतिय बहत्तर सहस प्रमान।।३०।।

सत्तर सहस चतुर्थम जानहु, पंचम षष्ठम साठ हजार।
सप्तम अष्टम सहस पचासहि, नवदश में चालीस हजार।।३१।।

ग्यारह बारहवें स्वर्गों में, त्रिंशत सहस नगर शुभसार।
तेरहतें सोलह स्वर्गों में, एक एक में बीस हजार।।३२।।

स्वर्गों में मानस्तंभ

सौधर्मादि माहेन्द्र चार, स्वर्गों में मानस्तंभ सुहाय।
तिनमें रम्य करण्ड मनोहर, वस्त्राभूषण रहें जिनराय।।३३।।

नगर वर्णन

स्वर्गों में अकृत्रिम अनादि निधन नगर हैं उनकी संख्या आगम में कही है ये नगर कम ज्यादा नहीं होते।।२९।।

पहले स्वर्ग में चौरासी हजार नगर हैं, दूसरे स्वर्ग में अस्सी हजार, तीसरे स्वर्ग में बहत्तर हजार, चौथे में सत्तर हजार नगर हैं, पांचवें छटवें स्वर्ग में साठ हजार, सातवें आठवें में पचास हजार, नववें दशवें स्वर्ग में चालीस हजार नगर हैं।।३०।।३१।।

ग्यारहवें बारहवें स्वर्ग में तीस हजार नगर हैं, तथा तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक एक एक स्वर्ग में बीस बीस हजार नगर हैं।।३२।।

मानस्तंभ वर्णन

सौधर्म स्वर्ग से चौथे माहेन्द्र स्वर्ग तक इन चार स्वर्गों में बड़े सुन्दर मानस्तंभ हैं, उन मानस्तंभों में तीर्थंकरों के वस्त्र व आभूषण रखने के रत्नमयी सुन्दर पिटारे होते हैं।।३३।।

प्रथम स्वर्ग में भरत क्षेत्र के, तीर्थंकर पट भूषण होय।
द्वितीय स्वर्ग के मानस्तंभ में, ऐरावत जिन भूषण सोय।।३४।।

स्वर्ग तीसरे में पट भूषण, पूर्व विदेह जिनेश्वर जान।
चौथे स्वर्ग सुवस्त्राभूषण, अपर विदेह तीर्थंकर मान।।३५।।

मानस्तंभ करण्ड सुरक्षित, वस्त्राभूषण सुरपतिल्याय।
करि अभिषेक सुमेरु महागिरि, हर्षित मन प्रभु को पहिराय।।३६।।

मानस्तंभ समीप मनोहर, स्थान सुशोभित हैं उपपाद।
रत्नमयी शैया हैं तिन पर, इन्द्र जन्म होवे उपपाद।।३७।।

ताके अतिक भव्य जिनालय, शिखर युक्त उत्तुङ्ग महान।
मणिमय भव्य रत्नयुत राजित, वीतराग छवि जिन भगवान।।३८।।

सब सुराङ्गना सब स्वर्गों की, प्रथम द्वितीय स्वर्ग शुभथान।
लहैं जन्म ऊपर नहिं जन्में, लेजावें सुर इन्द्र विमान।।३९।।

पहले स्वर्ग के मानस्तंभ में भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं, दूसरे स्वर्ग के मानस्तंभ में ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं।।३४।।

तीसरे स्वर्ग के मानस्तंभ में पूर्व विदेह के तीर्थंकरों के और चौथे स्वर्ग के मानस्तंभ में पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण रहते हैं।।३५।।

मानस्तंभों में रत्नों के पिटारों में ये वस्त्राभूषण सुरक्षित रहते हैं, इन्द्र तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय सुमेरु पर्वत पर बड़े हर्ष से जिनेन्द्र को पहनाता है।।३६।।

मानस्तंभ के पास सुन्दर रत्नमयी उपपाद शैयायें हैं जिन पर इन्द्र का उपपाद जन्म होता है।।३७।।

उसके पास में बड़े ऊंचे भव्य शिखर युक्त जिन मंदिर होते हैं, जिनमें रत्नमयी दिव्य वीतराग मुद्रावाली जिन प्रतिमा सुशोभित होती हैं।।३८।।

स्वर्गों की समस्त देवाङ्गनाएं पहले व दूसरे स्वर्ग में ही जन्म प्राप्त करती हैं, अपने अपने स्वर्ग के देव व इन्द्र अपनी अपनी नियोगिनी देवाङ्गनाओं को अपने विमानों में ले जाते हैं।।३९।।

बिन देवों के हैं विमान तिह, प्रथम स्वर्ग में हैं षट्‌लाख।
दूजे स्वर्ग मांहि शुभ राजित, संख्या कही तिहां चउलाख॥४०॥
देवी देव सहित स्वर्गों में, प्रथम द्वितीय के स्वर्ग मंझार।
हैं षटविंशति लख तथा, चउबीस लख क्रमशः अनुसार॥४१॥

देवों के दश भेद

देवों के दश भेद कहे हैं, तिनके नाम श्रवण सुखकार।
इन्द्र प्रथम सामानिक दूजे, त्रायस्त्रिंश पारिषद सार॥४२॥
आत्मरक्ष-अरु लोकपाल शुभ, तथा अनीक प्रकीर्णक जान।
आभियोग्य अरु किल्विषिक हैं, ये दश भेद देव के मान॥४३॥
त्रायस्त्रिंश अरु लोकपाल द्वै, व्यन्तर ज्योतिष में नहिं जान।
तातैं अष्ट भेद हैं इनके, सबमें प्रमुख इन्द्र पहिचान॥४४॥
ज्यों नर लोक सभा राजा की, त्यों सुरपति की सभा सुजान।
सबसे उच्च सिंहासन बैठे, इन्द्र सर्व सुर माने आन॥४५॥

बिना देवों के केवल देवाङ्गनाओं वाले विमान पहले स्वर्ग में छः लाख हैं, और दूसरे स्वर्ग में चार लाख हैं॥४०॥

तथा जिनमें देव और देवाङ्गनाएं दोनों रहती हैं उन विमानों की संख्या पहले स्वर्ग में छब्बीस लाख है एवं दूसरे स्वर्ग में चौबीस लाख है॥४१॥

देवों के दस भेद वर्णन

चारों प्रकार के देवों के दस दस भेद होते हैं उनके नाम जो कि सुनने में सुखकर हैं निम्न प्रकार है— १. इन्द्र, २. सामानिक, ३. त्रायस्त्रिंश, ४. पारिषद्, ५. आत्मरक्ष, ६. लोकपाल, ७. अनीक, ८. प्रकीर्णक, ९. आभियोग्य, १०. किल्विषिक, इस प्रकार ये दस भेद होते हैं॥४२॥४३॥

इनमें व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये दो भेद नहीं होते हैं, इसलिये इनके आठ भेद कहे गये हैं, इन सबमें इन्द्र प्रधान होता है॥४४॥

जिस प्रकार मनुष्य लोक में राजा सबसे उच्च होता है उसी प्रकार इन्द्र सभा में सबसे ऊंचे आसन पर बैठने वाला इन्द्र होता है, सब देव जिसकी आज्ञा मानते हैं वह इन्द्र कहलाता है॥४५॥

जो सुरपति नृपवत् सुख भोगे, आज्ञा चलती सब सुरमान।
वह है इन्द्र विभव का स्वामी, अरु जो हैं, सुर इन्द्र समान।।४६।।
वे सामानिक देव कहावें, मात पिता गुरु सम सन्मान।
मंत्री तथा पुरोहित सम जो, त्रायस्त्रिंश इन्हें पहिचान।।४७।।
इन्द्र सभा के जो सदस्य हैं, वे सुर पारिषद् अभिराम।
इन्द्र अङ्गरक्षक सुर जानहु, तिनका आत्मरक्ष शुभ नाम।।४८।।
कोतवाल सम लोकपाल हैं, अरु अनीक सेना सुर जान।
पुरवासी सम देव प्रकीर्णक, आभियोग्य सेवक सम मान।।४९।।
अरु चाण्डाल समान किल्विषिक, ये दश भेद सुरों में जान।
स्वर्गोपरि अहमिन्द्र कहावें, भेद न तिन सब एक समान।।५०।।

स्वर्गों में हीनाधिकता

स्थिति प्रभाव सौख्यद्युतिलेश्या, इन्द्रिय विषयरु अवधि ज्ञान।
ऊपर ऊपर अधिक स्वर्ग में, गति तन परिग्रह हीनरु मान।।५१।।

जो राजा के समान सुख भोगता है, और जिसकी आज्ञा देवगण मानते हैं वह इन्द्र कहलाता है, समस्त वैभव का वह स्वामी होता है, तथा जो इन्द्र के समान होता है, माता–पिता के समान जिनका आदर होता है वे देव सामानिक कहलाते हैं तथा जो मंत्री व पुरोहित के समान होते हैं वे त्रायस्त्रिंश कहे जाते हैं उनकी संख्या तैंतीस होती है।।४६।।४७।।

इन्द्र सभा के जो सदस्य होते हैं वे देव पारिषद् कहलाते हैं। इन्द्र के अङ्गरक्षक देव आत्मरक्षक कहे जाते हैं।।४८।।

कोतवाल के समान देव लोकपाल कहे जाते हैं सेना के समान देव अनीक कहलाते हैं, पुरवासी के समान देव प्रकीर्णक तथा सेवक की तरह के देव आभियोग्य कहलाते हैं।।४९।।

एवं चाण्डाल की तरह के देव किल्विषिक कहलाते हैं इस प्रकार देवों के दस भेद होते हैं, स्वर्ग से ऊपर ग्रैवेयिक आदि में सब देव समान होते हैं उनमें कोई भेद नहीं होता है, इसलिये वे अहमिन्द्र कहलाते हैं।।५०।।

स्वर्गों की हीनाधिकता

स्वर्ग के देवों में सुख, कांति, लेश्याविशुद्धि व इन्द्रियों के विषय और अवधि ज्ञान का विषय नीचे वाले देवों से ऊपर के देवों में अधिक होता है और गति, शरीर और परिग्रह अभिमान में ऊपर ऊपर हीनता होती है।।५१।।

स्वर्गों में इन्द्र

षोडश स्वर्ग माहि हैं सुरपति, द्वादश की संख्या परिमाण।
प्रथम स्वर्ग तें चौथे तक हैं, एक एक सुरपति शुभ जान॥५२॥

पंचम षष्टम में इक सुरपति, सप्तम अष्टम में इक जान।
नवमें दशवें स्वर्ग एक है, ग्यारह बारहवें इक मान॥५३॥

तथा त्रयोदश स्वर्ग लेय करि, षोडश स्वर्ग चार में जान।
एक एक प्रति स्वर्ग इन्द्र हैं, द्वादश इन्द्र कहे यों मान॥५४॥

द्वादश इन्द्र ताहि में षट् हैं, दक्षिणेन्द्र षट् उत्तर इन्द्र।
सौधर्मेंद्र सनत्, ब्रह्म, लांतव, आनत, आरण, दक्षिण इन्द्र॥५५॥

द्वादश ही उपइन्द्र स्वर्ग के यों चउबीस सुरेन्द्र महान।
कल्पवासी ये देव कहावें, कल्पातीत उपरि सुर जान॥५६॥

स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन

सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं, प्रथम स्वर्ग से चौथे स्वर्ग अर्थात् प्रारम्भ के चार स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है।॥५२॥

पांचवें व छटवें इन दो स्वर्गों में एक इन्द्र होता है तथा सातवें आठवें स्वर्ग में व नौवें दशवें स्वर्गों में तथा ग्यारहवें व बारहवें स्वर्गों में इन दो दो स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है।॥५३॥

तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक प्रत्येक में एक एक इन्द्र होता है। इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।॥५४॥

इन बारह इन्द्रों में छः तो दक्षिणेन्द्र होते हैं और छः उत्तरेन्द्र होते हैं। सौधर्मेन्द्र, सानत्कुमार, ब्रह्म, लांतव, आनत, और आरण ये छः दक्षिणेन्द्र हैं और शेष छः उत्तरेन्द्र हैं।॥५५॥

बारह इन्द्र और बारह ही उपेन्द्र होते हैं इस प्रकार स्वर्गों में कुल चौबीस इन्द्र होते हैं, स्वर्गों के देव कल्पवासी कहलाते हैं और ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।॥५६॥

ग्रैवेयिक नव अनुदिश भी नव, पंच अनुत्तर देव विमान।
तिनमें सुर अहमिंद्र विराजें, नहीं अङ्गना एक समान॥५७॥
निज विमान को छोड़ न जावें, पूरब पुण्य भोगि चिर आन।
मनुजतपस्वी महामुनीश्वर, तप बल ही जावें तिस थान॥५८॥

देवों में प्रवीचार

भवनत्रिक सुर प्रथम द्वितिय, स्वर्गों में काय कहा प्रविचार।
तीजे चौथे स्पर्श कामशम, पंचमतैं चउ रूप निहार॥५९॥
नवमें तैं द्वादश तक चउमें, शब्द सुने ही काम शमाय।
और त्रयोदश तैं षोडश तक, मनचिंते ही शांति लहाय॥६०॥
ऊपरि कल्पातीत देव में, रुच न काम पुण्य फल पाय।
महा ऋद्धिधर देव कहावें, महिमा तिनकी कही न जाय॥६१॥

स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवेयिक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर के विमानों के सब देव अहमिन्द्र कहलाते हैं उनके यहां देवाङ्गनाएं नहीं होती वे सब समान होते हैं।५७॥

अपने अपने विमानों को छोड़कर वे अन्यत्र कहीं नहीं जाते। वे बहुत काल तक पूर्व भव में बंधे पुण्य को भोगते हैं। जो मनुष्य पर्याय में मुनि होकर महान तप तपते हैं वे ही वहां जन्म लेते हैं।५८॥

देवों में काम वर्णन

भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में तथा पहले व दूसरे स्वर्ग में मनुष्यों की तरह शरीर में काम सेवन होता है। तीसरे तथा चतुर्थ स्वर्ग में स्पर्श मात्र से प्रवीचार है, पांचवें, छठवें, सातवें तथा आठवें इन चार स्वर्गों में परस्पर रूप अवलोकन से प्रवीचार है।५९॥

नवमें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गों में शब्द सुनने मात्र से काम का शमन है और तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें तथा सोलहवें स्वर्गों में मन में चिन्तवन मात्र से काम की शांति होती है।६०॥

सोलह स्वर्गों से ऊपर के अहमिन्द्रों में काम वासना उत्पन्न ही नहीं होती न वहां देवाङ्गनाएं ही होती हैं। वे पूर्व भव के महान पुण्य के भोगी देव होते हैं।६१॥

स्वर्गों में लेश्या

स्वर्गों में लेश्याएं जानहु, प्रथम द्वितिय में पीत सुजान।
तृतिय चतुर्थम पीत पद्म है, पंचम तैं अष्टम में पद्म।९२॥
नवमे तैं द्वादश तक कहिये, पद्म शुक्ल द्वै लेश्या मान।
स्वर्ग त्रयोदश तैं ग्रैवेयिक नव तक लेश्या शुक्ल सुजान।९३॥
अनुदिशि और अनुत्तर में है, परमशुक्ल लेश्या पहिचान।
यों है ऊर्ध्व लोक सुर लेश्या, भावापेक्षा वर्णित जान।९४॥

स्वर्गों में काय की ऊंचाई

प्रथम द्वितीय स्वर्गों में सुरतन, सप्त हस्तका है परिमाण।
तृतिय चतुर्थम माँहि हस्तषट्, पंचम षष्टम पंच प्रमाण।९५॥
सप्तम अष्टम हस्त चार तन, अर्धत्रय नवदशमें मान।
ग्यारह बारहवें में सुरतन, हस्तत्रय ऊंचा मतिमान।९६॥
आनत तैं अच्युत तक भी है, देवकाय त्रयहस्त प्रमाण।
यों है कल्प देव तन ऊंचे, कल्पातीत उपरि इमजान।९७॥

अब स्वर्ग के देवों की लेश्या का वर्णन करते हैं पहले व दूसरे स्वर्ग के देवों में पीतलेश्या होती है, तीसरे चौथे में पीत, पद्म, पांचवें से आठवें में पद्मलेश्या, नवमें से बारहवें स्वर्ग में पद्म और शुक्ल लेश्या जानना, तेरहवें स्वर्ग से नव ग्रैवेयिक तक शुक्ल लेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तरों में परमशुक्ल लेश्या कही गई है, इस प्रकार ऊर्ध्व लोक के देवों की भाव लेश्या जिनागम में वर्णित है।९२।९३।९४॥

स्वर्गों में काय की ऊंचाई वर्णन

पहले व दूसरे स्वर्गों में देवों के शरीर की ऊंचाई सात हाथ है, तीसरे और चौथे स्वर्ग में छः हाथ का शरीर होता है, पांचवें तथा छटवें स्वर्ग में पांच हाथ का शरीर होता है।९५॥

सातवें, आठवें स्वर्ग में चार हाथ का शरीर, नवमें व दशवें स्वर्ग में साढ़े तीन हाथ का एवं ग्यारहवें तथा बारहवें स्वर्ग में तीन हाथ का शरीर होता है।९६॥

आनत से अच्युत अर्थात् तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक तीन हाथ का शरीर होता है। इस प्रकार स्वर्ग के देवों के शरीर का परिमाण है। ऊपर के देवों का शरीर निम्न प्रकार है।९७॥

अध: तीन ग्रैवेयिक में तन, सार्ध द्वय ही हस्त प्रमाण।
मध्य तीन ग्रैवेयिक में है, काय हस्त द्वय का परिमाण।।६८।।
ऊर्ध्व उपग्रैवेयिक जानहु, एक अर्ध ही हस्त बखान।
अनुदिशि और अनुत्तर में है, एक हस्त काया शुभ जान।।६९।।
ऊर्ध्व लोक सुर तन अति उत्तम, दिव्य और वैक्रेयिक सार।
नहिं दुर्गंध न तनमल किञ्चित, रक्त अस्थि मल मूत्र न धार।।७०।।
नखनहिं केश कुधातु रज्य नहिं, मांस रु चर्बी रहित सुकाय।
देव विमान जन्म होते ही, स्वयं कपाट युगल खुल जाय।।७१।।

स्वर्ग के देवों का जन्म वर्णन

स्वर्गों में उपपाद जन्म है, शय्या पर ही जन्म लहाय।
नर ज्यों नींद मांहि उठि जाए, त्यों सुरशय्या परि उठिजाय।।७२।।
जन्मत तत्क्षण यौवनयुत हो, दिव्य तेज अरु रूप महान।
वैभव लखि विस्मित सुर होवे, अवधि पाय सब होवे ज्ञान।।७३।।

तीन अधो ग्रैवेयिक में ढाई हाथ का शरीर और मध्य ग्रैवेयिक में दो हाथ का शरीर और ऊर्ध्व तीन ग्रैवेयिक में डेढ़ हाथ का शरीर होता है। नव अनुदिश तथा पांच अनुत्तरों में एक हाथ का शरीर होता है।।६८।६९।।

ऊर्ध्व लोक के देवों का शरीर अत्यन्त दिव्य व वैक्रेयिक होता है, उस शरीर में न तो दुर्गंध होती है और न मल, मूत्र, खून, हड्डी, चर्बी आदि होते हैं।।७०।।

नखकेश उनके नहीं होते और विमान में जन्म के समय अपने आप दोनों किवाड़ खुल जाते हैं।।७१।।

स्वर्गों में देवों की शय्या पर उपपाद जन्म होता है, जिस प्रकार मनुष्य निद्रा में अचानक उठता है उसी प्रकार शय्या पर देव उठता है।।७२।।

जन्म होते ही देव उसी समय युवावस्था को प्राप्त हो जाता है, अत्यन्त सुन्दर व कांतियुक्त शरीर होता है स्वर्ग के वैभव को देखकर विस्मित होता है, तत्काल अवधि ज्ञान उत्पन्न होता है उससे सब जानकारी देव को हो जाती है।।७३।।

साज बजे संगीत ताल रस, नृत्य होय सुरमनसुखकार।
बहुवादित्र बजें सुर आगे, देव करें सब जय जय कार।।१३४।।

सम्यग्दृष्टि जो होवें सुर, प्रथम जिनेश्वर पूज रचाय।
कर अभिषेक बहुत सुखभोगे, सुर सुराङ्गना सङ्गरमाय।।१३५।।

विमानों का विशेष वर्णन

स्वर्ग पटल जो पूर्व कहे हैं, तिन पर अकृत्रिम देव विमान
इन्द्रक श्रेणिबद्ध प्रकीर्णक, यो है रचना स्वर्ग विमान।।१३६।।

इन्द्रक पटल मध्य अरु चउदिशि, विदिशा श्रेणीबद्ध विमान।
अन्तराल दिशि मध्य स्थित जो, नाम प्रकीर्णक तिन पहिचान।।१३७।।

देव विमानों में हैं शोभित, कनक रत्नमणिमय प्रासाद।
मरकतमणि अरु इन्द्रनीलके, तोरणयुत तिन द्वार सुहाय।।१३८।।

उस समय अनेक बाजे बजते हैं, देव के मन को सुख देने वाले संगीत व नृत्य होते हैं, देव के आगे दूसरे अनेक देव जय जय कार करते हैं।।१३४।।

सम्यग्दृष्टि देव भगवान की पूजन करते हैं पश्चात् देव चिरकाल तक देवाङ्गनाओं के सङ्ग भोग भोगते हैं।।१३५।।

विमानों का विशेष वर्णन

स्वर्गों में पटलों की संख्या का वर्णन पहले कर आये हैं उन पटलों में अकृत्रिम देव विमान होते हैं वे विमान इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक कहे जाते हैं उनकी रचना इस प्रकार होती है।।१३६।।

पटल के बीच में विमान इन्द्रक कहा जाता है और चारों दिशाओं और विदिशाओं में जो विमान होते हैं वे श्रेणीबद्ध कहलाते हैं, और दिशाओं तथा विदिशाओं के बीच अन्तराल में जो विमान स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।।१३७।।

देव विमानों में सोने के रत्नमयी महल होते हैं उन महलों में मरकतमणि और इन्द्रनीलमणि के तोरणों से युक्त दरवाजे होते हैं।।१३८।।

सप्त, अष्ट, नव, दश, भूमियुत, रत्नदीप तें राजित जान।
धूप सुगंध तिहां अति व्यापै, बनी नाट्यशाला सुवितान।।७९।।

आसनशाला, क्रीड़ाशाला, मणिमय शय्याएं शोभाय।
निर्मल उत्तम दीप मनोहर, विविध सुमनयुत महल सुभाय।।८०।।

बनें अकृत्रिम सुरगण थानक, वन उपवन शोभित अति जान।
हैं संख्यात असंख्य सुयोजन, तिन विस्तार अकथ अविमान।।८१।।

मुख्य विमानों के नाम

सौधर्मादि स्वर्ग में जानहु, मुख्य विमानों कहूं तिन नाम।
ऋतु सौमनस तथा श्रीवृक्ष रु, भव्य सर्वतोभद्र सुनाम।।८२।।

प्रीतिंकर रम्यक सुमनोहर, लक्ष्मी-मान्दिति आदिक नाम।
लख लक्ष योजन के लम्बे, व्यास विविध योजन अभिराम।।८३।।

इन विमान के मध्य सुशोभित, रत्नमयी सुरपति प्रसाद।
तिनके मध्य सिंहासन मणिमय, तिहां विराजे इन्द्र महान।।८४।।

ये विमान सात, आठ, नव, दश भूमियों से युक्त होते हैं, रत्नों के दीपकों से सुशोभित एवं सुगंधित धूप से व्याप्त होते हैं, तथा विमानों में बड़ी बड़ी विशाल नाट्यशालाएं होती हैं।।७९।।

विमानों में, आसनशाला, क्रीड़ाशाला, मणिमय शय्याएं, निर्मल एवं उत्तम दीपों व विविध पुष्पों से परिपूर्ण महल होते हैं।।८०।।

ये विमान देवों के रहने के स्थान अनेक वन उपवनों से सुशोभित होते हैं, तथा संख्यात व असंख्यात योजन के विस्तार वाले होते हैं।।८१।।

सौधर्म आदि स्वर्गों के मुख्य मुख्य विमानों के कुछ नाम निम्न प्रकार हैं ऋतु, सौमनस, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिंकर, रम्यक, लक्ष्मी, मान्दिति आदि नाम हैं। ये विमान लाख लाख योजन के विस्तार के होते हैं।।८२।८३।।

इन देव विमानों के बीच में इन्द्र का रत्नमयी महल होता है, इस महल में मणिमय सिंहासन होता है उस पर इन्द्र बैठता है।।८४।।

तिन इन्द्रों की सेवा करते, देव और देवी नित जान।
एक लक्ष अरु साठ सहस्र सु, देवी हैं तिनका परिमान।८५॥

आठ आठ हैं अग्रदेवियां, सुरपति की सेवा में जान।
तथा प्रतीन्द्र और सुरगण भी, सेव करें सुरपति की मान।८६॥

सौधर्मेन्द्र महल के अतिक, दिशि ईशान सुशोभित मान।
नाम सुधर्म सभा है विस्तृत, क्रीड़ा थल सुर इन्द्र सुजान।८७॥

सुरपति के प्रासादों चहुंदिशि, स्वर्णमयी देवी प्रासाद।
रहें वल्लभाएं सुरपति की, अरु सुराङ्गना तिनके साथ।८८॥

सुरपति महल अग्र है शोभित, वृक्ष रम्य न्यग्रोध महान।
जम्बू वृक्ष समान वृक्ष हैं, तलचहुंदिशि जिन प्रतिमा जान।८९॥

देवों में उत्कृष्ट विरह

इन्द्र और देवी जो तिनकी, तथा प्रतीन्द्र अरु लोक सुपाल।
इनके विरह अधिकतम जानहु, हो षट्मास अधिक नहिं काल।९०॥

देव और देवियां इन्द्र की नित्य सेवा करती हैं सौधर्म और ईशान इन्द्र के कुल एक लाख और साठ हजार देवियां और आठ आठ अग्रदेवियां होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक इन्द्र के एक एक प्रतीन्द्र और अन्य देवगण इन्द्र की आज्ञा में रहते हैं।८५।८६॥

सौधर्म इन्द्र के महल के पास में ईशान दिशा में बहुत बड़ी सुधर्म सभा होती है वहां इन्द्र का क्रीड़ास्थल होता है।८७॥

इन्द्र के प्रासादों के चारों दिशाओं में देवियों के स्वर्णमयी प्रासाद होते हैं उनमें इन्द्र की वल्लभाएं और देवाङ्गनाएं साथ रहती हैं।८८॥

इन्द्र के महल के आगे सुन्दर न्यग्रोध जाति के वृक्ष होते हैं जो कि जम्बू वृक्ष के समान पार्थिव होते हैं, उन वृक्षों के तल में चारों दिशाओं में जिन प्रतिमाएं विराजमान होती हैं।८९॥

देवों में विरहकाल वर्णन

इन्द्र तथा इन्द्र की देवी, प्रतीन्द्र और लोकपाल का उत्कृष्ट विरह काल छः मास का होता है।९०॥

त्रायस्त्रिश समानिक तनुरख, परिषद् सुर विरह कहाय।
तिनका विरह उत्कृष्ट काल है, चार मास आगम बतलाय।।९१।।
अनकादिसुर विरह काल है, प्रथम स्वर्ग षट् मुहूरत जान।
अरु ईशान चार मुहूरत है, सानत में नवदिवस बखान।।९२।।
अरु माहेन्द्र दिवस बारह का, ब्रह्मस्वर्ग चालीस बनाय।
महाशुक्र अस्सी दिन जानहु, सहस्रार शत दिवस कहाय।।९३।।
आनतादि चारों कल्पों में, उत्तम विरह वर्ष शत जान।
नव ग्रैवेयिक सहस वर्ष का, अनुदिश और अनुत्तर मान।।९४।।
एक पल्य का असंख्यातवां, भाग विरह उत्तम पहिचान।
यों है स्वर्ग तथा अपर सुर, विरहकाल पाठान्तर जान।।९५।।

स्वर्ग के देवों की आयुष्य

पहले दूजे स्वर्ग देव की, दो सागर कछु अधिक प्रमाण।
सानत अरु माहेन्द्र स्वर्ग में, सप्त कही सागर परिमाण।।९६।।

त्रायस्त्रिंश, सामानिक, तनुरक्ष (आत्मरक्ष) और पारिषद् जाति के देवों का विरह काल उत्कृष्ट चार मास का है।।९१।।

अनीकादि देवों का प्रथम स्वर्ग में विरह काल छः मुहूर्त का है, दूसरे ईशान स्वर्ग में मुहूर्त चार का विरह काल है, सानत्कुमार स्वर्ग में नव दिन का विरह काल है।।९२।।

माहेन्द्र स्वर्ग में बारह दिन का, पांचवें ब्रह्म स्वर्ग में चालीस दिन का, तथा महाशुक्र स्वर्ग तक अस्सी दिन का सहस्रार स्वर्ग तक सौ दिन का विरह काल है।।९३।।

आनत से अच्युत इन चार स्वर्गों में सौ वर्ष का विरह काल है। नव ग्रैवेयिक में हजार वर्ष का और अनुदिश और अनुत्तरों में पल्य का असंख्यातवां भाग विरह काल है।।९४।।९५।। (यह काल वर्णन पाठान्तर से है।)

स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन

प्रथम व द्वितीय स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की सात सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है।।९६।।

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में है, दश सागर कछु अधिक बखान।
लान्तव अरु कापिष्ठ स्वर्ग में, सागर कही चतुर्दश जान॥९७॥

शुक्र महाशुक्र स्वर्गों में, षोडश सागर आयुष सार।
अष्टादश सागर की आयुष, स्वर्ग शतार रु सहस्रार॥९८॥

आनत प्राणत युगल स्वर्ग में, विंशति सागर आयुष्मान।
आरण अच्युत स्वर्ग युगल में, द्वाविंशति सागर पहिचान॥९९॥

नव ग्रैवेयिक में क्रम क्रम से, इक इक सागर बढ़कर मान।
प्रथम ग्रैवेयिक तेईस सागर, नवमें इकतीस सागर जान॥१००॥

नव अनुदिश में बत्तिस सागर, और अनुत्तर तैंतिस मान।
यों है ऊर्ध्व लोक सुर आयुष, यह उत्कृष्ट कही भगवान॥१०१॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नाम के पांचवें व छटवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दस सागर से कुछ अधिक है, लान्तव और कापिष्ठ नाम के सातवें तथा आठवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु चौदह सागर की है॥९७॥

शुक्र तथा महाशुक्र नामक नवमें तथा दशवें स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु सोलह सागर की है, और शतार व सहस्रार स्वर्गों में अठारह सागर की उत्कृष्ट आयु है॥९८॥

आनत और प्राणत स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु बीस सागर तथा आरण अच्युत नाम के पन्द्रहवें सोलहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर की है॥९९॥

इनसे ऊपर नौ ग्रैवेयिक के क्रम से एक एक सागर की बढ़ाकर उत्कृष्ट आयुष है। जैसे प्रथम ग्रैवेयिक में तेईस सागर की व अंतिम नवमें ग्रैवेयिक में एक एक सागर बढ़ाते हुए इकतीस सागर की आयु है॥१००॥

नव अनुदिशों में बत्तीस सागर और पंच अनुत्तर विमानों में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है, इस प्रकार ऊर्ध्व लोक के देवों की उत्कृष्ट आयु भगवान ने कही है॥१०१॥

जघन्य आयु

सौधर्म अरु ईशान स्वर्ग में है जघन्य आयुष्य सुजान।
एक पल्य कछु अधिक जानिये, ऊपर के देवों की मान॥१०२॥

नीचे नीचे के युगलों में, जो उत्कृष्ट आयु परिमाण।
ऊपर के युगलों में वह ही, है जघन्य आयुष्य बखान॥१०३॥

अंतिम जो सर्वार्थ सिद्धि है, तिनमें आयुष एक सुजान।
है उत्कृष्ट जघन्य दोउ तिहं, त्रयत्रिंशत सागर परिमाण॥१०४॥

स्वर्गों की देवाङ्गनाओं की आयु

दक्षिणेन्द्र षट् इन्द्र कहावे, इकभवतारी भव्य महान।
तिनकी देव अङ्गना आयुष, क्रमशः कहूं सुनहु मतिमान॥१०५॥

पंच और नव, तेरह, सत्रह, चौंतिस, अड़तालीस सुजान।
पल्य प्रमाण यथाक्रम आयुष, है सुरङ्गना की पहिचान॥१०६॥

सप्त रु, ग्यारह, तेईस पल्यहि, अरु सत्ताइस इकतालीस।
पचपन पल्य यथाक्रम आयुष, कही जिनागम में जगदीश॥१०७॥

जघन्य आयु वर्णन

सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है, ऊपर के देवों की नीचे नीचे के युगलों में जो उत्कृष्ट आयु है वह ऊपर के युगलों में जघन्य आयु कही गई है।।१०२।।१०३।।

अंतिम सर्वार्थ सिद्धि के अहमिंद्रों की जघन्य व उत्कृष्ट दोनों आयु तैंतीस सागर की है।।१०४।।

स्वर्गों की देवाङ्गनाओं की आयु

स्वर्ग के छः दक्षिणेन्द्र जो कि एक भवावतारी होते हैं उनकी देवाङ्गनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से पांच पल्य, नौपल्य, तेरह पल्य सत्रह पल्य, चौंतीस पल्य तथा अड़तालीस पल्य की है।।१०५।।

तथा छः उत्तरेन्द्र की देवाङ्गनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से सात पल्य, ग्यारह पल्य, तेईस पल्य, सत्ताईस पल्य, इकतालीस पल्य और पचपन पल्य की जिनेन्द्र भगवान ने कही है।।१०६।।१०७।।

यों है अहमेन्द्र सुरपति षट्, तिन सुराङ्गना आयुष जान।
त्रायस्त्रिंश तथा सामानिक, अरु प्रतीन्द्र सुरदेवी मान॥१०८॥

इन्द्र देवियों सम तिन आयुष, यों सुराङ्गना आयु बखान।
अब देवों में जन्म मरण का, अन्तर कहुं सुनो भविध्यान॥१०९॥

वैमानिक देवों में जन्म मरण का अन्तर

प्रथम द्वितीय स्वर्गों में अन्तर, सप्त दिवस अन्तर पहिचान।
सानत अरु माहेन्द्र पक्ष इक, ब्रह्मादिक इक मास प्रमान॥११०॥

शुक्र आदि चउ स्वर्ग मास द्वै, आनतादि में है चउ मास।
ग्रैवेयिक तैं ऊपर जानहु, अहमिन्द्रन अन्तर षट् मास॥१११॥

यों है जन्म मरण का अन्तर, यह उत्कृष्ट कहा परिमाण।
अरु जघन्य सब देवन का है, अन्तर एक समय पहिचान॥११२॥

त्रायस्त्रिंश और सामानिक देवों की व प्रतीन्द्रों की देवाङ्गनाओं की आयु इन्द्रों की देवाङ्गनाओं के समान आयु जानना चाहिये। अब देवों के जन्म मरण का अन्तर का वर्णन आगे करेंगे उसे हे भव्य जीवों ! ध्यान से सुनिये॥१०८॥१०९॥

वैमानिक देवों में जन्म मरण का अन्तर

सौधर्म और ईशान नाम के पहले व दूसरे स्वर्गों के देवों का जन्म और मरण का अन्तर सात दिन का है, और सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देवों का पन्द्रह दिन का अन्तर है, तथा ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव व कापिष्ठ इन चार स्वर्गों में एक मास का अन्तर है॥११०॥

शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार इन चार स्वर्गों में दो मास का तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार स्वर्गों में चार मास का तथा नौ ग्रैवेयिक, नौ अनुदिश एवं पांच अनुत्तर में छः मास का अन्तर है॥१११॥

यह जन्म मरण का अन्तर उत्कृष्ट है, जघन्य अन्तर तो सब देवों का एक समय का है॥११२॥

देवों में आहार

सागर एक आयु है जिनकी, एक सहस्र वर्षों में सार।
दिव्य और अनुपम अमृतमय, होय मानसिक पुष्ट अहार॥११३॥
जिनकी जितने सागर आयुष, उतने सहस्र वर्ष परिमाण।
पुनि आहार होय सुरगण का, यही नियम आहार बखान॥११४॥

इन्द्रों की सैना व परिवार

वृषभ, तुरङ्गम, रथ, गज, कहिये, अरु पदाति गंधर्व महान।
नर्तक सप्त अनीक बताये, सप्त प्रकार सैन्य पहिचान॥११५॥
यों है सप्त सप्त विध सैना, एक एक सुरपति की जान।
एक कोटि षट्लक्ष और, अड़सठ सहस्र है वृषभ महान॥११६॥
प्रथम स्वर्ग सौधर्म इन्द्र की, है यह संख्या वृषभ सुजान।
इतने ही संख्या में है गज, अश्व आदि सैना पहिचान॥११७॥
उपरि स्वर्गों की सैन्य न्यून है, अच्युत इन्द्र सैन्य परिमाण।
विंशति पंचलक्ष अरु चालिस, सहस्र वृषभ संख्या मतिमान॥११८॥

देवों में आहार का समय

जिन देवों की एक सागर की आयु है उनका एक हजार वर्ष में एक बार दिव्य अमृतमय मानसिक आहार होता है॥११३॥

जिन जिन देवों की जितने जितने सागर की आयु है उतने उतने हजार वर्षों में उनका आहार होता है देवों के आहार का यह नियम है॥११४॥

इन्द्रों की सैना व परिवार वर्णन

इन्द्र के वृषभ, तुरङ्गम, रथ, गज, पदाति, गंधर्व, नर्तक अर्थात् बैल, घोड़े, हाथी, पैदल, गाने वाले, रथ और नृत्य करने वाले ऐसे सात प्रकार की सैना वाले देव होते हैं इन्हें अनीक देव कहते हैं॥११५॥

इस प्रकार सात सात प्रकार की सेना प्रत्येक इन्द्र की होती है। सौधर्म इन्द्र के एक करोड़ छः लाख अड़सठ हजार बैल होते हैं, और इतने ही संख्या में तुरङ्ग आदि अन्य सेनाएं होती हैं॥११६॥११७॥

ऊपर ऊपर के इन्द्रों की संख्या कम कम होते हुए अंतिम सोलहवें अच्युत स्वर्ग के इन्द्र की सेना पच्चीस लाख और चालीस हजार बैलों की संख्या प्रमाण है॥११८॥

इतने ही गज और तुरङ्गम, एक एक की संख्या जान।
यों है स्वर्ग इन्द्र की सैना, षोडश स्वर्ग ताहि यह मान॥११९॥

इन्द्रों की देवाङ्गनाएं

सौधर्मेन्द्र और ईशान हि, देवी ज्येष्ठ इक इक परिमाण।
षोडश सहस देवियां सुन्दर, अन्य देवियां तिन पहिचान॥१२०॥
सानत इन्द्र सु अष्ट सहस हैं, अरु माहेन्द्र सहस हैं चार।
अरु ब्रह्मेन्द्र हि दोउ सहस हैं, लांतवेन्द्र महाशुक्र हजार॥१२१॥
सहस्रार के कही पंचशत, आनतादि चउ इन्द्र विचार।
सार्धद्वय शत सर्व देव की, संख्या यों देवी परिवार॥१२२॥

वल्लभाएं

प्रथम स्वर्ग अरु द्वितिय इन्द्र के, बत्तीस सहस वल्लभा जान।
सानत अरु माहेन्द्र इन्द्र के, अष्ट सहस वल्लभा मान॥१२३॥

और उतनी ही संख्या घोड़े, हाथी पदाति आदि की संख्या है, इस प्रकार इन्द्रों की सैना का वर्णन किया– यह सैन्य सोलह स्वर्ग तक है ऊपर के देवों मे कोई भेद नहीं है॥११९॥

इन्द्रों की देवाङ्गनाओं का वर्णन

सौधर्म और ईशान इन्द्र के एक एक ज्येष्ठ देवी अर्थात् प्रधान शची होती है और अत्यन्त सुन्दर सोलह सोलह हजार पारिवारिक देवियां होती हैं॥१२०॥

सानत्कुमार इन्द्र के आठ हजार देवियां और माहेन्द्र स्वर्ग के चार हजार, ब्रह्मेन्द्र के दो हजार तथा लांतवेन्द्र और महाशुक्र के एक एक हजार पारिवारिक देवियाँ होती हैं॥१२१॥

सहस्रार इन्द्र के पांच सौ और आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के ढाई सौ ढाई सौ परिवार देवियाँ होती हैं॥१२२॥

वल्लभाओं का वर्णन

प्रथम और द्वितीय स्वर्ग सौधर्म और ईशान इन्द्र के बत्तीस हजार वल्लभाएं होती हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्र के आठ हजार वल्लभाएं होती हैं॥१२३॥

अरु ब्रह्मेन्द्र सहस्र द्वै जानो, लांतवेन्द्र शत पञ्च शचीश।
महाशुक्र शत सार्धद्वय हैं, सहस्रार शत इक पच्चीस॥१२४॥

आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, त्रेसठ त्रेसठ देवी जान।
यों हैं इन्द्र वल्लभाएं सब, तिनकी संख्या कही प्रमान॥१२५॥

देवों के मुकुटों के चिन्ह

सौधर्मादि सुरेन्द्रों के हैं, मुकुट मध्य नव चिन्ह क्रमाय।
शूकर, हिरन, महिष, मत्स्य अरु, भेक सर्प छागला सुहाय॥१२६॥

वृषभ, कल्पतरु ये नव जानहु, क्रमशः चिन्ह मुकुट सुखदाय।
जिन तैं हो पहिचान इन्द्र की, मुकुट रत्न मणि युक्त रचाय॥१२७॥

कल्पातीत वर्णन

स्वर्गों से ऊपर ग्रैवेयिक, अनुदिश तथा अनुत्तर जान।
वे अहमिन्द्र कहावें वे सुर, नाहिं विषम सब एक समान॥१२८॥

ब्रह्मेन्द्र के दो हजार, लांतवेन्द्र के पांच सौ, महाशुक्र के ढाई सौ तथा सहस्रार इन्द्र के एक सौ पच्चीस वल्लभाएं होती हैं॥१२४॥

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के त्रेसठ त्रेसठ वल्लभाएं होती हैं इस प्रकार इन्द्रों की वल्लभाओं की संख्या का प्रमाण है॥१२५॥

देवो के मुकुट चिन्ह वर्णन

सौधर्म आदि स्वर्गों के इन्द्र और देवों के नौ प्रकार के चिन्ह होते हैं उनके नाम हैं— सूअर, हिरन, भैंसा, मछली, मेंढक, छागला, बैल, कल्पवृक्ष आदि यथाक्रम से देवों के मुकुटों पर ये चिन्ह होते हैं ये मुकुट रत्न और मणियों के बने होते हैं, इन मुकुट चिन्हों से इन्द्रों की पहिचान होती है॥१२६॥१२७॥

कल्पातीत देवों का वर्णन

स्वर्गों से ऊपर जो नव ग्रैवेयिक, नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानों में रहने वाले सब देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। उनमें किसी प्रकार की विषमता नहीं होती सब देव समान होते हैं॥१२८॥

हैं विमान तिनके भी सुन्दर, सभा गीतशालायुत मान।
चैत्य वृक्षयुत हैं विमान तिह, अद्भुत महल रम्य अति जान।।१२९।।
अध: तीन ग्रैवेयिक के हैं, द्वेशत योजन ऊंचे मान।
मध्य तीन ग्रैवेयिक में हैं, योजन सार्ध एक शत जान।।१३०।।
अनुदिश नव अरु पंच अनुत्तर, क्रमश: ऊंचे रम्य विमान।
हैं पचास योजन अरु पच्चिस, योजन ऊंचाई परिमाण।।१३१।।
सब प्रासाद दीर्घ हैं उनने, ऊंचाई से पंचम भाग।
तिनमें हैं विस्तार महल का, ऊंचाई तैं अर्धम भाग।।१३२।।

स्वर्गों में अवधि ज्ञान का क्षेत्र

प्रथम द्वितीय स्वर्गों में सुर का, प्रथम नरक तक अवधि ज्ञान।
सानत अरु माहेन्द्र स्वर्ग सुर, अवधि क्षेत्र दूजे तक जान।।१३३।।
पंचम तैं अष्टम स्वर्गों में, नरक तीसरे तक का ज्ञान।
नवमें तैं द्वादश तक के सुर, चौथे नरक लखैं निज ज्ञान।।१३४।।

अहमिन्द्रों के भी सुन्दर सुन्दर विमान होते हैं वे सभाओं, गीतशालाओं, चैत्यवृक्षों से युक्त व बड़े आश्चर्यकारी रमणीय महलों से युक्त होते हैं।।१२९।।

इन विमानों की ऊंचाई तीन अध: ग्रैवेयिक में दो सौ योजन तथा मध्य तीन ग्रैवेयिक में डेढ़ सौ योजन ऊंचे विमान होते हैं।।१३०।।

नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानों की ऊंचाई क्रम से पचास योजन और पच्चीस योजन है।।१३१।।

इन विमानों में जो महल हैं उनकी ऊंचाई विमानों की ऊंचाई से पांचवां भाग प्रमाण है, और महलों का विस्तार अर्थात् चौड़ाई लम्बाई महलों की ऊंचाई से आधी आधी है।।१३२।।

अवधि ज्ञान का क्षेत्र

स्वर्गों में पहले और दूसरे अवधि ज्ञान का क्षेत्र पहले नरक तक है, सानत्कुमार और माहेन्द्र नाम के तीसरे, चौथे स्वर्ग के देवों का क्षेत्र दूसरे नरक तक है।।१३३।।

पांचवें स्वर्ग से आठवें इन चार स्वर्ग के देवों का अवधि ज्ञान तीसरे नरक तक का है। नवमें से बारहवें स्वर्ग तक के देवों का अवधिज्ञान क्षेत्र चौथे नरक तक का है।।१३४।।

आनत तैं अच्युत के सुर का, अवधि क्षेत्र पंचम तक जान।
ग्रैवेयिक में षष्टमभू तक, अनुदिश सप्तमभू तक मान॥१३५॥
अनुत्तरों के सुरगण जानें, अवधि ज्ञान बल तैं भवि जान।
लोकनालि सम्पूरण जानें, चौदह राजू क्षेत्र प्रमान॥१३६॥

लोकान्तिक देव वर्णन

पंचम ब्रह्म स्वर्ग के अंतिम, दिशा और विदिशाओं माँहि।
रहें देव वे ऋषि समान हैं, तिनमें देवअङ्गना नाँहि॥१३७॥
ब्रह्मचारी वैरागी समवय, नहीं विषमता सर्व समान।
एक भवाअवतारी निश्चित, राग द्वेष नहिं क्रोध न मान॥१३८॥
लोक अन्त तिनका है तातैं, लोकान्तिक सुर तिन शुभ नाम॥
तीर्थंकर के तप कल्याणक, समय आँय नित शुभ परिणाम॥१३९॥

आनत से अच्युत अर्थात् तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग के देवों का अवधि क्षेत्र पांचवें नरक तक है, नौ ग्रैवेयिक के देवों का छटवें नरक तक और नौ अनुदिश के देवों का अवधि ज्ञान सातवें नरक तक का होता है॥१३५॥

पांच अनुत्तर विमानों के देवों के अवधि ज्ञान का क्षेत्र चौदह राजू प्रमाण त्रस नाली पूर्ण तक होता है॥१३६॥

लोकान्तिक देवों का वर्णन

पांचवें ब्रह्म स्वर्ग के अंत में दिशा और विदिशाओं में जो देव रहते हैं उन्हें देवर्षि कहते हैं क्योंकि वे मनुष्य लोक के ऋषियों के समान त्यागी की तरह होते हैं, उनके देवाङ्गना होती ही नहीं है॥१३७॥

वे ब्रह्मचारी व वैराग्य के परिणाम वाले, सब एक ही समान उम्र के होते हैं अहमिन्द्रों की तरह ही उनमें विषमता नहीं होती सब समान होते हैं वे नियम से एक भवावतारी होते हैं, उनमें राग द्वेष व क्रोध आदि कषाय नहीं होते अर्थात् वे सब देव मंदकषायी होते हैं॥१३८॥

इन देवों के लोक का अंत हो गया है इस कारण वे लोकान्तिक देव कहे जाते हैं, ये देव केवल तीर्थंकरों के तप कल्याणक के समय ही वैराग्य बढ़ाने के लिये आते हैं, अत्यन्त शुभ परिणामी होते हैं॥१३९॥

भक्ति भाव से करें प्रार्थना, तीर्थंकर वैराग्य बढ़ाय।
और न समय जांय सुर निजथल, रहें सदैव स्वर्ग सुखपाय॥१४०॥
सारस्वत आदित्य वन्हि अरु, अरुण सुगर्दतोय शुभ नाम।
तुषितरु अव्याबाध अरिष्ट सु, ये अठ विध–शोभें अभिराम॥१४१॥
ब्रह्म स्वर्ग के अंत आठ दिशि, रहें विमान मध्य सुखधाम।
आयु सबकी है अठ सागर, देवर्षि कहलाते आम॥१४२॥
पूर्व और उत्तर दिशि मध्याहि, सारस्वत सुर का आवास।
पूर्व दिशा आदित्य रहे हैं, अरु आग्नेय वन्हि का वास॥१४३॥
दक्षिण माहि वरुण हैं जानहु, गर्दतोयनैऋत दिशि थान।
पश्चिम तुषित देव हैं उत्तम, अव्याबाध वायु दिशि मान॥१४४॥
अरु अरिष्ट उत्तरदिशि जानहु, यों निवास आठोंदिशि जान।
चार लाख अरु सहस सात हैं, अष्ट शतक षट् संख्या मान॥१४५॥
लोकान्तिक सुर तन ऊंचाई, पंच हस्त की है परिमाण।
सम्यग्दृष्टि द्वादशभावन, चिन्ते ग्यारह अंग सुजान॥१४६॥

भक्ति से उस समय वे देव प्रार्थना करते हैं और तीर्थंकरों के वैराग्य की वृद्धि करते हैं। ये लोकान्तिक देव किसी भी अन्य कल्याणकों में नहीं जाते हैं, सदा ही अपने स्थान में सुख से रहते हैं॥१४०॥

उनके नाम हैं– १.सारस्वत, २.आदित्य, ३.वन्हि, ४.अरुण, ५.गर्दतोय, ६.तुषित, ७.अव्याबाध, ८.अरिष्ट ये आठ प्रकार के होते हैं॥१४१॥

ये ब्रह्म स्वर्ग के अंत में आठों दिशाओं में रहते हैं, इन सबकी आयु आठ सागर की होती है, ये देवर्षि कहलाते हैं॥१४२॥

पूर्व तथा उत्तर दिशा के बीच सारस्वत देव रहते हैं तथा पूर्व दिशा में आदित्य रहते हैं व आग्नेय दिशा में वन्हि रहते हैं॥१४३॥

दक्षिण दिशा में वरुण, नैऋत्य दिशा में गर्दतोय, पश्चिम दिशा में तुषित, वायव्य दिशा में अव्याबाध देव रहते हैं॥१४४॥

तथा उत्तर दिशा में अरिष्ट देव रहते हैं, इस प्रकार आठों दिशाओं में इन आठ तरह के लोकान्तिक देवों का निवास है। इनकी संख्या चार लाख सात हजार आठ सौ छः है॥१४५॥

इन लोकान्तिक देवों के शरीर की ऊंचाई पांच हाथ प्रमाण है, ये सब सम्यग्दृष्टि होते हैं और ग्यारह अंग के पाठी होते हैं॥१४६॥

लोकान्तिक देव कौन होते हैं ?

मनुष जन्म उत्तम कुल जन्मे, मुनि हवें चिरतप तपते जान।
सुख दुख शत्रु मित्र समभावी, निस्पृह संयम रत नित मान॥१४७॥

इन्द्रिय विषयों के जो त्यागी, मुनिव्रत में दृढ़ रहे यतीश।
ऐसे साधु दिगम्बर नरभव चय, लोकान्तिक होय मुनीश॥१४८॥

इति लोकान्तिक देव वर्णनम्।

देवों में गुणस्थान आदि

देवों में गुणस्थान आदि चउ, पर्याप्ति षट् चार कषाय।
प्राण दशों हैं संज्ञायें चउ, इन्द्रिय पंच तथा त्रस काय॥१४९॥

ग्यारह योग वेद द्वै जानहु, दर्शन त्रय षट् ज्ञान सुजान।
यों है देव गणों का वर्णन, विस्तृत आगम माहि बखान॥१५०॥

लोकान्तिक देव कौन होते हैं ?

मनुष्य भव में उत्तम कुल में जन्म लेकर सर्व परिग्रह के त्यागी मुनि होकर जो बहुत काल तक तपश्चर्या करते हैं, सुख दुख, शत्रु मित्र में समभावी होते हैं, शरीर आदि से जो निस्पृह रहते हैं, संयम में नित्य लीन रहते हैं, इन्द्रिय के विषय के त्यागी, मुनिव्रत में दृढ़ रहते हैं ऐसे नग्न दिगम्बर साधु मनुष्य भव को पूर्ण कर लोकान्तिक देव होते हैं॥१४७॥१४८॥

इस प्रकार लोकान्तिक देव वर्णन समाप्त हुआ।

देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन

देवों में प्रारम्भ के प्रथम गुणस्थान से लेकर चार गुणस्थान होते हैं, पर्याप्तियां छहों होती हैं, प्राण दस, संज्ञायें चार, इन्द्रिय पांच और काय त्रस होती हैं॥१४९॥

योग ग्यारह होते हैं, वेद दो, दर्शन तीन, ज्ञान छह इस प्रकार वर्णन यहां मैंने किया है, इनका विस्तृत वर्णन जिनागम से जानना चाहिये॥१५०॥

सिद्ध क्षेत्र वर्णन

ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग आदि का, अब तक वर्णन किया विचार।
आगे वर्णन करूं मोक्ष का, जहां विराजें सिद्ध अपार॥१५१॥
पंच अनुत्तर मांहि मध्य में, है सर्वार्थ सिद्ध सुविमान।
तिस विमान के ध्वज दण्ड ऊपर, द्वादश योजन ऊंची मान॥१५२॥
अष्टम भू है लोक अन्त तक, नाम कहा ईषत्प्राग्भार।
उत्तर दक्षिण सप्त सुराजू, पूरब पश्चिम एक सुसार॥१५३॥
अरु मोटाई है वसु योजन, लोक अन्त तक है विस्तार।
अष्टम भू के मध्य सुशोभित, सिद्ध शिला है छत्राकार॥१५४॥
धवल वर्ण उज्ज्वल अति राजित, भूपर रक्खे छत्र समान।
उलटे रखे कटोरे सम ज्यों, रजत स्वर्ण सम ज्योति महान॥१५५॥
नाना रत्नों से परिपूरित, लख पैंतालिस योजन जान।
सिद्ध शिला अरु सिद्ध क्षेत्र पद, है शिव लोक मोक्ष का थान॥१५६॥

सिद्ध क्षेत्र वर्णन

ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग आदि का वर्णन अब तक किया, अब आगे मोक्ष का वर्णन करूंगा जहां अनन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं॥१५१॥

पंच अनुत्तरों में सबसे बीच में सर्वार्थ सिद्धि का विमान है उस विमान के ध्वज दण्ड के ऊपर बारह योजन ऊंची आठवीं पृथ्वी है जो कि लोक के अन्त तक विस्तार वाली है, उसका नाम ईषत्प्राग्भार है यह उत्तर दक्षिण सात राजू और पूरब पश्चिम एक राजू प्रमाण है॥१५२॥१५३॥

उसकी मोटाई आठ योजन है, लोक के अन्त तक इसका विस्तार है, उस आठवीं पृथ्वी के बीच में छत्र के आकार में एक सिद्धशिला है॥१५४॥

वह शिला सफेद उज्ज्वल रंग की है पृथ्वी पर रखे छत्र या उल्टे रखे कटोरे के समान है, उसकी ज्योति चांदी व सोने के समान चमकीली है॥१५५॥

वह सिद्धशिला अनेक रत्नों से युक्त पैंतालीस लख महायोजन विस्तार की है, सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र, शिवलोक और मोक्ष स्थान यह सब एक ही हैं॥१५६॥

तापर सिद्ध अनन्त विराजें, कर्म नाश पहुंचे भगवान।
एक सिद्ध है वहाँ अनन्ते, सिद्ध विराजें निश्चय मान॥१५७॥
जिनमुनिक्षपक श्रेणिचढ़कर पुनि, घातिअघाति कर्म कर चूर।
द्रव्य कर्म अरु भाव कर्म, नोकर्म किये आतम तैं दूर॥१५८॥
शुक्ल ध्यान अन्तिम के बल तें, योग निरोध किया भगवान।
प्रकृति बहत्तर शेष त्रयोदश, समकाल ऋजुगति पहुंचे जान॥१५९॥
बंध हेतु सब दूर किये तिन, कर्म समस्त किये चकचूर।
लोक शिखर पर जाय विराजें, काल अनन्त रहें जग दूर॥१६०॥
सिद्ध प्रभु के गति सिद्ध गति, क्षायिक समकित केवलज्ञान।
अनाहार युगपत उपयोगी, शुद्ध निजातम लीन महान॥१६१॥
गुणस्थान, लेश्या, अरु संज्ञा, पर्याप्ति मार्गणा न जान।
जीव समास प्राण से विरहित, गुण अनन्त के स्वामी मान॥१६२॥
उत्तम अवगाहन सिद्धों का, धनुष पन्चशत अरु पच्चीस।
अरु जघन्य अवगाहन प्रभु का हस्त, सार्ध त्रय के जगदीश॥१६३॥

उस सिद्धशिला पर अनन्त सिद्ध विराजमान हैं जो कि समस्त कर्मों का क्षय करके वहां पहुंचे हैं, एक एक सिद्ध है वहां अनन्त सिद्ध विराजमान हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है॥१५७॥

जो मुनि क्षपक श्रेणि आरूढ़ होकर घातिया और अघातिया कर्मों को क्रमशः क्षय करते हैं तथा द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नो कर्म को जिनने आत्मा से दूर कर दिया है॥१५८॥

तथा जिनने अन्तिम शुक्ल ध्यान के बल से योगों का निरोध किया है, उनने ही कर्मों की शेष बहत्तर व अन्त में तेरह प्रकृतियों का क्षय कर ऋजु गति से एक समय में मोक्ष प्राप्त किया है॥१५९॥

उन परम परमात्मा ने बंध के कारणों को दूर कर दिया इससे समस्त कर्मों को क्षय कर लोक के शिखर पर जाय विराजे हैं, वे अनन्त काल तक वहां इस संसार से दूर विराजमान रहेंगे॥१६०॥

वे सिद्ध भगवान सिद्धगति, क्षायिकसम्यक्त्व, केवलज्ञान व अनाहारक, युगपत उपयोग वाले शुद्ध निजात्मा में लीन होते हैं॥१६१॥

तथा सिद्ध परमात्मा गुणस्थान, लेश्या, संज्ञा पर्याप्ति, मार्गणा, जीव समास, प्राण इनसे रहित और अनन्त गुणों के स्वामी होते हैं॥१६२॥

सिद्धों का उत्कृष्ट अवगाहन सवा पांच सौ धनुष और जघन्य अवगाहन साढ़े तीन हाथ ऊंचा होता है॥१६३॥

दर्शन, ज्ञान अनन्त सौख्य बल, अव्याबाधक अवगाहन।
सूक्ष्मत्व अगरूलघुत्व ये, प्रकट भये वसुगुण भगवान॥१६४॥

अष्ट कर्महनि पाय अष्ट गुण, आत्म प्रदेश रहित तन मान।
किंचित न्यून चरम निज तन तैं, चिदानन्द वे सिद्ध महान॥१६५॥

लोक शिखर के अन्त विराजें, तनुवात तक पहुंचे जाय।
धर्म द्रव्य आगे नहिं तातैं, नहिं अलोक में गमन कराय॥१६६॥

जलतुम्बीअरुअग्नि शिखासम, ऊर्ध्वगमन ऋजुगति तैं जाय।
एक समय में जाय विराजे, सिद्ध प्रभु वन्दे सुरराय॥१६७॥

धन्य धन्य जे नरभव पाकर, मुनि ह्वै कर्म समस्त नशाय।
सिद्धशिला पर जाय विराजे, तिनको वन्दूं मनवच काय॥१६८॥

अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अव्याबाधत्व अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व ये आठ गुण भगवान के प्रकट हो गये॥१६४॥

आठ कर्मों के क्षय से ही आठ अनन्त गुण सिद्ध प्रभु के प्रकट हुये हैं, शरीर रहा नहीं केवल आत्मा के प्रदेश अन्तिम शरीर से कुछ कम विस्तार में रह गये, वे सिद्ध भगवान चैतन्यमयी चिदानन्द में लीन हो गये॥१६५॥

लोक के शिखरपर तनुवातवलय तक जहां तक धर्मास्तिकाय द्रव्य था वहां तक पहुंच कर स्थित हो गये। ऊपर आलोकाकाश में धर्म द्रव्य नहीं होने से गमन नहीं कर सके। वे भगवान समस्त ऊपर के भाग में बराबर समान और नीचे के भाग में न्यूनाधिक प्रदेश वाले विराजमान हैं॥१६६॥

जलतुम्बी और अग्निशिखा के समान ऊर्ध्व गमन के स्वभाव वाले वे सिद्ध भगवान ऋजुगति से एक समय में ही मोक्ष जा पहुंचे व इन्द्रों द्वारा पूजित हो गये॥१६७॥

वे धन्य हैं जिनने मनुष्यभव प्राप्त कर मुनि होकर समस्त कर्मों का क्षय कर दिया और सिद्ध शिला पर जाकर विराजमान हो गये उन सब सिद्धों को मैं मन वचन काय से भाव से नमस्कार करता हूं॥१६८॥

पंच पैताले

सिद्धशिला अरु सिद्ध क्षेत्रवर, प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान।
द्वीप अढ़ाई मनुज लोक अरु, प्रथम नर्क इन्द्रक बिल जान॥१६९॥

ये पांचों हैं लख पैंतालिस, योजन सबका सम विस्तार।
एक एक के ऊपर जानहु, गोलवृत्त तिनका आकार॥१७०॥

त्रय एकलखा

एक लक्ष योजन के त्रय हैं, शुभ सर्वार्थसिद्धि सुविमान।
नरक सातवें का इन्द्रकबिल, जम्बूद्वीप त्रय एक समान॥१७१॥

मोक्ष कौन जायें ?

नरभव उत्तम संहननकुल पा, मुनि हवै संयम सकल धराय।
क्षपक श्रेणि चढ़ि ध्यान अग्नि हैं, कर्म दहे वे मोक्ष लहाय॥१७२॥

पांच पैताला

सिद्धशिला, सिद्धक्षेत्र, प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान, ढाई द्वीप (मनुष्य लोक) और प्रथम नरक का इन्द्रक बिल, ये पांचों ही पैंतालीस पैंतालीस लाख योजन के बराबर समान विस्तार के हैं और ये एक एक के ऊपर हैं और इनका आकार गोल है॥१६९॥१७०॥

तीन एक लक्ष वाले

सर्वार्थ सिद्धि का विमान, सातवें नरक का इन्द्रक बिल और जम्बू द्वीप ये एक एक लाख योजन के तीनों समान विस्तार के हैं॥१७१॥

कौन मोक्ष जायें ?

जिन भव्य जीवों ने मनुष्य भव, उत्तम संहनन व उत्तम कुल को प्राप्त कर मुनि होकर और सकल संयम को धारण किया है तथा क्षपक श्रेणि चढ़कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को भस्म किया वे ही महापुरुष मोक्ष प्राप्त करते हैं॥१७२॥

सिद्धों का विविध वर्णन

मुक्त जीव के आत्म प्रदेशन, अवगाहन उत्कृष्ट महान।
सवा पांच सौ धनुष अर्धजन, हस्त न्यून अवगाहन जान॥१७३॥
लगातार यदि मोक्ष जांय तो, कम से कम दो समय सुजान।
अधिक समयअठ समयजाहि पुनि, अन्तर होय नियम से मान॥१७४॥
मनुज लोक में मुक्ति गमन का, अन्तराल जानहु भवि आस।
है जघन्य इक समय सुअन्तर, अरु उत्कृष्ट कहा षट् मास॥१७५॥
यदि षट्मास मध्य नर कोई, कर्मनाश करि मोक्ष न जाँय।
तोपुनि छःसौ आठ जीव हैं, आठ समय निश्चय शिव जाँय॥१७६॥
पहले समय जाहि शिव बत्तीस, दूजे अड़तालीस हि जाय।
तीजे साठ चतुर्थ बहत्तर, पंचम चौरासी शिव जाय॥१७७॥
षष्टम समय छयानवे जावें, सप्तम समय एक शत आठ।
अष्टम में भी आठ एक शत, यों हैं पूरण छः सौ आठ॥१७८॥

सिद्धों का विविध वर्णन

मुक्त हुए जीवों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना उत्कृष्ट तो सवा पांच सौ धनुष है और जघन्य साढ़े तीन हाथ प्रमाण है॥१७३॥

यदि लगातार बिना अन्तराल कोई जीव मोक्ष जांय तो कम से कम दो समय तक मोक्ष जांय और अधिक से अधिक आठ समय तक जांय फिर नियम से अन्तराल पड़ जाएगा॥१७४॥

तथा यदि मोक्ष गमन में अन्तराल पड़ जाए तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक छः मास तक का अन्तराल रहेगा। उसके पश्चात् नियम से कोई न कोई जीव मोक्ष जाएगा॥१७५॥

यदि पूरे छः मास तक कोई भी जीव मोक्ष नहीं जाए तो आठ समय में निश्चय से छः सौ आठ जीव मोक्ष जायेंगे॥१७६॥

उनका मोक्ष जाने का क्रम इस प्रकार है, पहले समय में बत्तीस, दूसरे समय में अड़तालीस, तीसरे समय में साठ, चौथे समय में बहत्तर, पाँचवे समय में चौरासी, छठवें समय में छयानवे, सातवें समय में एक सौ आठ और आठवें समय में भी एक सौ आठ। इस प्रकार छः सौ आठ जीव छः मास अंतराल होने पर आठ समय में मोक्ष जाते हैं। आशय यह है कि छः मास एवं आठ समय में छः सौ आठ जीव नियम से मोक्ष जाते हैं॥१७७॥१७८॥

एक समय में एक मुक्त हों, कम से कम की संख्या जान।
इकशत आठ अधिक तैं साधिक, मुक्त होंय इक समय महान॥१७९॥
जलने पर ज्यों बीज नवांकुर, उपजे नहीं कदै त्यों जीव।
कर्म बीज के दग्ध भये तैं, सिद्ध न जन्म लहैं सु कदीव॥१८०॥

निवेदन

अधोलोक अरु मध्यलोक शुभ, ऊर्ध्वलोक का किया बयान।
नरक निगोद पशुनर सुर चउ, भवनत्रिक अरु स्वर्ग महान॥१८१॥
ग्रैवेयिक अनुदिश पंचोत्तर, सिद्धक्षेत्र सिद्धों का थान।
यह सब वर्णन किया अल्पमति, आगम माहिं बड़ा व्याख्यान॥१८२॥
जो भविअल्प ज्ञानके धारी, तिनहित लिखकर किया बखान।
बहु श्रुतविद्वज्जन जो हों वे, आगम पढ़ि पावें बहु ज्ञान॥१८३॥
अब मैं आगे कौन कहां तैं, आवे जावें जन्मे आन।
लेश्या सम्बोधन रत्नत्रय, ध्यान कषाय कहूं गुणथान॥१८४॥

इति पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक
ग्रन्थे ऊर्ध्वलोक वर्णनोनाम षष्ठमोऽध्यायः।

एक समय में कम से कम एक जीव मोक्ष जाता है और अधिक से अधिक एक सौ आठ जीव एक समय में मोक्ष जाते हैं॥१७९॥

जिस प्रकार बीज के जल जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार कर्म बीज दग्ध होने पर मुक्त जीव का जन्म नहीं होता॥१८०॥

अब तक अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का वर्णन किया, उसमें नरक, निगोद, तिर्यञ्च, मनुष्य, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार प्रकार के देवों का सोलह स्वर्ग, नव ग्रैवेयिक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तर व सिद्ध क्षेत्र का मैंने अल्प बुद्धि अनुसार वर्णन किया, आगम में इसका विस्तार से वर्णन है॥१८१॥१८२॥

जो भव्य अल्प ज्ञान के धारी हैं उनके लिये यह संक्षिप्त वर्णन किया है, बहुश्रुत विद्वान जो होवें वे आगम ग्रन्थ पढ़कर विशेष ज्ञान प्राप्त करें॥१८३॥

अब आगे मैं कौन संसारी जीव कहां से आवे और कहां जावें इसका तथा लेश्या, सम्बोधन, रत्नत्रय, ध्यान, कषाय और गुणस्थान आदि का वर्णन करूंगा॥१८४॥

इस प्रकार पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्यतिलक ग्रन्थ में ऊर्ध्वलोक
का वर्णन करने वाला छठवां अध्याय समाप्त हुआ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

भवगमनागमन एवं सम्बोधन

अब मैं वर्णन करूं कौन गति, चयकरि जीव कहां उपजाय।
ताका अति संक्षिप्त हाल यह, पढ़हु सुनहु भवि मन थिरलाय॥१॥

मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया, भवनत्रिक हो स्वर्ग न जाय।
भोगभूमि का सम्यग्दृष्टि, पहला दूजा स्वर्ग लहाय॥२॥

पंचाग्नितप तपता योगी, भवनत्रिक में सुर हो जाय।
नग्न अण्डधर दण्डी व्राजक, ब्रह्मस्वर्ग तक जन्म लहाय॥३॥

परम हंस आजीवक तापस, सहस्रार बारम तक जाय।
सम्यग्दृष्टि देश संयमी, अच्युतस्वर्ग ताहि वे जाय॥४॥

यातैं ऊपर साधु दिगम्बर, जांय और नहिं गमन कराय।
द्रव्यलिंगधर साधु दिगम्बर, नवमें ग्रैवेयिक तक जाय॥५॥

सातवां अध्याय प्रारम्भ

संसारी जीव का आना जाना और सम्बोधन वर्णन

हे भव्यजीवों! अब मैं अत्यन्त संक्षेप से कौन जीव कहां से चयकर कहां उत्पन्न होता है और उसका वर्णन करता हूं उसे मनस्थिर करके पढ़ो और सुनो॥१॥

भोग भूमि का मिथ्यादृष्टि जीव भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव) होता है स्वर्ग नहीं जाता, और भोगभूमि का सम्यग्दृष्टि जीव पहले व दूसरे स्वर्ग में देव होता है॥२॥

पंचाग्नितप तपने वाला अजैन साधु अधिक से अधिक भवनत्रिक देव होता है, तथा नग्नअण्डधारी दण्डी साधु पांचवें ब्रह्मस्वर्ग तक जाते हैं॥३॥

परमहंसपरिव्राजक साधु बारहवें सहस्रारस्वर्ग तक जाते हैं, सम्यग्दृष्टि व देशव्रतीश्रावक सोलहवें अच्युत स्वर्ग तक जाते हैं॥४॥

इससे ऊपर दिगम्बर साधु ही जाते हैं, दूसरे नहीं जाते। द्रव्यलिंगी दिगम्बर साधु नवमें ग्रैवेयिक तक जाते हैं॥५॥

सम्यग्दृष्टि द्रव्य भाव मुनि, अनुदिश और अनुत्तर जाय।
कर्मनाशकारि शुक्लध्यानबल, क्षपक श्रेणिचढ़िशिवपुर जाय।६॥

जाय असैनी जीव अधोगति, पहले नर्क ताहि दुख पाय।
सरीसर्प दूजे तक जावे, पक्षी तीजे तक ही जाय।७॥

सर्प चतुर्थम नर्क जाय अरु, नाहर पंचम तक ही जाय।
नारी छटवें नर्क स्वयंभूरमण मत्स्य नर सप्तम जाय।८॥

निकसि सातवें तैं नारक वह, पशु पंचेन्द्रिय होवे जान।
षष्टम तैं निकसा नर होवे, सम्यक्त्वी भी हो मतिमान।९॥

पंचम नर्क निकसि नर मुनि हो, चौथे निकसि केवली होय।
नर्क तीसरे निकला प्राणी, तीर्थंकर पद पावे सोय।१०॥

नर्क न जावें देव नारकी, नहिं देव योनि भी पाय।
देव देव गति में नहिं जावे, नर्क जीव नहिं नर्क लहाय।११॥

सम्यग्दर्शन युक्त द्रव्य लिंग के साथ भावलिंगी मुनि अनुदिश और अनुत्तर में जाते हैं तथा वे शुक्लध्यान से क्षपक श्रेणी आरोहण कर मोक्ष भी जाते हैं।६।

असैनी जीव पहले नरक तक जाते हैं व सरीसर्प दूसरे नरक तक तथा पक्षी तीसरे नरक तक जाते हैं।७॥

सर्प चौथे नरक तक एवं नाहर पांचवें नरक तक जाते हैं, स्त्री छठवें नरक तक तथा मनुष्य और स्वयंभूरमण समुद्र के मत्स्य सातवें नरक जाते हैं।८॥

सातवें नरक से निकला जीव पंचइन्द्रिय पशु होता है, छठवें नरक से निकला मनुष्य हो सकता है, वह सम्यक्त्व को भी प्राप्त कर सकता है।९॥

पांचवें नरक से निकला जीव मनुष्य भव पाकर मुनि भी हो सकता है, चौथे नरक तक का जीव केवल ज्ञानी भी होता है, व तीसरे नरक तक का जीव तीर्थंकर भी होता है।१०॥

देव नरक में नहीं जाते और नरक के जीव देव पर्याय नहीं प्राप्त कर सकते, तथा देव पुनः सीधे देव नहीं होते और नारकी भी पुनः नरक में सीधे उत्पन्न नहीं होते।११॥

स्वर्ग दूसरे से ऊपर के, सुर नहिं थावर योनि लहाय।
सहस्रार से ऊपर के सुर, पशु गति में निश्चय नहिं जांय॥१२॥
चक्री नारायण बलभद्र सु, पद नहिं लहैं नरकतै आंय।
ये पद स्वर्ग देव ही पावें, यामें संशय नहीं बताय॥१३॥
मोक्ष न जायं देवगति के सुर, संयम नहिं तिहां लवलेश।
कर्मभूमि नर ही शिव पहुंचे, मुनि ह्वै भव्य कर्महनि शेष॥१४॥
सुर नारक तैं ही तीर्थंकर, होंय और गति तैं न लहाय।
मानुष भवनर तीर्थंकर हो, तद्भव में भी शिव पहुंचाय॥१५॥
चक्री नर्क स्वर्ग में जावें, और मोक्ष में भी वे जांय।
तप धारैं तो सुर शिव पावैं, राजभोग मरि नर्क लहाय॥१६॥
कामदेव बल भद्र आदि ये, स्वर्ग और शिवपुर को धान।
अर्द्धचक्रि नारायण नारद, रुद्र अधोगति जांय सुजान॥१७॥

दूसरे स्वर्ग से ऊपर के देव स्थावर पर्याय नहीं प्राप्त करते, तथा बारहवें सहस्रार स्वर्ग से ऊपर के देव पशु योनि में उत्पन्न नहीं होते।१२॥

चक्रवर्ती, नारायण, और बलभद्र ये पद नरक से आये जीव नहीं प्राप्त कर सकते, ये पद प्राप्त करने वाले जीव स्वर्ग से ही चयकर आते हैं इसमें संशय नहीं॥१३॥

देवगति के देव संयम स्वल्प भी धारण नहीं कर सकते इस कारण मोक्ष नहीं जा सकते, कर्म भूमि का भव्य मनुष्य ही मुनि होकर कर्म नाशकर मोक्ष जाता है॥१४॥

तीर्थंकर देवगति या नरक गति से ही आकर जन्म लेते हैं और गति से नहीं आते। मनुष्य पर्याय में भी कोई जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं और उसी भव से मोक्ष जाते हैं॥१५॥

चक्रवर्ती नरक में या स्वर्ग में और मोक्ष में जाते हैं। तप धारण करें तो स्वर्ग और मोक्ष में जाएं और राज्य भोगते हुए मृत्यु हो जाय तो नरक में ही जाते हैं॥१६॥

कामदेव और बलभद्र स्वर्ग और मोक्ष को ही जाते हैं, नारायण, प्रतिनारायण और रुद्र नरक में ही जाते हैं॥१७॥

तीर्थंकर के पिता मनुज भव, स्वर्गलोक अरु मोक्ष हि जांय।
स्वर्ग जांय तीर्थंकर जननी, और कुलंकर स्वर्ग लहाय॥१८॥
ये सब निकट भव्य हैं जानहु, शीघ्र जांहि शिव निश्चय जान।
यामें संशय है नहिं भविजन, कही जिनागम जिन भगवान॥१९॥
मानुष पशु अरु भवनत्रिक तैं, त्रेसठ शला पुरुष नहिं होय।
तेज और वायु कायिक के, जीव न नर भव पावें सोय॥२०॥
देवायुष बंध किये मुनिश्वर, क्षपक श्रेणि चढ़ि नहि शिवजांय।
नर, नारक, पशु त्रय, आयुष बंध, वह नर व्रत संयम नहिं पाय॥२१॥
नरकों से निकला भव पाए, गर्भज कर्म भूमि में आय।
सैनी पर्याप्तक नर पशु हो, नर पशु ही मरि नरकों जाय॥२२॥
एकेन्द्रिय अरु विकलत्रय नहिं, नरक लहैं नहिं सुर तनपाय।
देव नारकी नहिं विकलत्रय, योनि लहैं निश्चय बतलाय॥२३॥

तीर्थंकरों के पिता स्वर्ग या मोक्ष को जाते हैं, तीर्थंकरों की माता स्वर्ग को ही जाती हैं और कुलंकर सब स्वर्ग को जाते हैं॥१८॥

ये सब ऊपर कहे गये प्राणी आसन्न भव्य होते हैं कुछ ही भवों में नियम से मोक्ष जाते हैं ऐसा जिनागम में कहा है, इसमें कोई शंका नहीं है॥१९॥

मनुष्य, पशु और भवनत्रिक पर्याय से आये कोई भी जीव त्रेसठ शलाका पुरुष नहीं होता, तथा अग्निकायिक और वायुकायिक, जीव मनुष्य पर्याय नहीं प्राप्त कर सकते॥२०॥

जिस मुनि ने देवायु का बंध कर लिया है वे मुनि उसी भव से न तो क्षपक श्रेणी आरोहण करते और न मोक्ष जा सकते हैं, मनुष्य, तिर्यंच और नरकायु का बंधा हुआ मनुष्य व्रत संयम नहीं धारण कर सकता है॥२१॥

नरक गति से निकला जीव कर्म भूमि का गर्भज मनुष्य व सैनी पर्याप्तक पशु ही होता है, और नरक में मनुष्य और तिर्यंच ही जाते हैं॥२२॥

एक इन्द्रिय स्थावर और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय ये विकलत्रय जीव न तो नरक में जाते हैं और नहीं देव पर्याय पाते हैं। देव और नारकी जीव भी विकलत्रय में उत्पन्न नहीं होते॥२३॥

सम्यग्दृष्टि नर पशु होवे, निश्चय स्वर्ग देवपद पाय।
सम्यग्दृष्टि की अति महिमा, अरु लक्षण आगे वरणाय।।२४।।

लेश्या वर्णन

उदय कषायादिक अनुरंजित, योग प्रवृति है लेश्या नाम।
वर्ण द्रव्य लेश्या कहलावे, भाव भाव लेश्या परिणाम।।२५।।
लेश्या के षट् भेद कहे हैं, कृष्णनील कापोत सुजान।
पीत पद्म अरु शुक्ल भेद हैं, द्रव्य भाव द्वै भेद बखान।।२६।।
कृष्ण नील कापोत अशुभ हैं, हों संक्लेश जीव परिणाम।
पीतपद्म अरु शुक्लत्रय ये, शुभलेश्या हैं शुभ परिणाम।।२७।।
तीव्र कषाय कपोत तीव्रतर, लेश्या नील कही भगवान।
कृष्ण तीव्रतम है कषाय अरु, पीतमंद लेश्या पहिचान।।२८।।
पद्म मंद तर लेश्या जानहु, शुक्ल मंदतम लेश्या जान।
यों कषाय अनुरंजित प्राणी, उदाहरण तैं हो पहिचान।।२९।।

सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच निश्चय से स्वर्ग के देव ही होते हैं, सम्यग्दर्शन की बड़ी भारी महिमा है इसका आगे रत्नत्रय के प्रसंग में वर्णन करेंगे।।२४।।

लेश्या का वर्णन प्रारम्भ

कषाय के उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। वह द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या के भेद से दो प्रकार की होती हैं। शरीर के वर्ण को द्रव्य लेश्या और भावों को भाव लेश्या कहते हैं।।२५।।

लेश्या के छः भेद होते हैं— १. कृष्ण, २. नील, ३. कापोत, ४. पीत, ५. पद्म, ६. शुक्ल, ये छहों ही द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या दो तरह की होती हैं।।२६।।

कृष्ण, नील, कापोत ये तीन संक्लेश परिणाम की अशुभ लेश्या कहलाती हैं। और पीत, पद्म तथा शुक्ल ये तीन शुभ परिणाम वाली शुभ लेश्या कही जाती है।।२७।।

तीव्र कषाय कपोत व तीव्रतर लेश्या नील होती है, और तीव्रतम कषाय वाली कृष्ण लेश्या होती है, उसी प्रकार मंद कषाय के परिणाम वाली पीत लेश्या, और मन्दतर कषाय के परिणाम वाली पद्म लेश्या तथा मंदतम कषाय वाली शुक्ल लेश्या जानना चाहिये इस प्रकार कषाय से अनुरंजित प्राणी लेश्या वाले होते हैं, उनके उदाहरण से पहिचान होती है।।२८।।२९।।

उदाहरण

ज्यों षट् पथिक मार्ग भूले वन, पहुचे आम्रवृक्षतल आय।
तहों पथिक के भाव हुए तब, आम्र खांय सब मन सुखदाय।।३०।।
प्रथम कृष्ण लेश्या का मानव, जड़ से वृक्ष चहे कटवाय।
लेश्या नील मनुष कहता है, वृक्ष स्कंध काटे फल खांय।।३१।।
अरु कापोत मनुज तब चाहे, बड़ी बड़ी शाखा कटवाय।
पीत कषायी आम्र लगे फल, लघु शाखा काटें मनभाय।।३२।।
केवल फल को ही तोड़ें हम, नहीं वृक्ष डाली कटवाय।
यह है पद्म भावयुत मानव, शुक्ल गिरे ही फल लै खाय।।३३।।
इसी तरह के भावों वाले, लेश्याजीव भरा संसार।
कौन कहां जावे लेश्यायुत, जीव सुनहु वर्णन भवि सार।।३४।।
प्रथम कृष्ण लेश्यायुत प्राणी, पंचम तैं सप्तम नरकाय।
लेश्या नीलयुक्त जो प्राणी, नर्कतृतीय तैं पंचम जाय।।३५।।

उदाहरण

जैसे छः मुसाफिर मार्ग भूल कर वन में पहुंचे, एक आम्र वृक्ष के नीचे गये वहाँ के भाव मीठे पके आम खाने के हुए।।३०।।

पहली कृष्ण लेश्या के परिणाम वाला मनुष्य सारे आम वृक्ष को ही मूल से कटवाना चाहता है तो दूसरा नील लेश्या वाला वृक्ष के स्कंध भाग से आम्र वृक्ष को कटवाना चाहता है।।३१।।

और कापोत लेश्या के भाव वाला मनुष्य बड़ी–बड़ी डालियों को कटवाना चाहे, तो पीत लेश्या वाला छोटी–छोटी आम के लगे फल वाली डाली ही कटवाना चाहता है।।३२।।

पद्म लेश्या वाला मनुष्य फलों को ही तोड़कर खाना चाहे, और शुक्ल लेश्या वाला गिरे हुए फलों को ही लेकर खाना चाहता है।।३३।।

इसी प्रकार के भावों वाले जीव संसार में भरे हुए हैं। अब कौन लेश्या वाला जीव मरकर कहां उत्पन्न होता है उसका वर्णन करता हूं उसे भव्य जीवों ! ध्यान से सुनिये।।३४।।

प्रथम कृष्ण लेश्यायुक्त प्राणी पांचवें नरक से सातवें नरक तक जावे, नील लेश्या वाला जीव तीसरे नरक से पांचवें नरक तक जाता है।।३५।।

अरु कापोत जीव लेश्यायुत, प्रथम नरक तैं तृतीय लहाय।
अशुभत्रय ये लेश्या जानहु, शुभ लेश्या को अब वरणाय।।३६।।

लेश्या पीतयुक्त परिणामी, प्रथम स्वर्ग तैं चौथे जाय।
भाव पद्म लेश्यायुत प्राणी, तीजे तैं बारम तक जाय।।३७।।

लेश्या शुक्ल भावयुत मानव, ग्यारह तैं सोलह तक जाय।
स्वर्ग तथा, ग्रैवेयिक अनुदिश, और अनुत्तर भी पहुंचाय।।३८।।

कृष्ण नील कापोत तीन ये, लेश्याधारी जीव कहाय।
मनुष अरु तिर्यञ्च योनि में, यथायोग्य वह जन्म लहाय।।३९।।

लेश्यारहित जीव चौदहवें, गुणस्थान में जो पहुंचाय।
योग निरोध किया है जिनने, अल्प समय वह शिव पदपाय।।४०।।

योगनिरोधी होय केवली, तथा सिद्ध परमातम जान।
ये हैं लेश्या रहित जीव अरु, शेष जीव लेश्यायुत मान।।४१।।

कापोत लेश्या वाला प्रथम नरक से तीसरे नरक तक जाता है, ये तीन अशुभ लेश्याएं जानों, अब शुभ लेश्या का वर्णन सुनो।।३६।।

पीत लेश्या वाला जीव पहले स्वर्ग से चौथे स्वर्गतक जाता है, और पद्म लेश्या वाला तीसरे स्वर्ग से बारहवें स्वर्ग तक जाता है।।३७।।

शुक्ल लेश्या वाला जीव ग्यारहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक तथा उससे ऊपर नौ ग्रैवेयिक नौ अनुदिश और पांच अनुत्तरों में भी शुक्ल लेश्या वाला जाता है।।३८।।

कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्या वाला जीव मनुष्य और तिर्यंच योनि में यथायोग्य जन्म प्राप्त करता है।।३९।।

लेश्या रहित जीव चौदहवें गुणस्थान में अयोग केवली ही होते हैं, वे योग निरोधकर स्वल्प समय में ही मोक्ष जाते हैं।।४०।।

अयोग केवली और सिद्ध भगवान ही लेश्या रहित जीव होते हैं शेष सब संसारी जीव लेश्या वाले होते हैं। यह कथन भाव लेश्या की अपेक्षा से किया गया है।।४१।।

गुणस्थान के अनुसार भाव लेश्या

प्रथम गुणस्थान तैं चउ तक, षट् लेश्याएं कही बखान।
पंचम षष्टम और सातवें, गुणस्थान में त्रय शुभ जान।।४२।।

अष्टम तैं तेरहवें में है, शुक्ल एक लेश्या पहिचान।
चौदहवें में है नहिं लेश्या, लेश्या योग रहित भगवान।।४३।।

लेश्यायुक्त जीवों के परिणाम

कृष्ण

राग द्वेष में ग्रस्त रहे जो, दुराग्रही खोटे परिणाम।
अति संक्लेशभावयुत निर्दय, तीव्र कषायी जो बदनाम।।४४।।

मांस भखे अरु जो अविचारी, लम्पट विषयी हैं जे जीव।
लेश्या कृष्णयुक्त वे प्राणी, पाप कर्मबंधते वे जीव।।४५।।

किस गुणस्थान में कौनसी लेश्याएं होती हैं ?

पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक छः लेश्याएं होती हैं। पांचवें, छठवें और सातवें गुणस्थान तक, पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं।।४२।।

आठवें गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक शुक्ल लेश्या ही होती है। चौदहवें गुणस्थान में योग और कषाय दोनों का अभाव होने से लेश्या नहीं होती है।।४३।।

कौन जीव किस लेश्या वाला होता है ?

कृष्ण

जो प्राणी राग द्वेष में लीन रहते हैं, व दुराग्रही तथा खोटे परिणाम वाले होते हैं एवं अत्यन्त संक्लेश परिणामी, निर्दयी, तीव्रकषायी, अपयशी, मांसभक्षी, अविचारी, विषयलोलुपी जीव कृष्ण लेश्या वाले होते हैं वे पाप कर्म का बंध करते हैं।।४४।।४५।।

नील

क्रोधी मानी मायाचारी, लोभी रोगी द्वेषी जान।
हिंसक क्रूर चोर मूरख अरु, ईर्षा निद्रा कामी मान॥४६॥
बहुआरंभी परिग्रही जो, विषयासक्त और अज्ञान।
वे हैं नील कषायी प्राणी, जग में भ्रमण करें अभिमान॥४७॥

कापोत

शोक भयातुर मत्सरभावी, परनिंदा तत्पर जे जान।
आत्मप्रशंसा के इच्छुक नित, हानि लाभ की नहिं पहिचान॥४८॥
अहंकार मद ग्रस्त रहे जो, रण में मरने की हो चाह।
परयश नाहि चहे जो प्राणी, हैं कापोत चले जगराह॥४९॥

पीत

जो समदृष्टि द्वेष करे नहिं, हित अनहित की हो पहिचान।
दयावंत अनुकंपायुत जो, निपुण बड़े दिलवाला जान॥५०॥
ऐसा जग का जीव होय जो, सरल भाव युत शुभ परिणाम।
लेश्या पीत सुभाव धरे वह, हो गंभीर करे शुभ काम॥५१॥

नील लेश्या वाले

जो क्रोधी, अभिमानी, मायावी, लोभी, रागद्वेषी, हिंसक, क्रूरपरिणामी चोर, मूर्ख, ईर्षालु, निद्रालु, कामी, बहु आरंभी, परिग्रही विषयों में अनुरक्त, और अज्ञानी जीव होते हैं वे प्राणी नील कषाय वाले होते हैं, वे संसार में भ्रमण करते रहते हैं॥४६॥४७॥

कापोत लेश्या वाले जीव

शोक करने वाले, भयभीत, ईर्षालु, परनिन्दा में रत, आत्मप्रशंसा करने वाले, हानि लाभ के अज्ञानी, अहंकारी, मद में चूर, युद्ध में मरने की इच्छा वाले, और दूसरों के यश को नहीं चाहने वाले जीव कापोत लेश्या वाले होते हैं वे संसार मार्ग पर चलते हैं॥४८॥४९॥

पीत लेश्या वाले जीव

जो समभावी, द्वेषभाव रहित, हित अहित की पहिचान वाले, दयालु, चतुर, गम्भीर दिल वाले सरल परिणामी, शुभ भावी, जीव होते हैं वे पीत लेश्या वाले होते हैं, वे हमेशा अच्छे कार्य करते हैं॥५०॥५१॥

पद्म

जो पवित्र हैं दानी जग में, भद्र विनययुत मधुर बखान।
हितप्रियवचन साधु जनसेवी, लेश्या पद्म भावपहिचान।।५२।।

शुक्ल

जो निदान नहिं करे कभी भी, पक्षपात नहिं नहिं अभिमान।
राग द्वेष रहित समदृष्टि, लेश्या शुक्लयुक्त मतिमान।।५३।।

कौन जीव के कौन सी लेश्यायें

प्रथम नरक कापोत जानिये, द्वितीय कपोतहि मध्यम अंश।
तृतीय नरक कापोत नील हैं, लेश्या कहिये मध्यम अंश।।५४।।
नरक चतुर्थम मध्यम नीलसु, पंचम नरक नील उत्कृष्ट।
षष्टम नरक कृष्ण मध्यम हैं, सप्तम परम कृष्ण उत्कृष्ट।।५५।।

पद्म लेश्या वाले

जो पवित्र हैं, दान देते हैं, भद्र परिणामी, विनयी, मधुरवक्ता, हितमितप्रियवचन बोलने वाले, साधुओं की सेवा करने वाले हैं वे जीव पद्म लेश्या वाले होते हैं।।५२।।

शुक्ल लेश्या वाले

जो जीव कभी संसार के भोगों की इच्छा नहीं करते हैं, न तो पक्षपात कभी करते हैं न अभिमान करते हैं, तथा जो राग द्वेष से रहित होते हैं और जो समभाव वाले होते हैं वे शुक्ल लेश्या वाले जीव होते हैं।।५३।।

लेश्या वाले जीवों के लेश्याओं का वर्णन

पहले नरक के नारकी जीवों के जघन्य कापोत लेश्या होती है, दूसरे नरक में कापोत का मध्यम अंश तथा तीसरे नरक में कापोत लेश्या और नील का मध्यम अंश होता है।।५४।।

चौथे नरक में नील का मध्यम अंश, पांचवें नरक में नील लेश्या का उत्कृष्ट अंश, छठवें नरक में कृष्ण लेश्या का मध्यम अंश और सातवें नरक में परम कृष्ण अर्थात् कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंश होता है। पहले, दूसरे और तीसरे इन नरकों में तीन-तीन लेश्यायें, चौथे और पांचवें में दो दो लेश्यायें, छटवें और सातवें नरक में एक एक लेश्या होती है।।५५।।

एकेन्द्रिय विकलत्रय अरु जो, पंचेन्द्रिय मनरहित सुजान।
इन जीवों के अशुभत्रय हैं, प्रारम्भिक कृष्णादिक मान।८६॥
कर्मभूमि के मनुष पशु की, लेश्यायें षट् कही बखान।
भोगभूमि नरपशु की लेश्या, अन्तिम त्रय लेश्या शुभ जान।८७॥
भवनत्रिक में कृष्ण नील कापोत, जघन्य पीत परिणाम।
ऊपर कल्पदेव की लेश्या, कल्पातीत कहूं अभिराम।८८॥
प्रथम द्वितीय स्वर्गों में लेश्या, पीत कही अरु ऊपर जान।
तीजे चौथे पीत पद्म हैं, तापर पद्म चार में मान।८९॥
शुक्रादिक चउ स्वर्ग कही हैं पद्म शुक्ल लेश्या पहिचान।
आनतादि चउ स्वर्ग मांहि के, लेश्या शुक्ल सुरों की जान।९०॥
नवग्रैवेयिक में शुक्ल जानिये, अनुदिश और अनुत्तर मान।
परमशुक्ल लेश्या तिन कहिये, यों लेश्या जगजीव सुजान।९१॥

एक इन्द्रिय विकलत्रय और पंचेन्द्रियअसैनी जीवों की तीनों प्रारम्भ की अशुभ लेश्यायें होती हैं।८६॥

कर्मभूमि के मनुष्य और सैनी तिर्यंचों में छहों लेश्यायें होती हैं। भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों के अन्तिम तीनों शुभ लेश्यायें होती हैं।८७॥

अपर्याप्त भवनत्रिक में कृष्ण, नील और कापोत लेश्या होती हैं— पर्याप्त में पीत लेश्या का जघन्य अंश होता है, अब ऊपर के कल्पवासी और कल्पातीत देवों की लेश्या का वर्णन करता हूं।८८॥

पहले व दूसरे स्वर्ग के देवों की पीत लेश्या होती है और तीसरे और चौथे स्वर्ग में पीत और पद्म लेश्यायें हैं। उसके ऊपर के चार स्वर्गों में पद्म लेश्या होती है।८९॥

शुक्र आदि नवमें से बारहवें इन चार स्वर्ग के देवों में पद्म और शुक्ल ये दो लेश्यायें होती हैं आनतादि तेरहवें से सोलहवें स्वर्ग में शुक्ल लेश्या होती है।९०॥

नवग्रैवेयिकों में भी शुक्ललेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तर विमानों में परमशुक्ललेश्या होती है। इस प्रकार लेश्या वाले संसारी जीव होते हैं।९१॥

विशेष— शतार और सहस्रार स्वर्ग में उत्कृष्ट पद्म लेश्या तथा जघन्य शुक्ल लेश्या होती हैं, आनत से अच्युत तथा ग्रैवेयिकों में मध्यम शुक्ल लेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तर में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

द्रव्य लेश्या वर्णन

लेश्या भाव कही अब तक यों, लेश्या द्रव्य कहूं बतलाय।
कायावर्ण द्रव्यलेश्या है, कौन जीव कैसी वरणाय।।९२।।
बादर पृथ्वी कायिक के हैं, षट् लेश्या ही तिन पहिचान।
अग्निकाय के तेजो लेश्या, अपरपीत तसुनाम बखान।।९३।।
वायुकाय कापोत कही है, जलकायिक के शुक्ल सुजान।
तथा वनस्पतिकाय जीव के, षट् ही लेश्या कही बयान।।९४।।
और समस्त अपर्याप्तक के, सूक्ष्मकाय कापोत सुजान।
विग्रह गति में सब जीवों के, शुक्ल कही लेश्या पहिचान।।९५।।
औदारिक तन मानव पशु के, षट् लेश्या तन वर्ण बयान।
तैजस तन की तेजोलेश्या, अरु कार्माण शुक्ल पहिचान।।९६।।
वैक्रेयिकनारकसुर लेश्या, नारक सर्व कृष्ण ही जान।
पीत पद्म अरु शुक्ल त्रय ये, सुरगण के तन की पहिचान।।९७।।

अब द्रव्य लेश्या का वर्णन करते हैं

अब तक ऊपर भाव लेश्या का वर्णन किया। अब द्रव्य लेश्या का वर्णन किया जाता है, शरीर के वर्ण को द्रव्य लेश्या कहते हैं, कौन जीवों के कौन सी द्रव्य लेश्या होती है, उसे सुनिये।।९२।।

बादर पृथ्वीकायिक जीवों के छहों लेश्यायें होती हैं। अग्निकायिक जीवों के तेजोलेश्या अर्थात् पीत लेश्या होती है।।९३।।

वायुकायिक जीवों के कापोत लेश्या और जलकायिक जीवों के शुक्ल लेश्या होती है। वनस्पतिकायिक जीवों के छहों लेश्यायें होती हैं।।९४।।

समस्त अपर्याप्तक जीवों के और समस्त सूक्ष्म जीवों के कापोत लेश्या होती है, विग्रहगति में समस्त जीवों के शुक्ल लेश्या होती है।।९५।।

औदारिक शरीरवाले मनुष्य और तिर्यंचों के छहों लेश्यायें और तैजस शरीर वाले जीवों के तैजस अर्थात् पीतलेश्या और कार्माण शरीर वालों के शुक्ललेश्या होती है।।९६।।

नारकियों के शरीर की कृष्ण लेश्या और देवों के शरीर की पीत पद्म और शुक्ललेश्या होती है।।९७।।

भवनत्रिकसुर के तनलेश्या, कापोतज गोमूत्र समान।
यों है लेश्या द्रव्य सुवर्णन, तिनका लक्षण यों है जान।६८॥

प्रथम कृष्ण लेश्या भौंरे सम, नील नीलगोलीसम जान।
अरु कापोत कबूतर तनसम, पीत तप्त कञ्चन सम जान।६९॥

पद्म गुलाबी फूल सम है, शुक्ल धवल वर्णित पहिचान।
यों है लेश्या द्रव्य कहाई, वर्णित काय वर्ण की जान।७०॥

इति लेश्या वर्णनम्।

संहनन अपेक्षा से जीवों का गमनागमन

कर्मउदय तनअस्थिपरस्पर, बंध विशेष संहनन मान।
वे षट् होते तिनका क्रमशः, वर्णन इहां करूं कछु जान।७१॥

भवनत्रिक देवों के शरीर की लेश्या गोमूत्र के समान कापोत लेश्या होती है। इस प्रकार द्रव्य लेश्या का वर्णन किया इनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है।६८॥

द्रव्यलेश्या का स्वरूप

पहली कृष्णलेश्या भौंरे के समान, नीललेश्या नील की गोली, नील या मयूर के पंख के समान होती है। कापोत लेश्या कबूतर के रंग के समान और पीतलेश्या तपे हुये सोने के समान रंग वाली होती है।६९॥

पद्म लेश्या गुलाबी कमल या रंग के समान और शुक्ललेश्या सफेद धवल रंग के समान होती है। इस प्रकार संसारी जीवों के द्रव्य लेश्यायें होती हैं।७०॥

इस प्रकार लेश्या का वर्णन समाप्त हुआ।

संहनन का स्वरूप व भेद

जिस नाम कर्म के उदय से संसारी जीवों के शरीर में हड्डियों के बंधन में विशेषता हो उसे संहनन कहते हैं, ये छः प्रकार के होते हैं उनका यहां मैं संक्षेप से वर्णन करता हूं।७१॥

वज्र वृषभ नाराच है पहला, उत्तम संहनन कहाजिनाय।
दूजा वज्रनाराचसंहनन, है नाराच तृतीय बताय।।७२।।
अर्धनाराचसंहनन चौथा, कीलक पंचम संहनन जान।
षष्टम असंप्राप्तसृपाटिका, यों संहनन षट् आगम मान।।७३।।

कौन संहनन वाला कहां तक जावे ?

षष्टम संहनन वाले ऊपर, अष्टम स्वर्ग तांहि वे जांय।
पंचम वाले जीव मरणकर, बारहवें तक सुरपद पांय।।७४।।
और चतुर्थम संहनन वाले, जीव सोलवें तक पद पांय।
मुनि नाराच आदि त्रय संहनन, वाले नवग्रैवेयिक जांय।।७५।।
द्वितीय प्रथम द्वै संहननधारी, नव अनुदिश तक जन्मलहाय।
वज्रवृषभ उत्तम संहनन मुनि, पंच अनुत्तर शिवपद पांय।।७६।।

---

१. वज्रवृषभ नाराच संहनन :	(शरीर में वेष्टन, कीलें, और हड्डियां वज्र की तरह हों)।
२. वज्रनाराच संहनन :	(कील और हड्डियां वज्र की तरह दृढ़ हों)।
३. नाराच संहनन :	(हाड़ों के जोड़ों में कीलें होना)।
४. अर्ध नाराच संहनन :	(हाड़ों की संधियां अर्ध कीलित होना)।
५. कीलित संहनन :	(हाड़ों का बिना कीलों के परस्पर कीलित होना)।
६. असंप्राप्त सृपाटिका संहनन :	(हाड़ों का केवल नस व स्नायु आदि से बंधे होना)।

इस प्रकार आगम में छः प्रकार के संहनन कहे हैं।।७२।।७३।।

कौन जीव संहनन वाला ऊपर कहां तक जावे

छटवें संहनन का धारी जीव यदि ऊर्ध्वगति जाय तो चारयुगल अर्थात् आठवें स्वर्ग तक जाता है। पांचवें संहनन वाला जीव मरकर बारहवें तक जाता है। चतुर्थ संहनन वाला सोलहवें स्वर्ग तक जा सकता है। तथा नाराच आदि तीन संहनन वाले जीव यदि मुनि हों तो नव ग्रैवेयिक तक जाते हैं। दूसरा और पहला ये दो संहनन धारी मुनि नव अनुदिश तक जाते हैं। तथा वज्र वृषभ नाराच संहनन नाम के प्रथम संहनन वाले मुनि पंचअनुत्तर तक जाते हैं, और वे कर्मक्षय कर मोक्ष भी जा सकते हैं।।७४।।७५।।७६।।

संहनन अपेक्षा अधोगति में कौन कहां तक जावे ?

छहों संहनन वाले प्राणी, प्रथम नरकतैं तीजे जांय।
पहले तैं पंचम संहनन के, पंचम नरकताँहि जनमांय।१७७।।

प्रथम आदि ले चारसंहनन, वाले षटमतक पहुंचाय।
प्रथमसंहनन वाला प्राणी, सप्तम नरक नारकी थाय।१७८।।

गुणस्थान अपेक्षा संहनन

प्रथम गुणस्थान तैं सप्तम, गुणस्थान में षट्संहनन।
उपशम श्रेणी चउ गुणथानहिं, आदित्रय उत्तम संहनन।१७९।।

क्षपक श्रेणि के पंच गुणथानहिं, प्रथम संहनन के हो जीव।
विकलत्रय अरु मनबिन छटवा, भोग भूमि में प्रथम सदीव।१८०।।

अवसर्पिणी काल के चौथे, काल संहनन षट् ही मान।
पंचम काल मांहि त्रय संहनन, अंतिम के जो हीन सुजान।१८१।।

अधो गति में कहां तक जावें

छहों संहनन वाले जीव पहले से तीसरे नरक तक जाते हैं। तथा पहले से पांचवें संहनन वाले पंचम नरक तक जाते हैं।१७७।।

पहले से चार संहननवाले जीव छटवें नरक तक जाते हैं तथा प्रथम संहनन वाला जीव सातवें नरक तक जाता है।१७८।।

गुणस्थान अपेक्षा वर्णन

पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान में छहों संहनन होते हैं उपशम श्रेणी के चार गुणस्थानों में अर्थात् आठवें, नवमें, दशवें तथा ग्यारहवें गुणस्थानों में प्रारम्भ के उत्तम तीन संहनन होते हैं।१७९।।

क्षपक श्रेणी के पांच गुणस्थानों में अर्थात् आठवें, नवमें, दशवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थानों में पहला संहनन होता है तथा विकलत्रय (दो इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक जीवों के) तथा असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के छटवां संहनन होता है। भोग भूमि में पहला संहनन होता है।१८०।।

अवसर्पिणी काल के चौथे काल में छहों संहनन होते हैं और पंचम काल के मनुष्य पशुओं के अंत के तीन हीन संहनन होते हैं।१८१।।

षष्टम काल जीव के जानहु, छटवां संहनन ही बतलाय।
देव नारकी थावरतन में, नहिं संहनन नहिं अस्थि बताय॥८२॥
क्षेत्र विदेह और विद्याधर, म्लेच्छमनुज पशु षट् संहनन।
कर्म भूमि नारी त्रय अंतिम, यों संहनन आगम वरणन॥८३॥

इति संहनन वर्णनम्।

सम्बोधन

मोहादिक कर्मोदय प्राणी, जग में भ्रमण करे अज्ञान।
भटकत काल अनंत बिताये, पंच परावर्तन करि आन॥८४॥
जनम मरण करते बहु बीते, कल्पकाल संख्या नहिं पार।
चउगति चौरासी लख योनि, उपजे मरे न पारावार॥८५॥
काल अनादि निगोद बसा यह, जन्मामरा अनन्तेबार।
जन्म मरण इक श्वास अठारह, किये दुःख भुगते नहिं पार॥८६॥

छटवें काल के जीवों के अंतिम छठवां संहनन ही होता है तथा देव, नारकी और पंच स्थावर जीवों के कोई संहनन नहीं होता क्योंकि उनके शरीर में हड्डियां नहीं होती॥८२॥

विदेह क्षेत्र में कर्म भूमि के जीवों के तथा विद्याधरों के और म्लेच्छखण्ड के मनुष्य और पशुओं के छहों संहनन होते हैं। तथा कर्म भूमि की स्त्रियों के अंतिम तीन संहनन होते हैं। इस प्रकार से आगम में संहनन का वर्णन आचार्यों ने किया है॥८३॥

संहनन का वर्णन समाप्त हुआ।

सम्बोधन

मोहनीय तथा ज्ञानावरणादिक कर्म के उदय से यह संसारी जीव संसार में परिभ्रमण करता है, इस जीव ने अनादि काल से पंच परावर्तन करते हुए इस संसार परिभ्रमण में अनंत काल व्यतीत किया है॥८४॥

इस जीव को जन्म मरण करते करते कई कल्पकाल बीत चुके हैं (एक कल्पकाल २० कोड़ा कोड़ी सागर का होता है) यह जीव चारों गतियों में चौरासी लख योनियों में अनंतबार जन्मा और मरा है॥८५॥

अनादि काल से तो निगोद में रहकर अनंत जन्म मरण इस जीव ने किये वहां एक श्वास में अठारह बार जन्मा और मरा तथा भारी दुःख सहन किये॥८६॥

नित्यनिगोद माँहितें निकसा, एकेन्द्रिय थावरतन पाय।
काल असंख्य दु:ख तिहं पाया, जन्मा मरा पुन: जनमाय।८७॥
एकेन्द्रिय तें दुर्लभ द्वय है, द्वय तें त्रय इन्द्रिय है जान।
त्रय तें चतुरिन्द्रिय अति दुर्लभ, तिन तें पंचेन्द्रिय अतिमान।८८॥
पंचेन्द्रिय में सैनी दुर्लभ, तिन में दुर्लभ नर पर्याय।
उत्तम कुल जिनवानी श्रवण पे, दुर्लभ पुण्य उदयतें पाय।८९॥
पे भी पाय मूल्य नहिं समझा, किया नहीं आतम कल्यान।
पाय अमोलक रत्न हाथ में, फैंका काग उड़ावन जान।९०॥
कितने कल्प काल यों बीते, चउगति पाये जन्म अनंत।
एक एक भव की भी संख्या, गिनते नहिं पाए तिन अन्त।९१॥
रे चेतन ! तूने भव पाये, जन्ममरण इतने भटकाय।
मृत्यु होय रोई तव जननी, अश्रुनीर जलनिधि अधिकाय।९२॥

नित्य निगोद से निकल कर एक इन्द्रिय स्थावर पर्याय प्राप्त की तो वहां असंख्य काल तक पुन: पुन: जन्मा और पुन: पुन: मरा।८७॥

एक इन्द्रिय पर्याय से दो इन्द्रिय पर्याय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, दो इन्द्रिय से तीन इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय से चार इन्द्रिय और चार से पंचेन्द्रिय पर्याय पाना अत्यन्त कठिन है।८८॥

पंचेन्द्रिय से सैनी पर्याय, सैनी से मनुष्य पर्याय उसमें भी उत्तम कुल और जिनवानी का श्रवण पुण्यउदय से बड़ी कठिनाई से मिलता है।८९॥

किन्तु इतना प्राप्त करके भी जिसने इसका मूल्य नहीं समझा और भोगों में खो दिया, जिस प्रकार कि कोई मूर्ख अमूल्य रत्न को पाकर उसे कौवे के उड़ाने के लिये फेंक देता है।९०॥

कितने कल्पकाल इस चेतन ने चारों गतियों में जन्म मरण करते करते व्यतीत किये हैं, कि एक एक भव की संख्या भी गिनते गिनते अंत नहीं आ सकता है।९१॥

हे चेतन ! तूने अनादि काल से अब तक इतने जन्म मरण किये हैं कि तेरी माताओं के रुदन के आंसुओं का जल यदि एकत्र किया जाए तो समुद्र के जल से अधिक हो जाय।९२॥

कितने तूने जन्म गंवाये, तेरे तनका है नहिंपार।
अस्थि केश नख एकत्रित हों, मेरु सम गिरि होय अपार।।९३।।
तीन लोक में सब थल जन्मा, भोगे सब परमाणु अनंत।
तीन लोक का नीर पिया पर, प्यास न बुझी न इसका अंत।।९४।।
जेते पुद्गल हैं सब भोगें, सब हैं तेरे झूठे जान।
तदपि न भूख मिटी अब तेरी क्षुधा रोग भीषण पहिचान।।९५।।
जन्म मरण यह रोग भयंकर, जो जन्मा निश्चै मर जाय।
जब तक चेतन ! कर्म रहे सङ्ग, जन्म मृत्यु का अन्त न आय।।९६।।
मुनि भी होय तदपि नहिं समकित, वे भी कर्म न नाहिं खपाय।
द्रव्य भाव दो लिङ्ग इय हो, तभी कर्महनि शिवपद पाय।।९७।।
द्रव्य बिना नहिं भाव लिङ्ग हो, भावलिङ्ग बिन मुक्ति न पाय।
तातें दोनों लिङ्ग हेतुशिव, द्वय ही तैं मुनि ही शिव जाय।।९८।।

तथा तूने इतने जन्म किये हैं कि तेरे शरीर के नख केश यदि एक जगह एकत्रित किये जावें तो मेरु पर्वत के बराबर पहाड़ खड़ा हो जाए।।९३।।

हे जीव ! तूने तीन लोक में सब जगह जन्म ले लिया है और अनंत बार सब भोगों को भोग लिया है, तथा तीन लोक का सब पानी पी लिया है फिर भी न तो प्यास ही बुझी और न इसका अंत ही आया।।९४।।

जितने पुद्गल द्रव्य लोक में है सब तेरे भोगे हुए तेरे झूठे हैं, फिर भी तेरी क्षुधा शांत नहीं हुई ऐसी क्षुधा की ज्वाला भीषण है इसको पहिचान।।९५।।

हे चेतन ! यह जन्म मरण का रोग भयंकर है, जो भी जन्मा वह निश्चय ही मरेगा, जब तक कर्म आत्मा के साथ हैं जन्म मरण का अंत नहीं आयेगा।।९६।।

मुनि हो गया और सम्यक्त्व नहीं है तो भी कर्मों का क्षय नहीं कर सकता अतः द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग दोनों ही से मोक्ष प्राप्त होता है।।९७।।

द्रव्य लिंग के बिना भावलिङ्ग नहीं है और भाव लिंग के बिना मोक्ष नहीं है, इसलिये दोनों ही लिंग मोक्ष के कारण हैं और दोनों ही से मुनि मोक्ष जाते हैं।।९८।।

मेरु गिरि के जड़ में गोस्तन, के आकार सु अष्ट प्रदेश।
केवल तिहाँ न जन्मा चेतन !, और जगह जन्मा धरि वेष॥९९॥

यह तन मात पिता रज वीरज, उपजा घृणित धातु ये जान।
घृणित धातु थैली रोग गृह, छ्यानवे इक अंगुल में मान॥१००॥

नव दस मासरहा माता के, गर्भमांहि उलटा लटकाय।
बन्द रहा तू अल्प जगह में, मां का झूठन ही नित खाय॥१०१॥

जन्म हुआ कठिनाई भुगते, ज्यों खींचे जंती में तार।
जन्मत रोया, बड़ा हुआ तब, गर्भ जन्म दुख दिया बिसार॥१०२॥

ज्यों कावटिया कावट ढोवे, तन पर वहन करे तिन भार।
त्यों जगप्राणी तनकावटिया, ढोवे कर्म काय का भार॥१०३॥

जिन पूजा अरु दान सहित, षट्कर्म निरन्तर करहु सुजान।
श्रावक धर्म धरो सब भविजन, धर्मी बिन नहिं धर्म महान॥१०४॥

मेरु पर्वत के मूल में गोस्तन के आकार के आठ प्रदेश हैं केवल यह आत्मा वहाँ जन्मा नहीं है—अन्यत्र सब जगह जन्म पा लिया है॥९९॥

मनुष्य पर्याय का यह शरीर माता के रज और पिता के वीर्य के संयोग से उत्पन्न हुआ, और इसमें घृणित मलमूत्रादिक कुधातुएँ भरी हैं, रोगों का घर है, एक अंगुली में छ्यानवे रोग इसमें भरे हैं॥१००॥

मनुष्य पर्याय में यह जीव नौ या दस महिना गर्भ में रहा उसमें उलटा लटका, थोड़ी सी जगह में बन्द रहा, और माँ का झूठन ही खाया॥१०१॥

गर्भ से बड़ी कठिनाई से निकला जिस प्रकार जंती में से लोहे का तार खींच कर निकाला जाता है, जन्म होते ही बहुत रोया, बड़ा हुआ तब सब गर्भ और जन्म के दुःख भूल गया॥१०२॥

जिस प्रकार कावटिया कावट को ढोता है, और उसके भार को शरीर पर उठाता है उसी प्रकार यह जीव इस शरीर का कावटिया है, शरीर के भार को नित्य उठाता है॥१०३॥

हे भव्य जीवों ! मनुष्यपर्याय, श्रावककुल पाकर जिनेन्द्र पूजन और दान के साथ श्रावक के षट्कर्म निरन्तर करो—श्रावक धर्म धारण करो, धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं है ऐसा आचार्यों ने कहा है॥१०४॥

धन्य धन्य जे त्यागि परिग्रह, बने दिगम्बर मुनि व्रत धार।
जो मुनि धर्म न ग्रहण सकें वे, पालें श्रावकधर्म सुसार॥१०५॥

विषयकषाय अशुभ भावन तजि, पूजा व्रत तप त्याग धरेय।
देव शास्त्र गुरु भक्ति दयायुत, धारो शुभ परिणति सुखदेय॥१०६॥

समकित सहित धरे मुनि व्रत जो, अरु श्रावक व्रत पाले सोय।
शुभ तैं शुद्ध भाव बलकर्मन, क्षय करि शिवअधिकारी होय॥१०७॥

काल खड़ा नित लैं कुठार सिर, कर प्रहार कब घातकरेय।
कौन घड़ी आजाय अचानक, नाजानें कब प्राण हरेय॥१०८॥

धिकधिक मानव तन उत्तम कुल, पाकर भी न किया कल्यान।
चिन्तामणि सम नर भव पाकर, खोया विषयन में अज्ञान॥१०९॥

वे पुरुष धन्य हैं जिनने समस्त परिग्रह का त्याग कर मुनि व्रत धारण किया है, किन्तु जो मुनिव्रत को धारण नहीं कर सकते उन्हें श्रावक धर्म को ग्रहण करना चाहिये॥१०५॥

इन्द्रियों के विषय और कषायजनित अशुभ भावों को छोड़कर श्रावक को दान, पूजा, व्रत, तप देव शास्त्र गुरु की भक्ति, दया के परिणाम आदि शुभ परिणति में रत रहना चाहिये, ये सुखदायी उपाय हैं॥१०६॥

जो मनुष्य सम्यक्त्व सहित मुनि और श्रावक के व्रत धारण करते हैं वे अशुभ भावों को छोड़कर शुभोपयोग अर्थात् शुभ भावों में प्रवृत्ति करते हैं शुभोपयोग से ही वे शुद्धोपयोग पाते हैं, और शुद्धोपयोग से कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं॥१०७॥

हे भव्य जीवों ! यह काल कुठार लेकर इस मानव तन के सिर पर प्रहार करने खड़ा है, कौन समय आजाय न जाने कब अचानक प्राण हरण करले कुछ पता नहीं॥१०८॥

उन मनुष्यों को धिक्कार है जिनने मनुष्य भव व उत्तम कुल पाकर भी आत्म कल्यान नहीं किया व चिन्तामणि के समान नर पर्याय को अज्ञानी होकर विषयों में खो दिया॥१०९॥

पंछीगण ज्यों तरुपर आवें, मिलें रात उड़जांय प्रभात।
त्यों यह जीव मिलें नर भव में, बिछुड़ें पुनः मिलें बिछुड़ात॥११०॥
रेल और मोटर में यात्री मिलें विविध नर पुनि बिछुड़ाय।
त्यों यह जीव मनुष भव पाकर, सब परिवार मिलें बिछराय॥१११॥
चञ्चल चपला जलकण सुरधनु ज्यों हैं क्षण भंगुर जगजान।
त्यों धन वैभव मानव तन गृह, विनसैं क्षणिक न थिर मतिमान॥११२॥
सूर्यउदय होवे उपर ज्यों, चढ़े अस्त होवे पुनि रात।
त्यों यह पाप पुण्य अनुक्रम तैं, दुःख और सुख क्रम भुगतात॥११३॥
क्षण इक यौवन क्षण बृद्धापा, क्षण में निर्धन क्षण धनवान।
क्षण में रोगी और निरोगी, क्षण में दुर्बल क्षण बलवान॥११४॥
जो मानव धन यौवन पाकर, करता मूढ़मति अभिमान।
तिन सम जगमें को अज्ञानी, निजपर की सुध नहिं पहिचान॥११५॥

जिस प्रकार रात्रि में पक्षी गण वृक्ष में आकर मिलते हैं और प्रभात होते ही उड़कर अलग अलग चले जाते हैं, उसी प्रकार यह जीव मनुष्य भव में जन्म लेकर परिवार जन से मिलता है और बिछुड़ता जाता है॥११०॥

रेल और मोटर में जिस प्रकार यात्री मिलते हैं और अलग अलग स्टेशनों पर उतर कर बिछुड़ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भव में परिवार के मनुष्य मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं॥१११॥

जिस प्रकार बिजली, जल के बुद्‌बुदे, इन्द्रधनुष, चञ्चल और क्षण भंगुर है उसी प्रकार धन, वैभव, यह शरीर भी क्षण भंगुर हैं, सब विनश्वर है– कोई भी स्थिर नहीं है॥११२॥

प्रातः सूर्य उदय होता है, मध्यान्ह सूर्य ऊपर चढ़ता है, संध्या को पुनः वह अस्त होता है, उसी प्रकार पाप व पुण्य के उदय से यह जीव दुःख और सुख को भोगता है॥११३॥

क्षण में युवावस्था, क्षण में बुढ़ापा, क्षण में निर्धन और क्षण में धनवान, क्षण में रोगी, क्षण में निरोगी, क्षण में कमजोर, क्षण में बलवान मनुष्य भव में यह जीव होता है॥११४॥

जो मनुष्य यौवन व धन को प्राप्त कर अभिमान करता है वह मूर्ख है उसके समान और कौन अज्ञानी होता है ? उसे आत्मा और पर की पहिचान नहीं है॥११५॥

मृग तृष्णा सम तेरी तृष्णा, आयु बढ़े त्यों बढ़ती जाय।
भोग विषय में तू सुख चाहे, वह न मिले बिन समकित पाय॥११६॥
संपति विपति विषाद हर्ष अरु, निर्धनता धनवन्त कहाय।
ये सब आकुलता के कारण, आकुलता बिन ही सुख पाय॥११७॥
समय जाय आयुष्य घटे हैं, मरण समीप छुटेगी काय।
बन्धु मित्र धन वैभव छूटे, सङ्ग न चालें पुनि पछताय॥११८॥
ज्यों कोउ कूकर अस्थि चबाए, बहे रक्त तालू फटि जाय।
अस्थि न त्यागे त्यों विषयी नर, भोगत भोग रमे न तजाय॥११९॥
जब तक जरा रोग नहिं आवे, परवश होय मरण नहिं आय।
तब तक आतम का हित करले, आग लगे क्यों ? कूप खुदाय॥१२०॥
कोई रहे महल में कोई, फुटपाथों पर रैन बिताय।
कोई षट् रस व्यंजन खाऐ, कोई भूखा ही मर जाय॥१२१॥

मृगतृष्णा के समान तेरी तृष्णा आयु के साथ बढ़ती जाती है, हे चेतन ! तू विषय भोगों में सुख चाहता है वह भोगों में नहीं मिलेगा, क्योंकि बिना सम्यक्त्व के सुख नहीं प्राप्त होता॥११६॥

सम्पत्ति, विपत्ति, विषाद, हर्ष, धनी, निर्धनता, ये सब आकुलता उत्पन्न करने वाले हैं, और आकुलता के बिना ही सुख प्राप्त होता है॥११७॥

ज्यों ज्यों समय बीतता है, आयु घट रही है, मृत्यु समीप आ रही है, शरीर छूटेगा, बंधु मित्र, धन वैभव सब छूटेंगे, कोई साथ नहीं आयेगा, अंत में पछताता हुआ अकेला जायगा॥११८॥

जिस प्रकार कोई भूखा कुत्ता हड्डी को चबाता है, उससे उसके होंठ और तालू फट जाते हैं खून बहने लगता है पर हड्डी को छोड़ता नहीं है, उसी प्रकार विषयी मनुष्य भोगों को भोगता लीन होकर छोड़ता नहीं है॥११९॥

हे चेतन ! जब तक तेरे बुढ़ापा व रोग न आए, तू पराधीन न हो जावे, या मृत्यु उपस्थित न हो जावे उससे पहले ही आत्मा का हित करले, अरे ! जब आग लग जाए तब कुआं खोदने से क्या लाभ है॥१२०॥

कोई मनुष्य तो महलों में रहता है, और कोई फुटपाथों पर ही रात्रि व्यतीत करता है। कोई अनेक व्यंजनों से युक्त मधुर व्यंजन खाता है, कोई भूखे पेट ही मर जाता है॥१२१॥

कोई राज करें अभिमानी, कोई भीख मांग कर खाय।
कोई वायुयान फिरैं नित, कोई पांव से गमन कराय॥१२२॥
कोई नौकर चाकर राखैं, कोई पत्थर सिर पर ढोय।
कोई रेशम पट नित बदले, वस्त्र फटे तन पहिरे कोय॥१२३॥
कोऊ के गृह यंत्र लगे हैं, शीत उष्ण रक्षक तन जान।
कोऊ वन अरु पार्क पड़े हैं, गरमी सरदी सहत समान॥१२४॥
अरे विषमता कितनी चेतन !, मनुष भव में आँखों देख।
जो शासक थे वे अब फिरतें, पूछे कोउ नहीं विधि रेख॥१२५॥
ज्यों रेहट गरड़े खाली हों, पुनि भरि पुनि खाली हो जाय।
त्यौं जग जीव भोगता सुख दुख, नहीं एकसा समय रहाय॥१२६॥
सुख दुख संपति विपति आय तब, हर्ष न शोक करहु मतिमान।
पुण्य पाप फल कर्मोदय हैं, तातैं समताधर तजि मान॥१२७॥

कोई अभिमान के साथ राज्य करता है, कोई भीख मांग कर पेट भरता है। कोई हवाई जहाजों में सफर करता है, कोई पैदल ही चलता है॥१२२॥

कोई तो अपने घर नौकर चाकर रखते हैं, कोई सिर पर पत्थरों का बोझ ढोते हैं, कोई रेशम व मखमल के मूल्यवान कपड़े नित्य बदल कर पहिनता है, और कोई फटे वस्त्रों से ही काम चलाता है॥१२३॥

किसी के मकान पर गर्मी व शीत से बचाव के लिये यंत्र (एयरकण्डीशण्ड, कूलर आदि) लगे हैं तो कोई निर्धन गर्मी व सरदी के दुःख शरीर पर बिना चिन्ता के सहज ही उठा रहा है तथा कई वन व पार्कों में पड़े रहते हैं, और जीवन भर शीत उष्ण को सहन करते हैं॥१२४॥

अरे–हे चेतन ! इस मनुष्य पर्याय में ही कितनी विषमता भरी पड़ी है प्रत्यक्ष अपनी आँखों से ही देख ले, जो राजा थे उन्हें आज कोई पूछता भी नहीं है यह सब भाग्य (कर्मों) की देन है॥१२५॥

जिस प्रकार रेहट की गरड़े एक तरफ खाली और दूसरी तरफ भरती जाती है, उसी प्रकार यह संसारी जीव सुख दुःख, यथाक्रम भोगता है, समय हमेशा एकसा नहीं रहता है॥१२६॥

हे बुद्धिमानो ! सुख दुःख और सम्पत्ति, विपत्ति आवे तब न तो हर्ष करो और न विषाद करो, यह सब पाप और पुण्य कर्म के उदय का फल है ऐसा जानकर अभिमान छोड़ समता भाव धारण करो॥१२७॥

स्वर्ण थाल में धूल भरे ज्यों, मूढ़ सुधारस सौं पग धोय।
काग उड़ावन ज्यों मणि फेंके, गज तैं मूरख ईंधन ढोय॥१२८॥

ज्यों नर मूढ़ उखारि कल्प तरु, बोवत बीज धतूरा खेत।
ज्यों गज बेचि खरीदे रासभ, कांच लेय कञ्चन को देत॥१२९॥

त्यों यह मानव चिन्तामणि सम, पाकर उत्तम नर पर्याय।
खोवे भोग विषय में जीवन, तासम मूरख कौन बताय॥१३०॥

धन्य धन्य जे जीव पाय कर, पुण्ययोग मानव पर्याय।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरण धरि, मुनि है कर्मक्षये शिव जाय॥१३१॥

इति पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलके
भवनमनागमनलेश्यासम्बोधनादि वर्णनोनाम सप्तमोऽध्याय:

जिस प्रकार कोई मूर्ख सोने की थाली में धूल भरता है, और अमृत के रस से पाँव धोता है तथा मणिरत्न को कौवा उड़ाने के लिये फेंकता है और हाथी के द्वारा लकड़ी ढोता है॥१२८॥

तथा कोई मूर्ख अज्ञानी कल्पवृक्ष को उखाड़ कर धतूरे का बीज बोता है, तथा हाथी बेचकर कोई जिस प्रकार गधा खरीदता है और सोना बेचकर कांच खरीदता है॥१२९॥

उसी प्रकार यह मनुष्य चिंतामणि रत्न के समान उत्तम नर पर्याय प्राप्त कर विषय भोगों में समस्त जीवन खो देता है, उसके समान मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है॥१३०॥

वे मनुष्य धन्य हैं, जो पुण्य उदय से प्राप्त इस मनुष्य पर्याय द्वारा मुनि होकर रत्नत्रय का पालन करते हैं और कर्मों का क्षय कर मोक्ष जाते हैं॥१३१॥

इस प्रकार पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्यतिलक
ग्रन्थ में भव गमनागमन, लेश्या सम्बोधन वगैरह का
वर्णन करने वाला सातवां अध्याय समाप्त हुआ।

अथअष्टमोऽध्यायः

तत्व दर्शनम्

तत्ववर्णनम्

श्री जिनवर अरिहंत नमनकारि तत्व स्वरूप कहूं समुझाय।
जिनवर भाषित आगम माहि यथा सूरिवर कहा बताय॥१॥

तत्व का स्वरूप

जो पदार्थ है जिस स्वरूप में, उसी रूप जो होवे ज्ञान।
या पदार्थ के निज स्वरूप को तत्व कहा आगम पहिचान॥२॥

तत्वों के भेद

तत्व सात हैं जिनवर भाषित, जीव अजीवर आस्रव जान।
बंध तत्व अरु संवर भविजन, और निर्जरा मोक्ष महान्॥३॥

जीवका लक्षण

जिसमें हो चेतना गुलक्षण, ज्ञान दरशयह जीव सुजान।
है उपयोग जीवका लक्षण, वह द्वय भेद कहे भगवान॥४॥
प्रथम ज्ञान उपयोग जानिये, दूजा है दर्शन उपयोग।
ज्ञान अष्टविध योग कहा है, चउ विध है दर्शन उपयोग॥५॥

श्री अरिहंत जिनेश्वर को नमन कर मैं अब तत्व का स्वरूप समझाकर कहूंगा जैसा कि जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि अनुसार आचार्यों ने आगम में वर्णित किया है॥१॥

तत्व का स्वरूप

जो पदार्थ जिस रूप में है, उसका उसी रूप होना तत्व कहलाता है, अथवा पदार्थ के स्व स्वरूप को तत्व कहते हैं॥२॥

तत्वों के भेद

तत्व सात प्रकार के होते हैं। १. जीव, २. अजीव, ३. आस्रव, ४. बंध, ५. संवर, ६. निर्जरा, ७. मोक्ष, इस प्रकार सात तत्व हैं।

जीव का लक्षण

जिसमें चेतना गुण अर्थात् ज्ञान दर्शन गुण पाया जावे वह जीव है वैसे जीव का लक्षण उपयोग कहा है और वह उपयोग दो प्रकार का होता है। प्रथम ज्ञानोपयोग और दूसरा दर्शनोपयोग। उनमें ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है॥४॥५॥

ज्ञानोपयोग

मतिश्रुत अवधि औ मन: पर्यय, केवल ज्ञान पञ्च ये ज्ञान।
कुमति और कुश्रुत कुअवधि, ज्ञान त्रय कुज्ञान सुजान।।६।।
सम्यक्‌दरस सुज्ञान कहावे, बिन सम्यक कुज्ञान कहाय।
यों ज्ञानोपयोग है वसु विध, सबके लक्षण कहूं बताय।।७।।
मनइन्द्रिय तैं जानें वह मति, जो विशेष जाने श्रुत ज्ञान।
मर्यादित त्रैकालिक जाने, अवधिज्ञान ताको पहिचान।।८।।
पर के मन थित भाव सुजानें, वह है मनपर्यय सद्‌ज्ञान।
सकल द्रव्य की सब पर्यायें, युगपत जाने केवल ज्ञान।।९।।
अवधिज्ञान के भेद त्रय हैं, देशावधि परमावधि ज्ञान।
अरु सर्वावधि भेद तीसरा, देशावधि चउगति में जान।।१०।।
परमावधि सर्वावधि ज्ञानी परम दिगम्बर मुनि ही पाय।
मन: पर्यय के भेद दोय हैं ऋजुमति और विपुलमतिथाय।।११।।
परमतपस्वी साधु ऋद्धिधर के ही हो मन पर्यय ज्ञान।
ऋजुमति होय छूट भी जाए विपुलमती तद्भव शिव दान।।१२।।

मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन: पर्यय और केवल ज्ञान ये पांच तो ज्ञान और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन कुज्ञान हैं।।६।।

सम्यग्दर्शन के साथ ये तीनों ज्ञान सम्यक्‌ज्ञान कहलाते हैं और बिना सम्यक्त्व के ये तीनों कुज्ञान कहलाते हैं, इस प्रकार ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं। इन सब के लक्षण कहता हूं।।७।।

जो मन और इन्द्रिय की सहायता से जाने वह मति ज्ञान है और मति ज्ञान से जाने पदार्थ को विशेष स्पष्ट जाने वह श्रुत ज्ञान है, मर्यादा को लेकर रूपी पदार्थ को जाने वह अवधि ज्ञान है।।८।।

दूसरे के मन में स्थित भावों को जो ज्ञान जाने उसे मन: पर्यय ज्ञान कहते हैं। सम्पूर्ण द्रव्यों की समस्त पर्यायों को एक साथ जाने वह केवलज्ञान है।।९।।

अवधि ज्ञान के देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ये तीन भेद होते हैं। देशावधि चारों गतियों में होता है, और परमावधि व सर्वावधि ज्ञान परम दिगम्बर मोक्षगामी मुनि को ही होते हैं। ये दोनों ज्ञान होकर छूटते नहीं हैं। मन: पर्यय ज्ञान भी ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है। यह ज्ञान परमतपस्वी ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनि को ही होता है। ऋजुमति होकर छूट भी जाता है और विपुलमति एक बार होकर छूटता नहीं है अर्थात् केवल ज्ञान तक रहता है। इसलिये चरम शरीरी साधु ही विपुलमति ज्ञानी होते हैं।।१०।।११।।१२।।

मतिश्रुत दोय परोक्ष ज्ञान हैं, अवधि ज्ञान मन पर्यय ज्ञान।
ये हैं एक देश परतक्ष है, केवल सकल प्रत्यक्ष सुज्ञान॥१३॥

दर्शनोपयोग

ज्ञान पूर्व सामान्य ग्रहण जो वह दर्शन उपयोग कहाय।
चक्षु अचक्षु अवधि अरु केवल ये चउ भेद दरश बतलाय॥१४॥

जीव के भेद

जीव दोय विधि कहा जिनागम, मुक्त और संसारी जान।
कर्म नाशि शिव गये मुक्त वे, संसारी भव भ्रमते मान॥१५॥
संसारी के भेद दोय हैं, त्रस थावर यों कहे जिनाय।
द्वइन्द्रिय तें पंचेन्द्रिय तक, जीव कहावे त्रस पर्याय॥१६॥
एकेन्द्रिय थावर तन जानहु, पृथ्वी जल अरु पावक काय।
वायु काय वनस्पति कायिक, यों हैं थावर पञ्च विधाय॥१७॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान हैं, और अवधिज्ञान और मनः पर्यय ये दो ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष हैं, और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष ज्ञान है॥१३॥

दर्शनोपयोग

ज्ञान होने के पूर्व जो पदार्थ का सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। वह दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का है॥१४॥

जीव के भेद

जीव दो तरह के जिनागम में कहे हैं, एक मुक्त और दूसरे संसारी जीव कर्म नाश कर जो मोक्ष चले गये वे मुक्त (सिद्ध) जीव हैं और जो संसार में भ्रमण कर रहे हैं, जन्म मरण के दुःख उठा रहे हैं वे संसारी जीव हैं॥१५॥

संसारी जीव के भी दो भेद हैं एक त्रस जीव दूसरे स्थावर जीव। दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस जीव कहे जाते हैं॥१६॥

एक इन्द्रिय जीव को स्थावर जीव कहते हैं, वे पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक और वनस्पति कायिक के भेद से पांच प्रकार के होते हैं॥१७॥

जीव समास की अपेक्षा जीव के भेद

जीव समास अपेक्षा चौदह भेद जीव के कहे जिनाय।
एकेन्द्रिय द्वय भेद कहावें, बादर और सूक्ष्म कहलाय॥२८॥
पंचेन्द्रिय के भेद दोय हैं, संज्ञी और असंज्ञी जान।
यों चउ भेद हुए जग जिय के, द्वय, त्रय, चउ इन्द्रिय श्रमवान॥२९॥
चउ त्रय मिलि यों सप्त भेद हैं, ये प्रत्येक दोय विधि जान।
पर्याप्तक अरु अपर्याप्त यों जीव समास चतुर्दश मान॥२०॥

इन्द्रिय की अपेक्षा जीव के भेद

हो पहिचान जीवजन जिससे वह इन्द्रिय जिय चिन्ह बताय।
भावेन्द्रिय अरु द्रव्येन्द्रिय द्वै, भेद कहे इन्द्रिय जिनराय॥२१॥
ज्ञानावरणी क्षयोपशम से, अर्थ ग्रहण लब्धि कहलाय।
अर्थ ग्रहण प्रति उद्यम और प्रवर्तन वह उपयोग कहाय॥२२॥

जीव समास की अपेक्षा जीव के १४ भेद

जीव समास की अपेक्षा से जीव के १४ भेद जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं। प्रथम एक इन्द्रिय जीव के दो भेद हैं :– १ बादर, २ सूक्ष्म॥२८॥

पंचेन्द्रिय जीव के भी दो भेद हैं :– एक संज्ञी (सैनी) दूसरा असंज्ञी (असैनी) इस प्रकार चार भेद हुए। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, इस प्रकार ये तीन विकलत्रय मिला कर सात प्रकार के जीव हुए, ये सातों प्रकार के जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर चौदह प्रकार के जीव होते हैं॥१९॥२०॥

इन्द्रिय की अपेक्षा जीव के भेद

जिससे संसारी जीव की पहिचान हो या संसारी जीव के चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं। भावइन्द्रिय और द्रव्यइन्द्रिय इस प्रकार इन्द्रिय के दो भेद होते हैं॥२१॥

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो जीव अर्थ ग्रहण करता है उसे लब्धि कहते हैं। और अर्थ ग्रहण के प्रति जो उद्यम और प्रवर्तन होता है उसे उपयोग कहते हैं॥२२॥

लब्धि और उपयोग भविक जन भावेन्द्रिय है लक्षण जान।
द्रव्येन्द्रिय के भेद दोय हैं निर्वृत्ती उपकरण सुजान॥२३॥
इन दोनों के भेद दोउ हैं बाह्य और अभ्यंतर जान।
चक्षु आदि इन्द्रिय की पुतली, पुद्गल बाह्य निवृत्ति पहिचान॥२४॥
इन्द्रिय के आकार रूप हो रचना आत्म प्रदेश सुजान।
यह है आभ्यन्तर निवृत्ती, यों द्वय विध इन्द्रिय मतिमान॥२५॥
जो इन्द्रिय रक्षक उपकारक वह उपकरण कहावे जान।
कृष्ण शुक्ल मंडल आभ्यंतर, पलक भौंह हैं बाह्य सुजान॥२६॥

इन्द्रिय के ५ भेद

इन्द्रिय के हैं पञ्च भेद यों, यथा जिनागम में बतलाय।
स्पर्शन रसना घ्राण चक्षुअरु, पंचम इन्द्रिय कर्ण कहाय॥२७॥
स्पर्श, स्वाद अरु गंध विलोकन, श्रवण पंच ये विषय महान।
कौन जीव के कौन इन्द्रियां, इसका वर्णन सुनहु सुजान॥२८॥

भावइन्द्रिय लब्धि और उपयोग को कहते हैं। द्रव्येन्द्रिय के भी दो भेद हैं, एक निवृत्ति और दूसरा उपकरण॥२३॥

निवृत्ति और उपकरण इन दोनों के बाह्य और आभ्यन्तर ये दो दो भेद हैं। जैसे चक्षु आदि इन्द्रिय की पुतली रूप पुद्गल बाह्य निवृत्ति है॥२४॥

तथा इन्द्रिय के आकार रूप आत्म प्रदेशों की रचना अभ्यन्तर निवृत्ति है। इस प्रकार निवृत्ति दो तरह की जानना चाहिये॥२५॥

जो इन्द्रिय की रक्षा करे या उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं। जैसे चक्षुइन्द्रिय का काला और सफेद मण्डल अभ्यन्तर उपकरण है तथा पलक और भौंहें बाह्य उपकरण हैं। इस प्रकार उपकरण के भी दो भेद हैं॥२६॥

इन्द्रिय के ५ भेद

इन्द्रियां पांच प्रकार की होती हैं :— १. स्पर्शन, २. रसना, ३. घ्राण, ४. चक्षु, ५. कर्ण॥२७॥

इन पांचों इन्द्रियों के पांच अलग-२ विषय हैं, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय का विषय स्पर्श (छूना), रसना इन्द्रिय का स्वाद लेना, घ्राण इन्द्रिय का गंध लेना, चक्षु इन्द्रिय का देखना और कर्ण इन्द्रिय का सुनना। अब कौन जीवों के कौन-२

पृथ्वी जल पावक अरु वायु, तथा वनस्पति थावर जान।
ये हैं एकेन्द्रिय के प्राणी, केवल स्पर्शन पहली मान॥२९॥
लट अरु जौंक केंचुआ शंखसु, द्वै इन्द्रिय ये जीव कहाय।
चिंवटी चिंवटा खटमल जूं ये त्रय इन्द्रिय इन के बतलाय॥३०॥
मक्खी, मच्छर बर्र ततैया भौंरा ये चउ इन्द्रिय जीव।
पशु पक्षी मानुष सुरनारक, पंचेन्द्रिय के जीव सदीव॥३१॥

पर्याप्ति की अपेक्षा जीव के भेद

दोय भेद हैं जग जीवन के, पर्याप्ति की अपेक्षा जान।
पर्याप्तक अरु अपर्याप्तक, अपर्याप्त के कभी द्वै जान॥३२॥
प्रथम लब्धय पर्याप्तक हैं पुनि, निवृत अपर्याप्तक द्वितीयाय।
इन के लक्षण कहूं इहां पर, अति संक्षेप कथन वरणाय॥३३॥

पर्याप्ति का लक्षण

ग्रहण करी आहार वर्गणा, तन में खल रस रूप बनाय।
परिणमनाने की हो शक्ति, पर्याप्ति वह जिन बतलाय॥३४॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति ये पांच स्थावर जीवों के सिर्फ पहली स्पर्शन इन्द्रिय होती है॥२९॥

लट, जौंक, केंचुआ और शंख इनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां होती हैं, चिंवटी, चिंवटा, खटमल, जूं इन जीवों के पहली से तीसरी ये तीन इन्द्रियां होती हैं॥३०॥

मक्खी, मच्छर, बर्र, ततैया और भौंरा इन जीवों के पहली से चौथी तक चार इन्द्रियां होती हैं। तथा पशु, पक्षी, मनुष्य, देव और नारकी इन के पांचों ही इन्द्रियां होती हैं॥३१॥

पर्याप्ति की अपेक्षा जीव वर्णन

पर्याप्ति की अपेक्षा संसारी जीव के दो भेद होते हैं, एक पर्याप्तक और दूसरा अपर्याप्तक। अपर्याप्तक के भी दो भेद कहे हैं। एक लब्ध्यपर्याप्तक दूसरे निवृत्त्यपर्याप्तक इनका यहां अत्यन्त संक्षेप से वर्णन करता हूं॥३२॥३३॥

पर्याप्ति का लक्षण

जब जीव आहार वर्गणा को ग्रहण कर खल रस रूप परिणमाता है उस परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को जिनेन्द्र भगवान ने पर्याप्ति कहा है॥३४॥

पर्याप्ति के भेद व लक्षण

पर्याप्ति षट् भेद कहे आहार शरीरह इन्द्रिय जान।
श्वासोच्छ्वास तथा भाषा मन, ये षट् पर्याप्ति पहिचान।।३५।।
जिनकी पर्याप्ति पूरण हो, पर्याप्तक वह जीव कहाय।
पर्याप्ति पूरण नहिं जिनके, जीव अपर्याप्तक बतलाय।।३६।।
जिनकी पर्याप्ति पूरण नहिं, किन्तु एक क्षण पूरण होय।
वह निवृत्य पर्याप्तक जानहु, ऐसा आगम वर्णन सोय।।३७।।
जिनकी पर्याप्ति नहिं पूरण, आगे पूरण होय न जान।
पूरण होने पूर्व मरे वह, लब्ध्य पर्याप्तक जीव बखान।।३८।।

पर्याप्ति का गुणस्थान वर्णन

लब्ध्य पर्याप्तक जीव जानहु, प्रथम गुणस्थान में ही जान।
निवृत्य पर्याप्तक पहले, दूजे और चतुर्थ षष्टम मान।।३९।।
पर्याप्तक सब गुणस्थान में प्रथम लेय चौदह तक जान।
यों है पर्याप्ति षट् वर्णन आगे और कहूं मतिमान।।४०।।

पर्याप्ति के भेद

पर्याप्ति छः प्रकार की होती है, १. आहार, २. शरीर, ३. इन्द्रिय, ४. श्वासोच्छ्वास, ५. भाषा, ६. मन। इस प्रकार पर्याप्ति के छः भेद होते हैं।।३५।।

जिनकी पर्याप्ति पूर्ण हो वे पर्याप्तक जीव कहे जाते हैं, और जिनकी पर्याप्ति पूर्ण न हो वे अपर्याप्तक कहे जाते हैं।।३६।।

जिनकी पर्याप्ति अभी पूर्ण नहीं हुई है किन्तु एक क्षण में होने वाली है उसे आगम में निवृत्य पर्याप्तक कहा है, तथा जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है, और आगे भी पूर्ण नहीं होगी अर्थात् पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व ही मरण हो जाय उसे लब्ध्य पर्याप्तक जीव कहते हैं।।३७।।३८।।

पर्याप्ति का गुणस्थान की अपेक्षा वर्णन

लब्ध्य पर्याप्तक जीवों के पहला ही गुणस्थान होता है, तथा निवृत्य पर्याप्तक जीवों के पहला, दूसरा, चौथा और छठवां गुण स्थान होता है।।३९।।

पर्याप्तक जीव पहले से चौदहवें गुणस्थान तक अर्थात् सभी गुणस्थानों में होते हैं। इस प्रकार छः पर्याप्तियों का वर्णन किया अब आगे और जीव तत्व संबंधी विषयों पर वर्णन करूंगा।।४०।।

गुणस्थान अपेक्षा जीव के भेद

गुणस्थान के भेद चतुर्दश, मिथ्यात्वादिक कहे बखान।
उसी अपेक्षा जीव चतुर्दश, भेद कहे आगम परमान॥४१॥

गुणस्थान चौदह का वर्णन, इसी ग्रंथ में आगे जान।
तातैं इहां न वर्णन जानहु, उस प्रसङ्ग में लहहु सुजान॥४२॥

प्राण

जिसके होने पर हो जीवित, नहिं होने पर मरण सुजान।
उसको प्राण कहा वह दशविध, तातैं जीव जगत पहिचान॥४३॥

पंचेन्द्रिय स्पर्शादिक जानहु, मन वच काय तीन बल जान।
श्वासोच्छ्वास आयु ये सब मिलि, दशविध प्राण कहे भगवान॥४४॥

गुणस्थान अपेक्षा जीव के भेद

गुणस्थान चौदह प्रकार के होते हैं, जिनके मिथ्यात्व आदिक नाम कहे हैं। उन गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीव भी चौदह प्रकार के होते हैं॥४१॥

चौदह गुणस्थानों का वर्णन इसी ग्रंथ में आगे करेंगे इसलिये यहां केवल संकेत ही जानियेगा। जब गुणस्थान का प्रसङ्ग आएगा उस समय पाठक उसका वर्णन पढ़कर जानकारी लेवें॥४२॥

प्राण वर्णन

जिसके होने पर संसारी जीव जीवित कहलाए और जिसके नहीं होने पर मरण कहा जाय उसको प्राण कहा जाता है। ये प्राण दश प्रकार के होते हैं इन्हीं से संसारी जीव के जीवन व मरण की पहचान होती है॥४३॥

पांच तो इन्द्रियां, मनबल, वचनबल, कायबल ये तीन बल श्वासोच्छ्वास और आयु ये सब मिलकर प्राण दश प्रकार के होते हैं॥४४॥

इन्द्रिय की अपेक्षा जीवों के प्राण

एकेन्द्रिय के प्राण चार हैं, स्पर्शन इन्द्रिय आयु अरु काय।
स्वासोच्छ्वास चार यों भविजन, प्रथम इन्द्रिय तिय प्राण कहाय॥ ४५॥
दो इन्द्रिय तिन रसना इन्द्रिय, वचन बढ़े छः प्राण सुजान।
सात प्राण त्रय इन्द्रिय तिनके, घ्राणेन्द्रिय बढ़ कर मतिमान॥ ४६॥
चउ इन्द्रिय के आठ प्राण हैं, इन्द्रिय चक्षु बढ़ाकर मान।
पंचेन्द्रिय जो जीव असैनी, मन बिन तिन के नव हैं प्रान॥ ४७॥
सैनी पंचेन्द्रिय के दशही, मन युत प्राण सभी हैं जान।
यों जग जीव प्राण युत जानहु, प्राण रहित हैं सिद्ध महान॥ ४८॥

संज्ञा

जिस निमित से इह भव पर भव, दारुण दुःख लहैं जग जीव॥
उसको संज्ञा जानहु भविजन, वाञ्छा भी कहलाय सदीव॥ ४९॥
संज्ञा भेदचार जिन भाषित, है आहार और भय जान।
मैथुन और परिग्रह यों चउ, तिन के लक्षण कहूं बखान॥ ५०॥

कौन जीवों के कितने प्राण

एक इन्द्रिय जीव के चार प्राण— १. स्पर्शन इन्द्रिय, २. आयु, ३. काय, ४. स्वासोच्छ्वास। दो इन्द्रिय के रसना इन्द्रिय और वचनबल दो बढ़ने से छः प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के एक प्राण इन्द्रिय बढ़ने पर सात प्राण होते हैं॥ ४५॥ ४६॥

चार इन्द्रिय जीवों के चक्षु इन्द्रिय बढ़ जाने से आठ प्राण होते हैं। पंचेन्द्रिय असैनी जीवों के कर्ण इन्द्रिय बढ़ने पर नौ प्राण होते हैं तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के मन को लेकर सभी दशों प्राण होते हैं। इस प्रकार जीवों के प्राण जानने चाहिये। सिद्ध जीवों के उक्त प्राणों में कोई प्राण नहीं होते॥ ४७॥ ४८॥

संज्ञा वर्णन

जिसके निमित्त से संसारी जीव इस भव व परभव में भयानक दुःख सहन करे उसे संज्ञा कहते हैं, उसका दूसरा नाम वाञ्छा भी है॥ ४९॥

जिनेन्द्र भगवान ने संज्ञा चार प्रकार की कही है। १. आहार, २. भय, ३. मैथुन, ४. परिग्रह। आगे इनके लक्षण कहता हूं॥ ५०॥

वेदनीय हो उदय असाता, भूख उदर खाली हो जाय।
होवे जब भोजन की वाञ्छा, वह संज्ञा आहार गिनाय॥ ५१॥
हो डर दिल में किसी निमित्त से, वह भय संज्ञा कही बखान।
काम भोग इच्छा मैथुन है, लोभ ममत्व परिग्रह जान॥ ५२॥

आहार के भेद

छः प्रकार आहार कहाये, तिन का वर्णन करूं सुजान।
कवलाहार प्रथम हो मनुष, अरु तिर्यञ्च जीव के मान॥ ५३॥
लेपाहार अण्ड जीवों के, उष्माहार वृक्ष के जान।
अरु आहार मानसिक कहिये, सुर देवों के यह मतिमान॥ ५४॥
कर्म अहार नरक जीवों के, केवलि जिन नो कर्म अहार।
यो षट् विध आहार बताये, चार तरह का कवलाहार॥ ५५॥
खाद्य, स्वाद्य अरु लेह्य पेय हैं, चउ विध वर्णित यह आहार।
संज्ञा यो आहार सुवर्णित, भ्रमत जीव इससे संसार॥ ५६॥

असाता वेदनीय का उदय हो, भूख लगे या उदर खाली हो जाय तब भोजन की जो इच्छा होती है उसको आहार संज्ञा कहते हैं॥ ५१॥

किसी निमित्त से दिल में डर लग जाय, उसे भय संज्ञा कहते हैं, काम और भोग की इच्छा को मैथुन संज्ञा कहते हैं तथा लोभ और ममता के परिणाम को परिग्रह संज्ञा कहते हैं॥ ५२॥

आहार के भेद

आहार छः प्रकार के होते हैं। १. कवलाहार :— यह मनुष्य और तिर्यञ्चों के होता है। २. लेपाहार :— अण्डों से उत्पन्न जीवों के होता है। ३. उष्माहार :— वृक्षों के होता है। ४. मानसिक आहार :— देवों के होता है। ५. कर्माहार :— यह आहार नारकी जीवों के होता है। ६. नो कर्म आहार :— जिनेन्द्र भगवान के होता है, इस प्रकार छः प्रकार के आहार होते हैं कवलाहार के भी चार भेद होते हैं उन्हें अब कहता हूं॥ ५३॥ ५४॥ ५५॥

१. खाद्य (खाने योग्य), २. स्वाद्य (केवल स्वाद के योग्य), ३. लेह्य (चाटने योग्य), ४. पेय (पीने योग्य)। इस प्रकार संज्ञा का वर्णन हुआ, इसी से संसारी जीव संसार में भ्रमण करता है॥ ५६॥

परिग्रह भय मैथुन अहार ये, प्रथम लेय षष्टम गुण थान।
भय मैथुन संज्ञा अष्टम तक, परिग्रह दशवें तक कही जान॥ ५७॥

मार्गणा वर्णन

जिन भावों से जीवादिक का, अन्वेषण या खोज कराय।
उसे मार्गणा कहते भविजन, चौदह उसके भेद बताय॥ ५८॥

गति इन्द्रिय अरु काय योग हैं, वेद कषाय ज्ञान ये जान।
संयम दर्शन लेश्या जानहु, अरु भव्यत्व मार्गणा मान॥ ५९॥

अरु सम्यक्त्व तथा संज्ञा है, अरु आहार मार्गणा जान।
यों हैं चौदह कही मार्गणा, तिनका वर्णन करूं बयान॥ ६०॥

गति मार्गणा

चारों गति में गमन करन को, गति कहते चउ भेद बखान।
नरक और तिर्यंच मनुषगति, और चतुर्थम देव सुजान॥ ६१॥

गुणस्थान अपेक्षा संज्ञा

परिग्रह, भय, मैथुन और आहार ये चारों संज्ञाएं पहले गुणस्थान से छटवें गुणस्थान तक होती हैं। भय और मैथुन संज्ञाएं पहले से आठवें तक होती हैं और परिग्रह संज्ञा दशवें गुणस्थान तक होती है॥ ५७॥

मार्गणा वर्णन

जिन भावों से जीवादिक का अन्वेषण अर्थात् खोज की जाय उसको मार्गणा कहते हैं, इस मार्गणा के चौदह भेद होते हैं। अर्थात् मार्गणा की अपेक्षा जीव चौदह प्रकार के होते हैं॥ ५८॥

१. गति, २. इन्द्रिय, ३. काय, ४. योग, ५. वेद, ६. कषाय, ७. ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १० लेश्या, ११. भव्य, १२. सम्यक्त्व, १३. संज्ञा, १४. आहार, इस प्रकार मार्गणा १४ होती हैं, उनका संक्षेप से वर्णन करता हूं॥ ५९॥ ६०॥

जीव की पर्याय (अवस्था) विशेष अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं, उसके चार भेद होते हैं। १. नरक गति, २. तिर्यञ्चगति, ३. मनुष्य गति, ४. देवगति॥ ६१॥

अधोलोक में नरक सात हैं नरक गति के जीव रहाय।
पशु गति एकेन्द्रिय तैं लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च कहाय॥ ६२॥
मनुष जनम में नर अरु नारी, तथा नपुंसक नर गति जान।
देवचार विध होय देवगति, इन का वर्णन पूर्व बखान॥ ६३॥
इन्द्रिय का वर्णन पहले ही, जीव तत्व वर्णन में जान।
तातैं इहां न वर्णन करिये, केवल यह संकेत बयान॥ ६४॥

काय मार्गणा

काय अपेक्षा षट् प्रकार के जीव कहाये षट् विधकाय।
स्थावर पंच प्रकार कहाये, छटवा जीव एक त्रस काय॥ ६५॥
एकेन्द्रिय थावर तन जानहु, पृथ्वी, जल पावक पहिचान।
वायु काय वनस्पति कहिये ये पंच थावर जीव सुजान॥ ६६॥
काय वनस्पति भेद दोय हैं, इक प्रत्येक भेद बतलाय।
साधारण दूजा जिन भाषित, दोय भेद आगम वरणाय॥ ६७॥
इक शरीर का एकहि स्वामी वह प्रत्येक वनस्पति काय।
इक शरीर के स्वामि अनंते, जीव धरे साधारण काय॥ ६८॥

अधोलोक में सात नरक हैं, उनमें रहने वाले जीव नारकी कहलाते हैं पशुगति में एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव तिर्यञ्च गति के जीव कहे जाते हैं। मनुष्य गति में, पुरुष, स्त्री, नपुंसक ये मनुष्य गति के जीव हैं। देव चार प्रकार के हैं।, भवन, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक ये देव गति के जीव हैं इनका वर्णन पूर्व में लोक वर्णन में आ गया है। इस प्रकार गति की अपेक्षा संसारी जीव चार प्रकार के होते हैं॥ ६२॥ ६३॥

इन्द्रिय मार्गणा का वर्णन पहले जीव तत्व में इन्द्रिय रूप में आ चुका है इसलिये यहां वर्णन नहीं कर केवल संकेत के रूप में उल्लेख किया है॥ ६४॥

काय की अपेक्षा जीव छः प्रकार के होते हैं, पांच तो स्थावर जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा एक त्रस काय मिलाकर छः काय के जीव कहलाते हैं॥ ६५॥ ६६॥

वनस्पति कायिक जीव दो प्रकार के होते हैं एक प्रत्येक दूसरा साधारण एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं तथा एक शरीर के अनंत जीव स्वामी हो उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं। तथा प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद जानना चाहिये॥ ६७॥ ६८॥

योगमार्गणा

योग काय मन वच किरिया है जिससे कंपत आत्म प्रदेश।
आस्रव तत्व प्रसङ्ग आय जब इनका वर्णन करूं विशेष॥ ७२॥

वेद मार्गणा

द्रव्यवेद अरू भाव वेद से, वेद दोय विधि कहे जिनाय।
वेद उदयतें भाव होय जो भाव वेद वह जिन बतलाय॥ ७३॥
अङ्गोपाङ्ग उदय तैं जानहु, द्रव्य वेद तन रचना जान।
इन वेदों के तीन भेद हैं, पुरुष नपुंसक अरु स्त्री मान॥ ७४॥

एक सप्रतिष्ठित प्रत्येक और दूसरा अप्रतिष्ठित प्रत्येक॥ ६९॥

जिस शरीर में अनेक साधारण (निगोदिया) जीव हों उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं, जैसे आलू, अरबी, मूली, गाजर आदि कन्दमूल इनको अभक्ष अर्थात् नहीं खाने योग्य कहा गया है॥ ७०॥

जिस एक शरीर में एक मुख्य जीव के रहने पर अनेक निगोदिया जीव नहीं रहते उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं जैसे आम, सेव, केला आदि इनको आगम में भक्ष्य (खाने योग्य) कहा है॥ ७१॥

योगमार्गणा

मन, वचन, कायकी क्रिया को योग कहते हैं यही योग आत्म प्रदेशों के कंपन का कारण है इसलिये इसको आस्रव कहा है। इन योगों का वर्णन आस्रव तत्व के प्रसङ्ग में विशेष रूप से किया जाएगा॥ ७२॥

वेदमार्गणा

जिनेन्द्र भगवान ने वेद के दो भेद कहे हैं, एक द्रव्य वेद दूसरा भाव वेद, वेद कर्म के उदय से जो भाव होते हैं उन्हें भाव वेद कहते हैं, और अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म के उदय से जो शरीर की रचना होती है उसे द्रव्य वेद कहते हैं। इन वेदों के फिर तीन भेद होते हैं, १. पुरुष वेद, २. स्त्री वेद, ३. नपुंसक वेद॥ ७३॥ ७४॥

स्त्री रमण के भाव होय तो, पुरुष वेद जानहु मतिमान।
पुरुष रमण के भाव होय जो, उसे कहा स्त्री वेद सुजान॥ ७५॥
नारी पुरुष दोउ से रमने भाव, नपुंसक वेद बखान।
महाजलती ईंट अग्निसम, तीव्र कषाय नपुंसक जान॥ ७६॥
देव और नारक जीवों के भाव द्रव्य दो वेद समान।
मनुष पशु में कहीं विषमता होय कदाचित भी मतिमान॥ ७७॥
एक जीव के एक जनम में भाववेद परिवर्तन होय।
द्रव्य वेद नहिं हो परिवर्तन, इक पर्याय एक ही होय॥ ७८॥

कौन जीवों के कौनसा वेद

देवों में दो वेद कहे जिन, पुरुष वेद स्त्री वेद सुजान।
नारक सम्मूर्च्छन जीवों के वेद नपुंसक एक ही मान॥ ७९॥
शेष मनुष तिर्यञ्च जीव के, तीनों वेद कहे मतिमान।
वेद रहित निर्मल परिणामी, अपगत वेदी जीव महान॥ ८०॥

स्त्री से रमण के भाव हो वह पुरुष वेद है और पुरुष से रमण के भाव हों उसे स्त्री वेद कहते हैं॥ ७५॥

स्त्री और पुरुष दोनों से रमण के भाव हों उसे नपुंसक वेद कहते हैं भट्टे में जलती ईंट के समान तीव्र कषाय नपुंसक वेदी के होती है॥ ७६॥

देव और नारकियों के भाव वेद और द्रव्य वेद दोनों समान होते हैं, मनुष्य और पशुओं में द्रव्य वेद और भाव वेद में कहीं विषमता भी होती है॥ ७७॥

एक भव में एक जीव में भाव वेद तो कभी परिवर्तन भी होता है किन्तु द्रव्य वेद एक पर्याय में एक ही होता है उसमें परिवर्तन नहीं होता॥ ७८॥

कौन जीवों के कौन सा वेद

देवों में पुरुष वेद और स्त्री वेद ये दो वेद होते हैं। नारकी और सम्मूर्च्छन जीवों के नपुंसक वेद ही होता है॥ ७९॥

शेष मनुष्य और तिर्यञ्चों के तीनों वेद होते हैं। वेद रहित जीव निर्मल परिणाम वाले होते हैं उन्हें अपगत वेदी कहते हैं॥ ८०॥

कषाय ज्ञान संयम अरु दर्शन, लेश्या वर्णन इहां न जान।
इनका वर्णन इसी ग्रंथ में, पढ़हु भव्य अन्यत्र सुजान॥ ८१॥

भव्य मार्गणा

भव्य अभव्य जीव हैं द्विविध, इस जग में संसारी जान।
अनंतचतुष्टय सम्यग्दर्शन होय योग्यता भव्य महान॥ ८२॥
जिनके इनकी नहीं योग्यता वे अभव्य नहिं मोक्ष लहाय।
जैसे उड़द माहि कोउ दाना घोटू कबहु वह नहीं पकाय॥ ८३॥
भव्य अभव्यातीत सिद्ध हैं कर्मनाशि पहुंचे शिवधान।
शुद्धचिदातम निर्मल चिन्मय, वे जग मुक्त भये भगवान॥ ८४॥
संज्ञा अरु सम्यक्त्व मार्गणा का वर्णन इस में अन्यत्र।
तातैं नहिं वर्णन इह जानहु, कहूं आहार मार्गणा अत्र॥ ८५॥

कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन और लेश्या मार्गणा का यहां प्रसङ्ग होने पर भी इसी ग्रंथ में दूसरी जगह वर्णन इनका आ गया है अतः यहां वर्णन नहीं कर रहे हैं। यदि यहां वर्णन किया जाय तो पुनरुक्त दोष आ जायगा। पाठक इन विषयों को अन्यत्र इसी ग्रंथ में पढ़ लेवें॥ ८१॥

भव्य मार्गणा वर्णन

संसारी जीव भव्य और अभव्य इस प्रकार दो प्रकार के होते हैं। जिनकी अनन्त चतुष्टय, सम्यग्दर्शन की योग्यता प्राप्त करने की होती है वे भव्य कहलाते हैं॥ ८२॥

जिन जीवों की सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय एवं मोक्ष जाने की योग्यता नहीं होती है वे अभव्य कहलाते हैं। जैसे उड़दों में कोई दाना जिसे घोटू कहते हैं होता है जिसमें पकने की योग्यता नहीं होती है, वह कितनी भी आंच लगने पर भी कभी पकता नहीं है इसी प्रकार अभव्यजीव कभी मोक्ष नहीं जावेंगे॥ ८३॥

भव्य और अभव्यता से अतीत सिद्ध भगवान हैं जो कर्म क्षय कर मोक्ष जा पहुंचे हैं। वे शुद्ध चिदातम चिन्मय संसार से मुक्त परमात्मा बन गये हैं॥ ८४॥

अब आगे संज्ञा, सम्यक्त्व मार्गणा का इसी ग्रंथ में अन्यत्र वर्णन आजाने से इनको यहां छोड़कर आहार मार्गणा का वर्णन करता हूं॥ ८५॥

आहार मार्गणा

शरीर नामानाम कर्म के उदय ग्रहण करे नोकर्म।
उसे आहार मार्गणा कहते, गहे अहारक जीव सकर्म॥ ८६॥
नहीं गहे वह जीव कहावे, अन आहारक जीव सुजान।
आहारक अरु अन आहारक, जग जिय के द्वै भेद प्रमान॥ ८७॥

कौन जीव अनाहारक

विग्रह गति के जीव लोक पूरण अरु प्रतरसु समुद्घात।
करने वाले महा जिनेश्वर श्री अरिहंत केवली ज्ञात॥ ८८॥
तथा सिद्ध प्रभु शिव पुरराजे, ये सब अन आहारक जान।
शेष जीव आहारक जानहु, इसमें रञ्च न संशय मान॥ ८९॥
ये सब वर्णन हुआ मार्गणा समुद्घात को अब वरणाय।
जन्म योनि तन काया वर्णन अरु अकाल मृत्यु वरणाय॥ ९०॥

आहार मार्गणा

शरीर नाम नामकर्म के उदय से जो जीव नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है उसे आहार मार्गणा कहते हैं, उसको जो ग्रहण करे उसे आहारक जीव कहते हैं॥ ८६॥

जो जीव इनको ग्रहण नहीं करता है उसे अनाहारक जीव कहते हैं, इस प्रकार आहारक और अनाहारक जीव के दो भेद हो जाते हैं॥ ८७॥

अनाहारक व आहारक जीव

एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करने जीव जो गमन करता है उसे विग्रह गति कहते हैं, सो विग्रह गति के जीव, लोकपूर्ण व प्रतर समुद्घात करने वाले केवली अरहंत भगवान, तथा सिद्ध प्रभु ये अनाहारक जीव कहलाते हैं तथा शेष जीव आहारक कहलाते हैं इसमें कोई शंका नहीं करे॥ ८८॥ ८९॥

इस प्रकार यहां तक मार्गणाओं का वर्णन हुआ है अब समुद्घात का प्रसङ्ग आ जाने से समुद्घात का वर्णन कर जीवों के जन्म, योनि, काय (शरीर) तथा अकालमरण का आगे वर्णन करूंगा॥ ९०॥

समुद्घातवर्णन

मूल शरीर न तज काया से बाहिर निकले आत्म प्रदेश।
समुद्घात कहते हैं उसको सप्तभेद तिन कहे जिनेश।।९१।।
प्रथम वेदना अरुकषाय है, वैक्रियिक मरणान्तिक जान।
तेजस अरु आहारक केवल, समुद्घात ये सप्त सुजान।।९२।।

जन्म वर्णन

जन्म उसे कहते हैं पाए, जीव जगत नूतन पर्याय।
तीन भेद ताके सम्मूर्च्छन, गर्भ तथा उपपाद कहाय।।९३।।

समुद्घात वर्णन

मूल शरीर को बिना छोड़े आत्मा के प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाले जाय या निकले उसे समुद्घात कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान ने समुद्घात के सात भेद बताये हैं जो निम्न प्रकार हैं।।९१।।

१. वेदना — शरीर में भयंकर वेदना होने पर आत्म प्रदेशों का बाहिर निकलना।
२. कषाय — क्रोधादि तीव्र कषाय होने पर आत्म प्रदेश का बाहर निकलना।
३. वैक्रियिक — वैक्रियिक शरीर या विक्रिया ऋद्धि द्वारा आत्म प्रदेश बाहर निकलना।
४. मारणान्तिक — मरण के अन्त समय में आत्म प्रदेशों का बाहर निकल भावी जन्म स्थान तक जाना।
५. तैजस — षष्ठमगुणस्थानवर्ती मुनिका, तीव्र क्रोध या अतीवदया उत्पन्न होने पर तैजस शरीर के रूप में आत्म प्रदेशों का बाहर निकलना
६. आहारक — किन्हीं ऋद्धिधारी मुनि को कोई शंका होने पर एक हाथ का सफेद रंग का मस्तक से पुतले के रूप में आत्मप्रदेशों का निकलकर केवली तक जाना और अन्तर मुहूर्त में वापस शरीर में प्रवेश होना। शंका दूर हो जाना।
७. केवली समुद्घात — तेरहवें गुणस्थान के अन्त में आयुकर्म की स्थिति से शेष अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक होने पर केवली भगवान का तीसरे शुक्ल ध्यान द्वारा आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण रूप में आत्म प्रदेशों का फैल कर वापस संकुचाकर मूल शरीर में प्रवेश हो जाना लोक पूर्ण समुद्घात के समय आत्म प्रदेश सम्पूर्ण लोक में फैल जाते हैं इस सारी क्रिया में आठ समय का काल होता है।।९२।।

जन्म का वर्णन

कोई जीव पूर्व पर्याय से च्युत होकर नवीन पर्याय को प्राप्त करता है उसे जन्म कहते हैं। जन्म तीन प्रकार के होते हैं। १. सम्मूर्च्छन जन्म, २. गर्भ जन्म, ३. उपपाद जन्म।।९३।।

चारों ओर गहे पुद्‌गल को वह सम्मूर्च्छन जन्म बताय।
मात पिता रज वीरज मिलकर काय बने वह गर्भ कहाय॥ ८४॥
आकस्मिक हो जन्म देव नारक जीवों के वह उपपाद।
यों है जन्म भेद त्रय जानहु, आगम में पढ़ि राखहु याद॥ ९५॥

गर्भ के भेद

गर्भ जन्म के भेद तीन है, प्रथम जरायुज अण्डज जान।
पोत नाम तीजा है बुधजन, यों हैं गर्भ भेद त्रय मान॥९६॥
जिन के तन पै जनम समय में, होय जरा आवरण बताय।
वही जरायुज अरु अण्डों से, उपजे वह अण्डज कहलाय॥९७॥
बिन आवरण जनम हो जिनका, जन्मत दौड़े पोत कहाय।
यों हो गरभ जनम त्रय विधि से इह संक्षेप कथन वरणाय॥९८॥

योनिवर्णन

संसारी जिय जनम थान को, योनि कहते हैं मतिमान।
मूलभेद नव हैं योनी के, उत्तर चौरासी लख जान॥९९॥

जो जीव बिना माता-पिता के इधर उधर चारों ओर से पुद्‌गल को ग्रहण करता है। उसे सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। माता-पिता के रज और वीर्य के मिलने से जो शरीर बनता है उसे गर्भ जन्म कहते हैं॥९४॥

देव और नारकियों का जो आकस्मिक जन्म होता है उसे उपपाद जन्म कहते हैं। इस प्रकार जन्म के तीन भेद शास्त्र में वर्णित हैं। उसे याद रखना चाहिये॥९५॥

गर्भ के भेद

गर्भ जन्म भी तीन प्रकार के होते हैं। १. जरायुज, २. अण्डज और ३. पोत, इस प्रकार गर्भ जन्म के तीन भेद जानना चाहिये॥९६॥

जिन के शरीर पर जन्म के समय जरा अर्थात् जाल के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली लिपटी हो उसे जरायुज कहते हैं। तथा अण्डों से उत्पन्न हो उन्हें अण्डज कहते हैं॥९७॥

जिन के शरीर पर जन्म के समय कोई आवरण नहीं हो और जन्म होते ही चलने फिरने व दौड़ने लग जांय उन्हें पोत कहते हैं॥९८॥

योनियों का वर्णन

संसारी जीव के जन्म के स्थान को योनि कहते हैं। योनि के मूल भेद नौ होते हैं और उत्तर भेद चौरासी लाख होते हैं॥९९॥

सचित शीत संवृत त्रय जानहु, अचित उष्ण विवृत त्रय जान।
त्रय मिश्रित मिलि नव विधि हैं सब, चौरासी लख यों पहिचान॥१००॥

नित्य निगोदक इतर निगोद हि, पृथ्वी अप्अरु तेज कहाय।
वायुकायिक इन जीवों के सप्त सप्त लख योनि बताय॥१०१॥

काय वनस्पति दशलाख जानहु विकलत्रय के द्वै द्वै लाख।
देव नारकी पशु तिर्यञ्चन, चउ चउ लख योनि जिन भाख॥१०२॥

चौदह लख मनुष जीवों के, लख चौरासी इम वरणाय।
भ्रमण करे कर्मन वश प्राणी, काल अनादित कर्म खपाय॥१०३॥

शरीर के भेद

जीव जनम लेवे तब पाए, जो पर्याय शरीर कहाय।
पञ्च भेद आगम में वर्णित, तिन के नाम कहूं बतलाय॥१०४॥

---

१. सचित, २. शीत, ३. संवृत, तीन इससे उलटे, ४. अचित, ५. उष्ण, ६. विवृत– तीन दोनों मिलने पर जैसे ७. सचित्ताचित, ८. शीतोष्ण,९. संवृत विवृत। इस प्रकार योनियां नव प्रकार की होती हैं। कुल योनियां चौरासी लाख होती हैं वे किन जीवों के होती हैं उसका वर्णन निम्न प्रकार है॥१००॥

नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक और वायु कायिक जीवों के प्रत्येक के सात सात लाख योनि होती हैं॥१०१॥

वनस्पतिकाय के दस लाख और विकलत्रय अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीव इन के प्रत्येक के दो दो लाख योनि होती हैं। देव, नारकी और पशुओं के प्रत्येक के चार चार लाख योनि होती हैं॥१०२॥

मनुष्यों के चौदह लाख योनि होती हैं इस प्रकार चौरासी लाख योनियां संसारी जीवों के होती हैं इन्हीं योनियों में अनादिकाल से जीव भ्रमण कर जन्म मरण करता है, जब तक कर्मों का नाश न करे भ्रमता रहेगा॥१०३॥

शरीर और शरीर के भेद वर्णन

संसारी जीव जन्म लेता है उस पर्याय को शरीर कहते हैं। ये शरीर पांच प्रकार के होते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं॥१०४॥

औदारिक वैक्रियिक आहारक, तेजस अरु कार्माण सुजान।
यों शरीर के पञ्च भेद हैं तिनका वर्णन कहूं बयान॥१०५॥
औदारिक नामा कर्मन के, उदयगाय तन जीव सुजान।
स्थूल शरीर कहा औदारिक नर तिर्यञ्च काय मतिमान॥१०६॥
नाम कर्म वैक्रियिक उदयते देव नारकी की पर्याय।
छोटा बड़ा विविध धर शक्ति रूप धरे वैक्रियिक कहाय॥१०७॥
षष्टम गुणस्थान के मुनिको तपबल तैं आहारक जान।
शंका हो तब मुनि मस्तक से एक हस्त निकसै तन मान॥१०८॥
श्वेत रंग निर्मल विशुद्ध तन अव्याघाति श्रेष्ठतम काय।
केवल ज्ञानी तक जा पहुंचे, तत्क्षण शंका दूर पलाय॥१०९॥
तैजस काय सभी जीवों के तेज होय तैजस कहलाय।
कर्म समूह आठ विधपुद्गल, कारमाण तस नाम कहाय॥११०॥

---

१ औदारिक, २. वैक्रियिक, ३. आहारक, ४. तेजस, ५. कार्माण। इस प्रकार आगम में पांच प्रकार के शरीर कहे गये हैं। उनके लक्षण आगे कहता हूं॥१०५॥

औदारिक नामा नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीर प्राप्त होता है उसे औदारिक शरीर कहते हैं वह मनुष्य और तिर्यञ्चों के होता है॥१०६॥

वैक्रियिकनामा नाम कर्म के उदय से देव और नारकियों के जो शरीर होता है, जिसमें छोटा, बड़ा और अनेक प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं॥१०७॥

किन्हीं ऋद्धिधारी मुनि को कोई शंका होने पर उनके मस्तक से एक हाथ का सफेद पुतला निकलता है जो कि अत्यन्त निर्मल, परमशुद्ध, और आधार से रहित श्रेष्ठतम होता है, जहां केवलज्ञानी हो वहीं तक चला जाता है और एक क्षण में वापस आकर मुनि के शरीर में प्रवेश कर जाता है उसी क्षण मुनि की शंका सब दूर हो जाती है उस शरीर को आहारक शरीर कहते हैं कभी कभी तीर्थ यात्रा की इच्छा होने पर भी निकलता है॥१०८॥१०९॥

तैजस काय वह शरीर है जो समस्त संसारी जीवों के किसी न किसी प्रकार की कांति बनाये रखे। ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के समूह रूप पुद्गल को कार्मण शरीर कहते हैं॥११०॥

तैजस और शरीर कहा जिन, शुभ अरु अशुभ दोय विध जान।
घोर तपस्वी मुनि को आए क्रोध जबै अति तीव्र सुजान॥१११॥
वाम कंधते निकसै पुतला, वरण रक्तसिन्दूर समान।
नौ योजन द्वादश योजन तक, चौड़ा लम्बा फैले जान॥११२॥
तत्क्षण भस्म करे जीवों को मुनि भी गिरे भस्म हो जाय।
ऐसा अशुभ कहाते उस तन, मुनि दुर्गति में निश्चय जाय॥११३॥
और कहूं शुभतैजस उत्तम, जीवदया हितकारी मान।
महामुनीश्वर आय ऋद्धिधर, फैले प्लेगमरी बहुजान॥११४॥
करुणा भाव जगे मुनिवर के, दक्षिण कंध निकसि फैलाय।
पुतला श्वेतवरण का सूक्षम नव अरु द्वादश योजन जाय॥११५॥
तत्क्षण रोग मरी मिटजाए आधि व्याधि सब मूलनशाय।
रक्षा हो सब जीव बचें तब ऐसा शुभ तैजस कहलाय॥११६॥

एक और तेजस शरीर होता है जो कि शुभ व अशुभ दोनों प्रकार का होता है। किसी षष्टमगुणस्थानवर्ती तपस्वी मुनि को किसी भी निमित्त से तीव्र क्रोध उत्पन्न हो जाय, जिसे वह सहन न कर सके उस समय उस मुनि के बायें कंधे से सिन्दूर जैसे लाल वर्ण का पुतला निकलता है वह १२ योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा फैल जाता है॥१११॥११२॥

उसी समय उसने स्थान में आये सब जीवों को जलाकर भस्म कर देता है फिर मुनि के शरीर में वापस प्रवेश करता है उस समय मुनि भी भस्म होकर दुर्गति में जाते हैं, ऐसा अशुभ तैजस शरीर होता है॥११३॥

और शुभ तैजस जीवों पर दया और रक्षा करने वाला हितकारी होता है जैसे किसी शहर या स्थान में महामारी प्लेग आदि भयंकर बिमारी फैल रही हो, अनेक मनुष्य महामारी से मृत्यु को प्राप्त हो रहे हों ऐसे समय यदि कोई महान् ऋद्धिधारी तपस्वी मुनि वहां आ जाएं, उनके हृदय में अत्यन्त दया के भाव उत्पन्न हो जांय तब उनके दाहिने कंधे से सफेद रंग का पुतला निकलता है, वह भी बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा फैल जाता है॥११४॥११५॥

उसी समय मरी रोग मूल से ही नष्ट हो जाता है सब आधि व्याधि दूर होकर जीवों की रक्षा हो जाती है, अकाल मृत्यु से सब जीव बच जाते हैं ऐसा शुभ तैजस शरीर होता है॥११६॥

यों जग जीव शरीर पंचविध, कर्म उदय जैसा हो पाय।
कर्म नाश जिनने कर दीना, सिद्ध प्रभु तन रहित कहाय॥११७॥

अकालमरण

आयुकर्मथिति दुर्घटनातें कर्म उदय हो आवे ह्रास।
थिति पूरण तै पूर्व उदीरणा मरण अकाल कहा जिन तास॥११८॥
देवनारकी भोग भूमिया चरमोत्तम देही ये जान।
इनके नहीं अकाल मरण है शेष अकाल मरण भी मान॥११९॥

अकालमरण के कारण

विष भक्षण अहि डसे अगनि में जले, कूप गिरितैं गिर जाय।
वायूयान रेल अरु मोटर, वाहन तैं दुर्घटना थाय॥१२०॥
कर्म उदय रुक जाय हृदय गति, खड्ग प्रहारक शस्त्राघात।
नौका पोत भग्न हो जाए, जलधि सरोवर में डूबात॥१२१॥

इस प्रकार संसारी जीवों के पांच प्रकार के शरीर होते हैं, जैसा कर्म का उदय हो वैसा शरीर प्राप्त होता है। जिनने कर्मों का क्षय कर लिया है वे सिद्ध भगवान अशरीरी कहलाते हैं॥११७॥

अकालमरण

किसी दुर्घटना से अशुभकर्म के उदय से आयुकर्म की स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही कर्म की उदीरणा होकर मृत्यु हो जाय उसे अकाल मरण कहते हैं॥११८॥

देव, नारकी और भोगभूमि के जीव तथा चरम शरीरी अर्थात् उसी भव से मोक्ष जाने वाले मनुष्य इनका अकाल मरण नहीं होता, बाकी के बचे कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का अकाल मरण भी होता है, ऐसा मानना चाहिये॥११९॥

अकालमरण के कारण

विष भक्षण से, सर्प के डसने से, अग्नि में जल जाने से, कूप तालाब आदि में गिरने से, पर्वत से गिरने से, वायुयान, रेल, मोटर आदि से अकस्मात दुर्घटना हो जाने से, कर्म उदय से हृदय की गति रुक जाने से, खड्ग व शस्त्रादिक के आघात से, समुद्र सरोवर आदि में नाव या जहाज के टूट जाने से डूब जाय॥१२०॥१२१॥

इन निमित तैं मरण होय यदि, थिति पूरव वह मरण अकाल।
थिति पूरण हो जाय मरण हो, नहिं अकाल वह मरण सकाल॥१२२॥

विशेष विधान

देव मनुष तिर्यञ्च आयु का, करें जघन्य बंध तब मान।
आगामी भव आयु बंध हो, मरण अकाल न इनका जान॥१२३॥
मरण अकाल न मान जाए, औषधि सेवन विरथा जाय।
दया अहिंसा धर्म सधै नहिं, जिन आगम विपरीत कहाय॥१२४॥
जीव तत्व में संसारी का अब तक वर्णन किया सुजान।
मुक्त जीव का अब मैं वर्णन, करूं सिद्ध जो है भगवान॥१२५॥

मुक्त जीव वर्णन

पूर्ण कर्म क्षय कर परमातम हुए मोक्ष पहुंचे शिव धाम।
जग अरु कर्म बंध से छूटे, मुक्त हुए वे सिद्ध सुनाम॥१२६॥

इन निमित्तों से यदि आयु कर्म की स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही मरण हो जाय तो वह अकाल मरण कहलाता है। जिसकी आयु पूरी होने पर मृत्यु हो वह अकाल मरण नहीं कहलाता है उसे सकाल मरण कहते हैं॥१२२॥

अकाल मरण न होने का विशेष नियम

यदि देव मनुष्य और तिर्यञ्च आयु का जघन्य बंध करें तथा जिन जीवों के आगमी भव का आयु बंध हो गया हो तो इनका अकाल मरण नहीं होगा ऐसा षट्खण्ड आगम ग्रंथ में लिखा है॥१२३॥

अगर अकाल मरण नहीं माना जाए तो ये सब इलाज, चिकित्साएं व्यर्थ हो जाएं एवं दया व अहिंसा धर्म नहीं सधेगा। तथा अकाल मरण नहीं मानना जिनागम के विपरीत होगा॥१२४॥

जीव तत्व में अब तक संसारी जीव का कथन किया अब मैं मुक्त जीव जिन्हें सिद्ध भगवान कहते हैं उनका वर्णन करूंगा॥१२५॥

मुक्त जीव वर्णन प्रारंभ

सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके जो परमात्मा बन गये हैं और मोक्ष स्थान पर जाकर विराजमान हो गये हैं, कर्मों के बंधन से जो सदा के लिये मुक्त हो गये हैं उन्हें मुक्त जीव या सिद्ध जीव कहते हैं॥१२६॥

जनम मरण तैं रहित अवस्था, राग द्वेष नहिं रञ्च कषाय।
नहीं मार्गणा गुणस्थान नहिं जीव समास न लेश्या काय॥१२७॥
नित्य निरञ्जन गुण अनंत के स्वामी चिद् चैतन्य स्वरूप।
अविनाशी अविकार परमपद प्रापचिदातम भये अनूप॥१२८॥
लोक शिखर पर जाय विराजे, काल अनंत रहें तिहँथान।
सुरनर इन्द्र जजैनित तिन को नमन करूं मैं श्री भगवान॥१२९॥
इसी ग्रंथ मे सिद्ध प्रभु का, वर्णन विस्तृत पढ़हु सुजान।
जीव तत्व के भाव रहे अब, तिन संक्षेप कहूं मतिमान॥१३०॥

जीव के भावों का वर्णन

जीव पंचविध भाव कहे जिन, औपशमिक क्षायिक मतिमान।
मिश्र औदयिक पारिणामिक, पंच प्रकार भाव निज जान॥१३१॥

मुक्त जीव अर्थात् सिद्ध भगवान जन्म मरण से रहित राग द्वेष आदि तथा कषाय, मार्गणा, गुणस्थान, जीव समास लेश्या काय आदि से रहित हैं।॥१२७॥

वे भगवान नित्य हैं, निरञ्जन हैं, अनंत गुणों के स्वामी हैं, शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, अविनाशी, विकार रहित परम परमात्म पद को प्राप्त, उपमा रहित चिदात्म स्वरूप हैं।॥१२८॥

लोक के शिखर पर तनुवातवलय तक जाकर विराजमान हो गये अनंत काल तक वे सिद्ध प्रभु वहीं विराजे रहेंगे। देव, मनुष्य, इन्द्र उनको नित्य पूजते हैं उन सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूं।॥१२९॥

इसी ग्रंथ में सिद्ध प्रभु का वर्णन विस्तृत पूर्व मे किया गया है सज्जन पुरुषों ! उसमें पढ़ने की कृपा करें। अब जीव तत्व के भावों का वर्णन रहा है, उनका संक्षेप से वर्णन करता हूं।॥१३०॥

जीव के असाधारण भाव

जीवों के परिणाम को भाव कहते हैं, वे भाव जिनेन्द्र भगवान ने पांच प्रकार के कहे हैं। यथा १. औपशमिक, २. क्षायिक, ३. मिश्र (क्षायोपशमिक), ४. औदयिक और ५. पारिणामिक। ये जीव के निज भाव हैं, जीव को छोड़ कर अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाये जाते अतः ये जीव के असाधारण भाव कहलाते हैं।॥१३१॥

लक्षण

कर्म शक्ति उपशम होने तैं, भाव सु औपशमिक कहलाय।
कर्मक्षयतैं भाव होय वे, क्षायिक भाव कहे बतलाय॥१३२॥

सर्वघाति स्पर्धक क्षय उपशम, देशघाति का उदय सुजान।
मिश्र भाव वे कहे जिनागम, क्षयोपशम भी नाम बखान॥१३३॥

कर्म उदय तैं भाव होय जो, औदयिक वे भाव सुनाम।
कर्मोदय उपशम क्षय नहिं जो, पारिणामिक वे परिणाम॥१३४॥

प्रत्येक भावों के भेद

इनभावों के एक एक के, क्रमश: भेद कहे यों जान।
द्वै नव अष्टादश इकविंशति, अरु त्रय अनुक्रम भेद बखान॥१३५॥

प्रत्येक के लक्षण

कर्मों की शक्ति के उपशम अर्थात् दबने से जो भाव होते हैं उन्हें औपशमिक भाव कहते हैं। कर्मों के समूलक्षय से जो भाव होते हैं उन्हें क्षायिक भाव कहते हैं॥१३२॥

सर्वघातिस्पर्धकों के वर्तमान उदय में आने वाले निषेकों का उदयाभावीक्षय तथा आगामी काल में उदय में आने वाले सर्वघातिस्पर्धकों का सद्वस्थारूप उपशम तथा देशघातिस्पर्धकों का उदय होने पर जो भाव होते हैं उन्हें मिश्र अर्थात् क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। कर्मों के उदय से होने वाले भाव को औदयिक भाव कहते है, और कर्मों के क्षय, उपशम, क्षयोपशम व उदय की अपेक्षा के बिना ही स्वत: जो भाव होते हैं उन्हें पारिणामिक भाव कहते हैं॥१३३॥१३४॥

इन पांच तरह के भावों के यथाक्रम से भेद निम्न प्रकार कहे गये हैं। जैसे—

औपशमिक भाव के दो, क्षायिक के नौ, क्षायोपशमिक के अठारह, औदयिक के इक्कीस तथा पारिणामिक भाव के तीन भेद होते हैं। इनका विशेष वर्णन तत्वार्थसूत्र से ज्ञात करें॥१३५॥

गुणस्थान अपेक्षा भाव

प्रथम गुणस्थान में जानहु, भाव औदयिक हैं मतिमान।
दूजे में हैं पारिणामिक, क्षयोपशम तीजे गुणस्थान।।१३६।।

चौथे गुणस्थान में क्षायिक, औपशमिक औदयिक बखान।
पंचम षष्टम सप्तम में हैं, चरित अपेक्षा मिश्र सुजान।।१३७।।

सप्तम तें ग्यारहवें तक हैं, उपशम श्रेणी उपशम जान।
क्षपक श्रेणि सप्तम, अष्टम, नव, दशम और द्वादशम हि थान।।१३८।।

और त्रयोदश तथा चतुर्दश, गुणस्थान में क्षायिक भाव।
सिद्ध प्रभू के भी क्षायिक हैं अब अजीव वर्णन चित चाव।।१३९।।

अजीव तत्व

जिसमें चेतन प्राण न होवें, ज्ञान नहीं दर्शन नहिं जान।
जानन देखन शक्ति नहीं, वह है तत्व अजीव बखान।।१४०।।

गुणस्थान की अपेक्षा से भावों का वर्णन

गुणस्थानों की अपेक्षा से जीवों के भाव इस प्रकार हैं। जैसे पहले गुणस्थान में जीवों के औदयिक भाव होते हैं। दूसरे गुणस्थान में पारिणामिक भाव होते हैं। तथा तीसरे गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव होते हैं।।१३७।।

चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीनों भाव होते हैं। पांचवें, छटवें, और सातवें गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म की अपेक्षा से क्षायोपशमिक (मिश्र) भाव होते हैं।।१३८।।

सातवें गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणि की अपेक्षा से औपशमिक भाव होते हैं और क्षपक श्रेणि की अपेक्षा सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में क्षायिक भाव होते हैं तथा सिद्ध भगवान के भी क्षायिक भाव होते हैं। मैं अब आगे अजीव तत्व का वर्णन करता हूं।।१३९।।

अथ अजीवतत्व वर्णन

जिसमें चेतन प्राण न हों, जिसमें ज्ञान और दर्शन नहीं हो तथा जिसमें जानने देखने की शक्ति न हो उसको अजीव तत्व कहते हैं।।१४०।।

पञ्च भेद जानहु अजीव के, पुद्गल धर्म अधर्म सुजान।
अरु आकाश काल यौं कहिये, पञ्च अजीव भेद पहिचान॥१४१॥

प्रत्येक के स्वरूप

जिसमें रूप तथा रस गंध पुद्गल, स्पर्श चार गुण होय प्रधान।
वह ही पुद्गल द्रव्य कहावे केवल मूर्तिक यही बखान॥१४२॥

रूप वर्ण को कहा रंग जो, पञ्चभेद ताके पहिचान।
कृष्ण, पीत अरु नील, रक्त यौं, श्वेतवर्ण से पञ्च सुजान॥१४३॥

रस आस्वादन स्वाद कहावे, ताके भेद पञ्च मतिमान।
कटुक, मधुर, अरु तिक्त अम्ल रस, तथा कषैला पंच सुजान॥१४४॥

गंध दोय हैं भेद उसी के, एक सुगंध तथा दुर्गंध।
स्पर्श भेद वसु विधयौं कहिये, लघु, गुरु, रूक्ष स्निग्ध अइवृन्द॥१४५॥

है कठोर अरु नम्र शीत है, तथा उष्ण व सुभेद सुजान।
यौं पुद्गल के मुख्य चार गुण, सब मिलि विंशति भेद बखान॥१४६॥

अजीव के पांच भेद होते हैं। १. पुद्गल, २. धर्म, ३. अधर्म, ४. आकाश, ५. काल इस प्रकार अजीव के पांच भेद जानने चाहिये॥१४१॥

प्रत्येक के लक्षण

जिसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श ये चार मूल रूप से गुण पाये जांय वह पुद्गल द्रव्य कहा जाता है, केवल यही पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है॥१४२॥

रूप को रंग या वर्ण कहते हैं वह पांच प्रकार का होता है, जैसे १. काला, २. पीला, ३. नीला, ४. लाल और ५. सफेद॥१४३॥

रस स्वाद लेने या चखने को कहते हैं वह भी पांच प्रकार का होता है। जैसे १. कडुआ, मीठा, चरपरा, ४. खट्टा और ५. कषैला॥१४४॥

गंध दो प्रकार की होती है। १. सुगंध, २. दुर्गंध। स्पर्श आठ प्रकार का होता है। १. हलका, २. भारी, ३. रूखा, ४. चिकना, तथा ॥१४५॥

५. कड़ा, ६. नरम, ७. ठंडा, ८. गरम, इस प्रकार आठ तरह के स्पर्श होते हैं। पुद्गल के मुख्य गुण चार होते हैं और सब मिला कर बीस गुण पुद्गल के होते हैं॥१४६॥

पुद्गल भेद दोय हैं और सु, परमाणु अरु स्कंध महान।
सबसे लघु परमाणु कहावे, अणु मिल स्कंध कहा पहिचान॥१४७॥

धर्म

जो जिय पुद्गल चलन सहायक उसको धर्म कहा मतिमान।
ज्यों जल मछली गमन सहायक त्यों यह धर्म निमित्त सुजान॥१४८॥

अधर्म

जो जिय पुद्गल बने सहायक, थिरता होय अधर्म कहाय।
ज्यों तरु छाया चलत पथिक को, थिरता में हो जाय सहाय॥१४९॥

आकाश

जो द्रव्यों को स्थान देय वह सबसे बड़ा द्रव्य आकाश।
उसके भेद दोय हैं जानहु, लोकाकाश, अलोकाकाश॥१५०॥

पुद्गल के दो भेद होते हैं अर्थात् पुद्गल दो प्रकार का होता है। १. परमाणु, २. स्कंध। पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके उसको अणु या परमाणु कहते हैं। तथा दो या दो से अधिक संख्यात, असंख्यात व अनंत परमाणुओं को एक रूप मिलने से वह स्कंध कहा जाता है॥१४७॥

धर्म द्रव्य

जो जीव और पुद्गल को चलने में सहायक हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं जैसे मछली को चलने में जल सहायक है। यह धर्म द्रव्य जीव पुद्गल को चलने में उदासीन निमित्त है, प्रेरक नहीं॥१४८॥

अधर्मद्रव्य

जो जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक हो वह अधर्म द्रव्य है जैसे चलते हुए मुसाफिर को वृक्ष की छाया ठहरने में सहायक है॥१४९॥

आकाश द्रव्य

जो द्रव्यों को अवकाश (स्थान) दे उसे आकाश कहते हैं वह सब से बड़ा व अनंत है। आकाश के लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद होते हैं॥१५०॥

षट् द्रव्यों से भरा लोक जो, उसको कहते लोकाकाश।
लोक परे आकाश बाह्य है, उसको कहा अलोकाकाश॥१५१॥

काल

काल द्रव्य जो समय कहावे, भेद दोय निश्चय व्यवहार।
द्रव्यों के वर्तन में जो हो बनें सहायक निश्चय सार॥१५२॥
हो उत्पाद ध्रौव्य व्यय प्रतिपल, वह है लक्षण वर्तन मान।
पल अरु मिनिट घड़ी संवत्सर, मास पक्ष व्यवहार सुजान॥१५३॥

छः द्रव्य

पञ्च अजीव तत्व में मिलि हैं, जीव एक षट् द्रव्य कहाय।
नित्य अनादि न अन्त मानिये, हीनाधिक कबहू नहिं थाय॥१५४॥

द्रव्य का लक्षण

जो सत् हो वह द्रव्य कहावे, सत् का लक्षण कहूँ सुजान।
हो उत्पाद ध्रौव्य व्यय जिसमें, वह सत लक्षण है मतिमान॥१५५॥
जिसमें गुण पर्यायें होवें, वह भी लक्षण द्रव्य कहाय।
उपजें विनशें वे पर्यायें, नित्य ध्रौव्य गुण द्रव्य बताय॥१५६॥

जो छः द्रव्यों से भरा हुआ लोक है उसको लोकाकाश कहते हैं, और लोक से बाहर जो अनंत आकाश है उसे अलोकाकाश कहते हैं॥१५१॥

काल द्रव्य

काल द्रव्य जिसको समय भी कहते हैं यह निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। जो द्रव्यों के वर्तना अर्थात् परिणमाने में सहायक है वह निश्चय काल द्रव्य है। प्रति समय जो द्रव्यों में उत्पाद, व्यय ध्रौव्य होता है उसे ही वर्तना कहते हैं। तथा पल, घड़ी, मिनिट पक्ष महिना, वर्ष ये सब व्यवहार काल कहलाते हैं॥१५२॥१५३

छः द्रव्य वर्णन

उक्त कहे गये पांच तो अजीव और एक जीव द्रव्य मिलकर द्रव्य छः होते हैं, ये छहों द्रव्य नित्य हैं, अनादिनिधन हैं कभी इनकी संख्या कम बढ़ नहीं होगी॥१५४॥

द्रव्य का लक्षण

जो सत् है वही द्रव्य का लक्षण है, जो उत्पन्न हो, नाश हो, और ध्रुव (नित्य) रहे उसको सत् कहते हैं, जिसमें गुण और पर्यायें हो उसको भी द्रव्य कहते हैं। जो उत्पन्न हो और नाश हो वे पर्यायें हैं और जो नित्य ध्रुव रहते हैं वे द्रव्य और गुण कहे जाते हैं॥१५५॥१५६॥

अस्तिकाय

अस्तिकाय कहते हैं उसको बहु प्रदेशी द्रव्य सुजान।
बहु प्रदेश काय का लक्षण, है यह अस्ति अरथ पहिचान॥१५७॥
काल द्रव्य है एक प्रदेशी, तातैं अस्ति काय नहिं जान।
काल छोड़ अवशेष द्रव्य पंच, अस्ति काय इनकी पहिचान॥१५८॥
जीव अजीव तत्व का वर्णन किया अबै आस्रव वरणाय।
जो कर्मन का द्वार कहावे, कारण बंध जीव भटकाय॥१५९॥

आस्रव तत्व

ज्यों नौका या पोत जलधि में, तामें छेद कभी हो जाय।
नाव पोत में जल भर आए, उस का कारण छेद कहाय॥१६०॥
त्यों योगों से जग जीवन के, कर्मन आस्रव होय सुजान।
यह आस्रव भव भ्रमण हेतु है, इसका वर्णन करूं बयान॥१६१॥

अस्तिकाय का लक्षण

जो बहु प्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते हैं, काय का अर्थ बहु प्रदेशी है और अस्ति का अर्थ "है" अर्थात् बहु प्रदेशी जो द्रव्य हैं वे अस्ति काय हैं॥१५७॥

काल द्रव्य एक प्रदेशी है उसको अप्रदेशी भी कहा है इसलिये काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है, काल को छोड़ कर पांचों द्रव्य पञ्चास्तिकाय कहे जाते हैं। इस प्रकार जीव और अजीव तत्व का वर्णन किया अब आगे आस्रव तत्व का वर्णन करेंगे, जो कि कर्मों के आने का द्वार है और बंध का कारण है जिससे संसारी जीव संसार में भटकता है॥१५८॥१५९॥

आस्रव तत्व वर्णन

जिस प्रकार समुद्र में कोई नाव या जहाज हो उसमें यदि छेद हो जाय तो उसमें पानी आना प्रारंभ हो जाता है और पानी आने का कारण वह छेद है, उसी प्रकार नाव या जहाज में छेद की तरह मन, वचन, काय ये योग कर्मों के आने के द्वार या कारण हैं, उसी को आस्रव कहते हैं यह आस्रव संसारी जीवों के संसार भ्रमण का कारण है, इस आस्रव का यहां वर्णन करता हूं॥१६०॥१६१॥

मन वच काय क्रिया को कहिये, योग इसी से आस्रवजान।
आत्म प्रदेश प्रकम्पन कारण तातैं आस्रव यह मतिमान॥१६२॥

चिकना घड़ा वस्त्र गीला हो धूल लगे मैला होजाय।
तप्त लोह ज्यों गहे सलिल त्यों, योग निमित जिय कर्म बंधाय॥१६३॥

योगों के भेद

योग भेद त्रय मूल जानिये, मन वच काय प्रभेद बखान।
मनो योग के चार भेद हैं, सत्य असत्य उभय त्रय जान॥१६४॥

अनुभय योग चतुर्थम कहिये, वचन योग भी चउविध योग।
सत्य असत्य वचन द्वै जानहु, उभय और अनुभय वच योग॥१६५॥

काय योग के सात भेद हैं, औदारिक अरु मिश्र सुजान।
वैक्रियिक अरु मिश्रवैक्रियिक, आहारक अरु मिश्र बखान॥१६६॥

यों षट् योग भये अरु सप्तम, कार्माण यह योग प्रधान।
यों हैं पन्द्रह योग मिलाकर, ये ही आस्रव कारण जान॥१६७॥

मन, वचन और कायकी क्रिया को योग कहते हैं, आत्म प्रदेशों के कंपन का कारण होने से इसको आस्रव कहा है॥१६२॥

जैसे चिकने घड़े पर या गीले वस्त्र पर धूल जल्दी जम कर वह मैला हो जाता है तथा तपाया हुआ लोहा शीघ्र पानी को सोख लेता है उसी प्रकार योग के निमित्त से कर्म आकर जीव को बंधते हैं।॥१६३॥

योगों के भेद वर्णन

योग के मूल तीन भेद होते हैं, १. मनो योग, २. वचन योग, ३. काय योग। मनोयोग के चार भेद होते हैं, सत्यमनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। उसी प्रकार वचन योग भी चार प्रकार के होते हैं सत्य वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, अनुभय वचन योग॥१६४॥१६५॥

काय योग के सात भेद होते हैं, औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काय योग, वैक्रियिक काय योग, वैक्रियिक मिश्र काय योग, आहारक काय योग, आहारक मिश्र काय योग इस प्रकार छः योग हुए और सातवां कार्माण योग है। इस प्रकार कुल मिला कर पन्द्रह प्रकार के योग होते हैं॥१६६॥१६७॥

शुभाशुभ आस्रव

है शुभ योग शुभास्रव कारण, अशुभ योग अशुभास्रव जान।
पुण्यरु निर्मल भाव शुभास्रव, पाप क्लेश अशुभास्रव मान।।१६८।।

आस्रव के और भी भेद

आस्रव के द्वै भेद कहे जिन, सांपराय ईर्या पथ जान।
प्रथम कषाय सहित जीवों के, बिन कषाय के अपर सुजान।।१६९।।

कौन जीवों के कौनसा आस्रव ?

गुणस्थान पहले से दशवें तक जीवों के प्रथम बखान।
ग्यारह तैं तेरहवें तक है, ईर्यापथ आस्रव पहिचान।।१७०।।

शुभ अरु अशुभ देउ आस्रव हैं, जग कारण जिय कर्म बंधाय।
भोगें फल जग भ्रमें निरंतर, आगे बंध तत्व बरणाय।।१७१।।

शुभाशुभ आस्रव के कारण

शुभ योग शुभास्रव का कारण है और अशुभयोग अशुभास्रव का कारण है पुण्यमय निर्मल परिणामों से शुभास्रव होता है और पापमय संक्लेश परिणामों से अशुभास्रव होता है।।१६८।।

आस्रव के और भेद

आस्रव के दो भेद जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं। १. सांपरायिक आस्रव, २. ईर्यापथ आस्रव। कषाय सहित जीवों के सांपरायिक आस्रव होता है और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है।।१६९।।

गुणस्थान अपेक्षा आस्रव

पहले गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक के जीवों के सांपरायिक आस्रव होता है, और ग्यारहवें गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक के जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है।।१७०।।

शुभ और अशुभ ये दोनों आस्रव संसार के कारण हैं संसारी जीवों को कर्म बंध कराके संसार में निरंतर भ्रमण कराते हैं, आगे बंध तत्व का वर्णन करेंगे।।१७१।।

सांपरायिक आस्रव के कारण

पंचेन्द्रिय अरु चउ कषाय हैं, पञ्च अव्रत जो पाप कहाय।
विंशति पञ्च कही हैं किरिया, कारण आस्रव हैं सांपराय॥१७२॥

आस्रव के आधार

आस्रव के आधार दोय हैं, जीव अजीव कहे भगवान।
समरंभादिक इक शतवसु हैं प्रथम जीव अधिकरण बखान॥ १७३॥

निर्वर्तना निक्षेप और संयोग निसर्ग अजीवाधार।
द्वै चउ द्वय त्रय भेद यथाक्रम, सब मिलि एकादश आधार॥ १७४॥

आस्रव में हीनाधिकता

तीव्रमंद अरु ज्ञात अज्ञातसु, अधीकरण अरुवीर्य कहाय।
आस्रव में इनतैं विशेषता, बंध तत्व को अब वरणाय॥ १७५॥

सांपरायिक आस्रव के कारण

पांचइन्द्रिय, चारकषाय, पांचअव्रत जो कि पाप कहे जाते हैं और पच्चीस क्रियाएं ये सांपरायिक आस्रव के कारण हैं॥१७२॥

आस्रव के आधार

आस्रव के जीव और अजीव ये दो आधार (अधिकरण) भगवान जिनेन्द्र ने कहे हैं। समरंभ, समारंभ, आरंभ आदि एक सौ आठ जीवाधिकरण के भेद हैं॥ १७३॥

दो प्रकार की निर्वर्तना, चार प्रकार का निक्षेप, दो प्रकार का संयोग और तीन प्रकार का निसर्ग, इस प्रकार सब मिलाकर ग्यारह अजीवाधिकरण के भेद होते हैं॥ १७४॥

आस्रव में हीनाधिकता

तीव्रभाव, मंदभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य इन कारणों से आस्रव में विशेषता अर्थात् हीनाधिकता होती है। अब बंध तत्व का वर्णन करते हैं॥ १७५॥

बंध तत्व वर्णन

जियकषाय तैं कर्म योग्य जब, पुद्गल द्रव्य गहै संसार।
आत्म प्रदेश करम द्रव मिलि है, बंध तत्व वह है जगकार॥ १७६॥

बंध के भेद

बंध भेद चउ कहे जिनेश्वर, प्रकृति बंध स्थिति बंध सुजान।
अरु अनुभाग प्रदेश बंधये, चार भेद यों हैं मतिमान॥ १७७॥
प्रकृति स्वभाव कहावे ज्यों तरु, नीम स्वभाव कटुक है जान।
त्यों ज्ञानादिक गुण आतम के आवृत करे प्रकृति बंध जान॥ १७८॥
आत्म प्रदेश साथ कर्मन का मेल काल मर्यादा जान।
उसको ही स्थिति बंध कहा है, अरु अनुभाग कहूं मतिमान॥ १७९॥
रस अनुभाग कर्म फलशक्ति हीनाधिक अनुभाग कहाय।
बंध कर्म पुद्गल की संख्या बंध प्रदेश वही कहलाय॥ १८०॥

बंध तत्व वर्णन

जीव जब कषाय के वश से कर्मों के योग्य पुद्गल द्रव्य को ग्रहण करता है तब कर्म और आत्मा के प्रदेश एकमेक मिल जाते हैं उन्हें बंध कहते हैं, वह बंध संसार का कारण है॥ १७६॥

बंध के चार भेद

जिनेन्द्र भगवान ने बंध के चार भेद कहे हैं। १. प्रकृति बंध, २. स्थिति बंध ३. अनुभाग बंध, ४. प्रदेश बंध॥ १७७॥

प्रकृति स्वभाव को कहते हैं, जिस प्रकार नीम का स्वभाव कड़वा होता है, इक्षु का स्वभाव मीठा होता है उसी प्रकार आत्मा के ज्ञानादिक गुणों को जो कर्म ढंकते हैं ऐसे स्वाभाव बंध को प्रकृति बंध कहते हैं॥ १७८॥

आत्मा के प्रदेशों के साथ कर्मों का सम्बंध होता है उसके समय की मर्यादा को स्थिति बंध कहते हैं अब अनुभाग बंध को कहता हूं॥ १७९॥

कर्मों के बंध होने पर उसके रस अर्थात् फल देने की हीनाधिक शक्ति को अनुभाग बंध कहते हैं और कर्म जो बंधते हैं उनके पुद्गल द्रव्य की संख्या को प्रदेश बंध कहते हैं॥ १८०॥

कर्मों का निरंतर बंध

आयुकर्मतजि शेष कर्म सब बंधे निरंतर सातों आन।
आयुकर्म इक भव में बंधे इक से आठ बार तक मान॥ १८१॥

कौन बंध किससे

प्रकृति प्रदेश योग तैं बंधे, अरु कषायतैं थिति अनुभाग।
यों है कर्म बंध की महिमा, कारण बंध सुनहु चित लाग॥ १८२॥

बंध के कारण

बंध हेतु हैं मिथ्या दर्शन, अविरति तथा प्रमाद कषाय।
योग बंध के कारण जानहु, कर्म बंध जिय भ्रमण कराय॥ १८३॥

गुणस्थान अपेक्षा बंध के कारण

मिथ्या दर्शन गुणस्थान पहले ही में बंध सुजान।
अविरति चौथे तक ही जानौं, अरु प्रमाद षष्टम तक आन॥ १८४॥
अरु कषाय दशवें तक कारण, आगे और न रही कषाय।
तेरहवें तक है योग बंध का, कारण आगे नहीं बंधाय॥ १८५॥

कर्मों का निरंतर बंध

आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का निरंतर बंध होता है, आयु कर्म का एक भव में कम से कम एक बार और अधिक से अधिक आठ बार तक बंध होता है॥ १८१॥

प्रकृति और प्रदेश बंध योग से बंधते हैं और स्थिति तथा अनुभाग बंध कषाय से होते हैं। इस प्रकार कर्म बंध का महत्व है अब बंध के कारण कहता हूं सो मन लगाकर सुनिये॥ १८२॥

बंध के कारण

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के कारण हैं, इन कारणों से कर्म बंधते हैं और कर्म बंध से ही यह संसारी जीव संसार भ्रमण करता है॥ १८३॥

गुणस्थान अपेक्षा बंध के कारण

मिथ्यात्व का बंध पहले गुणस्थान में ही होता है। अविरति पहले से चौथे गुणस्थान तक बंध का कारण है और प्रमाद छटवें गुणस्थान तक बंधता है। कषाय दशवें गुणस्थान तक बंधती है। उसके आगे कषाय का अभाव होता है, तेरहवें गुणस्थान तक योग ही बंध का कारण होता है उससे आगे बंध के कारणों का अभाव होता है, अतः चौदहवें गुणस्थान में बंध नहीं है॥१८४॥१८५॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण

तीर्थंकर प्रकृति का बंध है प्रारंभ कर्म भूमि नर जान।
श्रुतकेवली केवली जिनेश्वर पद मूल सानिध्य प्रधान॥ १८६॥
तीर्थंकर प्रकृति बंध प्राणी तीजे भव निश्चय शिव पाय।
सम्यग्दृष्टि मनुज पशु हो देवायु का बंध कराय॥ १८७॥
देवनारकी सम्यग्दृष्टि मनुज आयुका बंध करेय।
मिथ्यादृष्टि पशु अरु मानुष, चारों आयु कर्म बंधेय॥ १८८॥
सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि प्राणी, आयु बिन सब कर्म बंधाय।
सम्यग्दृष्टि नरक और तिर्यञ्च आयु नहिं बंध कराय॥ १८९॥
और परस्पर होय विरोधी प्रकृति एक संग नहीं बंधाय।
कर्म भूमि के नरपशु आयुष आगामी का बंध कराय॥ १९०॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध के विशेष कारण

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ कर्म भूमि के मनुष्य को ही केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही होता है॥ १८६॥

जिस जीव ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया है वह तीसरे भव में नियम से मोक्ष जाता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च देवायु का ही बंध करते हैं और सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मनुष्य आयु का ही बंध करते हैं॥ १८७॥

मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य चारों आयु कर्मों का बंध करते हैं सम्यग्मिथ्यादृष्टि आयु कर्म को छोड़कर सब कर्मों का बंध करते हैं॥ १८८॥

चारों गति के सम्यग्दृष्टि जीव नरकायु और तिर्यञ्चायु का बंध नहीं करते हैं॥ १८९॥

तथा परस्पर विरोधी स्वभाव वाली प्रकृतियां एक साथ एक समय में नहीं बंधती है। कर्म भूमि के मनुष्य और तिर्यञ्च आगामी आयु का बंध करते हैं उसका नियम इस प्रकार है॥ १९०॥

भुज्यमान आयू के जब हों तीन भाग दो भाग गमाय।
अंत समय द्वै भाग अनंतर आयू कर्म शीघ्र बंधाय॥ १९१॥

यदि आयु नहिं बंधे उसी क्षण, शेष आयु के हों त्रय भाग।
हों द्वैभाग तबै बंध आयुष, यों अठ बार होय त्रय भाग॥ १९२॥

भोग भूमि नर पशु सुर नारक आयु शेष छः मास रहाय।
तब त्रिभाग द्वै भाग अनंतर आयू भावी बंध कराय॥ १९३॥

बंध तत्व का इहां समापन, आगे कर्म विषय जब आय।
तिहां बंध का औरहु वर्णन करूं इहां संवर वरणाय॥ १९४॥

जो वर्तमान में आयु भोग रहे हैं उसे भुज्यमान आयु कहते हैं और जो आगामी बंधने वाला आयुकर्म है उसे बध्यमान आयु कहते हैं। भुज्यमान आयु के जितने समय हो उसके तीन भाग करिये, दो भाग समाप्त होने पर पहली बार आगामी आयु कर्म के बंधने का समय आता है, यदि उस समय एक मुहूर्त में आयु नहीं बंधे तो शेष समय के पुनः तीन भाग करने पर दो भाग समाप्त होने पर दूसरी बार भावी आयु बंध का समय आता है, इसी प्रकार आठ बार शेष बची आयु के समय के तीन तीन भाग करने पर दो दो भाग व्यतीत होने पर आयु कर्म बंधने का समय आता है। अगर आठों बार में एक भी बार आयु नहीं बंधी तो मरण के पूर्व अंतिम समय में अवश्य आयु कर्म बंधेगा, बिना आगामी आयु बंधे मरण नहीं होता॥ १९१॥ १९२॥

भोग भूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों की तथा देव और नारकियों की आगामी आयु उनकी भुज्यमान आयु के छः मास शेष रहने पर ही बची आयु के समय के त्रिभाग होते हैं और दो भाग व्यतीत होने पर आगामी आयु बंधती है उससे पूर्व नहीं बंधती है। उस छः मास में भी अधिक से अधिक आठ बार अवसर आते हैं। और यदि आठों अवसरों पर आयु न बंधे तो मरण से पूर्व तो इनकी भी आयु अवश्य बंधती है, बिना बंधे मृत्यु नहीं होती। अब तक बंध तत्व का वर्णन पूर्ण हुआ। बंध का विशेष वर्णन आगे कर्म के अध्याय में करेंगे यहां पर संवर का वर्णन करते हैं॥ १९३॥ १९४॥

संवर तत्व

संवर का लक्षण और साधन

आते कर्म रुके आस्रव का, हो निरोध संवर कहलाय।
जैसे नाविक नाव छेद को, बंद करे पानी रुक जाय॥ १९५॥
तीन गुप्ति अरु समिति पांच है दशविध धर्म कहा भगवान।
अनुप्रेक्षा द्वादश परिषह जय, बाईस पंच चरित्र सुजान॥ १९६॥
ये हैं संवर कारण जानहु, इन तैं आवत कर्म रुकाय।
संवर तत्व मोक्ष का कारण, गहे साधु निश्चय शिव जाय॥ १९७॥

गुप्ति व समिति

निग्रह मन वचकाय गुप्ति है, ये त्रय भेद गुप्ति के जान।
यत्नाचार क्रिया को जानहु, समिति पंच विध शिव मगमान॥ १९८॥
ईर्या, भाषा और एषणा, पुनि चौथी क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना समिति पांचवी, सकल व्रतीमुनि पालें जान॥ १९९॥

संवर तत्व

संवर का लक्षण और साधन

आते हुए कर्मों का रुकना या उनका निरोध होना संवर कहलाता है। जैसे कोई नाविक नाव के छेद को बंद कर दे तो नाव में पानी का आना बंद हो जाता है॥ १९५॥

तीन गुप्ति, पांच समिति, दशधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परिषह जय, पांच चारित्र ये सब संवर के साधन हैं, इन से आते कर्म रुकते हैं, यह संवर तत्व मोक्ष का कारण है, जो साधु इसको ग्रहण करते हैं वे निश्चय से मोक्ष को जाते हैं॥ १९६॥

गुप्ति व समिति

मन, वचन और काय का निग्रह अर्थात् रोकना, या वश में करना गुप्ति कहलाता है। मनोगुप्ति (मन को वश करना), वचन गुप्ति (वचन को वश करना), काय गुप्ति (शरीर को वश करना) ये तीन गुप्तियां हैं॥ १९७॥

यत्नाचार से क्रियाएं करना समिति है, समिति पांच प्रकार की हैं। ये मोक्ष का कारण हैं। १. ईर्या समिति (चार हाथ जमीन देखकर चलना) २. भाषा समिति (हितमित प्रिय सत्य वचन बोलना), ३. एषणा समिति (निर्दोष आहार लेना), ४. आदान निक्षेपण (कोई वस्तु देखकर उठाना व रखना) ५. प्रतिष्ठापना या उत्सर्ग समिति (जीव रहित स्थान में मल मूत्र आदि क्षेपण करना) इस प्रकार ये पांच समिति महाव्रती साधु इनका पालन करते हैं॥ १९८॥ १९९॥

दशधर्म

जो जग जियको दुःख छुड़ाकर, उत्तम सुख धारण करवाय।
उसको धर्म कहा जिनवरने जो है संवर तत्व उपाय॥ २००॥
क्षमा, मारदव, आर्जव सत्यरु, शौच सुसंयम तप अरुत्याग।
आकिञ्चन अरु ब्रह्मचर्य दश लक्षण धर्म गहें बड़ भाग॥ २०१॥
चार कषाय दमन अनृत तज, इन्द्रिय मन वश संयम होय।
कष्ट सहे तप त्याग दान है, ममता तजि आकिञ्चन होय॥ २०२॥
मन विकार तजि ब्रह्मचर्य हो, यों दशविध से धर्म बताय।
अनुप्रेक्षा द्वादश विध भावन, पुनि पुनि चिंतन कर्म नशाय।।२०३॥
प्रथम अनित्य और अशरण हैं, अरु संसार तथा एकत्व।
अरु अन्यत्व, अशुचि आस्रव हैं, संवर तथा निर्जरा तत्व॥ २०४॥
लोक बोधि दुर्लभ अरु धर्म सुद्वादश भावन यों बतलाय।
इनका विस्तृत इसी ग्रंथ में वर्णन आगे किया बताय॥ २०५॥

जो संसारी जीव को दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख (मोक्ष) को प्राप्त कराए या धारण कराए उसे धर्म कहते हैं। यह धर्म संवर का साधन है॥ २००॥

१. क्षमा, २. मार्दव, ३. आर्जव, ४. सत्य, ५. शौच, ६. संयम, ७. तप, ८. त्याग ९. आकिञ्चन, १०. ब्रह्मचर्य, ये दश लक्षण धर्म हैं इन्हें भाग्यवान धारण करते हैं॥ २०१॥

चार कषाय के त्याग से या दमन से चार धर्म अर्थात् क्रोध के दमन से उत्तम क्षमा, मान के दमन से मार्दव, माया के दमन से, आर्जव, लोभ कषाय के दमन से उत्तम शौच, झूठ के त्याग से सत्यधर्म, इन्द्रिय और मन को वश करने से संयम, कष्ट सहन से तप, दान देने से त्याग, ममत्व त्याग से आकिञ्चन्य, मन के विकार को छोड़ने से ब्रह्मचर्य धर्म पालन होते हैं, इस प्रकार दश विध या दश लक्षण धर्म कहे गये हैं।

बारह प्रकार की अनुप्रेक्षा, अर्थात् भावना होती हैं जो कि बार बार चिन्तन की जाती हैं। उससे कर्मों का संवर और निर्जरा होती है॥ १९३॥ १९४॥

बारह भावना के नाम : १. अनित्य, २. अशरण ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधि दुर्लभ, १२. धर्म हैं इस प्रकार ये बारह भावनाएं होती हैं। इनका विस्तृत वर्णन आगे के प्रकरण में करेंगे॥ २०२॥ २०३॥ २०४॥ २०५॥

परीषह जय

कर्म उदय उपसर्ग आपतन, व्याधि भयंकर कष्ट लहाय।
सहन करे सब कष्ट शांति से, वह परिषह जय जिन बतलाय॥ २०६॥

ये बाईस परीषह जानहु, क्षुधा पिपासा शीत महान्।
उष्ण डांस मच्छर काटे तन, नाग्न्य अरति स्त्री परिषह जान॥ २०७॥

चर्या और निषद्या शय्या, वध आक्रोश याचना मान।
तथा अलाभ रोग तृण स्पर्श, मल सत्कार पुरस्कार जान॥ २०८॥

प्रज्ञा अरु अज्ञान अदर्शन, यों परिषह बाईस बखान।
शांत भाव से जो मुनि सहते, संवर गहि शिव लहैं महान॥ २०९॥

चारित्र वर्णन

जो कर्मों की आस्रव कारण त्यागे किरिया वह चारित्र।
अशुभ निवृत्ति शुभसु प्रवृत्ति, वह ही है व्यवहार चारित्र॥ २१०॥

परीषह जय वर्णन

कर्मों के उदय से कोई उपसर्ग आ जाय या भारी व्याधि एवं कष्ट उपस्थित हो जाय तो उस कष्ट को शांति से सहन करना परीषह जय कहलाता है॥ २०६॥

ये परीषह बाईस होते हैं। १. भूख, २. प्यास, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. डांस मच्छर का काटना, ६. नग्नता, ७. अरति, ८. स्त्री, ९. चर्या, १०. निषद्या, ११. शैय्या, १२. वध, १३. आक्रोश, १४. याचना, १५. अलाभ, १६. रोग, १७. तृण स्पर्श, १८. मल, १९. सत्कार पुरस्कार, २०. प्रज्ञा, २१. अज्ञान २२. अदर्शन। इस प्रकार ये बाईस परीषह कहलाते हैं। जो मुनि इन परीषहों को शांत भाव से सहन करते हैं वे महान् साधु संवर को प्राप्त कर मोक्ष को जाते हैं॥ २०७॥ २०८॥ २०९॥

चारित्र वर्णन

कर्मों के आस्रव की कारण भूत क्रियाओं का त्याग करना चारित्र कहलाता है तथा, अशुभ क्रियाओं से निवृत्त होकर शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति करना व्यवहार चारित्र है॥ २१०॥

जो आतम में लीन चिदातम, वह निश्चय चारित्र कहाय।
यह चारित्र कर्मक्षय कारण पञ्चभेद उसके बतलाय॥ २११॥
सामायिक छेदोपस्थापन, हो विशुद्ध परिहार सुजान।
सूक्षम साम्पराय अरु पंचम, यथाख्यात चारित्र महान॥ २१२॥
इनका वर्णन आगे देखहु, रत्नत्रय अध्याय सुजान।
ये सब संवर के कारण हैं, करूं निर्जरा वर्णन आन॥ २१३॥

निर्जरा

कर्मों का हो एक देश क्षय, वह निर्जरा सुतत्व कहाय।
सम्यग्दृष्टि सकल संयमी पालक मुनि वे मोक्ष लहाय॥ २१४॥
दोय भेद निर्जरा तत्व के, प्रथम निर्जरा है सविपाक।
दूजी कर्मक्षय का कारण, उसका नाम कहा अविपाक॥ २१५॥
थिति कर्मन की पूर्ण होय तब, भर्रं कर्म सविपाक सुजान।
तिथि पूरण तैं पूर्व कर्म क्षय, तप तैं वह अविपाक महान॥ २१६॥

आत्मा को आत्मा में ही लीन करना अर्थात् आत्म स्वरूप में तन्मय लीन हो जाना निश्चय चारित्र है। यह चारित्र कर्मक्षय का कारण है उसके पांच भेद होते हैं॥ २११॥

पहला सामायिक, दूसरा छेदोपस्थापन, तीसरा परिहार विशुद्धि, चौथा सूक्ष्म सांपराय, पांचवां यथाख्यात इस प्रकार चारित्र पांच प्रकार के होते हैं इनका विस्तृत वर्णन आगे जब रत्नत्रय का वर्णन आयेगा तब उसमें पढ़ने का कष्ट करें। ऊपर बताये सब संवर अर्थात् आते हुए कर्मों को रोकने के कारण हैं। अब आगे निर्जरा तत्व का वर्णन करूंगा॥ २१२॥ २१३॥

निर्जरा वर्णन

कर्मों के एक देश क्षय को निर्जरा कहते हैं इसको धारण करने वाले सकल संयमी महामुनिराज मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥ २१४॥

निर्जरा दो प्रकार की होती है, एक सविपाक निर्जरा, दूसरी अविपाक निर्जरा है जो कि कर्मों के क्षय का कारण है॥ २१५॥

कर्मों की स्थिति पूर्ण होने पर जो निर्जरा होती है उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं और स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही ध्यान व तपश्चर्या से कर्मों की उदीरणा होकर निर्जरा होती है वह अविपाक निर्जरा कहलाती है॥ २१६॥

थिति पूरण कर्म क्षय होवे, वह निर्जरा नहीं जिनकार।
कर्म स्थिति पूरब कर्मक्षय वह निर्जरा मोक्ष का द्वार॥ २१७॥
तप अरु ध्यान करम क्षय कारण, तप के बारह भेद बखान।
हैं षट् बाह्य और अभ्यन्तर भी षट् भेद कहे भगवान॥ २१८॥
अनशन ऊनोदर अरु कहिये, व्रतपरिसंख्या रस परित्याग।
विविक्त शयन आसन है पंचम काय क्लेश षट् बाह्य सुभाग॥ २१९॥
प्रायश्चित अरु विनय तथा हैं, वैयावृत्य और स्वाध्याय।
अरु व्युत्सर्ग ध्यान तप ये षट् अन्तरंग तप कहे जिनाय॥ २२०॥

कर्म निर्जरा का गुण—श्रेणिक्रम

असंख्यात गुणि करे निर्जरा जिस क्रम से आगम वरणाय।
इहां प्रसङ्ग तैं उस क्रम का मैं, वर्णन करूं भविक हितदाय॥ २२१॥

स्थिति पूर्ण होने पर होने वाली निर्जरा मोक्ष देने वाली नहीं है किन्तु कर्मों की स्थिति पूर्ण होने के पहले जो निर्जरा होती है वही निर्जरा मोक्ष का द्वार है॥ २१७॥

तप और ध्यान जो कि मोक्ष के साधन हैं उस तप के छः बाह्य और छः आभ्यन्तर अर्थात् अन्तरङ्ग इस प्रकार बारह भेद होते हैं॥ २१८॥

१. अनशन (उपवास करना), २. ऊनोदर (भूख से कम भोजन करना), ३. व्रतपरिसंख्यान (आहार के लिये निकले तब कुछ नियम लेकर निकलना), ४. रस परित्याग (छः रसों में कोई रस या छहों रसों का त्याग कर भोजन लेना), ५. विविक्त शय्यासन, (सोने में यत्नाचार पूर्वक जीव रक्षा का विवेक रखना), ६. काय क्लेश (स्वतः शरीर को कष्ट पहुंचाना, या आये हुए कष्ट को शांति से सहन करना) इस प्रकार ये छः बाह्य तप हैं॥ २१९॥

७. प्रायश्चित्त (लगे हुए दोषों को दूर करने का उपाय करना), ८. विनय (प्रत्येक क्रिया में विनय अर्थात् नम्रता करना), ९. वैयावृत्य (संघ में साधुओं की सेवा करना), १०. स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना, सुनना, चिन्तन करना) ११. व्युत्सर्ग (परिग्रह का त्याग), १२. ध्यान (मन को एकाग्र कर धर्म ध्यान में लीन होना), इस प्रकार छः अन्तरंगतप होते हैं। छः बाह्य और छः अंतरंग तप कुल मिलाकर बारह प्रकार के तप होते हैं॥ २२०॥

मोक्षगामी जीव किस क्रम से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं उसका क्रम जैसा आगम में वर्णित है, मैं यहां निर्जरा तत्त्व के प्रसङ्ग में वर्णन करता हूं जो भव्य जीवों के लिये उपकारी है॥ २२१॥

सम्यग्दृष्टि करे निर्जरा तिन तैं श्रावक व्रती महान।
असंख्यात गुणि करे निर्जरा, तिन तैं विरत मुनी प्रतिमान॥ २२२॥

तिन तैं अनंतानुसंयोजक, तिन तैं क्षायिक दर्शन मोह।
चारित मोह उपशमक तिन्हीं तैं, असंख्यात गुणि उपशम मोह॥ २२३॥

तिन तैं चारित मोह क्षपक है, तिन तैं क्षीण मोह बड़ जान।
क्षीण मोह तैं असंख्यात गुणि करे केवली जिन भगवान॥ २२४॥

अंतिम गुणस्थान के जिनवर, सर्व कर्म को मूल नशाय।
तत्क्षण पहुंचे मोक्ष धाम में, मोक्ष तत्व को अब वरणाय॥ २२५॥

मोक्ष तत्व वर्णन

सर्व कर्म से रहित अवस्था वही मोक्ष वह ही शिव जान।
सिद्ध शुद्ध परमातम प्रभु वे, अविनाशी पद प्राप्त महान॥ २२६॥

करण लब्धि के अनिवृत्ति करण के जीव जितनी कर्मों की निर्जरा करते हैं उससे असंख्यात गुणी निर्जरा सम्यग्दृष्टि करते हैं, सम्यग्दृष्टि से असंख्यात गुणी देशव्रती श्रावक, उनसे असंख्यात गुणी निर्जरा प्रमत्त विरत मुनि करते हैं। उनसे अनंतानुबंधी वियोगज, उनसे दर्शन मोहनीय को क्षय करने वाले, तथा उनसे चारित्र मोहनीय को उपशम करने वाले मुनि तथा उनसे उपशान्त मोह नाम के ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं। उनसे क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले मुनि असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं। उनसे क्षीण मोह नाम के बारहवें गुणस्थान वाले असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा करते हैं। क्षीण मोह वालों से तेरहवें गुणस्थान वाले सयोग केवली जिनेन्द्र भगवान असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं॥ २२२॥ २२३॥ २२४॥

अन्तिम चौदहवें गुणस्थान के अयोग केवली अरहंत भगवान पांचह्रस्व अक्षर के उच्चारण समय मात्र में सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर उसी समय मोक्ष को चले जाते हैं। अत: अब मोक्ष तत्व का वर्णन करते हैं॥ २२५॥

मोक्ष का स्वरूप

सम्पूर्ण कर्मों से रहित जो आत्मा की अवस्था है उसी को मोक्ष कहते हैं वह आत्मा सिद्ध, शुद्ध, परमात्मा, प्रभु कभी नाश नहीं होने वाले पदको प्राप्त हुए ईश्वर भगवान आदि नाम से कहे जाते हैं॥ २२६॥

हो अभाव जब बंध हेतु का, बंधे कर्म झर जांय तमाम।
कर्म समस्त नशीं जड़ से तब, यह चेतन पहुंचे शिव धाम॥ २२७॥
पूर्व प्रयोग कुम्हार चक्रसम, कर्म रहित हो गमन करेय।
जल तुम्बी से हटे मृत्तिका, त्यों असंग हो ऊर्ध्व चलेय॥ २२८॥
एरण्ड बीज टूट ज्यों ऊपर, बंध छेद ऊरध गति जाय।
अग्नि शिखा दीपक की लौ सम, ऊर्ध्व दिशा ही गमन कराय॥ २२९॥
ज्यों फल टूट वृक्ष तैं भूपर, गिरे नहीं वह पुनः लगाय।
त्यों आतम से कर्म नाश हों पुनः कभी भी नहीं बंधाय॥ २३०॥
कर्म रहित हो निर्मल आतम शुद्ध स्वर्ण मणि स्फटिक समान।
द्रव्य कर्म नौ कर्म भाव त्रय कर्म विनाशि भये भगवान॥ २३१॥

जब आत्मा से कर्म बंध के कारणों का अभाव हो गया और बंधे हुए कर्मों की पूर्णतः निर्जरा हो गई, तब समस्त कर्म आत्मा से दूर हो गये, जड़ से उनका क्षय हो गया तब आत्मा मोक्ष में तत्काल जा पहुंचती है॥ २२७॥

कर्मों का क्षय होने पर कुम्हार के चक्र के समान अपूर्व गमन करने का प्रयोग होने से कर्मों से रहित होने पर भी आत्मा गमन करता है। तथा मिट्टी से लगी जल में डूबी हुई तुम्बी जब मिट्टी से अलग हो जाती है तो जल के ऊपर आकर स्थित हो जाती है उसी प्रकार कर्म का सम्बंध छूटते ही आत्मा लोक के ऊपर जाकर स्थित हो जाती है॥ २२८॥

तथा जिस प्रकार एरण्ड का बीज एरण्ड का डोरा फटते ही ऊपर को उछलता है उसी प्रकार गति आदि कर्मों के बंध टूटने से मुक्त जीव ऊर्ध्व गति करता है एवं अग्नि की शिखा और दीपक की लौ ऊपर को ही स्वभाव से उठती है उसी प्रकार कर्मों से रहित होते ही मुक्त जीव की आत्मा ऊर्ध्व गमन का स्वभाव होने से सीधी ऊर्ध्व गमन ही करती है॥ २२९॥

जिस प्रकार वृक्ष से टूटकर फल पृथ्वी पर गिरता है तो पुनः वह वृक्ष पर नहीं लगता है उसी तरह आत्मा से क्षय होने वाले कर्म पुनः उस आत्मा को वे कर्म नहीं बंधते हैं॥ २३०॥

जब आत्मा कर्मों से सर्वथा रहित हो जाती है तब वह शुद्ध स्वर्ण और स्फटिकमणि के समान शुद्ध व निर्मल हो जाती है। यही आत्मा द्रव्य कर्म, नौकर्म, और भाव कर्म से रहित होकर भगवान या परमात्मा बन जाती है॥ २३१॥

जनम मरण तैं रहित अवस्था, गुण अनन्त प्रगटे नहिं पार।
लोक शिखर पर पहुंचे वे प्रभु सिद्ध भये होकर भव पार॥ २३२॥
प्रथम मोह का क्षय होने पर शेष घातिया कर्म नशाय।
तब हो केवलज्ञान तबै सब, लोक अलोक प्रतच्छ लखाय॥ २३३॥
तदनंतर जिन एक हि क्षण में शेष अघाति समस्त नशाय।
ऋजुगति से वे एक समय में उर्ध्व गमन कर शिव पद पाय॥ २३४॥
जो नर उत्तम कुल पा करके धारें संयम सकल महान।
वह तप ध्यान अग्नि तैं दुष्कर ईन्धन कर्म दहै मतिमान॥ २३५॥
अष्टम भूपर मध्य विराजित, सिद्ध शिला ऊपर शिवथान।
मोक्ष धाम है सिद्धक्षेत्र वह, लोक शिखर अंतिम तनुवात॥ २३६॥
जिनने कर्मों का क्षय कीना, वह ही भये सिद्ध भगवान।
वे ही पहुंचे मोक्ष धाम में काल अनंत रहें तिहिं थान॥ २३७॥

वे सिद्ध भगवान जन्म मरण से रहित, अनन्त गुणों के स्वामी होकर संसार समुद्र से पार होकर लोक के शिखर पर जा पहुंचते हैं॥ २३२॥

सर्व प्रथम भगवान ने मोहनीय कर्म का क्षय किया जो कि समस्त कर्मों का सेनापति था। उसके बाद बारहवें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय इन तीन घातिया कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया और सब लोक व अलोक को प्रत्यक्ष देखा और जाना॥ २३३॥

उसके बाद एक ही क्षण में बचे हुए समस्त अघातिया कर्मों को क्षय कर भगवान ऋजु गति से एक ही समय में ऊर्ध्वगमन कर मोक्ष जा पहुंचते हैं॥ २३४॥

हे बुद्धिमानो ! जो मनुष्य उत्तम कुल में जन्म लेकर सकल संयम धारण करते हैं वे ही महा मुनिराज तप और ध्यान रूपी अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को भस्मकर मोक्ष प्राप्त करते हैं॥ २३५॥

आठवीं पृथ्वी जिसका नाम ईषत्प्रभा है, उसके बीच में सिद्ध शिला है उस सिद्धशिला के ऊपर मोक्ष है। वही शिव स्थान है, वही सिद्ध क्षेत्र है, लोक शिखर के अंत में तनुवातवलय तक वह मोक्ष धाम है॥ २३६॥

जिनने कर्मों का क्षय किया है वही सिद्ध भगवान मोक्ष में जाते हैं और अनंतकाल तक वहां रहेंगे। कभी संसार में लौटकर नहीं आएंगे॥ २३७॥

सप्त तत्व में पुण्य पाप मिलि नव पदार्थ कहलाएं जान।
अब मैं करता तत्व कथन का वर्णन इहां समापन मान॥ २३८॥
तत्व विवेचन में कर्मों का प्रकरण आया है कित बार।
तातैं अब मैं कर्म विषय पर वर्णन करूं भविक हितकार॥ २३९॥

इति सप्ततत्व वर्णनम्

इति पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्य तिलक ग्रंथे सप्त तत्व वर्णोनाम अष्टमोऽध्यायः॥

सात तत्वों में पुण्य और पाप मिलाने पर नव पदार्थ कहे जाते हैं। अब मैं तत्वों का वर्णन यहां समाप्त करता हूं। आगे इस तत्व वर्णन में कर्मों का अनेक बार प्रसङ्ग आने से कर्म विषय पर कुछ भव्य जीवों को उपकार करने वाला वर्णन करूंगा॥ २३८॥ २३९॥

तत्वों का वर्णन समाप्त हुआ।

इस प्रकार पं. महेन्द्रकुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ में सप्त तत्व वर्णन करने वाला आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

अथनवमोऽध्यायः

कर्म सिद्धान्त

सिद्ध प्रभु का सुमिरन करके, कर्म स्वरूप कहूं मतिमान।
जिसको समझे बिना जीव जग कर्म बंध छूटें नहिं जान॥ १॥

कर्म का लक्षण

आतम के ज्ञानादि गुणों को घाते आवृत करे स्वभाव।
उसको कहते कर्म जिनागम, जिससे आतम करे विभाव॥ २॥
काल अनादि कर्म आतम का, है सम्बन्ध सनातन जान।
स्वयं अकृत्रिम ना कोउ कर्ता, हर्ता नहीं जगत पहिचान॥ ३॥
जड़ है कर्म चिदातम चेतन तदपि बंध हो जिय भरमाय।
भांग मद्य पीकर मानव ज्यों, होय बावला सब बिसराय॥ ४॥

कर्म सिद्धान्त वर्णन

सिद्ध भगवान को स्मरण व नमन कर अब मैं कर्म का स्वरूप कहता हूं, जिस कर्म को समझे बिना संसारी जीव कर्म के बंध से छुटकारा नहीं पा सकता है॥ १॥

कर्म का लक्षण

जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों को घाते या आवृत करे अथवा जो आत्मा के स्वभाव को प्रगट न होने दे उसे आगम में आचार्यों ने कर्म कहा है। इसी कर्म के ही निमित्त से आत्मा स्वभाव को छोड़कर विभाव परिणति करता है॥ २॥

अनादिकाल से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बंध चला आ रहा है, इस सृष्टि का न कोई कर्त्ता है और न कोई हर्त्ता या विनाश करने वाला है, यह स्वयं अकृत्रिम और अनादि है॥ ३॥

कर्म जड़ हैं आत्मा चैतन्यमयी ज्ञान दर्शन वाला द्रव्य है तब भी संसारी आत्मा वैभाविक परिणति से कर्मों से बंधता है और भ्रमित होता है। जैसे शराब या भंग पीकर कोई मनुष्य पागल हो जाता है और सब कुछ भूल जाता है उसी प्रकार कर्म के उदय से संसारी प्राणी अपने को भूल कर विभाव में बहता है॥ ४॥

जीवन मरण बली अरु निर्बल, यश अपयश सब विधि बल जान।
उच्च नीच कुल धनी निर्धनी, कर्म उदय कारण पहिचान॥ ५॥
पुद्गल द्रव्य वर्गणा तेईस, इन तैं लोक भरा संसार।
तिनमें होय शक्ति कर्मन की, वह कार्माण वर्गणा सार॥ ६॥
मन वच काय क्रिया योगन तैं आत्म प्रदेश यदा कंपाय।
तब कार्माण वर्गणा आकर आतम मिलें तब बंध कहाय॥ ७॥
हो कषाय अरु राग द्वेष तब फल देने की शक्ति जगाय।
पुण्य पाप फल देय शुभाशुभ परिणति कर्म उदय बन जाय॥ ८॥
तीव्र मंद जिसकी कषाय हो, कर्म स्थिति तद्रूप बनेय।
पूर्व कर्म के उदय नये हों, भाव शुभाशुभ कर्म बंधेय॥ ९॥

जीना, मरना, बलवान, कमजोर, यश (कीर्ति) अपयश (अपकीर्ति) उच्च कुल, नीचकुल प्राप्त करना, धनवान होना, गरीब होना ये सब कर्म के उदय से ही होते हैं॥ ५॥

इस समस्त लोक में तेईस प्रकार की पुद्गल वर्गणाएं भरी हुई हैं। (पुद्गल परमाणुओं के समूह को वर्ग कहते हैं और वर्ग के समूह को वर्गणा कहते हैं) उन वर्गणाओं में समय आने पर जो कर्म रूप परिणमन करने की शक्ति रखती है उसे कार्माण वर्गणा कहते हैं ॥ ६॥

मन वचन, और काय की क्रिया को योग कहते हैं उससे आत्म प्रदेशों में कंपन होता है तब कार्माण वर्गणाएं आत्मा की तरफ लोह चुम्बक की तरह आती हैं उसे आस्रव कहते हैं और वे वर्गणाएं आत्म प्रदेशों से मिलकर एकक्षेत्रावगाही हो जाती हैं उसे बंध कहते हैं॥ ७॥

कषाय और राग द्वेष परिणति से उसमें फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है तब जीव को पुण्य व पाप का फल भोगना पड़ता है। उस समय फिर शुभ अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं उससे पुनः नये कर्मों का आस्रव बंध होता है॥ ८॥

संसारी जीव की कषाय तीव्र या मंद जैसी हो उसके अनुसार बंधने वाले कर्म अपनी तीव्र और मंद स्थिति बना लेते हैं। पूर्व कर्म के उदय से नवीन शुभ अशुभ भाव होते हैं उन भावों से पुनः नवीन कर्म बंधते हैं॥ ९॥

बंधे कर्म भी समय आय तब, उदय देय फल विष को जान।
इसी तरह जग जीव धर्में नित कर्म जनित फल भोगें मान॥ १०॥

कर्म के भेद

कर्म भेद द्वय कहे जिनागम, द्रव्य भाव के भेद सुजान।
पुद्गल द्रव्य हि द्रव्य कहावे, फल शक्ति ये भाव कहाय॥ ११॥

अरु क्रोधादि कषायज परिणति, भाव कर्म ये भी कहलाय।
कर्म भेद सामान्य रूप से स्वाभाविक वसु विध बतलाय॥ १२॥

ज्ञानावरण प्रथम है दूजा, कर्म दर्शनावरण सुजान।
वेदनीय अरु मोहनीय है, आयुनाम अरु गोत्र महान॥ १३॥

अंतराय अंतिम अष्टम है, यों वसु कर्म प्रकृति बतलाय।
चार घातिया चार अघाती, आठ कर्म दोय विधाय॥ १४॥

बंधने वाले कर्म फिर समय आने पर शुभाशुभ फल देते हैं, इसी तरह संसारी जीव अनादिकाल से कर्म बंध करता है, उसका फल भोगता है और संसार में भ्रमण करता है॥ १०॥

कर्म के भेद

कर्मों के मूल भेद दो हैं। एक द्रव्य कर्म दूसरा भाव कर्म। जो पुद्गल द्रव्य कर्मरूप है उसे द्रव्य कर्म कहते हैं। और जो फल देने की शक्ति है उसे भाव कर्म कहते हैं॥ ११॥

क्रोध आदि कषाय से जो भाव होते हैं उनको भी भाव कर्म कहते हैं। कर्म के सामान्य रूप से कर्म की प्रकृति अनुसार आठ भेद होते हैं अर्थात् कर्मों की मूल प्रकृतियां आठ प्रकार की होती हैं। कर्म आठ प्रकार के होते हैं ऐसा भी कहा जाता है॥ १२॥

१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ अंतराय इस प्रकार कर्म आठ प्रकार के होते हैं। इनमें चार घातियां कर्म होते हैं और चार अघातिया कर्म कहे जाते हैं ऐसे दो भेद हो जाते हैं॥ १३॥ ॥ १४॥

घाति अघाति का लक्षण

जो ज्ञानादिक अनुजीवी गुण, घाते कर्म घातिया मान।
जो अनुजीवी गुण ना घाते वह अघातिया कर्म सुजान॥ १५॥
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, मोहनीय अरु है अंतराय॥
ये चउ घाति कर्म भवि जानहु, प्रबल कर्म जग जिय भरमाय॥ १६॥
आयु नाम अरु वेदनीय ये गोत्र अघाति कर्म चउ मान।
आत्म स्वरूप न जाने जिय जब तब तक कर्म वशी जग जान॥ १७॥

कौन कर्म आत्मा के किन गुणों को घातते हैं

ज्ञानावरणी कर्म निजातम ज्ञान गुणों को घाते जान।
दर्शन गुण को घात करे जो, दर्शनावरणी करम महान॥ १८॥
सुख दुःख वेदन वेदनीय है जगजिय वेदन वह करवाय।
आत्म स्वरूप भुलाए जगजिय, मोहनीय वह कर्म बताय॥ १९॥

घातिया, अघातिया का लक्षण

जो आत्मा के ज्ञानादिक अनुजीवी गुणों का घात करे उन्हें घातिया कर्म कहते हैं और जो आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात न करे उन्हें अघातिया कर्म कहते हैं॥ १५॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अंतराय ये चार घातिया कर्म हैं ये घातिया कर्म बड़े प्रबल होते हैं ये ही संसारी जीव को संसार में भ्रमण कराते हैं॥ १६॥

आयु, नाम, वेदनीय और गोत्र ये चार अघातिया कर्म हैं। जब तक इस जीव को आत्मा का अनुभव नहीं होता तब तक संसारी सब जीव कर्मों के वशीभूत होते हैं॥ १७॥

कर्मों के कार्य

ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का घात करता है, दर्शनावरणीय कर्म दर्शन गुण को आवृत करता है॥ १८॥

वेदनीय कर्म आत्मा को सांसारिक सुख और दुःख का वेदन कराता है। मोहनीय कर्म आत्मा के स्वरूप को भुला देता है॥ १९॥

आयु कर्म वह रोक रखे जो, जीव हि चउगति की पर्याय।
नाना विध तन रचनाकारी नाम कर्म काया निर्माय॥ २०॥
ऊंच नीच कुल जन्म कराए, वह है गोत्र करम थवि जान।
विघ्न उपस्थित करे कार्य में अंतराय वह कर्म महान॥ २१॥

आठों कर्मों के उदाहरण

ज्ञानावरणी देव मूर्ति पर पड़दा हो त्यों ज्ञान ढकाय।
दर्शनावरणी राजद्वार प्रहरी सम दर्शन गुणरो काय॥ २२॥
शहद लपेटी असिवत् वेदक, वेदनीय सुख दुःख वेदाय।
मद्य करे बेसुध ज्यों प्राणी, मोहनीय निज भाव भुलाय॥ २३॥
काठ पग रोके ज्यों मानव, आयु कर्म रोके जिय काय।
चित्रकार वत् नाम कर्म है, नाना तन पर्याय रचाय॥ २४॥
कुंभकारवत् ऊंच नीच कुल उपजाए वह गोत्र कहाय।
भण्डारी ज्यों विघ्न करावे अन्तराय वह कर्म बताय॥ २५॥

आयुकर्म चारों गतियों में से किसी न किसी एक गति में आत्मा को रोके रखता है। नाम कर्म अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है॥ २०॥

गोत्रकर्म ऊंच और नीच कुल में उत्पन्न कराता है। और अंतराय कर्म प्रत्येक कार्य में विघ्न उपस्थित कर देता है॥ २१॥

आठों कर्मों के उदाहरण

जैसे देवमूर्ति पर पड़दा पड़ा हो वैसे ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान गुण को ढकता है, दर्शनावरणीय कर्म—जिस प्रकार राजा का प्रहरी राजा के दर्शन नहीं होने देता वैसे ही यह दर्शन गुण को प्रगट नहीं होने देता॥ २२॥

वेदनीय कर्म शहद लपेटी तलवार की धार की तरह सुख और दुःख देता है। और मोहनीय कर्म शराब पीने वाले की तरह अपने स्वभाव को भुला देता है॥ २३॥

जैसे काठ के खोड़े में पांव फंसा मनुष्य एक स्थान पर रुका रहता है वैसे आयु कर्म भी आत्मा को शरीर में रोके रखता है। जिस प्रकार चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र रचता है उसी प्रकार नाम कर्म अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है॥ २४॥

कुम्हार जिस प्रकार छोटे बड़े बर्तन बनाता है उसी प्रकार गोत्र कर्म भी ऊंचे (लोकमान्य) कुल में व नीचे (लोक निन्द्य) कुल में जीव को उत्पन्न कराता है। तथा जिस प्रकार भण्डारी किसी के दान व लाभ में विघ्न उपस्थित करता है वैसे अन्तराय कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग, एवं वीर्य में विघ्न उपस्थित कर देता है॥ २५॥

कर्म के सामान्य भेद

कर्मों के यों भेद मूल से आठ तरह आगम बतलाय।
उत्तर भेद एक शत अड़तालीस कहे जिनवर वरणाय॥ २६॥

कर्मों के मूल भेद

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, वेदनीय अरु है मोहनीय।
आयु नाम गोत्र अरु अंतिम, अंतराय क्रम वसु वरणीय॥ २७॥

कर्मों के उत्तर भेद

ज्ञानावरणी पंच भेद हैं, मति श्रुत ज्ञानावरण सुजान।
अवधि और मनःपर्यय केवल, ज्ञानावरण पंच ये मान॥ २८॥
दर्शनावरण भेद नव जानहु चक्षु और अचक्षु सुजान।
अवधि अरु केवलदर्शनावृत, ये चउ आवरण मति मान॥ २९॥
निद्रा अरु निद्रा निद्रा ये, प्रचला अरु प्रचला–प्रचलान।
स्त्यानगृद्धि यों नवविध जानहु दर्शनावरणी कर्म सुजान॥ ३०॥

इस प्रकार कर्मों के मूल भेद आठ हैं और उत्तर भेद एक सौ अड़तलीस होते हैं॥ २६॥

कर्मों के मूलभेद

कर्मों के आठ भेद निम्न प्रकार हैं। १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र, ८. अंतराय॥ २७॥

उत्तर भेद

मति ज्ञान के पांच भेद निम्न प्रकार होते हैं। १. मति ज्ञानावरण, २. श्रुत ज्ञानावरण ३. अवधि ज्ञानावरण, ४. मनःपर्याय ज्ञानावरण ५. केवल ज्ञानावरण– ये पांच प्रकार के ज्ञान को आवृत करने वाले ज्ञानावरण कर्म हैं॥ २८॥

दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेद होते हैं, १. चक्षुदर्शन, २. अचक्षुदर्शन, ३. अवधिदर्शन, केवल दर्शन से चार चार तरह के दर्शन को आवृत करने वाले (ढकने वाले) चार तरह के दर्शनावरणीय हैं इनको चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण अवधि दर्शनावरण और केवल दर्शनावरण ये चार तथा॥ २९॥

निद्रा, निद्रा–निद्रा, प्रचला, प्रचला–प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पांच प्रकार की निद्रा अर्थात् नींद इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेद होते हैं॥ ३०॥

वेदनीय द्वय भेद कहे हैं, साता और असाता जान।
मोहनीय के मूल भेद द्वय दर्शन चारित मोह महान॥ ३१॥
दर्शन मोहनीय है त्रय विध, बंध अपेक्षा एक हि भेद।
और अपेक्षा उदय सत्व के, जिन आगम में है त्रय भेद॥ ३२॥
मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्वरु, सम्यक् प्रकृति भेद त्रय आय।
चरित मोह के दोय भेद हैं, प्रथम कषाय और नो कषाय॥ ३३॥
षोडश भेद कषाय वेदनीय, अनंतानुबंधी चउ जान।
और अप्रत्याख्यान चार हैं, प्रत्याख्यान भेद चउ मान॥ ३४॥
तथा संज्वलन क्रोध मान अरु, माया लोभ कषाय जु चार।
इन चारों के चउ चउ मिलिकर, षोडश भेद कषाय विचार॥ ३५॥
नो कषाय ईषद् कषाय हैं, तिनके नव हैं भेद बताय।
हास्य रति अरु अरति शोक भय, तथा जुगुप्सा वेद प्रसाय॥ ३६॥
पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसक वेद कही यों नव अकषाय।
यों त्रय और पच्चीस भेद मिलि, मोह प्रकृति अठवीस कहाय॥ ३७॥

वेदनीय कर्म के दो भेद होते हैं, एक साता वेदनीय जो सुख का अनुभव या वेदन कराए दूसरा असाता वेदनीय जो दुःख का वेदन कराए। अब मोहनीय कर्म के अठाईस भेद होते हैं उनको क्रमशः यहां बताते हैं। मोहनीय कर्म के मूल दो भेद होते है एक दर्शन मोहनीय, दूसरा चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के तीन भेद होते हैं, किन्तु बंधकी अपेक्षा एक ही भेद होता है वह है मिथ्यात्व। उदय और सत्व की अपेक्षा आगम में तीन भेद कहे गये हैं वे हैं १. मिथ्यात्व, २. सम्यक् मिथ्यात्व, ३. सम्यक्प्रकृति। चारित्र मोहनीय के दो भेद होते हैं। १. कषाय वेदनीय २. अकषाय वेदनीय॥ ३१॥ ३२॥ ३३॥

कषाय वेदनीय के सोलह भेद हैं, प्रथम अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार, तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया और लोभ ये चार एवं प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया, लोभ ये चार, तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार इस प्रकार कषाय वेदनीय के चार चार मिलकर सोलह भेद होते हैं॥ ३४॥ ३५॥

अकषाय वेदनीय जो कि ईषद् अर्थात् छोटी कषाय कही जाती है उसके नौ भेद होते हैं। १. हास्य, २. रति, ३. अरति, ४. शोक, ५. भय, ६. जुगुप्सा, ७. स्त्री वेद, ८. पुरुष वेद, ९. नपुंसक वेद ये नौ अकषाय होती हैं। इस प्रकार तीन प्रकृतियां दर्शन मोहनीय की और नौ कषाय और सोलह कषाय मिलाकर पच्चीस प्रकृतियां चारित्र मोहनीय की कुल अठाईस प्रकृतियां मोहनीय कर्म की होती हैं॥ ३६॥ ३७॥

आयुकर्म चउ भेद कहे हैं, नरक, देव, पशु, मानुष जान।
नाम कर्म ब्यालीस भेद हैं मूल तिरानव उत्तर मान।। ३८।।
चार गति अरु पंच जाति हैं पंच शरीर त्रय अङ्गोपाङ्ग।
इक निर्माण पंच बंधन हैं अरु संघात पंचविध भाग।। ३९।।
अरु संस्थान भेद षट संहनन, स्पर्श आठ रस पंच सुजान।
गंध दोय अरु वर्ण पंच विध, आनुपूर्वी चार विधान।। ४०।।
अगरुलघु उपघात और परघात तथा आतप मतिमान।
अरु उद्योत तथा उच्छ्‌वास सु विहायोगति द्वै पहिचान।। ४१।।
हैं प्रत्येक शरीर साधारण, थावर त्रस अरु दुर्भग जान।
सुभग और दुःस्वर सुस्वर अरु, अशुभ शुभ, बादर पहिचान।। ४२।।
सूक्ष्म और अपर्याप्त पर्याप्तक, अस्थिर स्थिर आदेय सुजान।
अनादेय अयशस्कीर्ति अरु, यशस्कीर्ति तीर्थंकर मान।। ४३।।
यों बैयालिस भेद मिलाकर योग तिरानव भेद सुजान।
नाम कर्म की प्रकृति जानिये व्याख्या मोक्ष शास्त्र जान।। ४४।।
गोत्र कर्म के भेद दोय हैं, उच्च गोत्र अरु नीच सुजान।
दान लाभ उपभोग भोग अरु वीर्य पंच अंतराय विधान।। ४५।।

आयु कर्म के चार भेद हैं, १. नरकायु, २. देवायु, ३. तिर्यञ्चायु, ४. मनुष्यायु। नाम कर्म की मूल प्रकृतियां या भेद ४२ हैं और उत्तर भेद ९३ होते हैं। जो कि निम्न प्रकार हैं।। ३८।।

४ गति, ५ जाति, ५ शरीर, ३ अङ्गोपाङ्ग, १ निर्माण, ५ बंधन, ५ संघात, ६ संस्थान, छः संहनन, ८ स्पर्श, ५ रस, २ गंध, ५ वर्ण, ४ आनुपूर्वी १ अगरुलघु, १ उपघात, १ परघात, १ आतप, १ उद्योत, १३ उच्छ्‌वास, २ विहायोगति तथा।। ३९।। ४०।। ४१।।

१ प्रत्येक, १ साधारण, ५ स्थावर, ४ त्रस, १ दुर्भग, १ सुभग, १ दुःस्वर १ सुस्वर, १ अशुभ, १ शुभ, १ बादर, १ सूक्ष्म, १ अपर्याप्त, १ पर्याप्त, १ अस्थिर, १ स्थिर, १ आदेय, १ अनादेय, १ अयशस्कीर्ति, १ यशस्कीर्ति, १ तीर्थंकर। इस प्रकार नाम कर्म की बैयालिस प्रकृतियां और कुल मिलाकर तिरानवे प्रकृतियां होती हैं। इस नाम कर्म की प्रकृतियों की व्याख्या मोक्ष शास्त्र से जानियेगा। स्थानाभाव से यहां नहीं की है।। ४२।। ४३।। ४४।।

गोत्रकर्म के दो भेद हैं, एक ऊंचगोत्र दूसरा नीच गोत्र और अंतराय कर्म के पांच भेद होते हैं। १ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय।। ४५।।

यौं कर्मन की इकशत अड़तालीस प्रकृतियां भेद बताय।
इन कर्मन वश जीव भ्रमें नित कर्म नशे ही शिवपुर जाय॥ ४६॥

बंध के भेद

बंध भेद चउ कहे पूर्व में, प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश।
योग जनित हैं प्रकृति प्रदेशा, स्थिति अनुभाग कषायज शेष॥ ४७॥

कर्म प्रकृतियों के चार विभाग

जिनका फल जीव में होवे, जीव विपाकी प्रकृति सुजान।
पुद्गल में ही जिनका फल हो, वह विपाकि पुद्गल पहिचान॥ ४८॥
जिनका फल नरकादि भवों में भव विपाकी प्रकृति वह जान।
जिनका फल विग्रह गति में हो, क्षेत्र विपाकी वे पहिचान॥ ४९॥
जीव विपाकी प्रकृति अठत्तर, पुद्गल बासठ कही विपाकि।
भव अरु क्षेत्र विपाकी ये दोउ, चार चार श्री जिनवर भाखि॥ ५०॥

इस प्रकार कर्मों की एक सौ अड़तालीस प्रकृतियां या भेद होते हैं, इन्हीं कर्मों के वश होकर संसारी जीव संसार में भ्रमण करते हैं। जो कर्मों को क्षय करते हैं वे ही आत्मा मोक्ष जाते हैं॥ ४६॥

बंध के भेद

बंध चार प्रकार का होता है, १ प्रकृतिबंध, २ स्थिति बंध, ३ अनुभाग बंध, ४ प्रदेश बंध। इनमें प्रकृति बंध और प्रदेश बंध तो योगों से होते हैं और स्थिति बंध और अनुभाग बंध कषाय से होते हैं॥ ४७॥

कर्म प्रकृतियों के चार विभाग

नाम आदि कर्म की प्रकृतियां चार विभाग में विभक्त हैं। १ जीव विपाकी, २ पुद्गल विपाकी, ३ भव विपाकी, ४ क्षेत्र विपाकी। जिन का फल जीव में हो वह जीव विपाकी प्रकृति है। जिन का फल पुद्गल में हो वह पुद्गल विपाकी प्रकृति है। जिनका फल नरकादि भवों में हो वह भव विपाकी प्रकृति है। जिनका फल विग्रह गति में हो वह क्षेत्र विपाकी प्रकृति है॥ ४८॥ ४९॥

जीव विपाकी प्रकृतियां अठत्तर हैं, पुद्गल विपाकी बासठ हैं, भव विपाकी चार हैं और क्षेत्र विपाकी भी चार प्रकृतियां हैं॥ ५०॥

सादि अनादि ध्रुव अरु अध्रुव, कर्म बंध चउ विध वरणाय।
सादिबंध वह है जो छूटे, और छूट कर पुनः बंधाय॥ ५१॥
अरु अनादि वह है जो विधि, काल अनादी बंधता आय।
तथा निरंतर बंध होय जो, वह ध्रुव बंध नहीं रुकाय॥ ५२॥
जिसका अंतर सहित बंध हो, अध्रुव बंध करम वह जान।
यों है कर्म बंध चउ विधि से विस्तृत आगम में पहिचान॥ ५३॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का विशेष नियम

सम्यग्दृष्टि कर्म भूमि नर, अविरत गुण स्थान से लेय।
अप्रमत्त गुण स्थानक तक वह तीर्थंकर की प्रकृति बंधेय॥ ५४॥
केवली या श्रुतकेवली जिनका कर्मभूमि नर सान्निध्य पाय।
षोडश कारण भावन भाए वह तीर्थंकर प्रकृति बंधाय॥ ५५॥
प्रारंभ केवल नरगति में ही तदनंतर चउ गति में जान।
बंध करे तीर्थंकर प्रकृती, या ही निरंतर बंध सुधान॥ ५६॥

कर्म बंध चार प्रकार का है, १ सादिबंध, २ अनादि बंध, ३ ध्रुव बंध, और ४ अध्रुव बंध। सादिबंध वह है जो बंध कर छूट जाय और छूटकर पुनः बंध जाय॥ ५१॥

जो अनादिकाल से बंधता आया है व अनादि है। जो निरंतर बंधे वह ध्रुव बंध है, ध्रुव बंध रुकता नहीं है॥ ५२॥

जो कर्म बंध अंतर से बंधता हो व अध्रुव बंध कहा जाता है। इस प्रकार चार प्रकार से भी कर्म बंध होता है इनका विस्तृत वर्णन जिनागम के बड़े ग्रंथो से जानना चाहिये॥ ५३॥

तीर्थंकर प्रकृति बंध का विशेष विधान

कर्म भूमिका सम्यग्दृष्टि मनुष्य अविरत नाम के चौथे गुण स्थान से लेकर अप्रमत्त नाम के सातवें गुणस्थान तक तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है॥ ५४॥

कर्म भूमि का वह मनुष्य केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में उनका सानिध्य प्राप्त कर ही सोलह कारण भावना को भाकर निर्मल परिणामों को करता हुआ तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है॥ ५५॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ मनुष्य गति में ही करता है उसके बाद तीर्थंकर प्रकृति का निरंतर बंध चारों गतियों में हो सकता है इसलिये यह प्रकृति निरंतर बंध वाली कहलाती है॥ ५६॥

चारों गति में कोउ आयु का, बंध करे समकित तो होय।
मनुष, नरक, तिर्यंच आयुबंध, संयम धार सके ना कोय॥ ५७॥

कर्मों के दस करण अर्थात् अवस्थाएं

कर्मन की दश होय अवस्था, बंध और उत्कर्ष सुजान।
संक्रमण अपकर्षण जानहु, और उदीर्णा भेद बखान॥ ५८॥
सत्व, उदय, उपशान्त, निधत्ति, और निकाचित भेद बताय।
यों दश भेद करण कर्मन के विवरण ताको अब वरणाय॥ ५९॥
हो सम्बन्ध कर्म आतम से, उसको बंध कहा जिनराय।
कर्मस्थिति अनुभाग बढ़े वह, उत्कर्षण जानहु बुधराय॥ ६०॥
बंध प्रकृति परिवर्तित अन्य हो, प्रकृति संक्रमण वह पहिचान।
स्थिति अनुभाग घटे वह जानहु, अपकर्षण प्रकृति भवि जान॥ ६१॥
उदय समय आने से पूरब, फल दे वह उदीर्णा जान।
कर्म रूप रहना पुद्गल का, सत्व भेद वह कहा प्रमान॥ ६२॥

चारों गति का कोई जीव आगामी आयु का बंध करने पर सम्यक्त्व तो उत्पन्न कर सकता है परन्तु मनुष्यायु, नरकायु और तिर्यञ्च आयु का बंध करने वाला जीव संयम को धारण नहीं कर सकता है॥ ५७॥

कर्मों की दस अवस्थाएं या करण

कर्मों की दस अवस्थाएं या करण होते हैं। १ बंध, २ उत्कर्षण, ३ संक्रमण, ४ अपकर्षण, ५ उदीरणा, ६ सत्व, ७ उदय, ८ उपशांत, ९ निधत्ति, १० निकाचित, इस प्रकार कर्म के करण या अवस्था दस होते हैं इनका विवरण आगे वर्णन करते हैं॥ ५८॥ ५९॥

आत्मा से जो कर्म पुद्गल का मेल हो जाता है उसे बंध कहते हैं। कर्म की स्थिति एवं अनुभाग बढ़ता है उसे उत्कर्षण कहते हैं॥ ६०॥

कर्मों की बंध प्रकृति अन्य प्रकृति रूप परिवर्तित हो कर फल दे उसे संक्रमण कहते हैं। कर्मों की स्थिति और अनुभाग घटता है उसे अपकर्षण कहते हैं॥ ६१॥

कर्मों के उदय आने के समय से पूर्व ही फल दे कर झर जाए उसे उदीरणा कहते हैं। पुद्गल का कर्म रूप आत्मा के साथ रहना सत्व कहलाता है॥ ६२॥

समय आय फल देवे उसको, उदय जानिये कर्म कहाय।
उदयावली को प्राप्त न हो जो, शान्त शमन उपशांत बताय॥ ६३॥

नहीं उदीर्णा नहीं संक्रमण वही निधत्ति कर्म सुजान।
जिसकी होय न कभी उदीर्णा, नहीं संक्रमण भी मतिमान॥ ६४॥

ना हो उत्कर्षण अपकर्षण, वही निकाचित कर्म कहाय।
यों है दश विध कर्म अवस्था, आगम में वर्णन समुझाय॥ ६५॥

कर्म बंध नव विधि का जानहु, तिन का विवरण सुनहु सुजान।
सादि अनादि ध्रुव अरु अध्रुव, प्रकृति भुजाकर बंध महान॥ ६६॥

और अल्पतर बंध अवस्थित, अरु स्वामित्व अपेक्षा जान।
यों नव विध है कर्म बंध इह, बंध मुक्त पाए शिव थान॥ ६७॥

जो विच्छेद होय पुनि बंधे, वह है सादि बंध विधि जान।
और निरंतर बंधे कर्म जो, कर्म अनादि बंध पहिचान॥ ६८॥

समय आने पर जो कर्म फल दे उसको उदय कहते हैं। जो कर्म उदयावली को अभी प्राप्त नहीं हुआ है आत्मा में उपशम रूप से शांत है उस कर्म को उपशान्त कहते हैं। ६३॥

जिस कर्म की उदीरणा न हो और संक्रमण भी न हो उसे निधत्ति कहते हैं। और जिस कर्म की बंधने के पश्चात् न तो उदीरणा हो और न संक्रमण हो, न उत्कर्षण हो, न अपकर्षण हो उस कर्म को निकाचित कर्म कहा है। इस प्रकार कर्म की ये दस अवस्थायें या करण होते हैं। इसका आगम में वर्णन है उससे समझना चाहिये॥ ६४॥ ६५॥

कर्म बंध नौ प्रकार का होता है, हे सज्जनो ! उसका वर्णन करता हूं उसे सुनिये। १ सादि बंध, २ अनादि बंध, ३ ध्रुव बंध, ४ अध्रुव बंध, ५ प्रकृति बंध, ६ भुजाकार बंध, ७ अल्पतर बंध, ८ अवस्थित बंध, ९ स्वामित्व बंध। इस प्रकार नौ प्रकार के कर्म बंध होते हैं, जो इन कर्म के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं वही जीव मोक्ष जाते हैं॥ ६६॥ ६७॥

जो कर्म बंधने के बाद विच्छेद हो जाय और विच्छेद होकर पुनः बंधे वह कर्म सादि बंध है। और जो कर्म निरंतर बंधता रहे वह अनादिबंध है॥ ६८॥

कर्म संतति बंधती चलती, वह ध्रुव बंध कहा गतिमान।
अध्रुव बंध कहावे वह जो, बंध विनाशी पुन: बंधान॥ ६९॥
एक जीव के एक समय में, बंधे बंध वह प्रकृति कहाय।
अल्प बंध करि अधिक बंधे जो, भुजाकार वह बंध बताय॥ ७०॥
अधिक बंध करि अल्प बंधे जो वही अल्पतर बंध सुजान।
पहले पीछे बंधे एक सा, उसे अवस्थित बंध पिछान॥ ७१॥
गुणस्थान स्वामित्व अपेक्षा, है स्वामित्व बंध बतलाय।
यों है कर्म बंध नौ विध से, आगे और कहूं वरणाय॥ ७२॥

किन कर्मों का कौन सा बंध

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, मोहनीय अरु नाम सुजान।
गोत्र और अंतराय कर्म षट्, सादि अनादि अध्रुव ध्रुवमान॥ ७२॥ अ॥
वेदनीय का सादि बंध नहिं, ध्रुव अध्रुव अनादि बंधाय।
आयु कर्म का सादि अनादिक, ध्रुव अरु अध्रुव बंध कहाय॥ ७३॥

जो कर्म बंध कर उसकी संतति बंधती चलती जाती है वह ध्रुव बंध है और जो बंधकर क्षय हो जाय, और फिर से बंधे वह कर्म अध्रुव बंध है॥ ६९॥

एक जीव के एक समय में जो कर्म बंधे वह प्रकृति बंध कहा जाता है। तथा जो पहले अल्प बंध करे और पीछे अधिक बंध करे वह भुजाकार बंध कहा जाता है॥ ७०॥

जो कर्म पहले अधिक बंधे और पीछे अल्प बंधे वह अल्पतर बंध कहा जाता है। और जो कर्म पहले और पीछे एक सा बंधता है वह अवस्थित बंध कहलाता है॥ ७१॥

गुणस्थान के स्वामी की अपेक्षा जो कर्म बंधता है वह स्वामित्व बंध कहा जाता है। इस प्रकार कर्म बंध नौ प्रकार का होता है। अब आगे और भी कर्म संबंधित वर्णन करता हूं उसे पढ़कर ज्ञान बढ़ाएं॥ ७२॥

कौन कर्म कैसा बंधता है ?

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय इन छ: कर्मों का सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों तरह से बंध होता है॥ ७२॥ अ॥

वेदनीय कर्म का सादिबंध नहीं है, अत: ध्रुव, अध्रुव और अनादि इन तीन तरह का बंध होता है। आयु कर्म का, सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों प्रकार का बंध होता है॥ ७३॥

पुद्गल कर्म का विभाजन

एक समय पुद्गल द्रव्यन का, आत्म प्रदेशों से जो बंध।
हो विभाग आठों कर्मों में निम्न प्रकार जानिये ग्रन्थ।। ७४।।
आयुकर्म का अल्प भाग है, नाम गोत्र का अधिकसु भाग।
आयुकर्म से अधिक जानहु, उससे अधिक कर्म यों भाग।। ७५।।
ज्ञानावरण दर्शनावरणी, अन्तराय का अधिक प्रमान।
इनसे बढ़ कर मोहनीय का अधिक भाग मिलि है मतिमान।। ७६।।
मोहनीय से अधिक जानिये वेदनीय कर्मन परिमाण।
यों है कर्मन का बंटवारा, अष्ट कर्म का भाग सुजान।। ७७।।

कर्म बंध का कुछ विवरण

आयु कर्म तजि सात कर्म का बंध निरंतर होता जान।
जब हो आयु बंध तबै हो आठों कर्म बंधै मतिमान।। ७८।।

बंधे हुए कर्म का विभाजन

एक समय में पुद्गल द्रव्य का कर्म रूप में जो आत्मा से बंधता है उसका आठों कर्मों में निम्न प्रकार हिस्सा विभाजित हो कर बंटता है। जैसे भोजन करने पर भोजन किये हुए खाद्य व पेय पदार्थों का खून, चरबी, मांस, चर्म, हड्डी, मल, मूत्र रूप में यथोचित विभाजन होता है वैसे ही बंधे कर्म का द्रव्य भी आठों कर्म रूप विभाजित होता है।। ७४।।

उनमें आयु कर्म का भाग सब से अल्प है, नाम कर्म और गोत्र कर्म इन दोनों का भाग बराबर मान अर्थात आयु कर्म से अधिक है। नाम और गोत्र कर्म से अधिक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का भाग है इन तीनों का बराबर २ समान भाग है उससे अधिक भाग मोहनीय कर्म का है। मोहनीय कर्म से अधिक अर्थात् सब कर्मों से अधिक भाग वेदनीय कर्म को प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये।। ७५।। ७६।। ७७।।

कर्म बंध का और वर्णन

आयु कर्म को छोड़कर सात कर्मों का निरंतर बंध होता है, और जब आयु कर्म का बंध हो उस समय आठों कर्मों का संसारी जीव को बंध होता है।। ७८।।

आयु मोह तजि षट् कर्मों का, सूक्ष्म सांपराय तक बंध।
ग्यारह तैं तेरम गुणथानक साता वेदनीय का बंध॥ ७९॥
चौदम गुणस्थान में कोई, कर्म प्रकृति नहिं रञ्च बंधाय।
बंध हेतु सब दूर भये हैं, नहिं आस्रव नहिं बंध बताय॥ ८०॥

कर्मों के उदय का वर्णन

दशवें गुणस्थान तक जानहु उदय आठ कर्मों का जान।
मोहनीय तजि सात कर्म का उदय ग्यारहवें द्वादश मान॥ ८१॥
अंतिम गुणस्थान चौदहवें तक है उदय कर्म मतिमान।
चउ अघातिया कर्म जानिये, यों है उदय कर्म क्रम जान॥ ८२॥

सत्व वर्णन

बंधे कर्म आतम प्रदेश मिलि जब तक रहे सत्व कहलाय।
किन कर्मों का सत्व रहे किन गुणस्थान तक यों बतलाय॥ ८३॥

आयु कर्म और मोहनीय कर्म को छोड़कर छः कर्मों का बंध सूक्ष्म सांपराय नाम के दशवें गुण स्थान तक होता है। केवल एक साता वेदनीय कर्म का बंध ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है॥ ७९॥

चौदहवें गुण स्थान में किसी भी कर्म का बंध नहीं होता है क्योंकि बंध के सब कारण पहले से ही दूर हो गये हैं इसलिये इस अंतिम गुणस्थान में न तो आस्रव है और न बंध है॥ ८०॥

कर्मों के उदय का वर्णन

सूक्ष्म सांपराय नाम के दशवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का उदय है। मोहनीय कर्म को छोड़कर सात कर्मों का उदय ग्यारहवें एवं बारहवें गुणस्थान तक होता है॥ ८१॥

चार अघातिया कर्म का उदय अंतिम चौदहवें गुणस्थान तक होता है, इस प्रकार कर्म के उदय का क्रम जानना चाहिये॥ ८२॥

कर्म के सत्व का वर्णन

जो कर्म बंधते हैं वे कर्म पुद्गल द्रव्य जब तक आत्म प्रदेशों में कर्म रूप मिले रहे उसे सत्व कहते हैं। किन कर्मों का सत्व कौन से गुणस्थान तक है इसका वर्णन यहां बताते हैं॥ ८३॥

सत्व ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का ही मान।
मोह छोड़ सातों कर्मों का, सत्व बारहवें तक पहिचान॥ ८४॥
और अघाती चार कर्म का गुणस्थान चौदह तक सत्व।
नरकायु संग देव आयु अरु, नरकायू का है नहिं सत्व॥ ८५॥
देवायु संग सत्व नहीं है, नरकायू देवायू जान।
मनुष आयु तिर्यंच आयु संग चारों आयु सत्व हो मान॥ ८६॥

उदीरणा वर्णन

उदय समय आने से पूरण, फल दे झरे उदीर्णा जान।
कौन गुणस्थानक में होवें कौन उदीर्णा करूं बयान॥ ८७॥
मिथ्यादृष्टि लेय प्रमत तक, छः गुणस्थानो तक में मान।
होय उदीर्णा सभी कर्म की, बंध सभी कर्मों का जान॥ ८८॥
मिश्र गुणस्थान में होवे आयू बिन सातों की जान।
वेदनीय आयू बिन षट् की सप्तम तैं दशवें तक मान॥ ८९॥
वेदनीय अरु आयु उदीर्णा, गुणस्थान छटवें तक जान।
आगे और करम की जानहु होय उदीर्णा करूँ बयान॥ ९०॥

ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का सत्व रहता है, मोहनीय कर्म को छोड़कर सातों कर्मों का सत्व बारहवें गुणस्थान तक होता है॥ ८४॥

चार अघातिया कर्मों का चौदहवें गुणस्थान तक सत्व कहा गया है। नरकायु के साथ देवायु और नरकायु का सत्व नहीं होता है॥ ८५॥

देवायु के साथ नरकायु और देवायु का सत्व नहीं है। मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु के साथ चारों आयु कर्मों का सत्व रह सकता है॥ ८६॥

उदीरणा वर्णन

कर्मों के उदय आने के समय से पूर्व जो कर्म उदय में आकर फल देकर झर जाय उसे उदीरणा कहते हैं। किस गुणस्थान में किन कर्मों की उदीरणा होती है। इसका वर्णन यहां करता हूं॥ ८७॥

मिथ्यादृष्टि अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्तसंयत नाम के छटवें गुणस्थान तक सभी कर्मों की उदीरणा होती है और सभी कर्मों का बंध होता है॥ ८८॥

मिश्र गुणस्थान में आयुकर्म को छोड़कर सातों कर्मों की उदीरणा होती है। वेदनीय और आयु कर्म को छोड़कर छः कर्मों की उदीर्णा सातवें गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक होती है॥ ८९॥

वेदनीय अरु आयु मोहनी तजि के पंच करम की जान।
करे उदीर्णा क्षीण मोह उपशांत मोह के जीव महान।। ९१।।
क्षीण मोह गुणथान उदीर्णा घाति करम चउ करें सुजान।
किन्तु मोह की करें उदीर्णा, सूक्षम सांपराय तक जान।। ९२।।
तेरहवें गुणथान सयोगी, नामगोत्र उदीरणा जान।
चौदहवें जिनराज अयोगी, नाहिं रञ्च उदीर्णा मान।। ९३।।
जब तक कर्मन नहीं उदीर्णा, तब तक मोक्ष नहीं मतिमान।
सम्यक् सहित ध्यान तप संयम धारे करम उदीर्णा जान।। ९४।।

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट आबाधा काल

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, वेदनीय अंतराय महान।
त्रिशत कोड़ा कोड़ी सागर इनकी उत्तम स्थिति पहिचान।। ९५।।
तीन हजार वर्ष का इनका कर्मन का आबाधा काल।
आगे और कर्म की थिति अरु वर्णन करूं अबाधा काल।। ९६।।

वेदनीय और आयुकर्म की उदीर्णा छटवें गुणस्थान तक जानना चाहिये। आगे और कर्मों की उदीरणा का वर्णन करता हूं।। ९०।।

वेदनीय, आयु और मोहनीय कर्मों को छोड़कर पांच कर्मों की उदीरणा बारहवें और ग्यारहवें गुणस्थान तक के जीव करते हैं।। ९१।।

चारों घातिया कर्मों की उदीरणा बारहवें गुणस्थान तक करते हैं किन्तु मोहनीय कर्म की उदीरणा सूक्ष्म सांपराय नाम के दशवें गुणस्थान तक के जीव करते हैं।। ९२।।

तेरहवें गुणस्थान तक के सयोगी जीव नाम और गोत्रकर्म की उदीरणा करते हैं। चौदहवें गुणस्थान के अयोगीजिन किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं करते कारण इस अंतिम गुणस्थान में कोई उदीरणा नहीं होती है।। ९३।।

जब तक कर्मों की उदीरणा नहीं होती तब तक मोक्ष नहीं प्राप्त होता। इसलिये सभी भव्य जीवों को कर्म जब क्षय होने होंगे तब होंगे ऐसा नहीं मानकर कर्मों की स्थिति व उदय के समय से पूर्व ही सम्यक्त्व के साथ ध्यान, तप, संयम धारण कर कर्मों की उदीर्णा करते हुए मोक्ष के पथ पर आगे बढ़ना चाहिये।। ९४।।

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एवं आबाधा काल

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा कोड़ी सागर की है, और इनका उत्कृष्ट आबाधा काल तीन हजार वर्ष का है। और शेष कर्मों की स्थिति एवं आबाधा काल का आगे वर्णन करता हूं।। ९५।। ९६।।

सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर दर्श मोह उत्तम थिति जान।
अरु आबाधा काल कहा है, सप्त सहस्र वरष परिमान॥ ९७॥
आयुकर्म की थिति है उत्तम, तैंतीस सागर की बड़ भाग।
और आबाधा उत्तम इसका, कोटि पूर्व इकका त्रैभाग॥ ९८॥
नाम गोत्र की उत्तम थिति है, विंशति कोड़ा कोड़ी जान।
अरु आबाधा काल कहा है, दोय सहस्र वरष मतिमान॥ ९९॥
चरित मोह सोलह कषाय की, है उत्कृष्ट स्थिति पहिचान।
चालिस कोड़ा कोड़ी सागर आगम वर्णित है मतिमान॥ १००॥
और अबाधा चरित मोह की चार हजार वरष परिमान।
यों है उत्तम थिति कर्मन की, और अबाधा काल सुजान॥ १०१॥

कर्मों की जघन्य स्थिति व जघन्य आबाधा काल

वेदनीय की जघन स्थिति है, द्वादश मूहुरत की मतिमान।
और अबाधा काल कहा है, अन्तर मुहूरत का भवि जान॥ १०२॥
नाम गोत्र की स्थिति जघन्य है, अष्ट मुहूरत कही सुजान।
तथा अबाधा काल कहा है, अन्तर मुहूरत ही बरणाय॥ १०३॥

दर्शनमोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर की है एवं उत्कृष्ट आबाधा काल सात हजार वर्ष का है॥ ९७॥

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर की है और उत्कृष्ट आबाधा काल एक कोटि पूर्वका त्रिभाग है॥ ९८॥

नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा कोड़ी सागर की है, और इनका उत्कृष्ट आबाधा काल दो हजार वर्ष का है॥ ९९॥

चारित्र मोहनीय कर्म की सोलह कषाय की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ा कोड़ी सागर की है, यह स्थिति जिनागम में वर्णन की गई है॥ १००॥

तथा चारित्र मोहनीय कर्म का आबाधा काल उत्कृष्ट चार हजार वर्ष का है। इस प्रकार आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एवं उत्कृष्ट आबाधा काल है॥ १०१॥

कर्मों की जघन्य स्थिति एवं आबाधा काल

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है। और वेदनीय का जघन्य आबाधा काल अन्तर मुहूर्त का जानना चाहिये॥ १०२॥

नामकर्म और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है और जघन्य आबाधा काल अन्तर मुहूर्त ही है॥ १०३॥

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय आयू अन्तराय।
इनकी जघन स्थिति आबाधा, दोऊ अन्तर मूहुरत पाय॥ १०४॥
यों कर्मों की है जघन्यथिति और जघन्य अबाधा काल।
कर्म बंध होने पर जब तक, उदयन आय अबाधाकाल॥ १०५॥

कर्मों के आस्रव के कारण

ज्ञान और दर्शन में उत्पन्न करे प्रदोषरु मत्सर भाव।
अंतराय निन्हव आसादन, अरु उपघात करे मन चाव॥ १०६॥
इनतें ज्ञानावरणी आस्रव, और दर्शनावरणी मान।
आगे वर्णन करूं और, कर्मों के आस्रव कारण जान॥ १०७॥
दुःख शोक अरुताप आक्रंदन, वध परिदेवन क्रिया सुजान।
आस्रव कारण कर्म असाता, वेदनीय के कारण जान॥ १०८॥
जीवव्रति अनुकंपा दानरु राग सहित संयम का योग।
क्षांति शौच के भाव सुसाता, वेदनीय आस्रव सुख भोग॥ १०९॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और आयु कर्म तथा अंतराय इन चार कर्मों की जघन्य स्थिति और आबाधा काल दोनों अन्तर मुहूर्त हैं॥ १०४॥

इस प्रकार कर्मों की जघन्य स्थिति और जघन्य आबाधा काल कहा है कर्म बंध होने पर जब तक वह कर्म उदय में आकर फल देना प्रारंभ न करे उस समय को आबाधा काल कहते हैं अर्थात् बंध होने और उदय आने के बीच के समय को आबाधा काल कहते हैं॥ १०५॥

कर्मों के आस्रव के कारण

ज्ञान और दर्शन में प्रदोष उत्पन्न करना, मात्सर्य भाव रखना, अंतराय डालना, निन्हव (ज्ञान को छिपाना), आसादन (अविनय) करना, उपघात करना, ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के आस्रव के कारण हैं। ज्ञान में करने से ज्ञानावरण के और दर्शन में करने से दर्शनावरण के आस्रव के कारण हैं॥ १०६॥ १०७॥

अब आगे और कर्मों के आस्रव के कारण कहता हूं

दुःख करना, शोक करना, ताप (पश्चाताप) करना, आक्रन्दन (रोना), परिदेवन (करुणा जनक कातरता से रोना) ये असाता वेदनीय के आस्रव हैं॥ १०८॥

जीवों और व्रतियों पर दया करना, दान देना, राग सहित संयम धारण करना क्षांति और शौच धारण करना अर्थात् क्रोध और लोभ नहीं करना ये साता वेदनीय के आस्रव के कारण हैं। ये सांसारिक सुख का भोग (वेदन) कराते हैं॥ १०९॥

केवलि श्रुत अरु संघ धर्म में और देव में अवर्णवाद।
दर्शन मोहनीय कर्मन के आस्रव कारण नहीं विवाद॥ ११०॥
अरु कषाय के उदय जनित, अति तीव्र जीव के हों परिणाम।
चारित मोह कर्मन के आस्रव कारण हैं ये क्रिया तमाम॥ १११॥
बहु आरंभ अरु बहुत परिग्रह, नरकायु आस्रव पहिचान।
अल्पारंभ रु अल्प परिग्रह, मनुष आयु आस्रव मतिमान॥ ११२॥
अल्पारंभ परिग्रह मृदुता, मनुष आयु आस्रव पहिचान।
माया छल अरु कपट ठगाई, तिर्यञ्च आयुष आस्रव जान॥ ११३॥
शील और व्रत रहित सुकारण चारों आयु के आस्रव जान।
राग सहित संयम श्रावक व्रत, और अकाम निर्जरा मान॥ ११४॥
बाल तपस्यायें हैं कारण देवायु आस्रव मतिमान।
सम्यग्दर्शन भी हैं कारण, देवायु आस्रव पहिचान॥ ११५॥

केवली भगवान, श्रुत (जिनवाणी), संघ, (मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका) धर्म और देव इनकी अवर्णवाद (निन्दा) करना दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है। इसमें कोई शंका नहीं है॥ ११०॥

कषायों के उदय से जो तीव्र परिणाम होते हैं उससे चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है॥ १११॥

बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह रखना, अर्थात् बहुत आरंभ के भाव करना या आरंभ करना तथा परिग्रह अर्थात् बहुत मूर्च्छा एवं तृष्णा के भाव करना नरकायु के आस्रव के कारण हैं॥ ११२॥

अल्प आरंभ करना और अल्प परिग्रह रखना तथा स्वभाव में कोमलता अर्थात् नम्रता रखना मनुष्य आयु का आस्रव है। माया कषाय,छल, कपट और ठगाई के भाव करना और ये क्रियाएं करना तिर्यञ्च आयु का आस्रव है॥ ११३॥

दिग्व्रत आदि ७ शील और अहिंसा आदि व्रतों का पालन नहीं करना चारों आयु के आस्रव हैं। सराग संयम, संयमासंयम (एक देश व्रत), अकाम निर्जरा (बंदी गृह आदि के दुःख शांति से सहना) बाल तप (सम्यक्त्व रहित तप करना) ये सब देवायु के आस्रव हैं और सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्म का आस्रव है, सम्यक्त्व विशेष रूप से वैमानिक (कल्पवासी) देवों का आस्रव कारण है, अर्थात् भवनत्रिक नहीं ऐसा समझना चाहिये॥ ११४॥ ११५॥

मन वच काय कुटिलता कहिये और विसंवाद नये जान।
ये हैं अशुभ नाम कर्मन के आस्रव कारण दुःख की खान॥ ११६॥
मन वच काय सरलता जानहु अविसंवादन शुभ पहिचान।
ये शुभ नाम कर्म के आस्रव शुभगतिदायक हितकर जान॥ ११७॥
दरश विशुद्धि विनय आदिक ये सोलह कारण भावना भाय।
तीर्थंकर शुभ प्रकृति नाम की, आस्रव कारण शिव दरशाय॥ ११८॥
परनिंदा अपना यश गाए, परगुण ढंके स्वगुण प्रगटाय।
नीच गोत्र के आस्रव कारण, निंद्य वंश में जनमत हाय॥ ११९॥
अपनी निंदा अन्य प्रशंसा ढंके स्वगुण परगुण प्रगटाय।
उच्च गोत्र के आस्रव कारण, लोक प्रशंसित कुल उपजाय॥ १२०॥
दान लाभ उपभोग भोग अरु, वीरज में डाले अन्तराय।
पंच तरह का अंतराय का आस्रव का यह हेतु बताय॥ १२१॥

मन, वचन और काय इन योगों की कुटिलता और विसंवादन (अन्यथा प्रवृति करना) ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव कारण हैं। ये दुःख देने वाले हैं॥ ११६॥

मन, वचन और काय की सरलता और अविसंवादन अर्थात् सही प्रवृति करना ये शुभ नाम कर्म के आस्रव हैं और शुभ गति को देने वाले हैं॥ ११७॥

दर्शन विशुद्धि विनय सम्पन्नता आदि सोलह कारण भावनाएं तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव के कारण हैं, यह तीर्थंकर प्रकृति मोक्ष की मंजिल तक पहुंचाने वाली है॥ ११८॥

दूसरों की निंदा करना और अपने स्वयं की प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढंकना और अपने गुणों को प्रगट करना ये नीच गोत्र के आस्रव कारण हैं। नीच अर्थात् लोकनिंद्य कुल में जीव को उत्पन्न कराते हैं॥ ११९॥

अपनी निंदा करना, दूसरे की प्रशंसा करना अपने गुण ढंकना और दूसरे के गुण प्रगट करना, ये सब उच्च गोत्र कर्म के आस्रव हैं। ये लोक वंद्य कुल में उत्पन्न कराते हैं॥ १२०॥

दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य इनमें विघ्न डालना पांच प्रकार के अन्तराय कर्म का आस्रव का कारण है॥ १२१॥

ये सब कर्मन आस्रव कारण, आस्रव तैं ही बंध सुजान।
आस्रव कारण दूर कियैतैं संवर और निर्जरा मान।। १२२।।
कर्म उदय तैं भाव शुभाशुभ, भाव शुभाशुभ कर्म बंधाय।
ऐसे ही संसार संतति, जबतक संवर नहिं अपनाय।। १२३।।
कर्म बंध जब उदय आय करि, फल देकर वह त्वरित झराय।
नहिं अंश भरि है आतम में, तत्क्षण आत्म जुदा हो जाय।। १२४।।

पुण्य प्रकृति

वेदनीय साता शुभ आयुष, नाम गोत्र शुभ उच्च महान्।
ये हैं पुण्य प्रकृति भवि जानहु, पाप प्रकृति भी कहूं सुजान।। १२५।।

पाप प्रकृति

तथा असाता वेदनीय अरु, अशुभ आयु अरु अशुभ हि नाम।
नीच गोत्र ये पाप प्रकृति हैं, आगम में विस्तृत तिन नाम।। १२६।।

ये सब कर्मों के आस्रव हैं अर्थात् कर्मों के आस्रव के कारण हैं इनसे कर्मों का आस्रव होता है और आस्रव से बंध होता है और कर्म बंध से संसार भ्रमण होता है इन आस्रव के कारणों को दूर करने से संवर और निर्जरा होती है और संवर निर्जरा से मोक्ष होता है।। १२२।।

पूर्व बंधे कर्म के उदय से नवीन शुभाशुभ भाव होते हैं और उन भावों से नवीन शुभ अशुभ कर्म बंधते हैं ऐसे ही संसारी जीव का कर्म बंध व उदय की संतति बढ़ती रहती है, जब तक कि संवर प्राप्त कर आस्रव को रोका न जाय।। १२३।।

जो कर्म बंध को प्राप्त होकर उदय में आकर फल देता है वे कर्म फल देने के पश्चात् तत्काल झर जाते हैं अर्थात् आत्मा से अलग हो जाते हैं आत्मा में रंच भी नहीं रहते, उनकी निर्जरा हो जाती है।। १२४।।

पुण्य प्रकृति

साता वेदनीय, शुभ आयु (तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु) शुभ नाम और उच्च गोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं। पाप प्रकृतियां नीचे लिखे अनुसार हैं।। १२५।।

पाप प्रकृतियां

ऊपर लिखित कर्म प्रकृतियों को छोड़कर शेष कर्म प्रकृतियां अर्थात् असाता वेदनीय अशुभ आयु, अशुभ नाम, और नीच गोत्र ये सब पाप प्रकृतियां हैं। शास्त्रों में इनका विस्तृत वर्णन हैं।। १२६।।

चार घातिया सभी पापमय, सैंतालीस प्रकृति सबजान।
और अघाति पुण्य पापमय, दोऊ मिश्रित रूप बखान ॥ १२७॥

कर्म के सम्बन्ध में और भी कुछ वर्णन

कर्मों का बल

जब तक आतम शक्ति न जाने, नहिं आतम अनुभव पहिचान।
तब तक कर्म बली ही जिय को, चउगति में नित भ्रमण सुजान॥१२८॥
कर्म अजीव अचेतन जड़ है, नहीं ज्ञान नहिं अनुभव जान।
जीव चेतना जानै देखै, दोउ सुभाव विरोधी मान॥ १२९॥
पुनरपि जब जिय पूर्व उदय से, बांधै कर्मन फल भुगताय।
तब नहिं चले शक्ति आतम की, कर्म हि जिय को जग भ्रमणाय॥ १३०॥
नरकायु बांधे जो प्राणी, कभी न संयम वह धरपाय।
देवायू बंध महामुनीश्वर, कभी न श्रेणी क्षपक चढ़ाय॥ १३१॥

चार घातिया कर्म की समस्त प्रकृतियां पाप रूप हैं और अघातिया कर्म की प्रकृतियां कुछ पुण्य रूप हैं और कुछ पाप रूप हैं, कुछ पुण्य पाप दोनों रूप हैं॥ १२७॥

कर्म के सम्बन्ध में कुछ और वर्णन

कर्मों का बल

जब तक आत्मा स्वशक्ति को न जाने और न आत्मा के अनुभव को पहचाने तब तक कर्म बली ही रहता है और वह चारों गतियों में जीव को भ्रमाता है॥ १२८॥

कर्म अजीव है, अचेतन है, जड़ है, इसमें न तो ज्ञान गुण है और न दर्शन गुण है अनुभव रहित है और जीव चैतन्य गुण वाला है इसमें ज्ञान, दर्शन गुण है, दोनों का स्वभाव एक दूसरे से विपरीत है

फिर भी संसारी जीव पूर्व बंधे कर्म के उदय से नवीन भावों से कर्म बंध करता है और उसके उदय आने पर फिर कर्म फल को भोगता है, कर्म बंधने पर आत्मा की कोई शक्ति काम नहीं आती। कर्म ही संसारी जीव को संसार भ्रमण कराता है॥ १२९॥ १३०॥

जैसे किसी जीव ने नरकायु का बंध कर लिया तो वह कभी भी संयम नहीं धारण कर सकेगा तथा जिन मुनिराज ने देवायु का बंध कर लिया हो वे महान् तपस्वी उत्तम संहनन वाले होने पर भी क्षपक श्रेणी आरोहण नहीं कर सकते॥ १३१॥

जब तक नहिं सम्यक्त्व होएगा, तब तक जीव करम आधीन।
पुण्य उदय हरषे सुख समुझे, पाप उदय रोए हो दीन॥ १३२॥
कर्म आत्म दोनों की शक्ति, हैं अपार जो हो बलवान्।
बली निर्बली पर जय पाए, जग जाने यह रीति बखान॥ १३३॥
चारों आयु कर्म में कोई, आयु बांध ले जीव सुजान।
तो उस गति में नियम जनमते, रोक सके ना शक्ति महान्॥ १३४॥
जैसे कोई मदिरा पी ले, तो वह उन्मत निश्चित होय।
विष ज्यों खाए जो नर उसकी, मृत्यु निश्चित नियमित होय॥ १३५॥
त्यों ही पाप पुण्य बांधे जिय, उदय आय फल भुगते जान।
बड़े–बड़े ऋषि मुनि संतन भी भोगत फल नहिं बचें महान्॥ १३६॥
तातें मानव उत्तम कुल पा, समकित सह संयम प्रतिपाल।
संयम बिन नहिं कर्म क्षीण हो, संयम बिन नहिं शिव सुखहाल॥ १३७॥

जब तक सम्यक्त्व नहीं होगा तब तक जीव कर्माधीन ही रहता है, जब पुण्य का उदय आए तब हर्ष मनाता है और पाप उदय आए तब दीन बनकर रोता है॥ १३२॥

सार यह है कि कर्म और आत्मा दोनों में अनंत शक्ति है, जो बलवान् हो वह निर्बल पर विजय प्राप्त करता है इस लोकोक्ति को सब कहते सुने जाते हैं॥ १३३॥

चारों आयु कर्मों में से किसी भी आयु कर्म का कोई जीव बंध कर ले तो उस गति में उसे जन्म लेना ही पड़ेगा, कोई शक्ति उसे उस गति में जन्म लेने से रोक नहीं सकती॥ १३४॥

उदाहरण के लिये समझ लीजिये किसी पुरुष ने शराब पी ली तो वह पागल होगा ही और कोई विष खाले तो उसकी मृत्यु अवश्य होगी ही॥ १३५॥

उसी प्रकार से संसारी जीव पुण्य और पाप कर्म का बंध कर ले तो उसे उसका फल समय आने पर भोगना ही पड़ेगा, बड़े–बड़े ऋषि, मुनि, संत भी कर्म का फल भोगने से बच नहीं सके॥ १३६॥

इसलिये मनुष्य को उत्तम कुल पाकर सम्यक्त्व के साथ संयम पालन करना चाहिये। संयम के बिना कर्म क्षीण नहीं होते, संयम के बिना मोक्ष सुख नहीं प्राप्त होता॥ १३७॥

अथ दशमोऽध्यायः

रत्नत्रय धर्म वर्णनम्

धर्म का लक्षण

जो जग जीवों को जग के दुःख, छुड़ा मोक्ष में जा पहुंचाय।
उत्तम सुख धारण करवाए, वही धरम लक्षण बतलाय॥ १॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण ये, रत्नत्रय तीनों हैं सार।
ये ही धर्म व मोक्ष मार्ग है, इन त्रय बिन नहिं है शिव द्वार॥ २॥
जीव जगत् के द्वैविध जानहु, भव्य अभव्य कहे जिनराय।
सम्यक्दर्शन पाय भव्य वे, अरु अभव्य जो पा न सकाय॥ ३॥
समकित आतम श्रद्धा गुण है, हो सच्ची श्रद्धा तब होय।
सम्यग्ज्ञान नहीं समकित बिन, नहिं सम्यक् चारित्र हि होय॥ ४॥

दसवाँ अध्याय प्रारम्भ

अब रत्नत्रय का वर्णन प्रारम्भ करते हैं

धर्म का लक्षण

धर्म उसे कहते हैं जो संसारी जीवों को संसार के दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख मोक्ष को धारण करावे, यही धर्म का लक्षण आचार्यों ने कहा है॥ १॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ये तीनों सार हैं, ये तीनों धर्म हैं और ये तीनों ही मोक्ष मार्ग हैं। इन तीनों के बिना मोक्ष का मार्ग या द्वार अन्य कोई नहीं है॥ २॥

संसार में जीव भव्य और अभव्य के भेद से दो प्रकार के होते हैं, जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे या जिनमें प्राप्त करने की योग्यता है वे सब भव्य हैं, और जो सम्यग्दर्शन को न तो प्राप्त करेंगे न प्राप्त करने की जिनमें योग्यता ही है वे अभव्य जीव हैं॥ ३॥

सम्यक्त्व आत्मा के श्रद्धा गुण की पर्याय है, यह जब आत्मा व तत्वों की सच्ची श्रद्धा हो तभी होता है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता और चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं कहलाता॥ ४॥

पुण्य उदय नहिं हर्ष करहु भवि, पाप उदय नहिं करहु विषाद।
पुण्य पाप फल सम भावों से, भोगें शांत न करो विवाद॥ १३८॥

ऐसा प्राणी ही संयम धरि, कर्म शक्ति को क्षीण करेय।
कर्म सैन्य पर विजय पाय करि, शिव लक्ष्मी को शीघ्र वरेय॥ १३९॥

कर्म वशी हैं सब जग प्राणी, कर्म जयी जिनवर स्वाधीन।
तातैं जिनवर प्रभु को वंदन, नित्य हमारी तन मन लीन॥ १४०॥

अब मैं कर्म विषय पर लिखना, बंद करूं नहिं अब विस्तार।
विस्तृत लिखने तैं पाठक गण, ऊब जाय पढ़ते यह सार॥ १४१॥

कर्म सिद्धान्त वर्णनम् समाप्तम्
इति पं० महेन्द्र कुमार "महेश" विरचिते
त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थे कर्म सिद्धान्त वर्णोनाम नवमोऽध्यायः॥

हे भव्य जीवों! पुण्य के उदय में हर्ष मत करो और पाप कर्म के उदय में विषाद (दुःख) मत करो, पुण्य कर्म और पाप कर्म का फल सम भावों से भोगते हुए मन में शांति रख कोई तरह का विवाद (झगड़ा) न करो॥ १३८॥

ऐसा प्राणी ही संयम धारण कर कर्मों की शक्ति को क्षीण करता है और कर्मों की सेना पर विजय प्राप्त कर मोक्ष लक्ष्मी का शीघ्र वरण करता है॥ १३९॥

संसार के सब प्राणी कर्मों के वश में हैं, केवल एक जिनेन्द्र भगवान् ही कर्मजयी होने से स्वाधीन हैं। इसलिये कर्मजयी बनने के लिये जिनेन्द्र भगवान् को हमारी तन और मन से नित्य वंदन हो॥ १४०॥

अब मैं कर्म विषय पर लिखना बंद करता हूं अब इसका विस्तार अधिक नहीं करता हूं। कारण अधिक विस्तार करने से पाठकगण पढ़ते-पढ़ते ऊब जाएंगे, सार बात यही है॥ १४१॥

कर्म सिद्धान्त वर्णन समाप्तम्

इस प्रकार पं० महेन्द्र कुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ में कर्म सिद्धान्त का वर्णन करने वाला नवमां अध्याय समाप्त हुआ।

जो समकित सन्मुख हो प्राणी, मंदकषायी शुभपरिणाम।
दर्शन मोह विजय वह करने, करता पन्चलब्धि परिणाम॥ ५॥

लब्धि वर्णन

लब्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति है, समकित पास वही पहुंचाय।
पन्च भेद लब्धि के जानहु, तिनके नाम कहूं वरणाय॥ ६॥

क्षयोपशम है प्रथम लब्धि अरु, द्वितीय विशुद्धि नाम है जान।
तृतीय देशना और चतुर्थम, है प्रायोग्य लब्धि पहचान॥ ७॥

करण लब्धि पन्चम है जानो, निश्चय समकित कारण जान।
चार लब्धि संभव नहिं समकित, करण लब्धि से ही हो मान॥ ८॥

अशुभ कर्म का क्षयोपशम हो, तभी प्रथम लब्धि परिणाम।
तातैं निर्मल भाव होय जब, तबै विशुद्धि लब्धि का नाम॥ ९॥

जो भव्य जीव सम्यक्त्व के सन्मुख होता है वह जीव मंदकषाय वाला और शुभ परिणामी दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम करने के लिये पंचलब्धि के परिणाम करता है॥ ५॥

अब पंच लब्धि का वर्णन करते हैं

लब्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति है, वह सम्यक्त्व के पास जीव को पहुंचाती है। उस लब्धि के पांच भेद होते हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं॥ ६॥

प्रथम क्षयोपशम, दूसरी विशुद्धि, तीसरी देशना, चौथी प्रायोग्य, पांचवीं करण लब्धि है, यह करण लब्धि नियम से सम्यक्त्व का कारण है, पूर्व की चार लब्धियों से सम्यक्त्व होवे भी और नहीं भी होवे, करण लब्धि के होने पर ही सम्यक्त्व होता है॥ ७॥ ८॥

अशुभ कर्मों का क्षयोपशम होने पर जो भाव होते हैं उसे पहली क्षयोपशम लब्धि कहते हैं, उससे अधिक निर्मल परिणाम होने पर दूसरी विशुद्धि लब्धि होती है॥ ९॥

अरु उपदेश मिले जिनवाणी, तभी देशनालब्धि कहाय।
अंत: कोड़ा कोड़ी सागर, कर्मस्थिति सत्ता रह जाय॥ १०॥

घाति कर्म अनुभाग शक्ति जब, लता दारू द्विस्थानिक जान।
अरु अघाति अप्रशस्त प्रकृति हों, निम्ब और कांजीर समान॥ ११॥

किन्तु प्रशस्त अघाति कर्म सब चउ स्थानिक ही होवें जान।
गुड़ अरु खाण्ड शर्करा अमृत के समान चउ स्थानिक मान॥ १२॥

तब प्रायोग्य चतुर्थमलब्धि, भव्य अभव्य दोउ के थाय।
करण लब्धि का है यह कारण, चउ स्थानिक कर्मन बरणाय॥ १३॥

कर्मों का अनुभाग चतु:स्थानीय रूप

घाति कर्म चउ स्थानकि जानहु, अस्थि शैल अरु लता समान।
तथा दारु सम यों चउ स्थानिक तथा अघातिया करूं बयान॥ १४॥

और उसके पश्चात् जिनवाणी का स्वयं या सद्गुरु के द्वारा उपदेश मिलने से जो निर्मल परिणाम होते हैं उसे देशना लब्धि कहते हैं। देशना–लब्धि होने पर जब अंत: कोड़ा–कोड़ी सागर कर्मस्थिति रह जाती है, उस समय घातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति लता और दारू के समान द्विस्थानीय स्थापन कर देता है, और अप्रशस्त अघातिया कर्मों का अनुभाग निम्ब और कांजीर रूप द्विस्थानीय स्थापन कर देता है॥ १०॥ ११॥

किन्तु प्रशस्त घातिया कर्मों का अनुभाग, गुड़, खांड शर्करा और अमृत रूप चतु: स्थानीय रूप ही होता है अर्थात् इनका घात नहीं होता है॥ १२॥

उस समय चौथी प्रायोग्य लब्धि होती है यहां तक की चार लब्धियां भव्य और अभव्य दोनों को होती हैं यह लब्धि करण लब्धि प्राप्त करने का निमित्त कारण है, अब आगे कर्मों का अनुभाग चउ स्थानीय होता है उसका वर्णन करता हूं॥ १३॥

कर्मों का अनुभाग चतु:स्थानीय रूप

घातिया कर्म का अनुभाग चतु:स्थानीय है, अस्थि, शैल, लता और दारू के समान जानना चाहिये। अघाति कर्म के चार स्थान आगे वर्णन करता हूं॥ १४॥

हैं अघाति अप्रशस्त कर्म यौं, चउ स्थानिक वर्णन बतलाय।
निम्ब तथा कांजीरस विष सम, और हलाहल सम बरणाय॥ १५॥

और अघाति कर्म प्रशस्तसु उनके भी यौं हैं चउ थान।
गुड़ अरु खांड शर्करा अमृत, के समान जानहु मतिमान॥ १६॥

पंचमलब्धि करण शुभ जानहु, भव्यजीव ही पावे मान।
करण लब्धि बिन कोउ कबहु नहिं, समकित पाय सके मतिमान॥ १७॥

करणलब्धि होवे तब ही भवि, उपशम दर्शन मोह करेय।
तथा अनंत कषाय चौकड़ी, उपशम करि सम्यक्त्व लहेय॥ १८॥

करण अर्थ है भाव जीव के, तीनभाग तासमय सुजान।
अधःकरण अपूर्व करण पुनि, अनवृत्तिप्रकरण प्रधान॥ १९॥

एक एक से निर्मलता में, हों असंख्य गुण निर्मल भाव।
उपशम प्रथम होय तब समकित, सप्त प्रकृति उपशम परभाव॥ २०॥

अघाति कर्म प्रशस्त और अप्रशस्त दो प्रकार के हैं, उनसे अघातिया कर्म का अनुभाग, निम्ब, कांजीर, विष, और हलाहल यों चार स्थानीय हैं॥ १५॥

प्रशस्त अघातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान चउ स्थानीय जानना चाहिये॥ १६॥

पांचवीं करण लब्धि के भाव भव्य जीव को ही होते हैं उसके बिना कोई भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १७॥

करण लब्धि के होने पर ही भव्यजीव, दर्शन मोहनीय की तीनों प्रकृतियां और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सातों प्रकृतियों का उपशम कर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है॥ १८॥

करण शब्द का अर्थ भाव है, उस करणलब्धि के परिणामों वाला जीव अधःकरण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण इस प्रकार तीन प्रकार के भाव करता है॥ १९॥

एक एक करण में असंख्यात गुने अधिक निर्मल परिणाम होते हैं तब सातों प्रकृतियों का उपशम कर प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है॥ २०॥

अल्प काल तीनों करणों का, अन्तर मुहूरत ही बतलाय।
अनवृत्तिका काल अल्प है, तातैं संख्य गुणा अधिकाय॥ २१॥
काल अपूर्व करण का जानहु, उससे भी संख्यात गुणाय।
अध: करण का काल अधिक है, यों त्रय करण काल वरणाय॥ २२॥
अध: करण कहिये नीचे के, अरु ऊपर के भाव समान।
नीचे से ऊपर वाले के, भिन्न भाव अपूरव जान॥ २३॥
अरु अनवृत्ति करण प्रति समये, हो निर्मल आतम परिणाम।
तब सम्यक्त्व प्रथम उपशम हो, सप्तप्रकृति उपशम हैं नाम॥ २४॥
प्रथम करण के प्रथम समय में, थिति कर्मन की हो बंधात।
अन्त: कोड़ाकोड़ी सागर, अंत पल्य तैं कम संख्यात॥ २५॥
अन्तर मुहूरत में उपशम करि, दर्शन मोह प्रकृति तब जान।
समकित उपशम प्रथम लहै यह, अन्तरमुहूरत समय बखान॥ २६॥
मोहनीय सम्यक्त्वप्रकृति जब, उदय होय तब वेदक नाम।
क्षयोपशम भी समकित कहिये, किंचित म्लान होय परिणाम॥ २७॥

तीनों करणों का अन्तरमुहूर्त ही काल है, उसमें अनवृत्तिकरण का काल अल्प है, उससे संख्यात गुणा अधिक अपूर्व करण का काल है, उससे संख्यात गुणा अधिक अध:करण काल है। इस प्रकार तीनों करणों का काल जिनागम में वर्णित है॥ २१॥ २२॥

अध:करण में ऊपर और नीचे समानभाव होते हैं, अपूर्वकरण में नीचे से ऊपर वाले के भिन्न भाव होते हैं॥ २३॥

और अनवृत्तिकरण में प्रत्येक समय में आत्मा के परिणाम निर्मल होते जाते हैं तब सातों प्रकृतियों का उपशम हो जाने से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है॥ २४॥

प्रथम करण के पहले ही समय में कर्मों की स्थिति अन्त: कोड़ा कोड़ी से पल्य के संख्यातवें भाग कम करता है॥ २५॥

उसी समय अन्तर्मुहूर्त में दर्शनमोहनीय प्रकृति का उपशम कर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उस उपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट व जघन्य दोनों काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है॥ २६॥

उस समय सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति का यदि उदय हो तो वेदक सम्यक्त्व जिसे क्षयोपशमसम्यक्त्व भी कहते हैं— होता है। उस सम्यक्त्व में कुछ मलीन परिणाम होते हैं॥ २७॥

हो सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का, उदय मिश्रगुणथान कहाय।
अरु मिथ्यात्व प्रकृति उदये हो, गिरे प्रथम गुणथान हि आन।। २८।।
मरण होय यदि ताहि समय में, प्रथम चतुर्थम हो गुणथान।
मरण नहीं है मिश्र तृतीय में, कहा जिनागम निश्चय जान।। २९।।
समकित भेद कहे हैं उपशम, क्षायिक क्षयोपशम त्रय जान।
उपशम भी द्वै विध यों कहिये प्रथम द्वितीय उपशम पहिचान।। ३०।।
प्रकृति अनंतानुबंधी चउ, दर्शन मोहप्रकृति त्रय जान।
सप्त प्रकृति उपशम होवे जब, उपशम समकित की पहिचान।। ३१।।
सातों में कछुक्षय कछु उपशम, क्षयोपशम सम्यक्त्व कहाय।
सातों के क्षयतें हो क्षायिक, यों सम्यक् त्रय भेद कहाय।। ३२।।

तथा यदि सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो तब मिश्र गुणस्थान कहा जाता है और यदि मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होवे तो वह पहले गुण स्थान में आकर गिरता है।। २८।।

उस समय यदि मरण हो जाय तो पहले या चौथे गुणस्थान में होता है तीसरे मिश्र गुणस्थान में मृत्यु नहीं होती ऐसा आगम में वर्णित है।। २९।।

सम्यक्त्व के तीन भेद हैं, उपशम, क्षायिक, और क्षयोपशम। तथा उपशम सम्यक्त्व भी प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम के भेद से दो प्रकार के हैं।। ३०।।

अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ और दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, और सम्यक् प्रकृति इन सातों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व होता है।। ३१।।

और सातों में कुछ का क्षय और कुछ उपशम हो तो क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है।

विशेषार्थ– अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार तथा मिथ्यात्व, सम्यङ् मिथ्यात्व दो ये मिला कर छह सर्वघाती प्रकृतियों के वर्तमान काल में उदय आने वाले निषेकों का उदयाभावीक्षय तथा आगामी काल में उदय में आने वाले उन्हीं छह प्रकृतियों के स्पर्द्धकों का सदवस्था रूप उपशम, तथा सम्यक्त्व प्रकृति नामक देशघाति प्रकृति का उदय होने पर क्षयोपशम (वेदक) सम्यक्त्व होता है और सातों प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। इस प्रकार सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं।। ३२।।

द्विविध उपशम समकित जानहु, करण लब्धि तें तजि मिथ्यात्व।
हो तत्काल लो विशुद्ध भाव युत, वह प्रथमोपशमसु सम्यक्त्व॥ ३३॥
उपशमश्रेणि आरोहण हो, गुणस्थान अष्टम को पाय।
अनंतकषाय विसंयोजन हो, तब द्वितीयोपशमहि कहलाय॥ ३४॥

तीनों सम्यक्त्वों का काल

उपशम काल जघन अरु उत्तम, अन्तरमुहूरत ही कहलाय।
क्षयोपशम का है जघन्य भी, अन्तरमुहूरत काल बताय॥ ३५॥
अरु उत्कृष्ट काल है ताका, छ्यासठ सागर कछु अधिकाय।
क्षायिक समकित एक बार हो, काल अनंत रहे शिवपाय। ३६॥

सम्यक्त्वी का संसार काल

समकित एक बार होवे पुनि, अधिक समय जग में भरमाय।
अर्धपरावर्तन पुद्गल का, काल रहे पुनि मोक्ष लहाय॥ ३७॥

दो प्रकार के उपशम सम्यक्त्व में करण लब्धि के पश्चात् जो मिथ्यात्व छूट कर सम्यक्त्व होता है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहा जाता है॥ ३३॥

और उपशम श्रेणी के आरोहण के समय आठवें गुणस्थान प्राप्त करते समय जो अनंतानुबंधी कषाय का विसंयोजन करता है उसको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है या उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं॥ ३४॥

सम्यक्त्व का काल

उपशम सम्यक्त्व का जघन्य और उत्कृष्ट दोनों समय अन्तरमुहूर्त मात्र है और क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य काल अन्तरमुहूर्त है॥ ३५॥

और इसका उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर से कुछ अधिक है, तथा क्षायिक सम्यक्त्व एक बार होकर अनंतकाल तक मोक्ष में भी आत्मा के साथ रहता है॥ ३६॥

सम्यक्त्वी का संसार काल वर्णन

एक बार भी सम्यक्त्व जिस जीव को हो जावे तो वह अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक संसार में रहेगा उससे अधिक संसार में नहीं रह सकता अर्थात् उसके पश्चात् नियम से वह मोक्ष जाएगा॥ ३७॥

होय असंख्ये भव भव में वह, पुनि पुनि छूटे पुनि पुनि होय।
कम से कम तद्भव क्षायिक पा, मुनि है मोक्ष लहे नर सोय॥ ३८॥

क्षायिक सम्यक् दृष्टि रहे जग, कोटी पूर्व द्वय ऊपर सार।
न्यून वर्ष वसु तैंतीस सागर, पा चौथे भव शिव अधिकार॥ ३९॥

जघन काल क्षायिक समकित जग, जब भी हो तत्काल बताय।
अन्तरमुहूरत में कर्म क्षय, इतने काल मोक्ष पहुंचाय॥ ४०॥

सम्यक्त्व के और भेद

समकित उपज अपेक्षा दो हैं, भेद कहे आगम परमाण।
एक निसर्गज तथा द्वितीय है, अधिगमज सम्यक्त्व बखान॥ ४१॥

जो स्वभाव तैं सम्यग्दर्शन, होवे वह निसर्गज मान।
पर उपदेश निमित होय जो, वह अधिगमज नाम पहिचान॥ ४२॥

उस बीच में असंख्यात या अनंत भव जन्म मरण करता है, कम से कम उसी भव में ही क्षायिक सम्यक्त्वी होकर मुनि होकर वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है॥ ३८॥

क्षायिक सम्यक्दृष्टि यदि अधिक से अधिक संसार में रहेगा तो आठ वर्ष एक अन्तरमुहूर्त कम दो कोटी पूर्व तथा तैंतीस सागर रहेगा, फिर नियम से मोक्ष जायगा। भव की अपेक्षा चौथे भव में नियम से मोक्ष जाएगा॥ ३९॥

क्षायिक सम्यग्दृष्टि का जघन्य संसार काल एक अन्तरमुहूर्त मात्र है, इतने समय में ही मोक्ष जायगा॥ ४०॥

सम्यक्त्व के और भेद

उत्पन्न होने की अपेक्षा से सम्यक्त्व के दो भेद हैं एक निसर्गज सम्यक्त्व और दूसरा अधिगमज सम्यक्त्व॥ ४१॥

जो सम्यक्त्व स्वभाव से उत्पन्न होवे वह निसर्गज है और जो दूसरे के उपदेश से उत्पन्न हो वह अधिगमज सम्यक्त्व है॥ ४२॥

क्षायिक का असंयम काल

अष्ट वर्ष इकमुहूरत तैंतीस, सागर क्षायिक समकित काल।
रहे असंयत तपुनि निश्चय, संयम धरे स्वहित–तिहं काल॥ ४३॥

सम्यक्त्व के और भी भेद

और तरह से भी समकित के, हैं दश भेद कहे वरणाय।
आज्ञा, मारग, सद् उपदेश हि, सूत्र, बीज, संक्षेप, कहाय॥ ४४॥
अरु विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ हि, परमावगाढ़ दशम यों जान।
ये दश भेद कहे समकित के, ताको सुनि भवि कर श्रद्धान॥ ४५॥
एक एक से आगे बढ़ करि, हैं विशुद्ध समकित दश मान।
श्रुत केवली अवगाढ़ कहा, परमावगाढ़ अरहंत सुजान॥ ४६॥
है सराग सम्यक्त्व प्रथम अरु, दूजा वीतराग बतलाय।
चारित मोह के उदय सरागी, क्षय उपशम हैं अपर कहाय॥ ४७॥

क्षायिक सम्यक्त्वी का असंयम काल

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अधिक से अधिक संयम नहीं धारण करे तो उसका समय आठ वर्ष एक मुहूर्त तैंतीस सागर तक असंयमी रहे उसके पश्चात् नियम से समय धारण करेगा॥ ४३॥

सम्यक्त्व के और भी भेद

सम्यक्त्व के और तरह से भी दश भेद कहे गये हैं। १. आज्ञा, २. मार्ग, ३. सदुपदेश, ४. सूत्र, ५. बीज, ६. संक्षेप, ७. विस्तार, ८. अर्थ, ९. अवगाढ़, १०. परमावगाढ़, इस प्रकार ये दश भेद उत्पत्ति की अपेक्षा से और स्वरूप में हीनाधिकता की अपेक्षा कहे गये हैं। इनका स्वरूप समझ कर श्रद्धान करना चाहिये॥ ४४॥ ४५॥

ये सम्यक्त्व एक एक से बढ़कर शुद्ध हैं। श्रुत केवली के सम्यक्त्व को अवगाढ़ सम्यक्त्व और केवली भगवान के सम्यक्त्व को परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं॥ ४६॥

सराग सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व के भेद से सम्यक्त्व दो तरह का होता है। चारित्र मोहनीय के उदय से रागयुक्त जीव के सराग सम्यक्त्व होता है, और चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय व उपशम वाले के वीतराग सम्यक्त्व होता है॥ ४७॥

निश्चय अरु व्यवहार भेद भी, सम्यग्दर्शन के हैं जान।
एक साध्य अरु दूजा साधन, मोक्ष प्रथमसीढ़ी पहिचान॥ ४८॥
निज आतम परद्रव्य भिन्न है, ऐसी आतम रुचि सरधान।
वह निश्चय सम्यक्त्व जानहु, स्वातम की अनुभूति प्रधान॥ ४९॥
सच्चे देव शास्त्र गुरु त्रय अरु, धर्म तथा तत्त्वन सरधान।
हो पच्चीस दोष विरहित जो, वह समकित व्यवहार सुजान॥ ५०॥
आठ अङ्ग समकित के निश्चय, तिन विपरीत दोष वसु जान।
वसुमदटारि अनायतन षट्, त्यागि मूढ़ता त्रय मतिमान॥ ५१॥
विंशति पंच दोष सब त्यागे, वह निर्मल समकित पहिचान।
वह है मोक्ष मार्ग का पंथी, निजपर भेद उसे विज्ञान॥ ५२॥
जिनवच में निःशंक बने वह, सच्ची श्रद्धा दृढ़मतिमान।
हेय ज्ञेय अरु उपादेय का, अनुभव तातैं वही महान॥ ५३॥
जल में कमल समान गेह में, रहे भिन्न रुचि परतैं सार।
सही जौहरी आतम पर का, अरुचि देह धन जग परिवार॥ ५४॥

निश्चय और व्यवहार ये दो भेद भी सम्यक्त्व के होते हैं। जो साध्य है वह निश्चय और जो निश्चय का साधन है वह व्यवहार सम्यक्त्व है, जो कि मोक्ष महल की पहली सीढ़ी है॥ ४८॥

परद्रव्य से अपनी आत्मा को भिन्नरुचि निश्चय सम्यक्त्व है वह सम्यक्त्व आत्मा की वास्तविक अनुभूति कराने वाला है॥ ४९॥

सच्चे देव, शास्त्र गुरु, दयामयीधर्म, और तत्त्वों का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है— वह पच्चीस दोषों से रहित होता है॥ ५०॥

आठ अङ्ग धारण करने से तथा आठ अङ्ग के विपरीत आठ दोष, आठ मद, छः अनायतन, तीन मूढ़ता, ये पच्चीस दोष त्यागने से वह सम्यक्त्व निर्मल होता है, वह मोक्ष मार्ग का पथिक निज पर का भेदविज्ञान वाला जीव होता है॥ ५१॥ ५२॥

यह सम्यग्दृष्टि जिनवचन में शंकारहित श्रद्धावाला, बुद्धिमान, हेय, उपादेय, और ज्ञेय का महान अनुभवी होता है॥ ५३॥

तथा जल में कमल के समान घर में रहता है, परद्रव्य से आत्मा भिन्न है ऐसी रुचि वाला होता है। वही आत्मा का सच्चा जौहरी, धन, शरीर व संसार से अरुचि वाला होता है॥ ५४॥

सम्यक्त्व का महत्व

तीन लोक अरु तीन काल में, समकित समनहिं है हितकार।
तातैं भविजन समकित धारहु, समकित बिन नहिं शिव का द्वार॥ ५५॥

एक बार भी जो समकित हो, वह जावेगा मोक्ष महान।
इसमें संशय है न भविक जन, महिमा समकित बड़ी प्रधान॥ ५६॥

ज्ञान चरण दोऊ सम्यक् पद, नहिं पावें कबहूं मतिमान।
जब तक समकित हो नहिं तब तक, यह है मूलधर्म का जान॥ ५७॥

सम्यग्दृष्टि कहां नहिं जावे और कहां जावे

सम्यग्दर्शन सहित मृत्यु हो, नहिं नारक पशु तन वह पाय।
नहिं नारी विकलत्रय होवे नहिं पावे थावर पर्याय॥ ५८॥

सम्यक् दर्शन की महानता

तीन लोक और तीन काल में आत्मा का हित करने वाला सम्यग्दर्शन के सिवाय अन्य कोई नहीं है, इसलिये भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये॥ ५५॥

एक बार भी सम्यक्त्व किसी जीव को हो जाय तो वह नियम से अवश्य मोक्ष जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है, इस सम्यग्दर्शन की महिमा बहुत बड़ी कही गई है॥ ५६॥

जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक ज्ञान और चारित्र सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र नहीं कहे जाते, अतः यह सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है॥ ५७॥

सम्यग्दृष्टि मरकर कहां कहां उत्पन्न नहीं होते व कहां उत्पन्न होते

सम्यग्दर्शन सहित मृत्यु करने वाले जीव मरकर नरक में उत्पन्न नहीं होते, तथा तिर्यंच, स्त्री, विकलत्रय, (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय) स्थावर (एकेन्द्रिय) में उत्पन्न नहीं होते॥ ५८॥

भवनत्रिक सुर हो नहिं निश्चय, नहिं निर्धन अल्पायु न आन।
नाहिं अधम कुल नर में उपजे, रुग्ण नपुंसक भी नहिं मान॥ ५९॥
देवों में भी नाहि प्रकीर्णक, आभियोग्य किल्विषिक नाहि।
उत्तम स्वर्ग देव पद पाए, उच्च कुली भूपति पद पाहिं॥ ६०॥
हो विद्वान् धनी नर उत्तम, चक्री लोक मान्य पद पाय।
संयमपालन करि शिव जावे, महिमा सम्यकित की बतलाय॥ ६१॥
सम्यक् दर्शन तैं पहले यदि, आयुबंध नर पशु नरकाय
प्रथम नरक में ही वह जावे, भोग भूमि नर पशु तन पाय॥ ६२॥

सम्यक्त्व के आठ गुण व अतिचार

सम्यग्दर्शन के वसु गुण हैं, धर्मराग, निर्वेग कहाय।
स्वात्मनिंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति और अनुकंपा थाय॥ ६३॥
है आस्तिक्य आठवां गुण ये, पंच कहे अति चार सुजान।
शंका कांक्षा विचिकित्सा अरु, अन्य दृष्टि स्तव अरु परशान॥ ६४॥

एवं भवनत्रिक (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव) नहीं होते, तथा मनुष्य पर्याय में भी निर्धन, अल्पायु वाले, नीचकुल में, रोगी, नपुंसक, नहीं होते॥ ५९॥

देवों में स्वर्ग के देव ही होते हैं उनमें भी, प्रकीर्णक, आभियोग्य, और किल्विषिक जाति के नहीं होते, वे उच्च कुलीन राजा के पद को प्राप्त करते हैं॥ ६०॥

और भी उत्तम मनुष्य, विद्वान्, धनी, चक्रवर्ती आदि लोकमान्य पद को प्राप्त कर संयम पालन कर मोक्ष जाते हैं, ऐसी सम्यक्त्व की महिमा आचार्यों ने बतलाई है॥ ६१॥

सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के पूर्व ही यदि, नरक, तिर्यंच, व मनुष्य आयु का बंध हो जावे तो पहले नरक में ही जावे, और भोग भूमि का मनुष्य व तिर्यंच ही होवे अन्य नहीं॥ ६२॥

सम्यक्त्व के आठ गुण व अतिचार वर्णन

सम्यग्दर्शन के आठ गुण निम्न प्रकार हैं, १. धर्मराग, २. निर्वेग, ३. स्वात्म निन्दा, ४. गर्हा, ५. उपशम, ६. भक्ति, ७. अनुकम्पा, ८. आस्तिक्य, ये आठ गुण हैं और १. शंका २. कांक्षा, ३. विचिकित्सा, ४. अन्य दृष्टि प्रशंसा, ५. अन्य दृष्टि स्तवन ये पांच सम्यग्दर्शन के अतिचार (दोष) हैं॥ ६३॥ ६४॥

क्षायिक सम्यक्त्व वर्णन

क्षायिक समकित प्रारंभित हो, केवली श्रुत केवली पद पाय।
कर्म भूमि नर ही क्षय करके, दर्शन मोह अनंत कषाय॥ ६५॥
सप्त प्रकृति समकित की घातक, क्षय सम्पूर्ण करे नर कोई।
तब ही क्षायिक समकित पावे, काल अनंत न छूटे सोई॥ ६६॥
कम से कम वह उस ही भव से, मुनि है मोक्ष महल पहुंचाय।
अधिक चतुर्थम भव में निश्चय, कर्मनाशि शिवपुर में जाय॥ ६७॥
वज्र गिरे भूकम्प आय अरु, आंधी आवे या तूफान।
संकट आय तदपि नहिं भय हो, रञ्च न डिगे अटल सरधान॥ ६८॥
पुण्य पाप फल में समदृष्टि, तृणमणि कंचन कांच समान।
ऐसा क्षायिक सम्यक् दृष्टि, कोटि कोटि में विरला मान॥ ६९॥
पंचम काल मनुजभव में नर, उपशम क्षयोपशम द्वै पाय।
क्षायिक समकित का साधन नहिं, भरतक्षेत्र क्षायिक ना पाय॥ ७०॥

क्षायिक सम्यक्त्व का वर्णन

केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में कर्म भूमि का मनुष्य ही दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियां और अनंतानुबंधी कषाय की चार प्रकृतियां इन सातों प्रकृतियों का जो कि सम्यक्त्व की घातक प्रकृतियां हैं, सर्वथा क्षय करके ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है, यह सम्यक्त्व एक बार होकर अनंत काल तक रहता है॥ ६५॥ ६६॥

क्षायिक सम्यग्दृष्टि कम से कम उसी भव से मुनि होकर मोक्ष प्राप्त करता है और अधिक से अधिक चौथे भव में कर्मों का क्षय कर अवश्य मोक्ष जाता है॥ ६७॥

चाहे वज्र गिरे, भूकम्प आए, आंधी या तूफान आए, भारी से भारी संकट आ पड़े, तब भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि न तो भयभीत होता है और न तनिक भी डिगायमान होता है, ऐसा अटल श्रद्धानी होता है॥ ६८॥

पुण्य और पाप के फल में, तृण में और मणि में, स्वर्ण में और कांच में एक समान भाव रखता है, ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि करोड़ों में कोई एक विरला ही होता है॥ ६९॥

इस पंचम काल में मनुष्य को उपशम और क्षयोपशम ये दो सम्यग्दर्शन हो सकते हैं, इस भरत क्षेत्र में वर्तमान में क्षायिक सम्यग्दर्शन का साधन नहीं होने से वह नहीं प्राप्त होता है॥ ७०॥

क्षायिक समकित की महिमा का, वर्णन को करि सके बताय।
चारित मोह वश लेश न संयम, तदपि देवसुरपति अरचाय॥ ७१॥

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण

कारण समकित के द्वै जानहु, अभ्यन्तर अरु बाह्य प्रधान।
ये कारण अरु करण लब्धि हो, तब सम्यक्त्व होय यह जान॥ ७२॥

क्षय, उपशम अरु क्षयोपशम हो, दर्शनमोह अनंत कषाय।
यह है आभ्यन्तर कारण अरु, साधन बाह्य कहूं मनलाय॥ ७३॥

नरक प्रथम तैं तीजे तक हैं, जातिस्मरण, धर्मउपदेश।
और वेदना ये त्रय कारण, आगे नहीं देशना लेश॥ ७४॥

तिर्यञ्चों में धर्म श्रवण अरु, जाति स्मरण तथा बतलाय।
जिन प्रतिमा दर्शन त्रय कारण, सैनी पशु सम्यक्त्व लहाय॥ ७५॥

इस क्षायिक सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है, यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से थोड़ा भी संयम धारण नहीं कर सके तो भी देव व इन्द्र उसकी पूजा करते हैं॥ ७१॥

सम्यक्त्व के साधन

सम्यक्त्व उत्पन्न होने के बाह्य और अभ्यन्तर ये दो कारण होते हैं। इससे पूर्व पंचलब्धि में पांचवीं करणलब्धि हो तब सम्यक्त्व होता है॥ ७२॥

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां, (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति) और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन सातों प्रकृतियों का क्षय, उपशम और क्षयोपशम तो सम्यक्त्व प्राप्ति का आभ्यंतर कारण है और बाह्य कारण (साधन) जो हैं उनका वर्णन अब करता हूं॥ ७३॥

पहले नरक से तीसरे नरक तक सम्यक्त्व के कारण हैं, जाति स्मरण, धर्मउपदेश और वेदना ये तीन कारण हैं। इससे आगे चौथे से सातवें नरक तक धर्मोपदेश को छोड़ कर वेदना और जाति स्मरण ये दो कारण हैं॥ ७४॥

तिर्यञ्चों में सैनी जीव धर्मश्रवण, जातिस्मरण और जिनप्रतिमा दर्शन इन तीन कारणों से सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं॥ ७५॥

मनुष में भी ये त्रय कारण, जातिस्मरण धर्मउपदेश।
जिन प्रतिमा दर्शन पूजनतैं, सम्यक्‌दर्शन होय "महेश"॥ ७६॥
देवों में समकित के साधन, चार कहे निश्चय उरधार।
जाति स्मरण, ऋद्धिदर्शन अरु, धर्म श्रवण जिन महिमासार॥ ७७॥
शुभउपयोग अवस्था जागृत, शुभ लेश्या के हों परिणाम।
परउपदेश तथा निसर्ग तैं, करण लब्धि होवे शुभ नाम॥ ७८॥
मनुष जन्म में आठ वर्ष अरु, अन्तरमुहूरत आयु कहाय।
तब होवे सम्यक्त्व भविक को, इतने कारण जब मिल जाय॥ ७९॥

किन जीवों के कौनसा सम्यग्दर्शन

नरक जीव पर्याप्तक समकित, उपशम क्षयोपशम द्वै जान।
प्रथम नरक में क्षायिक भी है, यों समकितत्रय नारक मान॥ ८०॥
तिर्यंचों में भी त्रय जानहु, पशु नारी क्षायिक नहिं जान।
मनुषयोनि त्रय ही उपशम अरु, क्षयोपशम क्षायिक मतिमान॥ ८१॥

मनुष्यों में भी जातिस्मरण, धर्मोपदेश, जिन प्रतिमादर्शन, पूजन ये तीन सम्यक्त्व प्राप्ति के कारण हैं॥ ७६॥

देवों में सम्यक्त्व प्राप्ति के चार साधन कहे गये हैं, जातिस्मरण, ऋद्धिदर्शन, धर्मश्रवण और जिनेन्द्रमहिमादर्शन, ये चार कारण हैं॥ ७७॥

तथा और भी शुभोपयोग, जागृतअवस्था, शुभलेश्या के परिणाम होने पर उपदेश से या स्वभाव से करणलब्धि के होने पर और यदि मनुष्य पर्याय में हो तो, आठ वर्ष एक अन्तरमुहूर्त आयु इतने कारण मिलने पर भव्य जीव को सम्यग्दर्शन होता है॥ ७८॥ ७९॥

किन जीवों के कौनसा सम्यग्दर्शन होता है

नारकी पर्याप्तकों के उपशम और क्षयोपशम ये दो सम्यक्त्व होते हैं। प्रथम नरक में क्षायिक भी होता है, इस अपेक्षा से तीनों सम्यक्‌दर्शन नरक में होते हैं॥ ८०॥

तिर्यंचों में भी ऊपर लिखे तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं, तिर्यञ्चनियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है। मनुष्यों में, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ये तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं॥ ८१॥

देवयोनि में भी त्रय ही हों, क्षायिक नहीं सुरतिय के जान।
पंचेन्द्रियसंज्ञी त्रय कहिये, और असैनी न समकित मान॥ ८२॥
योगत्रयी के तीनों समकित, क्षायिक योग रहित पहिचान।
तीनों वेदी के त्रय जानहु, अपगतवेदी के द्वै जान॥ ८३॥
काषायिक के त्रय समकित हों, रहित कषाय जीव द्वय मान।
चार ज्ञान तक तीनों समकित, केवल ज्ञानी क्षायिक ज्ञान॥ ८४॥
संयमधारी के समकित हों, सामायिक छेदोपस्थान।
इनके त्रय सम्यक्त्व कहे हैं, आगे और सुनहु मति मान॥ ८५॥
हैं परिहार विशुद्धि मुनिन के, उपशम बिन द्वै समकित जान।
सूक्ष्मसांपराय मुनि के द्वय,यथाख्यात में द्वय ही मान॥ ८६॥
उपशम क्षायिक ये द्वय जानहु, क्षयोपशम नहिं इनके जान।
यों संयम धर के हैं समकित, विस्तृत आगम माहिं बखान॥ ८७॥

और देवों में तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं, देवाङ्गनाओं में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। पंचेन्द्रिय संज्ञी के तीनों सम्यक्त्व होते हैं, असैनी के कोई भी सम्यक्त्व नहीं होता॥ ८२॥

तीनों योगों वाले जीव के तीनों सम्यक्त्व होते हैं योग रहित अयोग केवली के एक क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है। वेद की अपेक्षा से तीनों वेद वाले जीव के तीनों सम्यक्त्व और वेद रहित के औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं॥ ८३॥

कषाय की अपेक्षा कषायीजीवों के तीनों सम्यक्त्व और कषाय रहित के उपशम और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं। और ज्ञान की अपेक्षा से चारों ज्ञानी जीवों के तीनों सम्यक्त्व, और केवल ज्ञानी के क्षायिक सम्यक्त्व होता है॥ ८४॥

संयम की अपेक्षा सामयिक और छेदोपस्थापना चारित्र वाले मुनि के तीनों सम्यक्त्व होते हैं, और आगे का वर्णन करता हूं उसे सुनो॥ ८५॥

परिहार विशुद्धि चारित्र वाले के उपशम को छोड़कर दोनों सम्यक्त्व होते हैं। सूक्ष्मसांपराय वाले मुनि के औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं क्षयोपशम नहीं होता, और यथाख्यातचारित्र वाले के भी उक्त दोनों ही सम्यक्त्व होते हैं इस प्रकार संयमधारी के सम्यक्त्व का वर्णन किया। विस्तार से आगम से जानना चाहिये॥ ८६॥ ८७॥

चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनयुत, के तीनों सम्यक्त्व कहाय।
केवल दर्शन के क्षायिक ही, समकित केवल एक बताय॥ ८८॥

षट् लेश्याधर के तीनों हैं, बिन लेश्याधर क्षायिक जान।
भव्य जीव के तीनों समकित, अरु अभव्य नहिं कोई मान॥ ८९॥

गुणस्थान अपेक्षा सम्यक्त्व

उपशम चौथे तें समकित हो, गुणस्थान ग्यारहवें मान।
क्षयोपशम चौथे तें सप्तम, क्षायिक चौदहवें तक जान॥ ९०॥
सम्यग्दर्शन का यह वर्णन, हुआ अधिक नहीं अब विस्तार।
सम्यग्ज्ञान चरित का वर्णन, आगे करूं सुनो भवि सार॥ ९१॥

इति सम्यग्दर्शन वर्णनम्

दर्शन की अपेक्षा सम्यक्त्व चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, वाले तीनों सम्यक्त्व होते हैं, केवल दर्शन वाले केवलीभगवान के क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है॥ ८८॥

लेश्या की अपेक्षा छः लेश्याधारी के तीनों सम्यक्त्व और बिन लेश्या वाले के क्षायिक सम्यक्त्व होता है। भव्यजीवों के तीनों सम्यक्त्व और अभव्य के कोई सम्यक्त्व नहीं होता है॥ ८९॥

गुणस्थान अपेक्षा सम्यक्त्व का वर्णन

औपशमिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होता है, और क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। सिद्ध भगवान में भी होता है॥ ९०॥

इस प्रकार सम्यग्दर्शन का वर्णन किया है, अब इसका अधिक विस्तार नहीं कर आगे सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का वर्णन करूंगा उसे ध्यान से सुनो या पढ़ो॥ ९१॥

इस प्रकार सम्यग्दर्शन का वर्णन समाप्त हुआ।

सम्यग्ज्ञान

सम्यग्दर्शन होते ही जो, ज्ञान सुसम्यग्ज्ञान कहाय।
युगपत दीपप्रकाश होय ज्यों, पुनरपि भिन्न भिन्न बतलाय॥ १२॥
पहले सम्यग्दर्शन होवे, सम्यग्ज्ञान त्वरित पुनि थाय।
तातें कारण सम्यग्दर्शन, कारज सम्यग्ज्ञान कहाय॥ १३॥
वस्तु स्वरूप यथार्थ ज्ञान ही, सच्चा सम्यग्ज्ञान सुजान।
जिनवाणी स्वाध्याय पठन अरु धर्म श्रवण उपजे मतिमान॥ १४॥
सम्यग्ज्ञान कहा है द्विविध, एक परोक्ष तथा प्रत्यक्ष।
मनइन्द्रिय तैं हो परोक्ष वह, स्वयं होय वह है प्रत्यक्ष॥ १५॥
मतिश्रुत दोय परोक्ष ज्ञान हैं, मनइन्द्रिय तैं हो ये ज्ञान।
अवधि मनःपर्यय इकज्ञानसु एकदेश प्रत्यक्ष सुजान॥ १६॥
सर्व द्रव्य पर्याय जानता, सर्वदेश प्रत्यक्ष कहाय।
वह है युगपत सकल ज्ञान जो, केवल ज्ञान घातिहनि पाय॥ १७॥

सम्यग्ज्ञान का वर्णन

सम्यग्दर्शन के होते ही जो ज्ञान हो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ होते हैं परन्तु दीपक और प्रकाश की तरह भिन्न भिन्न कहे गये हैं॥ १२॥

पहले सम्यक्दर्शन होता है पीछे तत्काल सम्यग्ज्ञान होता है, इस लिये सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य है॥ १३॥

वस्तु के स्वरूप के यथार्थ (वास्तविक) ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह सम्यग्ज्ञान जिनवाणी के स्वाध्याय, पठन और धर्मोपदेश श्रवण से होता है॥ १४॥

सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं, एक परोक्ष दूसरा प्रत्यक्ष। जो ज्ञान मन और इन्द्रियों से पदार्थ को जाने वह परोक्ष ज्ञान है और जो बिना किसी सहायता के स्वयं पदार्थ को जाने वह प्रत्यक्ष ज्ञान है॥ १५॥

इनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान मन और इन्द्रिय से पदार्थों को जानते हैं इसलिये परोक्ष ज्ञान है और अवधि ज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दो एकदेश प्रत्यक्ष ज्ञान हैं॥ १६॥

सम्पूर्ण द्रव्यों की समस्त पर्यायों को जो एक साथ एक ही काल में जानता है वह सकल प्रत्यक्ष कहलाता है उसे केवलज्ञान कहते हैं वह ज्ञान घातिया कर्मों के क्षय होने पर होता है॥ १७॥

सम्यक बिन भी तीन ज्ञान हों, मतिश्रुत अवधि कहे कुज्ञान।
यों है ज्ञान अष्टविध जानहु, सम्यग्ज्ञान पंचविध जान॥ ९८॥

ज्ञान के लक्षण

मनइन्द्रिय के साधन तैं जो, होवे वह ही है मतिज्ञान।
मतिज्ञान के होय अनन्तर, ज्ञानविशेष वह श्रुतज्ञान॥ ९९॥
मर्यादा लेकर पदार्थ को, जानें कालत्रय अवधिज्ञान।
परमनतिष्ठे भाव जान ले, मनःपर्यय सुज्ञान सुजान॥ १००॥
सर्व द्रव्य की पर्यायें जो, युगपत जानें सर्व त्रिकाल।
केवलज्ञान कहा है उसको, लोकालोक ज्ञात सब हाल॥ १०१॥
मतिज्ञान के भेद कहे हैं, चार और द्वादश परिमान।
अठचालिस द्वयशत अट्ठासी, अरु त्रयशत छत्तीस बखान॥ १०२॥
श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होवे, द्वय अनेक द्वादश विध इष्ट।
प्रथम भेद द्वय कहे जिनागम, अंगबाह्य अरु अंगप्रविष्ट॥ १०३॥

सम्यग्दर्शन के बिना भी मिथ्यात्व अवस्थामें, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान होते हैं इन्हें कुज्ञान कहते हैं। इस प्रकार ज्ञान आठ प्रकार के और सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार के होते हैं॥ ९८॥

ज्ञान के भिन्न भिन्न लक्षण वर्णन

मन और इन्द्रिय की सहायता से जो ज्ञान होता है वह मतिज्ञान कहलाता है और मतिज्ञान के पश्चात् जो विशेष ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है॥ ९९॥

मर्यादा लेकर जो भूत, भविष्यत् व वर्तमान को जानता है वह अवधिज्ञान है। दूसरे के मन में स्थित भावों को जो जाने वह मनःपर्यय ज्ञान कहलाता है॥ १००॥

सम्पूर्ण द्रव्यों की त्रिकालवर्ती पर्यायों को जो एक साथ जानता है वह केवलज्ञान है यह केवलज्ञान लोक और अलोक सबको जानता है॥ १०१॥

मतिज्ञान के क्रम से चार, बारह, अड़तालिस, दो सौ अट्ठासी और तीन सौ छत्तीस इस प्रकार भेद होते हैं (इन्हें तत्वार्थ सूत्र से जान लेना चाहिये)॥१०२॥

श्रुतज्ञान के जो कि मतिज्ञान पूर्वक होता है उसके दो भेद कहे गये हैं, एक अंगबाह्य, दूसरा अंगप्रविष्ट॥ १०३॥

अंगबाह्य के भेद अनेकहि, अंगप्रविष्ट सुद्वादश भेद।
द्वादशाङ्ग श्रुत का ज्ञानी वह, श्रुतज्ञानी सबश्रुत परिवेद॥ १०४॥
जिनमुख दिव्य ध्वनितें निःसृत, गणधर द्वादशअंग रचाय।
अंगप्रविष्ट कहा अरु ऋषिगण, रचे शास्त्र वह अंगनु बाह्य॥ १०५॥
निश्चय अरु व्यवहार भेद से, दोय तरह का सम्यग्ज्ञान।
निजआतम जाने सो निश्चय, अन्य तत्व व्यवहार सुजान॥ १०६॥
चउ अनुयोग जिनागम कहिये, तिनमें तत्व भरा उपदेश।
प्रथमकरण चरणानुयोग अरु, कहा द्रव्यअनुयोग जिनेश॥ १०७॥
पंचमकाल माहिं जिनवानी, श्रवण पठन अरु मननकराय।
श्रुतअभ्यास तत्वचर्चातें, सम्यग्ज्ञान बढ़े सुखदाय॥ १०८॥
है स्वाध्याय पंचविध वाचन पृच्छन अनुप्रेक्षा आम्नाय।
अरु उपदेश धर्म का जानो, ये हैं साधन नित स्वाध्याय॥ १०९॥

उनमें अंग बाह्य के अनेक भेद हैं और अंग प्रविष्ट के बारह भेद होते हैं जिन्हें द्वादशाङ्ग वाणी कहते हैं, इस द्वादशाङ्ग श्रुत का पूर्णज्ञानी श्रुतज्ञानी कहलाता है॥ १०४॥

जिनेन्द्र भगवान् के मुख से दिव्य ध्वनि रूप से जो वाणी निकली उसे गणधरों ने द्वादशाङ्ग रूप रची या गूंथी वह श्रुत अङ्गप्रविष्ट है और आचार्यों ने उसी द्वादशाङ्ग श्रुत में से ही अनेक ग्रन्थों की रचना की वह अंगबाह्यश्रुत है॥ १०५॥

यह सम्यग्ज्ञान निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का भी होता है। अपनी आत्मा के स्वरूप को जानना निश्चय है और अन्य द्रव्यों को जानना व्यवहार ज्ञान है॥ १०६॥

यह ज्ञान जिनवानी में चार अनुयोगों में उपदेश रूप में भरा हुआ है। ये चार अनुयोग निम्न प्रकार हैं– १ प्रथमानुयोग, २ करणानुयोग, ३ चरणानुयोग, ४ द्रव्यानुयोग॥ १०७॥

इस पंचम् काल में जिनवानी के सुनने से, पढ़ने से, मनन करने से व तत्वचर्चा से श्रुत का अभ्यास होता है और श्रुतअभ्यास से ही सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है। यह सम्यग्ज्ञान सुख देने वाला है॥ १०८॥

स्वाध्याय पांच प्रकार का है– १ वाचन (पढ़ना), २ पृच्छना (पूछना), ३ अनुप्रेक्षा (बार–बार चिन्तन करना), ४ आम्नाय (शुद्ध पाठ करना), ५ धर्मोपदेश (धर्म का उपदेश करना), ये पांचों स्वाध्याय ज्ञान के साधन हैं॥ १०९॥

विकथा चार तथा सांसारिक, कथा पढ़ नहिं समय गमाय।
मोक्ष हेतु स्वाध्याय जिनागम,जिनवानी भवि पढ़ चितलाय॥ ११०॥

है जिनवानी शिवपथदर्शक, जिससे भवि होवे भवपार।
तातैं तजि परमाद नित्यप्रति, पढ़हु सुनहु जिन आगम सार॥ १११॥

अवधिज्ञान मर्यादा लेकर, जो पदार्थ जाने मतिमान।
देशावधि परमावधि कहिये, सर्वावधि त्रय भेद सुजान॥ ११२॥

परमावधि सर्वावधि ये दो, महामुनीश्वर के ही होय।
मुनि में जो हैं परमतपस्वी, तथा ऋद्धिधर मुनि के होय॥ ११३॥

उत्तम संहनन चरमशरीरी जिनके होवें ये द्वै ज्ञान।
वे उस ही भव केवल पाकर, निश्चय मोक्ष लहैं भविजान॥ ११४॥

देशावधि के दोय भेद हैं, भवप्रत्यय गुणप्रत्यय ज्ञान।
देव नारकी के भवप्रत्यय, पशु मानव गुणप्रत्यय ज्ञान॥ ११५॥

भव्य जीवों को चार प्रकार की विकथायें तथा और भी सांसारिक कथायें पढ़कर समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। मोक्षमार्ग का कारण यह जिनवानी जिनागम है, इनका मन लगाकर स्वाध्याय करना चाहिये॥ ११०॥

यह जिनवानी मोक्षमार्ग दर्शक है, इसी से भव्य जीव संसार समुद्र से पार होते हैं। इस कारण जिनवानी को प्रतिदिन पढ़ना और सुनना चाहिये॥ १११॥

अवधिज्ञान जो कि मर्यादा को लेकर पदार्थों को जानता है उसके तीन भेद हैं– १ देशावधि, २ परमावधि, ३ सर्वावधि॥ ११२॥

परमावधिज्ञान और सर्वावधिज्ञान ये दो अवधिज्ञान महान् मुनियों के ही होते हैं। मुनियों में भी उत्कृष्ट तपस्वी तथा ऋद्धिधारी मुनियों के होते हैं॥ ११३॥

ये दोनों अवधिज्ञान उत्तम संहननधारी, चरमशरीरी मुनि को ही होते हैं। वे मुनि उसी भव से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं॥ ११४॥

देशावधिज्ञान के दो भेद हैं– १ भवप्रत्यय, २ गुणप्रत्यय। देव और नारकी जीवों के भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है और गुणप्रत्यय तिर्यञ्च और मनुष्यों के होता है॥ ११५॥

गुणप्रत्यय का अपर नाम है, क्षयोपशम निमित्त षट् जान।
अनुगामी अरु अननुगामिशुभ, वर्धमान तथा हीयमान॥ ११६॥
अवस्थित अनवस्थित षट्विध, यों गुण प्रत्यय भेद सुजान।
मनःपर्यय ज्ञान सुवर्णन, करूं संक्षेप पठन हो ज्ञान॥ ११७॥
पर के मनस्थित सूक्ष्म भावों, जानें मनःपर्यय वह ज्ञान।
केवल मुनि जो उच्च तपस्वी, वर्धमान चारित वह ज्ञान॥ ११८॥
मनःपर्यय के भेद दोय हैं, ऋजुमति और विपुलमति ज्ञान।
ऋजुमति होकर भी छुट जाये, छूटे कभी न विपुलमति ज्ञान॥ ११९॥
अवधिज्ञान का उपज क्षेत्र है, त्रसनाड़ी में ही हो ज्ञान।
मनःपर्यय क्षेत्र लोक नर, लक्ष पैंतालिस योजन मान॥ १२०॥
अवधि ज्ञान चारों गति में हो, मनःपर्यय मानवपर्याय।
कर्मभूमि के नरमुनि उत्तम, संयम ऋद्धि धार ही पाय॥ १२१॥

गुणप्रत्यय जिसका दूसरा नाम क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान है, उसके छः भेद होते हैं– १ अनुगामी (साथ जाने वाला), २ अननुगामी (साथ नहीं जाने वाला), ३ वर्धमान (बढ़ने वाला), ४ हीयमान (घटने वाला), ५ अवस्थित (एक सा रहने वाला), ६ अनवस्थित (घटने बढ़ने वाला जो एक सा न रहे) ये छः गुणप्रत्यय के होते हैं। अब मनःपर्यय ज्ञान का संक्षेप से वर्णन करता हूं॥ ११६॥ ११७॥

पर के मन में स्थित सूक्ष्म भावों को जानने वाला मनःपर्यय ज्ञान कहा जाता है। वह केवल उच्च तपस्वी वर्धमान चरित्र वाले मुनि को ही होता है॥ ११८॥

मनःपर्यय ज्ञान के दो भेद हैं– १ ऋजुमति मनःपर्यय २ विपुल मति मनःपर्यय। ऋजुमति तो होकर छूट भी जाता है किन्तु विपुलमति जो कि ऋजुमति से अत्यन्त शुद्ध है होकर कभी छूटता नहीं अर्थात् केवल ज्ञान तक रहता है॥ ११९॥

अवधिज्ञान की उत्पत्ति का क्षेत्र त्रसनाड़ी है और मनःपर्यय ज्ञान का क्षेत्र पैंतालिस लाख योजन मनुष्य लोक है। अवधिज्ञान का विषय समस्त लोक है और मनःपर्यय ज्ञान का विषय पैंतालिस लाख योजन चौकोर घनरूप है॥ १२०॥

अवधिज्ञान चारों गतियों में होता है और मनःपर्यय ज्ञान कर्मभूमि के मनुष्य उत्तम संयमधारी व ऋद्धिधारी मुनियों के ही होता है॥ १२१॥

पंचम् केवल ज्ञान घातिहनि, होवे जानें लोक अलोक।
श्री अरहंत सिद्ध परमातम, को यह ज्ञान लखें त्र्यलोक॥ १२२॥

सम्यग्ज्ञान का महात्म्य

या जग में है सुख को कारण, ज्ञान समान अन्य नहिं जान।
जन्म मरण का रोग निवारन, परमामृत यह सुख की खान॥ १२३॥

अज्ञानी जेते तप तपकारि, कोटि जन्म में कर्म नशाय।
तेते सम्यग्ज्ञानी मुनिवर, छिन में कर्म समूह नशाय॥ १२४॥

धनगृहमहल कनक मणि माणिक, राजमंत्रिपद सुलभ सुजान।
जग में दुर्लभ एक यथारथ, सम्यग्ज्ञान, महासुखखान॥ १२५॥

गुणस्थान की अपेक्षा ज्ञान वर्णन

कुमति कुश्रुत अरु विभंगावधि, प्रथम तथा दूजे गुणथान।
सुमति सुश्रुत सुअवधिज्ञानत्रय चौथे तैं बारम तक जान॥ १२६॥

पंचमा केवलज्ञान घातियाकर्मों के क्षय से होता है, यह ज्ञान लोक व अलोक सब को जानता है। श्री अरहंत भगवान् तथा सिद्ध भगवान् को यह केवल ज्ञान होता है॥ १२२॥

सम्यग्ज्ञान की महिमा वर्णन

इस संसार में सुख का कारण ज्ञान के समान अन्य दूसरा कोई नहीं है, यह सम्यग्ज्ञान जन्म, मरणरूपी रोग को दूर करने के लिये परम अमृत है–यही सुख की खान है॥ १२३॥

अज्ञानी जीव करोड़ों वर्ष तक तप करने से जिन कर्मों का क्षय करते हैं, उन कर्मों को सम्यग्ज्ञानी मुनिराज एक क्षण में नष्ट कर देते हैं॥ १२४॥

धन, मकान, सोना, मणि, राज्यपद व मन्त्रीपद ये सब संसार में सुलभ हैं केवल महान् सुख का निधान यथार्थ सम्यग्ज्ञान पाना दुर्लभ है॥ १२५॥

गुणस्थान अपेक्षा ज्ञान का वर्णन

कुमति, कुश्रुत और विभङ्गावधि ज्ञान ये तीन ज्ञान पहले व दूसरे गुणस्थान वाले जीवों के होते हैं। और सुमति, सुश्रुत ज्ञान और सुअवधि ज्ञान चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होते हैं॥ १२६॥

मन:पर्यय षष्टमतैं बारम, गुणस्थान तक होवे मान।
केवलज्ञान तेरवें तें है, और चौदहवें में पहिचान॥ १२७॥
गुणस्थान विरहित सिद्धों में भी यह क्षायिक केवलज्ञान।
ज्ञानरहित नहिं जीव कोई है, लक्षण चेतन दर्शन ज्ञान॥ १२८॥
महिमा सम्यग्ज्ञान अकथ है, ज्ञान बिना नहिं शिवपद पाय।
अष्टअङ्ग इसके भी कहिये, सम्यग्ज्ञान गहो सुखदाय॥ १२९॥

इति सम्यग्ज्ञान वर्णनम्

सम्यक्‌चारित्र

क्षयोपशम अरु उपशमक्षय हो, दर्शनमोहकर्म का जान।
तब हो सम्यक्‌दर्शन निश्चित, तत्क्षण होवे सम्यग्ज्ञान॥ १३०॥
रागद्वेष अरु चारित मोहको, विरत हेतु चारित शुभधार।
तब होवे वह शिवपथ पंथी, रत्नत्रयधारी सुखकार॥ १३१॥

मन:पर्यय ज्ञान छटवें से बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवल ज्ञान तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान तक होता है॥ १२७॥

गुणस्थान रहित सिद्ध भगवान् के भी क्षायिक केवलज्ञान होता है। ज्ञान रहित कोई जीव नहीं होता है क्योंकि जीव का लक्षण ही चैतन्य गुण (ज्ञान दर्शन) है॥ १२८॥

सम्यग्ज्ञान की महिमा अवर्णनीय है। ज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं है, इस सम्यग्ज्ञान के भी आठ अङ्ग* आगम में कहे गये हैं। ऐसे परम सुख देने वाले सम्यग्ज्ञान को ग्रहण करना चाहिये॥ १२९॥

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान का वर्णन समाप्त हुआ।

सम्यक् चारित्र का वर्णन

जब दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम, उपशम और क्षय होवे तब सम्यग्दर्शन होता है, उसी समय सम्यग्ज्ञान होता है॥ १३०॥

पश्चात् रागद्वेष और चरित्र मोहनीय दूर करने के लिये ज्ञानी जब सम्यक्‌चारित्र का पालन करते हैं, तब वह मोक्षमार्गी रत्नत्रयधारी होते हैं॥ १३१॥

---

* सम्यग्ज्ञान के आठ अङ्ग या भेद निम्न प्रकार हैं– १ व्यंजन व्यंजित, २ अर्थसमग्र, ३ तदुभयसमग्र, ४ कालाध्ययन, ५ उपधानोपहित, ६ विनयलब्धि सहित, ७ गुरुवादन्हव, ८ बहुमानोन्मान।

निश्चय अरु व्यवहार भेद द्वै, सम्यक्चारित के हैं सार।
साधन वह व्यवहार कहावे, निश्चय साध्य मोक्ष का द्वार॥ १३२॥
निज आतम में थिर तन्मय हो, वह है निश्चय चारितमान।
वह शुद्धोपयोग कहलावे, और स्वरूपाचरण सुजान॥ १३३॥
मुनि श्रावक व्रत तप धारें, चरितमोहक्षय उपशम जान।
निर्मल निश्चय चारित प्रगटे, गुणस्थान क्रम तैं पहिचान॥ १३४॥
अशुभ क्रियातें होय विरक्ति, शुभपरिणतिरत हो मतिमान।
है व्यवहार चरित्र भेद दो, सकल विकल संयम बुधवान॥ १३५॥
सकल चरित पाले वह साधु, सर्वपरिग्रह विरत महान्।
विकल चरित श्रावक पालें तिस, वरणूं इह संक्षिप्त सुजान॥ १३६॥

विकल चरित्र

विकल चरित द्वादश विध कहिये, एक देश संयम कहलाय।
अणुव्रत पंचरु गुणव्रतत्रय है, शिक्षाव्रत चउ भेद बताय॥ १३७॥

सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं एक निश्चयचारित्र, दूसरा व्यवहार चारित्र। जो निश्चय का साधन है वह व्यवहार चारित्र है और जो साध्य है वह निश्चयचारित्र है। यह मोक्ष का दरवाजा है॥ १३२॥

अपनी आत्मा में स्थिर तन्मय हो जाना वह निश्चय चारित्र है। वही शुद्धोपयोग है, वही स्वरूपाचरण है॥ १३३॥

मुनि और श्रावक के व्रत और तप धारण करने से चारित्र मोहनीय का क्षय व उपशम होता है, उसके पश्चात् गुणस्थान के अनुक्रम से निश्चय चारित्र प्रकट होता है, पहले नहीं॥ १३४॥

अशुभ क्रिया से विरक्त होकर शुभ क्रिया में (शुभोपयोग में) रत होना व्यवहार सम्यक् चरित्र है, यह सकल और विकल के भेद से दो प्रकार का है॥ १३५॥

सकलचारित्र तो सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी मुनिराज पालन करते हैं। और विकलचारित्र एकदेश संयम के पालन करने वाले देशव्रती श्रावक धारण करते हैं उस विकल चारित्र का मैं पहले वर्णन करता हूं॥ १३६॥

विकल अर्थात् एकदेश चारित्र बारह प्रकार का है, ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत॥ १३७॥

पंच पंच अतिचार कहे जिन, एक एक व्रत के भविजान।
जो श्रावक अतिचार रहित बुध, धारैं व्रत वह व्रती महान्॥ १३८॥

तिनके ग्यारह प्रतिमा कहिये, क्रम क्रम ऊपर चढ़ता जाय।
वह श्रावक मुनिव्रत के अतिक, पहुंचे पुनि मुनि भी हो जाय॥ १३९॥

प्रतिमा के नाम

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, निशिभोजनत्याग।
ब्रह्मचर्य, आरंभविरति अरु, परिग्रह त्यागरु अनुमतित्याग॥ १४०॥

है उद्दिष्ट त्याग शुभ प्रतिमा, वह उत्तम श्रावक कहलाय।
क्षुल्लक एलक भेद कहे तसु, मुनिसम लघुमुनि जगविरताय॥ १४१॥

इक कोपीनरु छोटीचादर, धारे वह क्षुल्लक कहलाय।
केवल इक कोपीन धरे वह, ऐलक सब तैं उच्च कहाय॥ १४२॥

इन बारहव्रतों में प्रत्येक के पांच पांच अतिचार हैं। जो श्रावक अति–चार रहित इन बारह व्रतों को धारण करता है वह व्रती श्रावक कहा जाता है॥ १३८॥

उस व्रतीश्रावक के ग्यारह दर्जे अर्थात् प्रतिमा होती है, एक एक प्रतिमा धारण करता हुआ क्रम क्रम से ऊपर ग्यारह तक पहुंचता है तब वह मुनिव्रत के समीप पहुंचता है फिर वह मुनि भी हो जाता है॥ १३९॥

प्रतिमाओं के नाम वर्णन

१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोषध, ५ सचित्तत्याग, ६ रात्रि भोजन त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरम्भ त्याग, ९ परिग्रह त्याग, १० अनुमतित्याग, ११ उद्दिष्टत्याग प्रतिमा। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा वाला उत्तम श्रावक कहलाता है, उसके क्षुल्लक और ऐलक दो भेद हैं, उसकी क्रिया मुनि के समान होती है। अतः वह लघुमुनि कहलाता है, संसार से विरक्त होता है॥ १४०॥ १४१॥

जो एक कोपीन और एक छोटी चादर (खण्ड व वस्त्र) धारण करते हैं। वे क्षुल्लक कहलाते हैं और जो केवल एक लंगोटी मात्र ही धारण करते हैं वे ऐलक कहे जाते हैं। वे सबसे ऊंचे श्रावक होते हैं॥ १४२॥

यत्नाचारी मनअविकारी, विषयविरक्त त्यक्त धनधाम।
ऐसा उद्दिष्ट त्यागी मुनिसम, श्रावक उत्तमजन अभिराम॥ १४३॥
ये द्वादशव्रत देश व्रती जो, पाले निरतिचार मतिमान।
ज्ञान ध्यान तप का अभ्यासी, शांतस्वभाव आत्मपहिचान॥ १४४॥
अंत समय जब मरण पास हो, धरि सन्यास तजै निजप्रान।
स्वर्ग सोलवें तक वह जावे, कल्पदेव निश्चय हो मान॥ १४५॥
तहते चय नरजन्म पायकरि, मुनिह्वै क्षपक श्रेणिचढ़ि जाय।
घातिकर्म क्षय केवल पाकर, हनि अघातिपुनि मोक्ष लहाय॥ १४६॥
जो नरजन्म पाय श्रावककुल, मुनिव्रत धार सके नहिं जान।
ते सम्यक्युत देशव्रती हों, करैं भविक आतम कल्यान॥ १४७॥

सकलचारित्र

सकलचरित संयम की महिमा, बड़ी अनूपम अकथ महान्।
सकल परिग्रह चउ विंशति तजि, मुनिवर धारैं पूज्य सुजान॥ १४८॥

यत्नाचार से चलने वाला, विकार भाव रहित, इन्द्रियों के विषयों से विरक्त घर-बार जिसने त्याग दिया है ऐसा उद्दिष्ट त्यागी उत्तम श्रावक होता है॥ १४३॥

इन बारह व्रतों को निरतिचार पालन करने वाला, ज्ञान, ध्यान, तप का अभ्यासी, आत्मा का अनुभवी व शांत स्वभाव वाला श्रावक होता है॥ १४४॥

अन्त समय में जब मृत्यु पास में आवे तब समाधिमरण से अपने प्राणों को छोड़ते हैं तो वे सोलहवें स्वर्ग तक के देव होते हैं॥ १४५॥

वहाँ से चय करके मनुष्य भव प्राप्त कर मुनि हो क्षपक श्रेणी आरोहणकर घातिया कर्मों का क्षय करते हैं। पश्चात् अघातिया कर्मों का क्षय कर मोक्ष जाते हैं॥ १४६॥

जो मनुष्य नर जन्म प्राप्त कर मुनिव्रत धारण नहीं कर सकें उनको सम्यग्दर्शन के साथ देशव्रत धारण कर आत्म कल्याण करना चाहिये॥ १४७॥

सकलचारित्र वर्णन

सकलचारित्र या सकल संयम की महिमा बड़ी महान् व उपमा रहित है, चौबीस प्रकार के समस्त परिग्रह को छोड़ने वाले पूज्य मुनिराज इसे धारण करते हैं॥ १४८॥

पंच महाव्रत पंच समिति त्रय, गुप्ति त्रयोदशविध यह जान।
षट् आवश्यक साधें यतिवर, पंचेन्द्रिय विजयी धर ध्यान॥ १४९॥
स्नान करें नहिं दन्त न धोवन, भूमिशयन भोजन इक बार।
खड़े अल्प भोजन आहारी, धर्मध्यानरत जीवन सार॥ १५०॥
केशलोंच करते वे गुरुवर, द्वादशतप दशधर्म सुधार।
द्वाविंशति परिषहजय करते, घोर तपस्वी शक्ति अपार। १५१॥
सरितातट तरुतल अरु पर्वत, शिखर जाय धरते वे ध्यान।
ध्यान सुथिर मुद्रा लखि मृगगण, खाजखुजावें उपल सुजान॥ १५२॥
वन में रहें जिनालय मठ या, हो एकान्त करें मुनिवास।
निज परहित में लगें निरन्तर, जगविरक्त भवभोग उदास॥ १५३॥
शत्रु मित्र प्रासाद जंगल, कंचन कांच स्तवन अपमान।
पूजक निंदक खड्गप्रहारक, में समताधर सर्व समान॥ १५४॥

पंच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति। इस प्रकार यह चारित्र तेरह प्रकार का होता है, इसके अतिरिक्त छ: आवश्यक, पंच इन्द्रिय विजय पालन करते हुये मुनिराज ध्यान धारण करते हैं॥ १४९॥

वे मुनि स्नान नहीं करते, दन्तमंजन नहीं करते, भूमि पर शयन करते हैं, दिन में एक बार खड़े हाथ के पात्र में अल्प आहार करते हैं। जीवनभर धर्मध्यान में जो लीन रहते हैं॥ १५०॥

केशों का लुञ्चन करते हैं, बारह प्रकार के तप और दस प्रकार के धर्म धारण करते हैं व बाईस परीषहों को हमेशा सहन करते हैं तथा घोर तपश्चर्या कर अपार आत्म शक्ति प्राप्त करते हैं॥ १५१॥

वे मुनिराज नदी के किनारे वृक्ष के नीचे व पर्वत के शिखर पर ध्यान लगाते हैं, उनकी ध्यानस्थ स्थिर मुद्रा को देखकर हिरन पाषाण की मूर्ति समझ खाज खुजाने लगते हैं॥ १५२॥

वे मुनिराज वन में, जिनालय में या मठ आदि एकान्त स्थान में निवास करते हैं। स्वपर हित में नित्य लगे रहते हैं, वे संसार से विरक्त और भोगों से उदासीन होते हैं॥ १५३॥

शत्रु, मित्र, वन और महल, कांच और कंचन, स्तुति व निन्दा, पूजा करने वालों व खड्ग से प्रहार करने वालों पर समताभाव रखते हैं॥ १५४॥

ज्ञान ध्यान में रहें निरन्तर, बाह्याभ्यन्तरसङ्ग विरक्त।
शिवमगपंथी वेषदिगम्बर, वंदे पद सुरनरपति भक्त॥ १५५॥
वे मुनिवर निर्ग्रंथ मुनीश्वर, साधु सूरि अरु उपाध्याय।
अठबीस छतिस पच्चिस तिनके, धरें मूलगुण करत उपाय॥ १५६॥
सप्तम षष्टम गुणस्थान में, झूलत धर्मध्यान रत जान।
द्वादश अनुप्रेक्षा नित चिन्तैं, तिनका भवि हित करूं बखान॥ १५७॥

द्वादश अनुप्रेक्षा (बारह भावना)

जे मुनि सकल व्रती बड़भागी, वैरागी भवभोग विरक्त।
नित वैराग्य बढ़ावन कारन, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भवत्यक्त॥ १५८॥
प्रथम अनित्य अपर अशरन हैं, अरु संसार तथा एकत्व।
शुभ अन्यत्व अशुचि आस्रव अरु, संवर कर्म निर्जरा तत्व॥ १५९॥
लोक बोधिदुर्लभ, शिवसुखकर, धर्म भावना अन्तिम जान।
यों द्वादशअनुप्रेक्षा चिन्तन, निशदिन मुनि करते शुभध्यान॥ १६०॥

निरन्तर वे मुनि ज्ञान ध्यान में लीन, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी, मोक्षमार्ग के पथिक, दिगम्बर वेषधारी होते हैं, इन्द्र और चक्रवर्ती जिन्हें नमस्कार करते हैं॥ १५५॥

वे निर्ग्रन्थ मुनीश्वर, साधु, आचार्य और उपाध्याय पद के धारी, अट्ठाईस, छत्तीस और पच्चीस मूलगुणों का क्रम से पालन करते हैं॥ १५६॥

सातवें, छटवें गुणस्थान में झूलते रहते हैं, वे मुनि धर्मध्यानी बारह भावनाओं का नित्य चिन्तन करते हैं। उन बारह भावनाओं का मैं यहाँ भव्य जीवों के हित के लिये वर्णन करता हूं॥ १५७॥

बारह भावनायें

जो सकल, संयम के धारी,भाग्यवान संसार के भोगों से विरक्त मुनि होते हैं वे वैराग्य की वृद्धि के लिये बारह भावनाओं का चिन्तन करते हैं, उनके नाम निम्न प्रकार हैं॥ १५८॥

१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आस्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म। इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षा (भावना) होती हैं। रात्रि दिन मुनिराज इनका चिन्तन करते हैं॥ १५९॥ १६०॥

१ अनित्य

है अनित्य सबअथिर भोगजग, क्षणभंगुर यौवन धन जान।
आयुअन्त निश्चयसब मरते, नरपति सुर खग इन्द्र महान्।। १६१।।

हुए पूर्व चक्री नारायन, राम लखन पाण्डव हनुमान।
बचा न कोई मरण कालतै, जो हैं अवश मरेंगे जान।। १६२।।

२ अशरण

ज्यों हरि मुख में मृगशावक का कोउ न रक्षक शरण न जान।
त्यों जग में नहिं शरणकहीं भी, मरण बचावे कोउ न आन।। १६३।।

इन्द्र और धरणेन्द्र, मंत्रमणि, तंत्र औषधि वैद्य महान्।
मृत्यु समय कोउ नहिं टाले, कोई बचा सके नहिं आन।। १६४।।

---

१ अनित्य भावना

पर्याय दृष्टि से संसार के भोग, यौवन,धन आदि सब अस्थिर क्षणभंगुर हैं, चक्रवर्ती, देव, विद्याधर, इन्द्र ये सब मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पूर्व में जितने राम, लक्ष्मण, चक्री आदि हुये वे सब मृत्यु को प्राप्त हुये, कोई बचा नहीं है और जो अभी हैं वे भी सब मृत्यु को प्राप्त होंगे।। १६१।। १६२।।

२ अशरण भावना

जिस प्रकार सिंह के मुख में फंसे मृग के बच्चे का कोई रक्षक या शरण देने वाला नहीं है, उसी प्रकार संसार के जीवों को मृत्यु से बचाने वाला कोई नहीं है। चाहे इन्द्र हो, धरणेन्द्र हो, मणि, मंत्र, औषधि या बड़े से बड़े वैद्य हो, कोई भी मरण समय को न तो टाल सकते हैं और न कोई बचा सकता है। ऐसा चिन्तन अशरण भावना है।। १६३।। १६४।।

३ संसार

यह संसार असार जगत सब, भोग भुजंगम विषसमजान।
इस जग में जिय दु:ख ही पावे, आकुलता चारों गति मान॥ १६५॥

यह जग जीव अनादि कालतैं, कर्म उदय भववन भटकाय।
काल अनंत भ्रमै चउगति में, जन्म मरण का अन्त न पाय॥ १६६॥

४ एकत्व

जन्मे मरे अकेला चेतन, कोई न साथी संग चलाय।
सुख दु:ख सब एकाकी भोगे, कर्मबंध आपहि फल पाय॥ १६७॥

तन धन गृह परिवार सकलजन, बंधु मित्र सब यहीं रहाय।
कोउ न साथी आप चले जब, तन तजि आतम खग उड़ि जाय॥ १६८॥

---

३ संसार भावना

यह संसार असार है और संसार के सब भोग सर्प के विष के समान हैं। इस संसार में सब जीव दु:ख उठा रहे हैं। चारों गति में आकुलता है। यह जीव अनादि काल से कर्म के उदय से संसार रूपी अटवी में भटक रहा है। अनन्तकाल हो गया जन्म मरण का अन्त नहीं हुआ। ऐसा चिन्तन संसार भावना है॥ १६५॥ १६६॥

४ एकत्व भावना

यह जीव अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरता है, कोई भी साथ नहीं आता है। सुख दु:ख को भी अकेला ही भोगता है और कर्मबंध भी अकेला ही करता है और कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है। शरीर, धन, मकान, परिवार, बन्धु, मित्र ये सब यहीं रह जाते हैं, जब यहाँ से आत्मा रूपी पक्षी उड़ जायेगा तब शरीर रूपी पिंजरा यहीं रह जायेगा। इस प्रकार का चिन्तन एकत्व भावना है॥ १६७॥ १६८॥

५ अन्यत्व

रे चेतन! तन भी नहिं तेरा, तब गृह धन क्यों तेरे होय।
तब तू क्यों निज धन को तजकर, परमें रत अज्ञानी होय॥ १६९॥

मात पिता धन वैभव नारी, राजमहल सब पर हैं जान।
तू नहिं इनका ये नहिं तेरे, परको पर निजको निज मान॥ १७०॥

६ अशुचि

यह मानुष तन मात पितारज, वीरज धातु उपज निःसार।
है अपवित्र अशुचि दुर्गन्धित, बहैं निरन्तर तन नवद्वार। १७१॥

रुधिर मूत्रमल अस्थि पीप की थैली ऊपर चमके चाम।
माखिन परसम चादर लिपटी, मूरख प्रीति करे निष्काम॥ १७२॥

---

५ अन्यत्व भावना

हे चेतन! जब यह शरीर तेरा नहीं है तब मकान धन आदि तेरे कैसे हो सकते हैं, तब तू अपनी आत्मा के धन (रत्नत्रय) को छोड़कर पर में अज्ञानी होकर क्यो लीन हो रहा है। माता–पिता, धन, वैभव, स्त्री, महल ये सब पर हैं। न तो तू इनका है न ये तेरे हैं तू पर को पर और निज को निज जान। यह अन्यत्व भावना है॥ १६९॥ १७०॥

६ अशुचि

हे आत्मन्! यह मनुष्यपर्याय का शरीर माता के रज और पिता के वीर्य संयोग से उत्पन्न हुआ है, अपवित्र दुर्गन्धमय है, इसमें निरन्तर नवद्वार बहते रहते हैं। यह देह हाड, मांस, खून, पीप की थैली है, ऊपर चमड़ी की चादर सी चमकती है, यह चादर मक्खी के पंख के समान पतली है, मूर्ख इससे व्यर्थ की प्रीति मतकर ऐसा चिन्तवन अशुचि भावना है॥ १७१॥ १७२॥

७ आस्रव

मन वच काय योग तैं आवे, कर्मशुभाशुभ बंधकराय।
चुम्बक ज्यों लोहे को खींचे, तप्त लोह सोखे जलपाय॥ १७३॥

कर्म कषाय भावतें बंधे, आत्म प्रदेशन पुनि मिलि जाय।
उदय आय सुखदुख जिय भुगते, आस्रव निजआतम दुखदाय॥१७४॥

८ संवर

ज्यों नाविक नौका का करता, छेद बंद पथिपार करेय।
सुभट अंग परधारि कवच ज्यों, रण भूमि में युद्ध करेय॥ १७५॥

त्यों संवर का कवचधारि मुनि, पंच महाव्रत गुप्तिसम्हार।
पंचसमिति दशधर्म परीषह, जयबल आस्रवोंके द्वार॥ १७६॥

---

७ आस्रव भावना

मन, वचन और काय की क्रिया को योग कहते हैं। योगों से शुभ अशुभ कर्मों का आस्रव होता है, वे ही कर्म आत्मा से बंध जाते हैं। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खींचता है और तपा हुआ लोहा जल को सोख लेता है उसी प्रकार योग से कर्म आते हैं और कषाय से आत्म प्रदेशों से मिल जाते हैं, उसी को बंध कहते हैं। यह आस्रव आत्मा को दुःख देने वाला है॥ १७३॥ १७४॥

८ संवर भावना

किसी नाव के छेद होने पर नाविक पानी को रोकने के लिये छेद बन्द कर पथिकों को नदी पार कराता है तथा युद्धभूमि में सुभट कवच को धारण कर युद्ध करता है, उसी प्रकार मुनिराज पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति दशधर्म परीषहजयरूपी कवच को धारण कर आस्रव को रोकते हैं यह संवर भावना है॥ १७५॥ १७६॥

९. निर्जरा

बंधेकर्म तप बल क्षय करते,वह मुनि की निर्जरा कहाय।
ज्यों ज्यों कर्म खिरें आत्मबल, त्यों त्यों आत्मशुद्ध प्रकटाय॥ १७७॥

काल पापके कर्म खिरे सविपाक निर्जरा तैं नहिं काज।
ध्यानशक्ति तपतैं विधि झरतैं वह अविपाक सरैं निजकाज॥ १७८॥

१०. लोक

चौदह राजु उतंग लोक यह, खड़ा अनादि पुरुष आकार।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्व लोकत्रय, तिनमें जीव सहे दुख भार॥ १७९॥

षट् द्रव्यों से भरा कोउनहिं, इसका निर्माता न धरेय।
चउगति भटके जीव कर्मवश, कर्मक्षयी शिव प्राप्त करेय॥ १८०॥

---

९. निर्जरा भावना

बंधे हुये कर्मों को तपश्चर्या के बल से मुनिराज क्षय करते हैं। ज्यों ज्यों कर्म खिरते हैं त्यों त्यों आत्मा की शुद्धता प्रकट होती जाती है। समय स्थिति पूर्ण होने पर खिरने वाली सविपाक निर्जरा से मोक्ष नहीं होता, ध्यान व तप की शक्ति से जो कर्म खिरते हैं वह अविपाक निर्जरा ही मोक्ष प्राप्त कराती है॥ १७७॥ १७८॥

१०. लोक भावना

यह लोक चौदह राजू ऊंचा अनादिकाल से पुरुषाकार खड़ा है, इस लोक के अधो, मध्य और ऊर्ध्व ये तीन भेद हैं, इन तीनों लोकों में संसारी जीव दुःख को सहन करते हैं, यह लोक छः द्रव्यों से भरा हुआ है किसी ने न तो इसे बनाया है न कोई इसको धारण करने वाला है, कर्मों के उदय से जीव इसमें चारों गतियों में भटकता है, कर्मक्षय करने वाला ही जीव मोक्ष जाता है। ऐसा चिन्तन लोक भावना है॥ १७९॥ १८०॥

११. बोधि दुर्लभ

है निगोदतैं थावर दुर्लभ, तातैं दुर्लभ त्रसपर्याय।
विकलेन्द्रियतैं पंचेन्द्रियतन, तिनमें दुर्लभ नरपर्याय॥ १८१॥
नरभव में उत्तम कुल दुर्लभ, दुर्लभ जिनवानी अति जान।
तिनमें आतम ज्ञान सुदुर्लभ, अरु रत्नत्रय दुर्लभ मान॥ १८२॥

१२. धर्म

दशविधधर्म धरें जो ज्ञानी, रत्नत्रय पालें हितकार।
मुनि श्रावक के धर्म धरें जो, धर्मिक लोक कहें तिन सार॥ १८३॥
मोह क्षोभ से रहित अवस्था, वह है निश्चय धर्म महान्।
साधन जो व्यवहार धर्म है, प्रथम होय पुनि निश्चय मान॥ १८४॥
धन्य धन्य वे नर भव पाकर, मुनि है द्वादशभावन भाय।
ध्यान शक्ति प्रकटें शुद्धातम, इह कछु ध्यान करूं वरणाय॥ १८५॥

---

११. बोधि दुर्लभ भावना

निगोद पर्याय से एकेन्द्रिय स्थावर पर्याय पाना कठिन है, स्थावर पर्याय से त्रसपर्याय और विकलेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्याय अत्यन्त कठिन है, पंचेन्द्रिय में मनुष्य पर्याय अत्यन्त कठिन है, उसमें भी नरभव, उत्तम कुल, जिनवानी श्रवण एक एक से दुर्लभ है उनमें भी सम्यग्ज्ञान के साथ रत्नत्रय पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसा चिन्तन बोधिदुर्लभभावना है॥ १८१॥ १८२॥

१२. धर्म भावना

जो ज्ञानी दश प्रकार का धर्म, और हितकारी रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं मुनि और श्रावक धर्म को धारण करते हैं वे धार्मिक अर्थात् धर्मात्मा कहे जाते हैं। मोह क्षोभ से रहित अवस्था है वह निश्चय धर्म है, और उसका साधन जो है वह मुनि और श्रावक धर्म व्यवहार धर्म है। पहले व्यवहार धर्म होता है पश्चात् निश्चय धर्म की प्राप्ति होती है— ऐसा चिन्तवन धर्म भावना है॥ १८३॥ १८४॥

वे मुनिराज धन्य हैं जो मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मुनि बनकर बारह भावनाओं को भाया, और शक्ति से शुद्ध आत्मा के स्वरूप को प्राप्त किया। अब मैं प्रसङ्गवश कुछ ध्यान का वर्णन करता हूं॥ १८५॥

ध्यान का वर्णन

मन एकाग्रनिरोध चिन्ताथिर, वह है ध्यान चतुर्विध जान।
आर्त रौद्र अरु धर्म शुक्ल यों, एक एक चउ भेद बखान॥ १८६॥

आर्त रौद्र द्वै जग के कारण, धर्म शुक्ल शिव हेतु सुध्यान।
इष्टवियोग अनिष्ट संयोगज, तथा वेदना और निदान॥ १८७॥

आर्त ध्यान के भेद चार ये, रौद्र ध्यान के भी यों चार।
हिंसानंद मृषानंद स्तेयानंद परिग्रहआनंद धार॥ १८८॥

धर्म ध्यान भी चार तरह का, आज्ञापाय विपाक सुजान।
है संस्थान विचय सुचतुर्थम, शुक्ल ध्यान भी चउविध मान॥ १८९॥

धर्म ध्यान के और भेद भी, शुभ पिण्डस्थ, पदस्थ सुजान।
अरु रूपस्थ तीसरा कहिये, रूपातीत चतुर्थम ध्यान॥ १९०॥

ध्यान का वर्णन

मन को एकाग्र अर्थात् एक पदार्थ की तरफ रोकना वह ध्यान का लक्षण है यह ध्यान—आर्तध्यान, रौद्रध्यान धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान के भेद से चार प्रकार का है; फिर एक एक ध्यान के भी चार चार भेद होते हैं॥ १८६॥

आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान संसार के कारण हैं और धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं। इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज, वेदना और निदान के भेद से आर्तध्यान चार प्रकार का है, उसी प्रकार रौद्र ध्यान भी चार प्रकार का है— हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंद, और परिग्रहानंद ये खोटे ध्यान हैं॥ १८७॥ १८८॥

धर्म ध्यान भी चार प्रकार का है, आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। इसी प्रकार शुक्ल ध्यान भी चार प्रकार के जानना चाहिये॥ १८९॥

धर्म ध्यान के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत के भेद से और भी भेद हैं—धर्म ध्यान का विषय भी बहुत विस्तृत है—जैसे कि॥ १९०॥

द्वादश भावन लोक सुचिन्तन, चउगति जग दुख चिन्तन जान।
सिद्ध और अरहंत गुणों का, चिन्तन ये सब धर्म ध्यान॥ १९१॥
प्रथम पृथकत्व वितर्क विचारहु, अरु एकत्व वितर्क विचार।
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति अरु व्युपरतक्रियानिवर्तिनि चार॥ १९२॥
ये चउ शुक्लध्यान कर्मक्षय, हेतु श्रेणि आरोहण काज।
धारें उत्तम मुनिवर इनको, परिणति शुद्धयुक्त यतिराज॥ १९३॥

गुणस्थान अपेक्षा ध्यान

आर्त ध्यान पहले तैं षष्टम, गुणस्थान तक होवे जान।
रौद्रध्यान पहले तैं पंचम, गुणस्थान तक ही पहिचान॥ १९४॥
धर्मध्यान चौथे तैं सप्तम, गुणस्थान तक पहुंचे जान।
अष्टम तैं चौदहवें तक है, शुक्ल ध्यान महिमा अति मान॥ १९५॥
धर्मध्यान दशवें तक कहिये, शुक्ल ध्यान ग्यारमतैं जान।
यह मत वीरसेन स्वामी का, धवल ग्रंथ आगम परमान॥ १९६॥
आर्तध्यान है पशुगति कारण, रौद्र ध्यान तैं नरकों जाय।
धर्म ध्यानतैं वैमानिकसुर, शुक्ल ध्यान तैं शिव पद पाय॥ १९७॥

बारह भावनाओं का चिन्तन, चारों गति के दुःखों का चिन्तन, सिद्ध व अरहंत भगवान् के गुणों का चिन्तन ये सब धर्म ध्यान के विषय हैं॥ १९१॥

शुक्ल ध्यान के निम्न प्रकार चार भेद हैं। १ पृथकत्ववितर्क, २ एकत्ववितर्क, ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, ४ व्युपरतक्रिया निवर्तिनि॥ १९२॥

ये चारों शुक्ल ध्यान कर्म क्षय के कारण हैं, श्रेणी आरोहण करने वाले शुद्धोपयोगी मुनिराज इन्हें धारण कर मोक्ष जाते हैं ॥ १९३॥

गुणस्थान अपेक्षा ध्यान

आर्तध्यान पहले गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक होता है रौद्रध्यान पहले से पांचवें तक होता है। धर्म ध्यान चौथे गुणस्थान से सातवें तक होता है, और शुक्ल ध्यान आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक होता है, शुक्ल ध्यान की बड़ी महिमा है॥ १९४॥ १९५॥

धवल ग्रंथ के टीकाकार श्री विनसेन स्वामी के मत से धर्म ध्यान दशवें गुणस्थान तक होता है और शुक्ल ध्यान ग्यारहवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है॥ १९६॥

किस ध्यान से कौन गति ?

आर्तध्यान से तिर्यञ्चगति, रौद्र ध्यान से नरकगति और धर्म ध्यान से देवगति (वैमानिकदेव) और शुक्ल ध्यान से मोक्ष की प्राप्ति होती है॥ १९७॥

इस प्रकार ध्यान का वर्णन समाप्त हुआ।

कषाय का वर्णन

ज्यों कषाय हो मंद मंदतम, त्यों त्यों आतम शुद्ध सुजान।
कर्म बंध जननी यह तातैं, इह कषाय का कछु बखान।। १९८।।
जो आतम को कषै दु:ख दे, कर्मबंध कारण पहिचान।
वह कषाय है क्रोध मान अरु, माया लोभ चतुर्विध जान।। १९९।।
अनंतानुबंधी आदि की, ऐसा षोडश भेद सुजान।
हास्यादिक ईषद् कषायनव, यों कषाय पच्चीस बखान।। २००।।
क्रोध चार परकार कहा यों, पत्थर रेखरु पृथ्वीरेख।
धूलि रेख अरु नीर रेख सम, क्रोधकषाय चतुर्विध देख।। २०१।।
मान कषाय चतुर्विध कहिये, इनकी क्रमश: यों पहिचान।
पत्थर, हड्डी काष्ठ बेत सम, माया भी चउविध यों जान।। २०२।।
प्रथम बांस जड़ सम मेंढ़े के, सींग समान द्वितिय है जान।
गायमूत्र अरु खुरपा सम है, माया कपट कषाय बखान। २०३।।

कषाय का वर्णन

ज्यों ज्यों कषाय मंद और अतीव मंद होती जाती है त्यों त्यों आत्मा की शुद्धता प्रकट होती है। यह कषाय कर्मों को उत्पन्न करने वाली जननी (माता) है। इसलिए प्रसंग पाकर यहां मैं कषाय का भी अल्प वर्णन करता हूं।। १९८।।

जो आत्मा को कषै अर्थात् दु:ख दे उसका नाम कषाय है इसे ही कर्म बंध का कारण जानना चाहिये। कषाय के मूल चार भेद हैं, १ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ।। १९९।।

इन चारों की अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन से मिलाने पर सोलह भेद कषाय के होते हैं, फिर हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद इन नौ प्रकार की नौ कषाय को मिलाकर पच्चीस कषाय होती हैं।। २००।।

क्रोध कषाय चार प्रकार की होती हैं, पत्थरकी रेखा के समान, पृथ्वी रेखा के समान, धूलि रेखा के समान, और पानी की रेखा के समान।। २०१।।

मानकषाय भी चार प्रकार की है क्रमश: पत्थर, हड्डी, लकड़ी और बेंत के समान। माया कषाय भी चार प्रकार की है बांस की जड़ के समान, मेंढ़े के सींग के समान, गोमूत्र के समान और खुरपा के समान होती है।। २०२।। २०३।।

लोभकषाय तथैव चारविध, क्रिम के राग चक्र मल रूप।
तथा कायमल हल्दी रंग सम, क्रमशः लोभ कही दुखरूप॥ २०४॥
चार कषाय मूल हैं भविजन, एक एक चउ भेद सुजान।
नरक पशु मानुष सुरगति के क्रमशः बंधक कारण मान॥ २०५॥
अनंतानुबंधी चौकड़ी ये सम्यकदर्शन घातक जान।
पहले दूजे तीजे में यह गुणस्थान तक रहती मान॥ २०६॥
अप्रत्याख्यानावरणी चउ, चौथे गुणस्थान तक मान।
एक देश व्रत को यह घाते, व्रत संयम बाधक पहिचान॥ २०७॥
प्रत्याख्यानावरणी चउविध, पंचम गुणस्थान तक मान।
सकलचारित्र मुनिव्रत घातें, महाव्रतों की बाधक जान॥ २०८॥
अरु कषाय संज्वलन चौकड़ी, नोकषाय हास्यादिक जान।
दशवें गुणस्थान तक कहिये, यथाख्यात घातें भविमान॥ २०९॥

लोभ कषाय भी चार प्रकार की हैं, क्रिमिरोग के समान, चक्र के मल के समान, शरीर के मैल के समान और हल्दी के रंग के समान क्रम से होती हैं ये सब कषायें दुःख रूप ही होती हैं॥ २०४॥

ऊपर कही गई मूल कषायें चार और एक एक के चार भेद इनके जानना चाहिये। ये चारों एक एक कर क्रम से नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्य गति और देव गति के कारण हैं अर्थात् इनका पहला पहला भेद चारों का नरक गति और अंतिम भेद देव गति का कारण है, बीच के दो तिर्यञ्च व मनुष्य गति के कारण हैं॥ २०५॥

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ–सम्यग्दर्शन को घातने वाली कषाय है, यह पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान तक होती है॥ २०६॥

अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया और लोभ–एक देश व्रत को घातने वाली कषाय हैं यह चौथे गुणस्थान तक रहती हैं॥ २०७॥

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ सकल चरित्र महाव्रतों की घातक कषाय हैं, यह पाँचवें गुणस्थान तक होती हैं॥ २०८॥

और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ कषाय यथाख्यात चारित्र को घातती है–यह कषाय और हास्यादिक नोकषाय दशवें गुणस्थान तक होती हैं॥ २०९॥

करिकषाय जग प्राणी नित प्रति, कर्मबंध करता अनजान।
कर्म उदय पुनि पुनि कषाय हो, तातैं आस्रव बंध सुजान॥ २१०॥
यों अनादि तैं चौरासीलख, योनि चारगति भटकत जीव।
भव भ्रमण कारण कषाय है, तातैं तजहु कषाय सदीव॥ २११॥
क्रोध मान माया अरु लालच, मूल कषाय दुःख की खान।
अति संक्षेप किया यह वर्णन, गुणस्थान अब करूं बयान॥ २१२॥

इति कषाय वर्णनम्

गुणस्थान वर्णन

हो कषाय ज्यों मंद मंदतम, गुणस्थान त्यों चढ़ता जाय।
तातैं अब इह गुणस्थान का, वर्णन करूं भविक हित दाय॥ २१३॥
मोहयोग तैं जग प्राणी की, दर्शन ज्ञान चरित की जान।
तारतम्य मय होय अवस्था, गुणस्थान ताको पहिचान॥ २१४॥

यह संसारी जीव नित्य प्रति अज्ञानी होकर कर्मों का बंध करता है, फिर जब कर्मों का उदय आता है तब पुनः कषाय कर कर्मों का आस्रव और बंध करता है, इस प्रकार कषाय से कर्म, कर्म से कषाय ऐसी परम्परा चिरकाल तक चलती रहती है—जब तक कि संवर न हो॥ २१०॥

इस प्रकार अनादिकाल से चार गति और चौरासी लाख योनियों में यह जीव कषाय के कारण भ्रमण करता है, इसलिये हे भव्य जीवों कषाय को सदा छोड़ना चाहिये॥ २११॥

मूल कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ का और इनके भेद प्रभेद आदि का बहुत संक्षेप से यहां वर्णन किया है, वैसे भिन्न भिन्न जीवों के परिणामों की अपेक्षा कषायें सैकड़ों, हजारों, संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रकार की हो जाती हैं। अब मैं इनके आगे गुणस्थान का वर्णन करूंगा॥ २१२॥

इस प्रकार कषाय का वर्णन समाप्त हुआ।

गुणस्थान का वर्णन

ज्यों ज्यों कषाय मंद होती है, त्यों त्यों आत्मा गुणस्थान ऊपर ऊपर चढ़ता जाता है। इस कारण अब यहां मैं गुणस्थान का वर्णन करता हूं॥ २१३॥

मोह और योग के निमित्त से संसारी जीव की दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तारतम्य अवस्था को गुणस्थान कहते हैं॥ २१४॥

है मिथ्यात्व द्वितिय सासादन, मिश्र और अविरत गुण थान।
देशविरत षष्टम् प्रमत्त है, अप्रमत्त सप्तम बुध जान॥ २१५॥
अपूर्वकरण अनिवृति करण अरु, सूक्षम सांपराय शुभ जान।
ग्यारहवां उपशांत मोह है, क्षीणमोह बारहवां मान॥ २१६॥
तेरहवां है सयोगकेवली, अरु अयोग केवली महान्।
यों हैं गुणस्थान चउदशभवि, तिनका वर्णन सुनहु सुजान॥ २१७॥
प्रथम द्वितिय अरु तृतिय तीन ये, जग के कारण हैं गुण थान।
चौथे में सम्यक्त्व प्रकट हो, पंचम देशव्रती गुणस्थान॥ २१८॥
षष्टम् सप्तम में मुनि झूलें, अष्टम् तें श्रेणी चढ़िजाय।
उपशम श्रेणी ग्यारम जावे, क्षपक श्रेणी बारहवें जाय॥ २१९॥
तत्क्षण घाति कर्म हनि पहुंचे, तेरहवें पा केवल ज्ञान।
दिव्यध्वनि खिर भव्य संबोधें, तापुनि योग निरोध करान॥ २२०॥
चौदहवें गुणस्थान जाय जिन, पंचह्रस्व अक्षर का काल।
द्रव्य कर्म नो कर्म भावहनि, मोक्ष जाहिं ऋजुगति तत्काल॥ २२१॥

ये गुणस्थान चौदह होते हैं, १ मिथ्यात्व, २ सासादन,३ मिश्र, ४ अविरत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसांपराय, ११ उपशांतमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली, १४ अयोगकेवली। इस प्रकार चौदह गुणस्थान के भेद हैं उनका संक्षेप से वर्णन करता हूं उसे ध्यान से सुनिये॥ २१५॥ २१६॥ २१७॥

पहला, दूसरा और तीसरा गुणस्थान संसार के कारण हैं। और चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, पांचवें गुणस्थान में देशव्रती होता है॥ २१८॥

छटवें सातवें में मुनि झूलते रहते हैं, आठवें गुणस्थान से श्रेणी प्रारम्भ होती है, उपशम श्रेणी ग्यारहवें तक होती है, क्षपक श्रेणी वाला मुनि ग्यारहवें को छोड़ कर सीधा बारहवें में चढ़ता है॥ २१९॥

उसी समय घातिया कर्मों का क्षयकर तेरहवें गुणस्थान में जाता है, केवलज्ञान प्राप्त कर दिव्यध्वनि खिरती है, जिससे भव्य जीवों का हित होता है, फिर योग का निरोध करने चौदहवें गुणस्थान में जाकर केवली भगवान् पांच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण काल में ही समस्त कर्मों का क्षयकर ऋजुगति से उसी समय भगवान् मोक्ष में चले जाते हैं॥ २२०॥ २२१॥

प्रत्येक गुणस्थान का वर्णन

१. मिथ्यात्व गुणस्थान

हो श्रद्धानतत्वका विपरीत, प्रकृति उदय मिथ्यात्व सुजान।
सच्चे देव शास्त्र नहिं रुचे, यह मिथ्यात्व कहा गुणथान॥ २२२॥
पंच भेद विपरीत और एकान्त विनय संशय अज्ञान।
सादि अनादि काल भ्रमत है जीव ताहि वश दुख की खान॥ २२३॥
इकशत सत्रह प्रकृति बंध है, उदय प्रमाण तथैव बखान।
इकशत छयालीस सत्व जानिये, यह मिथ्यात्व प्रथम गुणथान॥ २२४॥

२. सासादन

समकितपर मिथ्यात्व उदय करि, गिरे पुनः मिथ्यात्व हि आय।
बीच समय में रहे कहीं क्षण, सासादन गुणथान कहाय॥ २२५॥
इकशत एक प्रकृति का बंध है, इकशत ग्यारह उदय सुजान।
सत्वकहा इकशत पैंतालिस, सासादन दूजा गुणथान॥ २२६॥

अब प्रत्येक गुणस्थान का वर्णन करते हैं।

१. मिथ्यात्व गुणस्थान

जीवों को तत्वों का उलटा श्रद्धान हो, और मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो तब पहला मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, उसे सच्चे देव शास्त्र, गुरु में श्रद्धा नहीं होती है। इस मिथ्यात्व के पांच भेद हैं, १ विपरीत, २ एकान्त, ३ विनय, ४ संशय, ५ अज्ञान। इनमें कई जीव अनादि मिथ्यादृष्टि होते हैं इस गुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का बंध है और ११७ का ही उदय है तथा एक सौ छियालीस का सत्व कहा गया है, यह पहला मिथ्यात्व गुणस्थान है॥ २२२॥ २२३॥ २२४॥

२. सासादन गुणस्थान

सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद कोई जीव मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान में गिरता है, उस गिरने के पूर्व बीच की अवस्था सासादन गुणस्थान कहलाता है, इस गुणस्थान में १०१ प्रकृतियों का बंध है और १११ का उदय है तथा १४५ प्रकृतियों का सत्व है, यह दूसरा सासादन गुणस्थान है॥ २२५॥ २२६॥

३. मिश्र

गुणस्थान तीजा यह जानहु, प्रकृति उदय सम्यक् मिथ्यात्व।
दधि गुड़ मिले स्वाद सममिश्रित, भावमिलित सम्यक् मिथ्यात्व॥ २२७॥

मिश्र नाम सार्थक है इसका, बंध चिहुत्तर प्रकृति सुजान।
उदय एकशत तथा सत्व है, इकशत सैंतालीस प्रमान॥ २२८॥

४. अविरत सम्यक्त्व

दर्शन मोह प्रकृति त्रय जानहु, अनंतानुबंधी चउ जान।
सप्त प्रकृति क्षय क्षायिक समकित, उपशम तैं उपशम हो मान॥ २२९॥
कछुक्षय कछु उपशम तैं जो हो, क्षयोपशम सम्यक्त्व कहाय।
यों त्रयविध सम्यक्त्व कहावे, चौथा गुणस्थान वरणाय॥ २३०॥

---

३ मिश्र गुणस्थान

जिस गुणस्थान में सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से दही गुड़ मिश्रित स्वाद की तरह सम्यक्त्व और मित्यात्व रूप मिले हुए परिणाम हों वह मिश्र गुणस्थान कहलाता है॥ २२७॥

इस गुणस्थान का मिश्र नाम सार्थक ही है, इस गुणस्थान में ७४ प्रकृतियों का बंध है और १०० प्रकृतियों का उदय है और १४७ प्रकृतियों का सत्व है॥ २२८॥

४ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति ये तीन तो दर्शन मोहनीय की और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, और लोभ ये चार चारित्र मोहनीय की इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक् दर्शन, और इन सातों के उपशम से उपशम सम्यक् दर्शन तथा कुछ के क्षय और कुछ के उपशम से क्षयोपशम (वेदक) सम्यग्दर्शन होता है, इस प्रकार ये तीन प्रकार का सम्यग्दर्शन जहां होता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि नाम का चौथा गुणस्थान है॥ २२९॥ २३०॥

अष्ट अङ्ग अरु दोष पचीसन, तजे देव गुरु श्रद्धावान।
बंध सतत्तर उदय एकशत, चार सत्व सबही का मान॥ २३१॥

५. देशविरत

अप्रत्याख्यानावरणी चउ, उपशम क्षय पंचम गुणस्थान।
देशव्रती श्रावक तिन कहिये, ग्यारह प्रतिमा भेद सुजान॥ २३२॥
सड़सठ बंध उदय सतासी, इकशत सैंतालिस का सत्व।
एकदेश संयम शिवपंथी, दृढ़ श्रद्धानी श्रावक तत्व॥ २३३॥

६. प्रमत्तविरत

षष्टम् गुणस्थान में मुनि है, नाम प्रमत्तविरत पहिचान।
संज्वलन चउ नौ कषायका, उदय, परिग्रह त्यागी मान॥ २३४॥

इसमें सम्यक्त्व के आठ अङ्ग सहित व पच्चीस दोष रहित तत्वों और सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की तथा दयामयी धर्म की दृढ़ श्रद्धा होती है, इस गुणस्थान में ७७ प्रकृतियों का बंध, और १०० प्रकृतियों का उदय तथा १४८ का सत्व होता है॥ २३१॥

५. देशविरत गुणस्थान

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ कषायके उपशम और क्षय से देशविरत नाम का पांचवां गुणस्थान होता है, इस गुणस्थान वाले को देशव्रती कहते हैं, इसके ग्यारह प्रतिमा रूप भेद होते हैं॥ २३२॥

इस गुणस्थान में ६७ प्रकृतियों का बंध, ८७ प्रकृतियों का उदय और १४७ कर्म प्रकृतियों का सत्व होता है। यह देशव्रती दृढ़ श्रद्धानी व तत्वों का ज्ञाता व मोक्षमार्गी होता है॥ २३३॥

६. प्रमत्त विरत गुणस्थान

जिन मुनि के संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार और नव नौ कषाय का उदय है उन परिग्रह त्यागी मुनिराज के प्रमत्त विरत छटवां गुणस्थान होता है॥ २३४॥

तेरह विध चारित्र सुपालक, क्षय उपशम हो प्रत्याख्यान।
त्रेसठ बंध उदय इक्यासी, न्यून दोय सब सत्व सुजान॥ २३५॥

७. अप्रमत्त विरत

संज्वलन अरु नौ कषाय का, मंद उदय मुनि मुक्त प्रमाद।
निरतिचार संयम धर ध्यानि, वह पहुंचे सप्तम गुणथान॥ २३६॥

प्रकृति बंध उनसठ छिहत्तर, उदय सत्व शतइक छ्यालीस।
क्षायिक के दशन्यून सत्व है, सर्वप्रमाद रहित मुनि ईश॥ २३७॥

८. अपूर्वकरण

श्रेणी चढ़े ध्यान में मुनिजन, सप्तम तैं अष्टम में आय।
है अपूर्व परिणाम सुनिर्मल, चरित मोह उपशम क्षय थाय॥ २३८॥

ये मुनि तेरह प्रकार के चारित्र के पालन करने वाले, प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षय या उपशम करने वाले होते हैं। इस गुणस्थान में ६३ प्रकृतियों का बंध, और ८१ प्रकृतियों का उदय और १४६ प्रकृतियों का सत्व होता है॥ २३५॥

७. अप्रमत्त विरत गुणस्थान

जो मुनि संज्वलन चौकड़ी और नौ कषाय के मंद उदय वाले हैं, और पन्द्रह प्रमाद से सर्वथा मुक्त हैं ऐसे निर्दोष सकल संयमधारी मुनि सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में पहुंचते हैं। इस गुणस्थान में ५९ प्रकृतियों का बंध, ७६ प्रकृतियों का उदय और १४६ प्रकृतियों का सत्व होता है, क्षायिक सम्यग्दृष्टि के दश प्रकृतियों का सत्व कम होता है, सम्पूर्ण प्रमाद से रहित मुनि इस गुणस्थान में रहते हैं॥ २३६॥ २३७॥

८. अपूर्वकरण गुणस्थान

जिस समय मुनिराज श्रेणि आरोहण करते हैं तब वे सातवें गुणस्थान से आठवें गुणस्थान में पहुंचते हैं, चारित्र मोहनीय का उपशम और क्षय प्रारम्भ करते हैं॥ २३८॥

प्रथम शुक्ल ध्यानी अट्ठावन, बंध इकतर उदय सुजान।
सत्व एकशत अठ त्रिंशत का, नाम अपूर्वकरण पहिचान।। २३९।।

९. अनिवृत्तिकरण

है थिरभाव अधिक अष्टम तैं, चढ़ते भाव अध: नहिं थाय।
गुणस्थान अनिवृत्तिकरण यह, उपशम क्षपक श्रेणी द्वै पाय।। २४०।।
क्षण क्षण में परिणाम शुद्ध हों, बंध प्रकृति बाईस बखान।
छयासट उदय सत्व इक शत अरु, त्रिंशत आठ प्रकृति शुभजान।। २४१।।

१०. सूक्ष्मसांपराय

सूक्षम लोभ उदय दसवें में, साम्पराय का अर्थ कषाय।
क्षय या उपशम अन्य कषायें, निर्मल भाव उच्च मुनिराय।। २४२।।
उपशम श्रेणी चढ़े इकादश, क्षपक बारवें सीधा जाय।
सत्रह बंध रु उदय साठ का, सत्व एकशत द्वै बतलाय।। २४३।।

इस गुणस्थान में परिणाम अपूर्व निर्मल होते हैं अत: इसका नाम अपूर्वकरण है। प्रथम शुक्ल ध्यानी मुनिराज इस गुणस्थान में ५८ प्रकृतियों का बंध करते हैं और ७२ प्रकृतियों का उदय व इसमें १३८ प्रकृतियों का सत्व होता है।। २३९।।

९. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

आठवें गुणस्थान से स्थिर और चढ़ते हुए परिणाम नवमें गुणस्थान में होते हैं इसमें भाव गिरते नहीं हैं, उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी वाले मुनिराज आठवें से नवमा अनिवृत्तिकरण गुणस्थान प्राप्त करते हैं, क्षण क्षण में परिणाम निर्मल होते हैं इस गुणस्थान में २२ प्रकृतियों का बंध, व ६६ प्रकृतियों का उदय होता है तथा १३८ का सत्व रहता है।। २४०।। २४१।।

१०. सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान

सांपराय का अर्थ कषाय है इस गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ कषाय का केवल उदय होने से इसका नाम सूक्ष्म सांपराय है, अन्य कषायों का इसमें क्षय और उपशम होने से मुनि के अत्यन्त निर्मल परिणाम होते हैं, इस दसवें गुणस्थान में १७ प्रकृतियों का बंध और ६० प्रकृतियों का उदय तथा सत्व १०२ प्रकृतियों का होता है। उपशम श्रेणी वाले मुनिराज इस गुणस्थान से ग्यारहवें में चढ़ते हैं, और क्षपक श्रेणि वाले सीधे बारहवें में चढ़ते हैं।। २४२।। २४३।।

११. उपशांत मोह

चारित मोह उपशम सम्पूरण, यथाख्यात चारित प्रकटाय।
उपशम श्रेणिधर मुनिवर ही, दशवें तैं ग्यारहवें जाय॥ २५४॥
है उपशान्त मोह गुणस्थानी, प्रकृति एक बंध सुजान।
उदय प्रकृति उनसठ का कहिये, इकशत ब्यालिस सत्व प्रमान॥ २५५॥

१२. क्षीण मोह

पूर्ण मोह के क्षयते निर्मल, आतम शुद्ध रूप प्रकटाय।
स्फटिक पात्र में निर्मल जल ज्यों, यथाख्यात धारक मुनिराय॥ २५६॥
क्षीण मोह नामक गुणथानक, घाति कर्म त्रय अंत नशाय।
बंध एक अरु उदय सत्तावन, सत्व एकशत एक बताय॥ २५७॥

---

११. उपशांत मोह गुणस्थान

सम्पूर्ण चारित्र मोहनीय कर्म का जिस गुणस्थान में उपशम होकर यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है उसे उपशांत मोह नाम का ग्यारहवां गुणस्थान कहते हैं। उपशम श्रेणी वाले मुनिराज ही इस गुणस्थान में चढ़ते हैं। इस गुणस्थान में एक प्रकृति का बंध है, और ५९ प्रकृति का उदय, तथा १४२ प्रकृति का सत्व है॥ २५४॥ २५५॥

१२. क्षीण मोह गुणस्थान

सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से आत्मा का शुद्ध स्वरूप स्फटिक मणि के पात्र में रक्खे शुद्ध निर्मल जल की तरह जिनके परिणाम इस गुणस्थान में प्रकट हो जाते हैं, यथाख्यात चारित्र के धारक वे मुनिराज बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान धारी कहलाते हैं। इस गुणस्थान के अंत में तीन घातिया कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, अंतराय) का क्षय होता है। इस गुणस्थान में १ एक प्रकृति का बंध, ५७ प्रकृतियों का उदय और १०१ प्रकृतियों का सत्व होता है॥ २५६॥ २५७॥

१३. सयोग केवली

घाति कर्म की सैंतालिस अरु, प्रकृति अघाति षोडश जान।
कर्मघातिया पूरण क्षयतें, पाया जिननें केवलज्ञान॥ २४८॥
तेरहवें गुणस्थान दिव्यध्वनि खिरैं भविक बोधे जिनराय।
बंध एक अरु उदय बयालिस, सत्व पिचासी प्रकृति बताय॥ २४९॥

१४. अयोग केवली

शुक्ल चतुर्थम् ध्यान लगाकर, योग निरोध करें जिसहाल।
चौदहवां गुणथान रचे जिन, पंचह्रस्व अक्षर का काल॥ २५०॥
द्विचरम बहत्तर प्रकृति नाशकरि, अंत त्रयोदश क्षय करवाय।
बंध नहीं कोई प्रकृति का, क्षण में सिद्ध शिला पहुंचाय॥ २५१॥
यों है गुणस्थान का वर्णन, गुणस्थान क्रम कर्म झराय।
ज्यों ज्यों चढ़े शुद्धता पावे, चढ़े गिरे क्रम अब वरणाय॥ २५२॥

---

१३. सयोग केवली गुणस्थान

घातिया कर्म की ४७ और अघातिया कर्म की १६ इन त्रेसठ प्रकृतियों का क्षय कर तेरहवें सयोग केवली गुणस्थान में पहुंचते हैं, सम्पूर्ण घातिया कर्मों के क्षय हो जाने से जिनें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है, दिव्य ध्वनि द्वारा जिनेन्द्र भव्य जीवों को सम्बोधित करते हैं उसे तेरहवां सयोग केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में एक प्रकृति का बंध, ४२ प्रकृतियों का उदय, और ८५ प्रकृतियों का सत्व होता है॥ २४८॥ २४९॥

१४. अयोग केवली गुणस्थान

जिस गुणस्थान में चतुर्थ शुक्ल ध्यान के बल से योग का निरोध होता है उसे अयोग केवली गुणस्थान कहते हैं, इस गुणस्थान का अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पांच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण जितना काल होता है। इस गुणस्थान में जिनेन्द्र भगवान् द्विचरम समय में ७२ प्रकृतियों का और अंत समय में शेष १३ प्रकृतियों का क्षय कर एक समय में सिद्ध शिला में जा विराजते हैं। इस गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का न तो बंध है और न उदय है॥ २५०॥ २५१॥

इस प्रकार गुणस्थानों का वर्णन किया है, ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते हैं त्यों त्यों कर्म झरते जाते हैं और आत्मा की शुद्धता प्राप्त होती जाती है अब गुणस्थान से चढ़ने उतरने का वर्णन करते हैं॥ २५२॥

गुणस्थान चढ़ने उतरने का क्रम

गुणस्थान चढ़ने गिरने का, क्रम अब वर्णन करूं सुजान।
सुनो भविकजन उसको मन से, जिससे हो आतम कल्यान॥ २५३॥
प्रथम गुणस्थान तैं ऊपर, चढ़े तो आवे चउ गुणस्थान।
तृतीय चतुर्थम पंचम सप्तम, इन चारों में आवे मान॥ २५४॥
दूजे गुणस्थान तैं गिरता, प्रथम आय ऊपर नहिं जाय।
तीजे तैं गिर पहले आवे, चढ़े तो चौथे में वह जाय॥ २५५॥
गुणस्थान चौथे तैं चढ़ता, पंचम सप्तम में वह जाय।
गिरे तो तीजा दूजा पहला, गुणस्थान त्रय में पहुंचाय॥ २५६॥
पंचम गुणस्थान तैं ऊपर, चढ़े तो सप्तम में वह जाय।
गिरे तो चौथा, तीजा दूजा, पहले गुणस्थान तक आय॥ २५७॥
षष्टम् गुणस्थान के मुनिवर, चढ़े तो सप्तम में वह जाय।
गिरे तो पंचम, और चतुर्थम, तीजे दूजे पहले आय॥ २५८॥

गुणस्थान चढ़ने उतरने का क्रम वर्णन

गुणस्थान चढ़ने उतरने के क्रम का अब मैं वर्णन करूंगा। हे भव्य जीवों! उसे ध्यान से सुनो जिससे आत्मा का हित होवे॥ २५३॥

पहले गुणस्थान से चढ़े तो जीव तीसरा, चौथा, पांचवा, और सातवां इन चार गुणस्थानों में जाता है।॥२५४॥

दूसरे गुणस्थान से गिर कर पहले में आवे, ऊपर नहीं चढ़ता। तीसरा गुणस्थान वाला जीव गिरे तो पहले गुणस्थान में आवे, और चढ़े तो चौथे गुणस्थान में जावे॥ २५५॥

चौथे गुणस्थान से ऊपर चढ़ने वाला पांचवें और सातवें गुणस्थान में आता है, और गिरे तो तीसरा, दूसरा, और पहले इन तीन गुणस्थानों में आता है॥ २५६॥

पांचवें गुणस्थान वाला ऊपर चढ़े तो सातवें गुणस्थान में जाता है, और गिरे तो चौथा, तीसरा, दूसरा और पहला इन चार गुणस्थानों में आता है॥ २५७॥

छटवें गुणस्थान वाले मुनि, ऊपर चढ़े तो सातवें गुणस्थान में जावे, और गिरे तो पांचवां, चौथा, तीसरा, दूसरा, और पहले गुणस्थान में आता है॥ २५८॥

सप्तम तैं श्रेणि चढ़ि मुनिवर, अष्टम् गुणस्थान में जाय।
गिरें तो षष्टम् में वे आवें, सप्तम षष्टम् में झूलाय॥ २५९॥
अष्टमतैं नवमें में जावें, गिरे तो सप्तम में आ जाय।
नवमें का मुनि दशवें पहुंचे, गिरे तो अष्टम् में गिर जाय॥ २६०॥
दशवें गुणस्थान के मुनिवर, उपशमश्रेणि ग्यारहवें जाय।
क्षपकश्रेणि बारहवें पहुंचे, गिरे तो नवमें में आ जाय॥ २६१॥
ग्यारह गुणस्थान जो जावें, दशवें आय न ऊपर जाय।
दशवें तैं भी गिरता जावे, क्रमशः पहले तक आ जाय॥ २६२॥
बारहवें गुणस्थान तैं चढ़ि हैं, तेरहवें में निश्चित जाय।
गिरें नहीं उस ही भव से वे, कर्मनाशि शिवपुर पहुंचाय॥ २६३॥
तेरहवें के जिनप्रभु अन्तिम, चौदह गुणस्थान तैं जाय।
शेष अघाति कर्महनि निहचै, योग निरोध करें शिवजाय॥ २६४॥

सातवें गुणस्थान वाले मुनिराज श्रेणी आरोहण कर ऊपर चढ़ें तो आठवें गुणस्थान में जाते हैं, और गिरें तो छटवें गुणस्थान में आते हैं, वे मुनिराज छटवें, सातवें गुणस्थान में अनेक बार उतरते चढ़ते हैं, इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानों में झूलते रहते हैं॥ २५९॥

आठवें गुणस्थान से चढ़ें तो नवमें में जावें और गिरें तो सातवें में आवें। नवमें गुणस्थान के मुनिराज ऊपर चढ़ें तो दशवें गुणस्थान में जावें और गिरें तो आठवें में आवें॥ २६०॥

दशवें गुणस्थान के मुनिराज उपशम श्रेणि वाले ग्यारहवें में जावें और क्षपक श्रेणि वाले बारहवें गुणस्थान में पहुंचे। यदि गिरें तो नवमें गुणस्थान में आवें॥ २६१॥

ग्यारहवें गुणस्थानवाले मुनिराज ऊपर चढ़ते नहीं, वे नियम से गिरते ही हैं वे ग्यारहवें से दशवें फिर दशवें से नवमें आदि क्रम से गिरते गिरते पहले गुणस्थान तक भी आ जाते हैं॥ २६२॥

बारहवें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थ नीचे गिरते नहीं हैं, नियम से ऊपर तेरहवें गुणस्थान में चढ़ते हैं, वे उसी भव से कर्म क्षयकर मोक्ष चले जाते हैं॥ २६३॥

तेरहवें गुणस्थान के जिनेन्द्र प्रभु नियम से चौदहवें गुणस्थान में ही चढ़ते हैं, यह अन्तिम गुणस्थान है, यहां योगनिरोध कर सम्पूर्ण अघातिया कर्मों का क्षय कर भगवान् मोक्ष को चले जाते हैं॥ २६४॥

यों है गुणस्थान चढ़ने का, और उतरने का क्रम जान।
गुणस्थान तैं रहित सिद्ध प्रभु, जिनने पाया पद निरवान॥ २६५॥

इति गुणस्थान वर्णनम्

सम्यक् चारित्र का विशेष वर्णन

सम्यक् चारित्र के ही बल तैं, कर्म क्षय करते मुनिराय।
तिनके पंच भेद आगम में, तिन संक्षेप कहूं वरणाय॥ २६६॥
सामायिक छेदोपस्थापन, अरु परिहारविशुद्धि जान।
सूक्ष्म सांपराय अरु पंचम, यथाख्यात ये भेद बखान॥ २६७॥
मोक्ष हेतु साक्षात् कहावे, चारित्र महिमा कह न सकाय।
समता भाव धरे जो मुनिवर, ध्यान और स्वाध्याय कराय॥ २६८॥
नियत और अनियत कालहि जो, धरे ध्यान तजि परिग्रह भार।
पंचपाप के सर्वदेश से त्याग, चारित सामायिक सार॥ २६९॥
प्रतिक्रमण प्रायश्चित तैं जो, लगे दोष मुनि नष्ट कराय।
चारित छेदोपस्थापन वह, दोष नशैं निजगुण प्रकटाय॥ २७०॥

इस प्रकार गुणस्थान चढ़ने और उतरने का क्रम है, गुणस्थान से रहित वे सिद्ध भगवान् हैं जिनने मोक्ष पद प्राप्त किया है॥ २६५॥

इस प्रकार गुणस्थान का वर्णन समाप्त हुआ

सम्यक् चारित्र का विशेष रूप से वर्णन

सम्यक् चारित्र के पालन से ही मुनिराज कर्मों का क्षय करते हैं। उनके पांच भेद होते हैं, उनका संक्षेप से वर्णन यहां करते हैं॥ २६६॥

१ सामायिक, २ छेदोपस्थापन, ३ परिहारविशुद्धि, ४ सूक्ष्म सांपराय, ५ यथाख्यात। ये चारित्र के पांच भेद होते हैं॥ २६७॥

यह सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का साक्षात् कारण है इस चारित्र की महिमा अवर्णनीय है, जो मुनिराज समता भाव धारण कर ध्यान व स्वाध्याय में रत होते हैं, नियत और अनियत काल में परिग्रह आदि पांच पापों का सर्वदेश त्याग करते हैं, वह सामायिक चारित्र है॥ २६८॥ २६९॥

मुनिव्रत, चर्या आदि में लगे दोषों को प्रतिक्रमण और प्रायश्चित आदि से दूर करना, छेदोपस्थापना चारित्र है॥ २७०॥

प्राणी हिंसा पूर्ण निवृत्ति जो, जातैं आत्म विशुद्धि महान्।
वह परिहार विशुद्धि चारित, लेशमात्र नहिं जीव धुजान॥ २७१॥
केवल सूक्ष्मलोभ रहा है जिनके और न रंच कषाय।
गुणस्थान दशवें का चारित, सूक्ष्म सांपराय सुखदाय॥ २७२॥
चारित मोह सम्पूरण क्षय तैं, या उपशम तैं जो प्रकटाय।
शुद्धातम प्रकटै वह चारित, यथाख्यात तसनाम कहाय॥ २७३॥
ज्यों ज्यों चारित आगे बढ़ता, त्यों त्यों कर्मनशै मुनिराय।
अन्तिम सर्वकर्म हनि आतम, सिद्ध परम आतम बनि जाय॥ २७४॥

गुणस्थान अपेक्षा से चारित्र

सामायिक छेदोपस्थापन, छठवें तैं नवमें तक जान।
अरु परिहार विशुद्धि चारित, षष्ठम् सप्तम द्वै गुणथान॥ २७५॥
सूक्ष्म सांपराय यह चारित, दशवें गुणस्थान में जान।
यथाख्यात चारित्र ग्यारवें, तैं चौदहवें तक पहिचान॥ २७६॥

प्राणी हिंसा की जिसमें पूर्णतः निवृत्ति हो, आत्मा की विशुद्ध परिणति प्रकट हो, स्थावर जीव का भी घात न हो वह परिहार विशुद्धि चारित्र है॥ २७१॥

केवल सूक्ष्म लोभ कषाय हो और सब कषायें सर्वथा नहीं हों, ऐसी दशवें गुणस्थानवर्ती मुनि के सूक्ष्म सांपराय चारित्र होता है॥ २७२॥

चारित्र मोहनीय का सम्पूर्ण क्षय या उपशम से जो शुद्धात्मा प्रकट होती है वह यथाख्यात चारित्र है॥ २७३॥

मुनिराज ज्यों ज्यों ऊपर ऊपर चारित्र धारण करते हैं, त्यों त्यों कर्मों का क्षय कर सिद्ध परमात्मा का पद प्राप्त करते हैं॥ २७४॥

गुणस्थान अपेक्षा से चारित्र का वर्णन

सामायिक और छेदोपस्थापन ये दो चारित्र छटवें गुणस्थान से नवमें गुणस्थान तक होते हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र छटवें से सातवें इन दो गुणस्थान तक होता है॥ २७५॥

सूक्ष्म सांपराय दशवें गुणस्थान में होता है और यथाख्यात चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है॥ २७६॥

यों है सकल चारित्र सुसंयम, यह मुनि धर्ममोक्ष का द्वार।
जो साधन निश्चय रत्नत्रय, धारें सकल मनुष भवसार॥ २७७॥
निश्चय धर्म बिना नहिं शिव है, निश्चय का साधन व्यवहार।
नहिं व्यवहार बिना निश्चय है, तातैं द्रय शिव भवहितकार॥ २७८॥
बिनकालेज न जज डाक्टर हो, बिना पढ़े पण्डित नहिं होय।
नौका बिन नहिं जलधि तिरहिं ज्यों, कंचन शुद्ध तपैं ही होय॥ २७९॥
अग्नि तपै बिन घृत नहिं पावत, साधन बिन नहिं कारज कोय।
त्यों व्यवहार बिना नहिं निश्चय, धर्म दोउ धारहु भविलोय॥ २८०॥
निश्चय चारित की अति महिमा, नाम स्वरूपाचरण कहाय।
जहं शुद्धोपयोगथिर आतम, यथाख्यात भी यही बताय॥ २८१॥
धर्मध्यान पूरण अभ्यासी, सप्तम तैं अष्टम् में आय।
बढ़े शुद्ध निर्मल परिणामी, श्रेणीआरोहण कर जाय। २८२॥

इस प्रकार सकल चारित्र का वर्णन किया, यही चारित्र मोक्ष का दरवाजा है, यही निश्चय धर्म का साधन है, मनुष्य भव में सार यह धारण करो॥ २७७॥

निश्चय धर्म के बिना मोक्ष नहीं है और निश्चय का साधन व्यवहार है व्यवहार के बिना निश्चय धर्म की प्राप्ति असम्भव है, इसलिये मोक्ष का मार्ग व आत्महितकारी दोनों प्रकार के धर्म को धारण करना चाहिये॥ २७८॥

जिस प्रकार बिना कालेज में पढ़े जज और डाक्टर नहीं हो सकते, बिना पढ़े पण्डित नहीं हो सकते, बिना नाव या जहाज के समुद्र पार नहीं हो सकते, बिना तपाये स्वर्ण शुद्ध नहीं होता, अग्नि में तपाये बिना घृत नहीं मिलता, बिना साधन के कार्य सिद्धि नहीं होती, उसी प्रकार व्यवहार धर्म के बिना निश्चय धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये भव्य जीवों को दोनों प्रकार का धर्म या चारित्र धारण करना चाहिये॥ २७९॥ २८०॥

निश्चय चारित्र की भारी महिमा है, इसी का नाम स्वरूपाचरण है। जहां आत्मा आत्मा में लीन हो, वही शुद्धोपयोग और यही यथाख्यात चारित्र है॥ २८१॥

जो मुनि सातिशय धर्मध्यान के पूर्ण अभ्यासी होकर सातवें गुणस्थान से आगे आठवें में चढ़ते हैं, उन शुद्ध निर्मल परिणाम वाले श्रेणि आरोहण करते मुनिराज को निश्चय चारित्र होता है॥ २८२॥

तब वह आतमध्यानी हो फिर, त्यागविकल्प धरे निजध्यान।
नय प्रमाण ध्येय अरु ध्याता, सब विकल्प तैं मुक्त महान्॥ २८३॥

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण का, भेद रहा नहिं किंचित जान।
अष्टम् गुणस्थान मुनि पहुंचे, शुक्ल ध्यान धरि बड़े महान्॥ २८४॥

क्षपक श्रेणि आरोहण करके, तत्क्षण घाति करम विनशाय।
केवलज्ञान पाय भविबोधें, गुणस्थान तेरहवें जाय॥ २८५॥

पुनि चौदहवें गुणस्थान में पहुंचें, कर्म अघाति नशाय।
सर्व कर्म क्षय करि ऋजुगति से, पहुंचे सिद्धशिला पर जाय॥ २८६॥

पंचम काल हीन संहनन तैं, मोक्ष न जावें इस पर्याय।
किन्तु मुनीश्वर धर्मध्यान बल, निश्चय स्वर्ग देव वे जांय॥ २८७॥

लोकान्तिक सुर प्रथम इन्द्र हों, दाक्षिणेन्द्र होवें मुनिराय।
लोकपाल सुरपतिका होवें, ये सब एक ही भव शिव पाय॥ २८८॥

वे मुनि उस समय निर्विकल्प होते हुये आत्मा में स्थिर होकर लीन हो जाते हैं। उस समय नय, प्रमाण, ध्येय, ध्याता, निश्चय, व्यवहार आदि सब विकल्पों से मुक्त हो जाते हैं॥ २८३॥

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र का भी उस समय कोई भेद नहीं रहता है। वे मुनि क्षपकश्रेणि आरोहण कर आठवें से क्रमशः दसवें तक पहुंच कर सीधे बारहवें गुणस्थान पहुंच जाते हैं, और तत्काल घातिया कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, और तेरहवें गुणस्थान में पहुंचकर भव्य जीवों को सम्बोधित करते हैं॥ २८४॥ २८५॥

फिर चौदहवें गुणस्थान में पहुंच अघातिया कर्मों का क्षय कर ऋजुगति से एक समय में मोक्ष चले जाते हैं॥ २८६॥

पंचम काल के मुनि हीन संहनन होने से इसी पर्याय से मोक्ष नहीं जाते हैं, किन्तु धर्मध्यान के बल से नियम से स्वर्ग के देव हो सकते हैं॥ २८७॥

तथा लोकान्तिकदेव, सौधर्मेन्द्र, दाक्षिणेन्द्र, सौधर्मेन्द्र के लोकपाल हो सकते हैं, ये सब एक ही भवावतारी होते हैं॥ २८८॥

पंचम काल अन्त तक निश्चय, श्रावक अरु मुनि होहिं सुजान।
ऐसी आगम वाणी तातैं, धर्म गहो जिनवचन प्रमान॥ २८९॥

जे शिव गये जाहिं अरु जैहैं, ते सब मुनिव्रत संयमधार।
सम्यक्चारित ही करतारि शिव, लहैं भविक धारहु शिवकार॥ २९०॥

ज्यों कंचनकालिमा सहित ही, खान निकसि पुनि अग्नि तपाय।
होय शुद्ध ज्यों दुग्ध तपे तैं, दधि हो मंथन घृत उपजाय॥ २९१॥

त्यों संयम तैं कर्म नशैं पुनि, शुद्धातम निजरूप लखाय।
संयम बिन नहिं मोक्ष लहे भवि, संयम धारण करहु उपाय॥ २९२॥

इति रत्नत्रय वर्णनम्

पंचम काल के अन्त तक जैन श्रावक और मुनि होंगे। ऐसे जिनवाणी में कहा है, अतः उस जिनवचन को प्रमाणित मानकर धर्म का ग्रहण करना चाहिये॥ २८९॥

जो पूर्व में मोक्ष गये हैं वर्तमान में जा रहे हैं और भविष्य में जायेंगे वे सब मुनिव्रत (सकल संयम) धारण कर ही मोक्ष गये व जायेंगे। इसलिये भव्य जीवों को यह सकल संयम धारण करना चाहिये॥ २९०॥

जिस प्रकार सोना खान से किट्ट कालिमा सहित मैला निकलता है फिर अग्नि से तपाकर शुद्ध होता है तथा जिस प्रकार दूध के गरम करने से दही और दही के मंथन से घृत निकलता है॥ २९१॥

उसी प्रकार संयम के धारण करने से कर्मों का क्षय होता है। शुद्धात्मा का स्वरूप प्रकट होता है—अतः सार यही है कि संयम के बिना मोक्ष नहीं होता है। इसलिये सभी जीवों को संयम धारण करना चाहिये और उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये॥ २९२॥

इस प्रकार रत्नत्रय का वर्णन समाप्त हुआ।

अन्तिम मंगल

पंचपरमपद स्थित परमेष्ठी, स्मरण करूं मैं मन वचकाय।
यह त्रैलोक्य तिलक सम्पूरण करूं भव्य! निजपर हितदाय।। २९३।।

पूर्वाचार्य भये बहुज्ञानी, तिनका हम पर अति उपकार।
नेमिचन्द यतिवृषभ और, अकलंक उमास्वामी हितकार।। २९४।।

लिखे शास्त्र अतिगहन जिनागम, तिनका ही लेकर आधार।
तीनलोक वर्णन भाषा में, लिखा पद्य में बुधि अनुसार।। २९५।।

पहले लिखा पद्य में मैंने, अति संक्षेप त्रिलोक सुसार।
उसको ही विस्तृत वर्णन से, लिखा जिनागम का जो सार।। २९६।।

दसअध्याय भये पूरण ये, करूं लेखनी बन्द सुजान।
मन्दबुद्धि मम गहन जिनागम, भूलचूक क्षमहु मतिमान।। २९७।।

अन्तिम मंगलाचरण

इस उत्तम ग्रन्थ को समाप्त करते हुये मैं पंच परमेष्ठी का मन वचन काय से स्मरण करता हूं, हे भव्यजीवो! स्वपरहितकारी यह त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ अब मैं पूर्ण कर रहा हूं।। २९३।।

पूर्वाचार्य बड़े ज्ञानी हो गये हैं उनने हम पर भारी उपकार किया है। वे हैं आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, यतिवृषभाचार्य, अकलंक भट्टारक, श्रीमद् उमास्वामी आचार्य।। २९४।।

उन आचार्यों के रचे ग्रन्थों का अध्ययन कर व उनका आधार लेकर मैंने साररूप में तीन लोक का वर्णन करने वाला यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा पद्य में मन्दबुद्धि अनुसार लिखा है।। २९५।।

इससे पूर्व मैंने हिन्दी पद्य में अत्यन्त संक्षेप में त्रिलोकसार लिखा था, उसी को लेकर यह त्रैलोक्य तिलक जिनागम के अनुसार विस्तार से लिखा है।। २९६।।

इसके दसों अध्याय पूर्ण हुए हैं। अब मैं अपनी लेखनी बन्द कर रहा हूं। मेरी बुद्धि अल्प है और जिनागम गहन समुद्र के समान है, इसमें कोई भूल चूक हो जाय तो विद्वानगण मुझे क्षमा करें।। २९७।।

जन्मभूमि मम ऋषभदेव है, अतिशय तीर्थ प्रसिद्ध महान्।
इसी तीर्थ में लिखा ग्रन्थ यह, सरल सुबोध भव्यहित जान॥ २९८॥

नवद्वय शून्ययुग्म विक्रमनृप, वर्ष अष्टमी तिथि शुभ जान।
कृष्ण पक्ष वैसाख मास में, पूर्ण किया यह ग्रन्थ महान्॥ २९९॥

जैनमित्र में छपा ग्रन्थ यह, कुछ वर्षों तक अविरल सार।
ता पीछे पुनि टीका कीनी, अल्पबुद्धि भविजन हितकार॥ ३००॥

वीर प्रभु की दिव्य ध्वनितैं, खिरा वही जिनवर सन्देश।
उसका ही कुछ सार लिखा यह, कर प्रयास मतिमंद महेश॥ ३०१॥

इति पं० महेन्द्रकुमार "महेश" विरचिते त्रैलोक्यतिलक ग्रन्थे रत्नत्रय,
द्वादशानुप्रेक्षा, ध्यानकषाय, गुणस्थानादि वर्णनोनाम दशमोऽध्यायः

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

मेरी जन्मभूमि ऋषभदेव नगर है, जो कि महान् प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है, इसी तीर्थ में मैंने सरल व ज्ञानवर्धक भव्य जीवों के हित के लिये यह ग्रन्थ लिखा है॥ २९८॥

विक्रम संवत २०२९ दो हजार उनतीस वैसाख मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन यह महान् ग्रन्थ पूर्ण किया॥ २९९॥

सूरत से प्रकाशित होने वाले "जैनमित्र" नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक जैन पत्र में यह लगातार कुछ वर्षों तक छपता रहा, उसके पश्चात् इसकी मैंने अल्प बुद्धि वाले भव्य जीवों का हित करने वाली हिन्दी में यह टीका की है॥ ३००॥

भगवान् महावीर प्रभु की दिव्यध्वनि से जो वाणी खिरी उसका ही कुछ सार अंश–जिनेन्द्र सन्देश के रूप में मुझ मन्दबुद्धि वाले पं० महेन्द्रकुमार "महेश" ने लिखने का प्रयास किया है॥ ३०१॥

इस प्रकार पं० महेन्द्रकुमार "महेश" विरचित त्रैलोक्य तिलक ग्रन्थ में
रत्नत्रय, बारह भावना, ध्यान, कषाय, गुणस्थान आदि का वर्णन
करने वाला दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

यह ग्रन्थ समाप्त हुआ

प्रशस्तिः

भारतदेश मध्य अति सुन्दर, राजस्थान प्रान्त शुभ जान।
ताकी दक्षिण दिशि में तीरथ, ऋषभदेव अतिरम्य महान॥ १॥
केशरिया जी अपरनाम है, मन्दिर दृढ़ अति भव्य विशाल।
बावन मन्दिर शिखरयुक्त हैं, कोटद्वार अति उच्च खुशाल॥ २॥
मूलसंघ काष्ठासंघ ये दो, गच्छ भट्टारक के हैं जान।
धर्म दिगम्बर जैन इन्होंने, मन्दिर का कीना निर्माण॥ ३॥
करी प्रतिष्ठा शिला लेख हैं, नग्न मूर्तियां नेक महान।
दृढ़ प्राचीन सुशिल्पकला तैं, है इतिहास प्रसिद्ध सुजान॥ ४॥
इहाँ दिगम्बर जैन जाति, नरसिंहपुरा के गृह बहुमान।
इसी जाति में जन्म हुआ मम, चुन्नीलाल पिता मतिमान॥ ५॥
जननी नाथीबाई धर्मरत, दान धर्म व्रत माहि प्रधान।
थे गुरुभक्त मास उपवासी, और अनेक किये व्रत ध्यान॥ ६॥
तिनका मैं लघुपुत्र कहाया, है शुभनाम महेन्द्र कुमार।
अरु उपनाम "महेश" कहावे, जन्म नाम मोहन प्रियसार॥ ७॥
विक्रम संवत शत उन्नीसरु पिचहत्तर ऊपर है जान।
आश्विन कृष्णा तेरस के दिन, जन्म हुआ मम संकट आन॥ ८॥
जन्म हुआ तब चाचा भ्राता, मरण भये गृह दुःख महान।
तखत गिरे पग टूटा बचपन, दुःख सहे कर्मोदय जान॥ ९॥
पढ़े गांव में तथा उदयपुर, विद्यालय में पाया ज्ञान।
धर्म विशारद तथा मध्यमा, व्याकरण संस्कृत की मान॥ १०॥

कर्म उदय तैं बीच पठन तें, बाधा हुई किया व्यापार।
आटा दाल वणज वस्त्रों की, की दुकान छोटा ब्यौपार॥ ११॥

समय समय पर की समाज की सेवा अरु शिक्षक का काम।
बीच वणज भी किया भाग्य से, सुखनहिं दुःखसहे निजधाम॥ १२॥

बिनरुचि हुआ विवाह तबै भई, विधवा बहिन भयादुख और।
चाचा के घर दत्तक रक्खा, यातैं कष्ट मिला अतिघोर॥ १३॥

पूरब कर्म उदय चाचा गृह, दंपति दुःख भुगते नहिं चैन।
चाचा के गृहतैं द्वै निकसे, रहे किराये बीती रैन॥ १४॥

पितु अरु चाचा के घर छूटे, कभी नौकरी कभी दुकान।
धन भी गया भाग्य भी रूठा, कोई सगा सहाइ न आन॥ १५॥

सुखदुख सरिता में डुबकी ले, देश समस्त फिरे कितबार।
विद्यालय बोर्डिंग अरु आश्रम, की सेवा अरु धर्म प्रचार॥ १६॥

हो उत्तीर्ण प्रथम श्रेणी में, शास्त्री के त्रयखण्ड सुधार।
विषय धर्म सिद्धान्त माहिं शुभ, सर्व प्रथम आये त्रयबार॥ १७॥

ऋषभदेव डुंगरपुर छाणी, गढ़प्रताप कोटा परधान।
उदयपुर श्रीमहावीरजी, शान्तिवीर नगरी शुभ जान॥ १८॥

गृहपति अध्यापक परचारक, अरु आचार्य रहा परधान।
बर्तन का व्यपार किया पुनि, श्रम का कर न सकहु बयान॥ १९॥

चाची गई मरण चाचाने, धन सब पुत्री को लुटवाय।
लकवा हुआ रुग्ण हुई काया, चाचाने तब हमें बुलाय॥ २०॥

करी विनती हमें सम्हालो, विपत्ति आय तब करी सहाय।
पत्नी ने निशदिन जगकरके, सेवा कठिन करी मनलाय॥ २१॥

महासभा सिद्धान्त रक्षिणी, सभा मालवाप्रान्त सुजान।
महावीरकीर्ति स्मृति स्थापित धर्म प्रचारिणी संस्था मान॥ २२॥

उपदेशक अरु महोपदेशक, तथा प्रचारक बन अभिराम।
देश प्रान्त में भ्रमण किया अरु, धर्म प्रचार किया यशनाम॥ २३॥

मेरठ शहर समाज बुलाया, शास्त्र सभा शिक्षक का काम।
किया यहाँ भी रहा वर्ष कछु, यशपाया अरु हुआ सुनाम॥ २४॥

करी प्रतिष्ठाएं जिनमन्दिर, बिम्ब प्रतिष्ठा विविध विधान।
प्रवचन शैली मधुर सुने सब, जगह जगह पाया सन्मान॥ २५॥

अभिनंदन अरु मानपत्र भी मिले अनेक लगे निजधाम।
स्वर्णपदक अरु रजतपदक भी, मिले समाज हुआ सतनाम॥ २६॥

पदवी मिली मानपत्रों में तिनका वर्णन करूं सयत्न।
वाणीभूषण ज्ञानदिवाकर, महोपदेशक प्रवचनरत्न॥ २७॥

उत्तर प्रान्त अवागढ़ शोभित, महावीरकीर्ति स्मृति धाम।
तिहां हुआ सन्मान सभाथल, शाल प्रशस्तिपत्र युतनाम॥ २८॥

पंच सहस्र भेंट निधि से तिहं, अभिनंदन शुभ किया समाज।
भाषण प्रवचन मधुर देशना, तैं यश पाया विधिबल आज॥ २९॥

पुत्र हुआ इक काल ले गया, पत्नी लक्ष्मी है शुभ नाम।
एक मकान बनाया रहने, नाम "महेश भवन" अभिराम॥ ३०॥

लिखी अर्चना देवशास्त्र गुरु, पूजन भावमयी रुचिकार।
रचा त्रिलोकसार पद्यों में, अति संक्षेप लोकत्रय सार॥ ३१॥

श्रेयोमार्ग पत्रिका मासिक, महावीरकीर्ति स्मृति ग्रंथ।
इनका संपादक बन कीना, सम्पादन जिन आगम पंथ॥ ३२॥

महा सभा का बहुत काल से, मेरा रहा सतत सम्बन्ध।
जैन गजट का सह संपादक, बनि कछु लेख लिखे मतिमंद॥ ३३॥

कुछ स्मृति ग्रंथों का संपादक, रहा किया सहयोग सहाय।
समय समय पर लेख स्तोत्र भी, हिन्दी संस्कृत माहि रचाय॥ ३४॥

अब त्रैलोक्य तिलक नामक यह, ग्रंथ लिखा आगम पढ़ि सार।
तीन लोक, रत्नत्रय लेश्या, ध्यान कषाय भव्यहितकार।। ३५।।

स्वर्ग, नर्क, नरलोक, संहनन, तत्व कर्म, अनुप्रेक्षा खास।
गुणस्थान, मार्गणा प्रभृति ये, सरल काव्यमय किया प्रयास।। ३६।।

कर्म उदय पत्नी का सहसा, हुआ वियोग हृदै दुखकार।
दान धर्म हित ट्रस्ट बनाया, लक्ष द्रव्य रखि बैंक मंझार।। ३७।।

पत्नी स्मृति में ऋषभदेव में, बना भवनविज्ञान महान।
तथा सरस्वती भवन बना है, लक्षाधिक कछु दीना दान।। ३८।।

पत्नी भ्राता का सुत दत्तक, रखावंश हित परंपरेय।
चेतन नाम पढ़ाया पाला, ब्याह रचा व्यापार करेय।। ३९।।

ना कवि मैं विद्वान न ज्ञानी, साहस करि कछु किया प्रयास।
स्खलन न्यून पद मात्रा स्वर हों, क्षमा करहु बुधजन यह आस।। ४०।।

इति प्रशस्तिः

त्रैलोक्य तिलक पर अभिमत

१

श्री पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश"

सा. जयवीर।

त्रैलोक्य तिलक (अष्टाध्यायी) की प्रति प्राप्त हुई, उत्तम रचना है, तिलोय पण्णति का वर्णनीय विषय सब आ गया है, गणित का दुरूह विषय छोड़कर अन्य विषयों का हिन्दी छन्दों में वर्णन है, भाषा प्रसाद गुण सहित तथा प्रवाह पूर्ण है। ऐसी उत्तम रचना के लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
अध्यक्ष
अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् सागर

दिनांक ६.१.०८४

२

प्रतिष्ठाचार्य उद्भट विद्वान् पं. श्री महेन्द्रकुमारजी द्वारा निर्मित त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ आद्योपान्त ध्यानपूर्वक पढ़ा, जिसमें अधोलोक, मध्य लोक तथा ऊर्ध्व लोक का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, ग्रंथ की भाषा सरल, मधुर एवं प्रसाद को लिये हुए है। हिन्दी में अब तक ऐसी सरल रचना उपलब्ध नहीं थी इस अभाव को पूर्ण करके आपने भव्य जीवों का परम उपकार किया है।

सभी धर्म बंधुओं को सबल प्रेरणा है कि इस ग्रंथ को अवश्य मंगाकर चिन्तन मनन करें, ऐसी भव्य रचना के लिये पंडितजी बधाई के पात्र हैं।

श्रेयांसकुमार जैन
(एम. ए. सिद्धान्त) न्याय साहित्य शास्त्री
साहित्य रत्न, किरतपुर (बिजनौर)

३

सरधना से श्री पं. विजयकुमारजी शास्त्री जैन दर्शन, साहित्याचार्य एक पद्य में भाव व्यक्त करते हैं।

तीन लोक के वर्णन वाला, ग्रंथ महाहितकारी।
श्री महेशजी द्वारा विरचित, यह अतिशय सुखकारी॥
कविता का सौन्दर्य निहित है, छंद बंध लयकारी।
आगम का नवनीत मृदुल है, है प्रसाद गुणकारी॥

४

श्री पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री मेरठ

जयजिनेन्द्र !

मैं दि. १३.५.८८ को आपके यहां आया था मेरे साथ और भी दस लोग थे। आप से मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आपने अपनी रचना "त्रैलोक्य तिलक" (अष्टाध्यायी) ग्रंथ मुझे दिया था, उसे मैंने आद्योपान्त पढ़ा, मुझे बहुत पसंद आया। तीन लोक का वर्णन पद्य में लिखना सरल कार्य नहीं है। कठिन कार्य को अपनी प्रतिभा से पूरा करके जिनवाणी का प्रचार किया है। आपका कार्य प्रशंसनीय है।

धन्यवाद !

पं. सिंहचन्द्र जैन शास्त्री
काव्यतीर्थ, साहित्य रत्न
मंत्री
सम्यग्ज्ञान प्रचार संघ मद्रास (दक्षिण)

५

श्रद्धेय गुरुवर्य्य पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश"

सा. जयजिनेन्द्र !

त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ मिला, इसके लिये आभारी हूं। आपने यह ग्रंथ बड़ा परिश्रम करके तैयार किया है। इसलिये आप धन्य हैं। ग्रंथ के लिये ज्यादा क्या लिखूं मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं।

भवदीय :
सुनहरीलाल जैन
फर्म : दौलतराम सुनहरीलाल
बेलनगंज, आगरा

६

श्रीमान् पंडितजी

जयजिनेन्द्र !

त्रैलोक्य तिलक प्राप्त हुई, धन्यवाद ! पुस्तक की विषय वस्तु, विषयों का चयन, सम्पादन आदि उच्चकोटि का है। पुस्तक उपयोगी है। आप का अध्ययन एवं पाण्डित्यपूर्ण विवेचन बहुत विशाल है। आपका सद्प्रयास त्रिलोक सार की भांति ही प्रशंसनीय है। शुभकामना सहित :—

ज्ञानप्रकाश जैन साहित्यरत्न
विजयनगर (देहरादून)

७

त्रैलोक्य तिलक के सम्बन्ध में पार्श्व ज्योति पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री डा. रमेशचन्दजी जैन पी.एच.डी.डी.लिट. जैन दर्शनाचार्य, बिजनौर पार्श्वज्योति पत्रिका के दि. १५ जनवरी १९८६ के अंक में लिखते हैं।

तीन लोक की रचना के विषय में जैनाचार्यों ने तिलोय पण्णति, त्रिलोकसार, लोक विभाग, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रवचन सारोद्धार, बृहत्संग्रहणी, लोक प्रकाश, बृहत्क्षेत्र समाज इत्यादि ग्रंथों में प्रमुख रूप से लिखा है। इन्हीं ग्रंथों को आधार बनाकर पं. महेन्द्रकुमारजी शास्त्री ने इस ग्रंथ "त्रैलोक्य तिलक" की रचना की है। यह रचना पद्यमय है, पद्य की भाषा बड़ी सरल है, जो सर्व साधारण को बोधगम्य है। लेखक ने भवभ्रमण, रत्नत्रय, कषाय, ध्यान, लेश्या, बारह भावना तथा गुणस्थान आदि विषयों पर समुचित प्रकाश डालकर ग्रंथ को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। पाठकों की सुविधा के लिये प्रत्येक पृष्ठ पर नीचे गद्यानुवाद भी दिया गया है। इसे स्वाध्याय प्रेमियों को अवश्य खरीदना चाहिये।

❑ डा. रमेश जैन

८

पूज्य १०८ श्री महाबलजी मुनिराज ने अपने संघ के क्षुल्लक १०५ श्री जयकीर्ति जी महाराज द्वारा त्रैलोक्य तिलक के सम्बन्ध में आशीर्वाद भिजवाते हुए लिखा है।

पू. पंडित रत्न, श्रावकोत्तम, दयाधर्म प्रतिपालक, स्वाध्याय प्रेमी, साहित्य प्रेमी, विद्वद्रत्न, पुण्यात्मा, गुरुआज्ञाधारक, जैन धर्म श्रद्धालु, श्री महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्रीजी को आशीर्वाद।

आपने बड़ी आस्था से, भक्तिभाव से "त्रैलोक्य तिलक" पुस्तक लिखी है, गुरुदेव विषय को पढ़कर बड़े आनंद को प्राप्त हो गये, आपको अनेकश: धन्यवाद कहा है। आप की और आपके गुणों की बहुत प्रशंसा की है। ज्ञानी विद्वानों का सच्चा कार्य ऐसा ही होता है।

क्षु. जयकीर्ति रणवरकोप

दि. १९.१२.८४

९

मुजफ्फरनगर टाईम्स हिन्दी साप्ताहिक वर्ष २३ अंक ३५

सम्पादक श्री डा. सुपार्श्वकुमार जैन ने त्रैलोक्य तिलक के सम्बन्ध में बहुत विस्तृत में अपना अभिमत व्यक्त किया है उसमें सारे ग्रंथ के विषयों का विवरण दिया है उसको स्थानाभाव से सर्व यहां न देकर केवल उनके अभिमत का आशय यहां दे रहे हैं।

त्रैलोक्य तिलक

ले. महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्री।

त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों में वर्णित विषय को सरल हिन्दी पद्यों में रखकर तथा साथ ही उसका गद्यात्मक अर्थ स्पष्ट कर प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ को समाज के सम्मुख रखने का प्रयास निःसंदेह सराहनीय है। भूमिका में स्वयं लेखक द्वारा ही वैदिक व बौद्ध ग्रन्थों में तथा वैज्ञानिक इतिहास के विद्वानों द्वारा वर्णित लोक/भूगोल का संक्षिप्त विवरण देने के बाद जिनागम वर्णित लोक का वर्णन किया गया है।

लेखक–कवि ने अपनी कवित्व शक्ति के साथ–साथ अपने अगाध ज्ञान का परिचय भी दिया है। जिनके लिए करणानुयोग का विषय अत्यन्त जटिल लगता है, उनके लिए यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है। क्योंकि वे इस कठिन गणित के विषय सम्बन्धी पद्यों को गुनगुनाते हुए सहजता से याद रख सकते हैं। इसमें कुल १५७६ पद्यों का अवतरण हुआ है। जिसमें ३५ पद्य प्रशस्ति के भी सम्मिलित हैं। प्रसार का दो तरह का मूल्य भ्रम उत्पन्न करता है। चूंकि दानराशि पुस्तक मात्रा में उपलब्ध हुई है अतः इसका रियायती मूल्य भी वास्तविक मूल्य होना चाहिए था।

ग्रंथ में तीन लोक के वर्णन के अतिरिक्त लेश्या, संहनन, गुणस्थान पंचलब्धि, रत्नत्रय, बारह भावना, ध्यान, कषाय आदि की व्याख्या की गई है। लेखक कवि ने अन्त में अपनी प्रशस्ति प्रस्तुत की है जो निःसंदेह कर्मों की बलवत्ता का प्रतीक होते हुए भी पुरुषार्थ को महत्व प्रदान करती है।

डा. सुपार्श्वकुमार जैन, बड़ोत

१०

आज के राकेट और स्फूतनिक युग में जैन भूगोल के प्रचार की महती आवश्यकता थी। प्रचलित भूगोल और जैन भूगोल में काफी असमानता है। इस दृष्टि से प. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री द्वारा लिखित "त्रैलोक्य तिलक" ग्रंथ जैन भूगोल के प्रचार का एक श्रेष्ठ माध्यम है। भाषा की सरलता ने इसे और उपयोगी बना दिया है। इस प्रकार के सुबोध लेखन के लिये पं. महेशजी बधाई के पात्र हैं।

पं. चन्दनलाल जैन सा. रत्न. शास्त्री

ऋषभदेव

११

जयपुर, दि. २४.२.८८

श्रीमान् पं. महेन्द्रकुमारजी सा. शास्त्री

आपके द्वारा रचित त्रैलोक्य तिलक (अष्टाध्यायी) आद्योपान्त पढ़ा, पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। आपने तीन लोक के विषय को पद्यानुवाद में बहुत सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है और पद्यों के नीचे गद्य में उनका अनुवाद करके बहुत सुन्दर बुद्धिमानी का कार्य किया है। पढ़ने वालों को पद्य का अर्थ समझने में बहुत सुविधा एवं सरलता हो जाती है। इसके अलावा आपने अन्य धर्मावलम्बियों के मत के मुकाबले में जैन धर्म के मत के अनुसार द्वीप समुद्रों का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से करके सोने में सुगंध का काम किया है। इस तरह के विवेचन की पुस्तक पढ़कर हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई है। एक तरह से आपने गागर में सागर भरकर बहुत ही सुन्दर रचना की है इसके लिये आपको बहुत बहुत धन्यवाद देता हूं। इस तरह की पुस्तक प्रत्येक मंदिर के भण्डार में होनी चाहिये।

आपका

अर्जुनलाल गोधा, जयपुर

१२

दि. १८.१२.८४

त्रैलोक्य तिलक (अष्टाध्यायी) पुस्तक पढ़ी, प्रारंभिक अध्ययन में पुस्तक बहुत अच्छी, सुन्दर लगी। भाषा सरल और सुबोध है, आपने कठिन विषय को सरल बना दिया है साथ ही रुचिकर। यह आपकी विशेषता प्रतीत हुई।

बिहारीलाल मोदी शास्त्री

बड़ामलहरा (छतरपुर)

१३

पूज्य क्षुल्लक मणि १०५ श्री शीतलसागरजी महाराज त्रैलोक्य तिलक पर दि. ३१.८.८४ के अपने पत्र में अभिमत व्यक्त करते हैं।

श्री पं. महेन्द्रकुमारजी जैन

आशीर्वाद !

आपके द्वारा प्रेषित त्रैलोक्य तिलक (अष्टाध्यायी) की दो प्रतियां प्राप्त हुई, हम गहराई से देख रहे हैं। आपका परिश्रम वास्तव में प्रशंसनीय है। त्रैलोक्य तिलक के पद्य नं. २७२, २७३, २७४ (अ. ८) व १६४, १६५, २८३, (अ. ८) तथा पद्य नं. ९८ (अ. ७) हमें बहुत ही पसंद आये। ग्रंथ की २३ पृष्ठों वाली भूमिका लिखी जिसमें सारे ग्रंथ का मर्म आपने लिख डाला है। परीक्षालयों में इस ग्रंथ को स्वीकार करने की आपकी भावना पूर्ण हो यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

❑ क्षु. शीतलसागर

१४

करुणादीप के प्रधान संपादक दि. १ फरवरी, १९८८ के अंक में त्रैलोक्य तिलक पर श्री जिनेन्द्रप्रकाशजी बी. ए., एल. एल. बी. अपना अभिमत व्यक्त करते हैं।

त्रैलोक्य तिलक

लेखक : पं. महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्री ऋषभदेव (राज.) पक्की जिल्द, सुन्दर छपाई, उत्तम कागज।

प्रस्तुत ग्रंथ में शास्त्रीजी ने ललित पद्यमान शैली में जिनवाणी के चारों अनुयोगों का सार संग्रहीत करके प्रस्तुत किया है। पं. महेन्द्रकुमारजी कुशल प्रवचनकार एवं अनुशासनप्रिय विद्वान हैं। शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। उनका परिश्रम प्रशंसनीय है। ग्रन्थ को आद्योपांत पढ़ने के उपरान्त पंडितजी की लेखनी के प्रति कृतज्ञ हुये बिना नहीं रहा जाता। ग्रंथ में वर्णित सभी विषय अत्यन्त उपयोगी हैं। यह कृति यद्यपि सामान्य पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक है तदपि सुधी जनों के लिए भी ज्ञानवर्धक है।

१५

दिनांक ११.८.८९

आदरणीय शास्त्रीजी श्री महेन्द्रकुमारजी "महेश"

सादर जयजिनेन्द्र !

हस्तिनापुर जम्बूद्वीप दर्शन के समय आपकी पुस्तक "त्रैलोक्य तिलक" अष्टाध्यायी क्रय करने का लोभ संवरण नहीं कर सकी। आप का यह ग्रंथ आगमनिरूपित त्रैलोक्य का भूगोल साक्षात् रूप से ला उपस्थित करता है। ग्रंथ की भूमिका में आपका कथन केवल मनीषी चिन्तकों अपितु जन साधारण को भी नूतन आगमों के धरातल पर ला खड़ा करता है।

भवदीय

डा. कुसुमशाह जैन

प्रधान संपादिका : जैन महिलादर्श, श्रीमहावीरजी

१७

ऋषभदेव, दि. २७.१.८४

आदरणीय वाणीभूषण, महोपदेशक, प्रतिष्ठाचार्य, प्रवचनरत्न पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री– सदर मेरठ

सादर प्रणाम !

आपके जीवन में आपने ऐसे काफी आदर्श काम कर समाज की सेवा की है परन्तु आपके जीवन के तीन प्रमुख कार्य ये हैं।

१. आपने त्रैलोक्य तिलक शास्त्र की रचना की।
२. ५० हजार की दान की राशि समाज सेवा में अर्पणकर ट्रस्ट फण्ड स्थापित किया है।
३. आपने अपनी आत्मा के हित हेतु व्रत प्रतिमा धारण कर चारित्र में वृद्धि कर अपना आत्म बल इस मंगल कार्य में जुटाया व कार्यान्वित किया।

आपने अपना समय जिनवाणी की रचना में लगाकर सातिशय पुण्य उपार्जन किया है। आपका त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ सरल भाषा में पद्य और गद्य दोनों आदर्श हैं। आपकी यह उपलब्धि भव्यात्माओं के कल्याण में परम निमित्त होगी।

करणानुयोग एक ऐसा विषय है जिसको विद्वान भी भली प्रकार समझ नहीं पाते हैं। आपने सच्चे परोपकार हेतु परिश्रम कर सुन्दर भाषा सब के समझ में आवे ऐसा शास्त्र को रूप दिया है, जिसकी आवश्यकता थी।

आपका विनीत :
शांतिलाल जैन वालावत
गृहपति
श्री भव्ययशकीर्ति दि. जैन धर्मार्थ ट्रस्ट
गुरुकुल ऋषभदेव

१८

दि. ५.११.८४

श्रद्धेय विद्वद्वर्य पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री सदर मेरठ

सस्नेह जयजिनेन्द्र !

आपके द्वारा लिखित त्रैलोक्य तिलक (अष्टाध्यायी) पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण, खोजबीन द्वारा रचित व संकलित सामग्री की स्वरचना एक माने में अनोखी है।

मैंने आद्योपान्त पढ़ ली, बड़ा आनंद आया। सर्वप्रथम आपके चित्र के दर्शन से आपकी त्याग, तपस्या, सात्विकता, मितव्ययिता, निरंतर परिश्रमशीलता एवं सर्वोपरि विद्वत्ता झलक रही है। वह देखते ही बनती है।

ग्रंथ की भूमिका में विभिन्न धर्मों के पृथ्वी निर्माण संबंधित विचार रखते हुए अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक जम्बूद्वीप आदि का सूक्ष्म वर्णन सरल भाषा में सबको समझ में आ जाता है साथ ही राजू का माप, समय संख्या, पल्य व सागर आदि का स्पष्टीकरण उपयुक्त है।

जैन भूगोल के सम्बन्ध में मेरे मन में विभिन्न शंकाएं थीं, इस पुस्तक के पढ़ने से कुछ हल हो सकी हैं। आठों अध्यायों की सरल पद्य में की गई रचना का सरल भाषा में गद्यार्थ करने से पुस्तक प्रत्येक पाठक के लिये रोचक व सरलतम बन गई है।

संसार की रचना के पश्चात् आपने सप्तम अष्टम अध्याय के वर्णन द्वारा मानव की आंखें खोल दी हैं। गति, आवागमन, लेश्या, गुणस्थान, संसार भ्रमण, वैराग, रत्नत्रय, भावनाएं, कषाय, गुणस्थान आदि का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सत्य में आपकी यह अनोखी रचना मानव के लिये एक अमूल्य देन होगी। यह पुस्तक आपकी अमर ख्याति के रूप में है जिसकी ज्योति निरंतर जगमगाती रहेगी। अंतिम प्रशस्ति में आपके जीवन की झलक भी प्रेरणात्मक ही है। जीवन के उतार चढ़ाव को पार करते हुए आपने जो वर्तमान स्थिति प्राप्त की उसके लिये आप धन्य हैं।

भैयालाल जैन बंडी

(एम. ए. बी. एड.), प्रतापगढ़ (राज.)

१६

श्रीमान् सहृदयवर, जैन सिद्धान्तशिरोमणि, जैन सि. विशेषज्ञ, कठोर परिश्रमी, अनुसंधानक, प्राचीनता को सरल, शुद्ध संगीतमय छंदोबद्ध, गुदड़ी के लाल, मूक जिनवाणी सेवक, आदि अनेक उपाधियों युक्त सहितासूरि, प्रतिष्ठाचार्य पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री।

आपका त्रैलोक्य तिलक ग्रंथ बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रंथ है, इस ग्रंथ की दो प्रतियां कृपाकर भेजने का कष्ट करें। इस ग्रंथ की प्रशंसा मैं नहीं लिख सकता।

भवदीय

पं. सतीशचन्द जैन पाटनी शास्त्री

दीवान स्ट्रीट, चौड़ा रास्ता, जयपुर